आप्तवाणी

श्रेणी-13 (उत्तरार्ध)

दादा भगवान प्ररूपित

स्वरूप ज्ञान साक्षात्कार प्राप्त, अक्रम
मार्गी महात्माओं के लिए केवलज्ञान की
श्रेणियाँ पार करने वाला ग्रंथ

आप्तवाणी

श्रेणी-१३
(उत्तरार्ध)

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन
हिंदी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : **श्री अजीत सी. पटेल**
दादा भगवान आराधना ट्रस्ट,
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसाइटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात.
फोन - (०७९) ३९८३०१००

प्रथम संस्करण : २,००० प्रतियाँ नवम्बर २०१७

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : - १२० रुपए

मुद्रक : अंबा ओफसेट
B-99, इलेक्ट्रोनीक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25, गांधीनगर-382044
फोन : (079) 39830341

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो,

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं,

पढमं हवइ मंगलम् १

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २

ॐ नमः शिवाय ३

जय सच्चिदानंद

समर्पण

अहो अहो दादा, तेरमी आप्तवाणी!
ग़ज़बनी फूटी, आ तो मोक्ष सरवाणी!
बे घडीमां ज अक्रमे, (मुज) प्रज्ञा प्रगटाणी!
'राग-द्वेष' भगाडे, तुज 'वीतराग' वाणी!
'करे मेलुंने चोख्खुं, ए ज पुद्‌गलाणि'!
'ज्ञान-अज्ञान' तणी, भेदरेखा ताणी!
'ज्ञान-दर्शन-चारित्र'मां, ठोठने आणी!
अहीं 'ज्ञान-दर्शन'नी, व्याख्या समजाणी!
अक्रमनी सिद्धि, तीर्थंकरोए वखाणी!
'ज्ञाता-दृष्टा'मांथी 'ज्ञायकता' वर्ताणी!
'एक पुद्‌गल' जोतां, 'वीर' दशानी ल्हाणी!
ग़ज़ब 'निरालंबता' अनुभवाणी!
'हुं, बावो, मंगळदास'थी 'मूळ दृष्टि' पकडाणी!
ग़ज़ब करी ते तो अर्पी दादा वाणी!
तमाम दु:खो, तुज प्रेममां डूबाणी!
युगो युगोनी तरस, दादे छीपाणी!
दु:खमां सबडतांने, अक्रमनी उजाणी!
तारी करुणा, दरेक पर ढोळाणी!
न हाले परमाणुं, दशा वर्ताणी!
शु अर्पुं क्षत्रियने कदि कंई न लेवाणी!
आवो दादा मळ्या मने, आश्चर्य सर्जाणी!
अनंत भवो कपाया, ए ज मोक्ष कमाणी!
ब्रह्मांडनो स्वामी, छतां लघु दशा देखाणी!
तेथी ज तुज छबी, सहु हृदये समाणी!
नथी तने खेवना कोई, तुं जगत कल्याणी!
समर्पुं चरणे जगे, तेरमी आप्तवाणी!

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आप में अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसी के पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थीं। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानीपुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो। उनकी हिंदी के बारे में उनके ही शब्द में कहें तो ''हमारी हिंदी यानी गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी का मिक्स्चर है, लेकिन जब 'टी' (चाय) बनेगी, तब अच्छी बनेगी।''

ज्ञानी की वाणी को हिंदी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिंदी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिंदी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में दिए गए हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

इस आप्तवाणी में ब्रैकिट में शब्दों के जो अर्थ दिए गए हैं, वे हमारी आज की समझ के अनुसार हैं।

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. ज्ञानी पुरुष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. प्रेम
२१. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं.)
२२. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२९. क्लेश रहित जीवन
३०. गुरु-शिष्य
३१. अहिंसा
३२. सत्य-असत्य के रहस्य
३३. चमत्कार
३४. पाप-पुण्य
३५. वाणी, व्यवहार में...
३६. कर्म का विज्ञान
३७. आप्तवाणी - १ से ९
३८. आप्तवाणी - १३ (पूर्वार्ध)
३९. आप्तवाणी - १३ (उत्तरार्ध)
४०. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (पूर्वार्ध)
४१. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (उत्तरार्ध)

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

संपादकीय

आत्मार्थियों ने आत्मा से संबंधित अनेक बातें अनेक बार सुनी होंगी, पढ़ी भी होंगी लेकिन उसकी अनुभूति एक गुह्यतम चीज़ है! आत्मानुभूति के साथ-साथ पूर्णाहुति की प्राप्ति के लिए अनेक चीज़ें जानने की ज़रूरत पड़ती है जैसे कि प्रकृति का साइन्स, *पुद्गल* को देखना और जानना, कर्मों का विज्ञान, प्रज्ञा का कार्य, राग-द्वेष, कषाय, आत्मा की निरालंब दशा, केवलज्ञान की दशा और आत्मा और ये स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के तमाम रहस्यों का हल, जो मूल दशा तक पहुँचने के लिए माइल स्टोन के रूप में काम आते हैं। जब तक यह संपूर्ण रूप से, सर्वांग रूप से दृष्टि में, अनुभव में न आ जाए तब तक आत्मविज्ञान की पूर्णाहुति प्राप्त नहीं की जा सकती। इन तमाम रहस्यों का स्पष्टीकरण संपूर्ण अनुभवी आत्मविज्ञानी के अलावा और कौन दे सकता है?

पूर्व काल में हुए ज्ञानी जो कहकर गए हैं, वह शब्दों में रह गया है, शास्त्रों में रह गया है और उन्होंने देशकाल के अधीन कहा था, जो काफी कुछ आज के देशकाल के अधीन समझ और अनुभव में फिट नहीं होता। इसलिए कुदरत के अद्भुत नज़राने के रूप में हम सब को इस काल में आत्मविज्ञानी अक्रमविज्ञानी परम पूज्य दादाश्री के अंदर पूर्ण रूप से प्रकट हुए 'दादा भगवान' को स्पर्श करके निकली हुई पूर्ण अनुभव सिद्ध वाणी का उपहार मिला है।

परम पूज्य दादाश्री ने कभी भी हाथ में कलम नहीं ली थी। मात्र उनके मुखारविंद से, उनके अनुसार टेपरिकॉर्डर में से मालिकी रहित स्याद्वाद वाणी, निमित्त मिलते ही देशना के रूप में निकलने लगती थी! उन्हें ऑडियो केसेट में रिकॉर्ड करके, संकलन करके सुज्ञ साधकों तक पहुँचाने के प्रयास हुए हैं। उनमें से आप्तवाणियों का अनमोल ग्रंथ संग्रह प्रकाशित हुआ है। आप्तवाणी के बारह ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और अभी तेरहवाँ ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, जो पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में विभाजित किया गया है।

पूज्य दादाश्री की वाणी सहज रूप से निमित्ताधीन निकलती थी। प्रत्यक्ष में हर किसी को यथार्थ रूप से समझ में आ जाती थी लेकिन बाद में उसे ग्रंथ में संकलित करना कठिन हो जाता है और उससे भी अधिक कठिन हो जाता है सुज्ञ पाठकों को उसे यथार्थ रूप से समझना! कितनी ही बार अर्थांतर हो जाने की वजह से दिशा भ्रमित हो सकते हैं या फिर दिशामूढ़ हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि शास्त्र में पढ़ा, 'जा, तेरी मम्मी को बुला ला'। अब यहाँ पर कौन किसकी मम्मी के लिए कह रहा है उस रेफरन्स (संदर्भ) को पाठक को खुद ही समझना है। उसमें खुद की पत्नी को बुलाने की बात भी हो सकती है या फिर किसी और की पत्नी की भी! यदि समझने में थोड़ा फर्क हो जाए तो?!!

इस प्रकार आत्म तत्त्व या विश्व के सनातन तत्त्व अवर्णनीय और अवक्तव्य हैं। ज्ञानीपुरुष दादाश्री बहुत-बहुत ऊँचाइयों पर से नीचे उतरकर उसे शब्दों में लाकर हमें समझाते हैं। जिस 'दृष्टि' की बात है, उसी 'दृष्टि' से प्राप्ति हो सकती है, न कि शब्दों से। 'मूल दृष्टि', जो आत्म सम्मुखता प्राप्ति की बात है, वह शब्द में कैसे आ सकती है? वह तो परम पूज्य दादाश्री का अक्रम विज्ञान जिस-जिस महा-महा पुण्यात्माओं ने प्राप्त किया है, प्रज्ञा जागृत होने की वजह से उन्हें पढ़ते ही समझ में आ जाता है। फिर भी कितनी ही गुह्यतम बातें समकिती महात्माओं की समझ से भी बाहर रहती है। या फिर कहीं पर विरोधाभास लगता है। वास्तव में ज्ञानी का एक भी शब्द कभी भी विरोधाभासी नहीं होता। इसीलिए उसकी अवमानना नहीं करना। उसे समझने के लिए उनके द्वारा ओथोराइस्ड पर्सन (अधिकारी) से स्पष्टीकरण प्राप्त कर लेना चाहिए या फिर पेन्डिंग रखो। जब खुद उस श्रेणी तक पहुँचेगा तब अपने आप समझ में आ जाएगा!

उदाहरण के तौर पर रेल्वे स्टेशन या रेल्वे प्लेटफॉर्म दोनों शब्दों का उपयोग अलग-अलग जगह पर किया गया है। अन्जान व्यक्ति उलझ जाता है और जानकार समझ जाता है कि एक ही चीज़ है! कई बार जब संपूज्य श्री प्लेटफॉर्म की बात कर रहे हों तो वर्णन की शुरुआत में अलग

होता है, बीच में अलग होता है और अंत में दूसरे सिरे का उससे भी अलग होता है। इसलिए देखने में ऐसा लगता है कि विरोधाभास है। वास्तव में एक ही चीज़ की अलग-अलग स्टेजों का वर्णन है!

यहाँ पर दादाश्री की वाणी जो कि अलग-अलग निमित्ताधीन, अलग-अलग क्षेत्र, काल और हर एक के अलग-अलग भावों के अधीन निकली, उसका संकलन हुआ है। प्रकृति की एक से सौ तक की बातें निकली हैं लेकिन निमित्त बदलने की वजह से पाठक को समझने में थोड़ी मुश्किल हो सकती है। कई बार ऐसा लगता है कि प्रश्न पुनः-पुनः पूछे गए हैं लेकिन पूछने वाले व्यक्ति अलग-अलग हैं, जबकि उसे स्पष्ट रूप से समझाने वाले सिर्फ एक परम ज्ञानी दादाश्री ही हैं। और, आप्तवाणी पढ़ने वाला पाठक तो हर बार एक ही व्यक्ति है, जिसे समग्र बोध ग्रहण करना है। जैसे परम पूज्य दादाश्री का एक ही व्यक्ति के साथ वार्तालाप हो रहा हो, वैसी सूक्ष्मता से संकलन का प्रयास हुआ है। हाँ, प्रश्नोत्तरी रूपी वाणी में हर एक बात के स्पष्टीकरण अलग-अलग लगते हैं लेकिन वे अधिक से अधिक गहराई में ले जाते हैं! जो कि गहराई से स्टडी करने वाले को समझ में आ जाएँगे।

इस प्रकार सभी कुछ करने के बाद भी मूल आशय से आशय को समझना तो दुर्लभ-दुर्लभ और दुर्लभ ही लगता है।

परम पूज्य दादाश्री की वाणी के प्रवाह में एक ही चीज़ के लिए अलग-अलग शब्द निकले हैं जैसे कि प्रकृति, *पुद्गल,* अहंकार वगैरह, वगैरह तो किसी जगह पर एक ही शब्द का उपयोग अलग-अलग चीज़ों के लिए हुआ है जैसे कि 'मै' का उपयोग अहंकार के लिए हुआ है, तो 'मैं' का उपयोग आत्मा के लिए भी हुआ है। (मैं, बावो और मंगलदास में) महात्माओं को इन सब को योग्य रूप से समझना होगा। सैद्धांतिक समझ के विशेष स्पष्टीकरण देने के लिए मेटर में कहीं-कहीं ब्रेकेट में आवश्यक संपादकीय नोट रखा गया है, जिससे पाठक को समझने में सहायता होगी।

प्रस्तुत ग्रंथ के पूर्वार्ध में द्रव्यकर्म के आठों प्रकारों को विस्तार

पूर्वक समझाया गया है। शास्त्रों में तो अनेक गुना विस्तार से दिया गया है जो साधक को उलझन में डाल देता है। परम पूज्य दादाश्री ने, आत्मार्थियों को मोक्षमार्ग में ज़रूरत लायक ही, जो आवश्यक है, उतने को ही विशेष महत्व देकर बहुत ही सरल भाषा में समझाकर क्रियाकारी कर दिया है।

परम पूज्य दादाश्री ने कितनी ही जगह पर आत्मा को ज्ञाता-दृष्टा कहा है। तो कितनी ही जगह पर प्रज्ञा को। यथार्थ रूप से तो जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक आत्मा के रिप्रेज़नटेटिव के रूप में प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा रहती है और अंत में केवलज्ञान होने के बाद आत्मा स्वयं पूरे ब्रह्मांड के प्रत्येक ज्ञेय का प्रकाशक बनता है!

कितनी ही बातें जैसे कि प्रज्ञा की बात बार-बार आती है, तब वह पुनरुक्ति जैसा लगता है लेकिन वैसा नहीं है। हर बार अधिक सूक्ष्मता से समझाया होता है। जैसे कि शरीर शास्त्र (अनोटोमी) छट्ठी कक्षा में आता है, दसवीं में, बारहवीं में भी आता है और मेडिकल में भी आता है। विषय और उसकी बेसिक बातें सभी में मिलती हैं लेकिन सूक्ष्मता हर एक में अलग-अलग होती है।

जब मूल सिद्धांत अनुभव गोचर होता है तब वाणी या शब्द की भिन्नता कहीं भी बाधक नहीं रहती। सर्कल के सेन्टर में आए हुए व्यक्ति को किसी के साथ कोई मतभेद नहीं रहता और उन्हें तो सभी कुछ जैसा है वैसा दिखाई देता है। इसीलिए वहाँ पर जुदाई रहती ही नहीं।

कई बार संपूज्य दादाश्री की अति-अति गहन बातें पढ़कर महात्मा या मुमुक्षु ज़रा डिप्रेस हो जाते हैं कि ऐसा तो कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता लेकिन वैसा होगा नहीं। दादाश्री तो हमेशा कहते हैं कि, 'मैं जो कुछ भी कहता हूँ वह मात्र आपको समझ लेना है, उसे वर्तन में लाने का प्रयत्न नहीं करने लगना है। उसके लिए तो वापस नया अहंकार खड़ा करना पड़ेगा'। बात को सिर्फ समझते जाओ, वर्तन में अपने आप आएगा। लेकिन अगर समझे ही नहीं होंगे तो आगे कैसे बढ़ोगे? मात्र समझते जाओ और दादा भगवान से शक्तियाँ माँगो और निश्चय करना है

कि अक्रम विज्ञान को यथार्थ रूप से संपूर्ण-सर्वांग रूप से समझना ही है! बस इतनी ही जागृति पूर्णता प्राप्त करवाएगी। अभी तो महात्माओं को पाँच आज्ञा और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उस अविरत लक्ष्य में रहने के पुरुषार्थ में ही रहना है।

साधक अनादिकाल से एक ही चीज़ के पीछे पड़े हैं कि मुझे शुद्धिकरण करना है, अशुद्धि दूर करनी है। चित्त को शुद्ध करना है! किसे? मुझे, मुझे, मुझे! वहाँ दादाश्री की अनुभव वाणी प्रवाहित होती है, 'जो मैला करता है, वह भी *पुद्‌गल* है और जो साफ करता है वह भी *पुद्‌गल* है!' तू तो मात्र इन सब को 'देखने' वाला ही है! ऐसे प्रत्येक बात को अविरोधाभासी सैद्धांतिक रूप से प्राप्ति करवा देते हैं।

मूल आत्मा तो केवलज्ञान स्वरूप है, था और रहेगा। यह सारा फँसाव तो संयोगों के दबाव की वजह से है, रोंग बिलीफ से खड़ा हो गया है। एक रोंग बिलीफ उत्पन्न हुई कि 'मैं नीरू बहन हूँ' तो उसमें से अनंत-अनंत रोंग बिलीफें उत्पन्न हो गई हैं! अक्रम विज्ञान से दादाश्री ने मात्र दो घंटों में ही मूल रोंग बिलीफ को खत्म कर दिया और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का निरंतर लक्ष्य और प्रतीति दे दी लेकिन (मैं चंदूभाई हूँ) उस रोंग बिलीफ से उत्पन्न हुई अन्य रोंग बिलिफों को खत्म करते-करते और वापस लौटते-लौटते मूल (वास्तविक), केवलज्ञान स्वरूप तक आना है और अंत में 'खुद' खुद बनकर खड़े रहना है। परम पूज्य दादाश्री की वाणी द्वारा जगह-जगह पर इस रोंग बिलीफ को खत्म करने की कला उजागर होती है जो एकावतारी पद प्राप्त करने के दृढ़ निश्चय को अति-अति सरल और सहज मार्ग बना देती है।

इस प्रकार आप्तवाणी तेरहवीं में पूज्य दादाश्री ने प्रकृति का साइन्स बताकर हद कर दी है और साथ-साथ 'मैं, बावो और मंगलदास' का सब से अंतिम विज्ञान देकर तमाम स्पष्टता कर दी है। जिसे समझने पर अखंड रूप से ज्ञानी की दशा में रहा जा सकता है।

पूज्य दादाश्री ने नीरू बहन और दीपक भाई देसाई को आप्तवाणी की 1-14 श्रेणी प्रकाशित करने की आज्ञा दी थी। उन्होंने कहा था कि

आत्मार्थी के लिए आप्तवाणी 14 अर्थात् 1 से 14 गुणस्थानक चढ़ने की श्रेणियाँ बन जाएँगी अर्थात् मूल ज्ञान तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और पाँच आज्ञा में आ जाता है लेकिन आप्तवाणियाँ इस मूल ज्ञान को डिटेल में स्पष्टीकरण देती जाती हैं। जैसे कि दिल्ली से किसी ने पूछा, 'नीरू बहन आप कहाँ रहती हैं?' तो हम कहते हैं सीमंधर सिटी में, अडालज। लेकिन अगर उन्हें नीरू बहन तक पहुँचना हो तो उन्हें डिटेल में एड्रेस की ज़रूरत पड़ेगी। अडालज कहाँ पर है? सीमंधर सिटी कहाँ है? अहमदाबाद कलोल हाइवे पर, सरखेज से गांधीनगर जाते हुए अडालज के चौराहे के पास, पेट्रोल पंप के पीछे, त्रिमंदिर संकुल। इस प्रकार विस्तार से बताया जाए तभी वह मूल जगह पर पहुँच पाएगा। उसी प्रकार 'आत्मा' के मूल स्वरूप तक पहुँचने में ये आप्तवाणियाँ दादाश्री की वाणी के महान शास्त्ररूपी ग्रंथ के रूप में डिटेल देती हैं और मूल आत्मा, केवलज्ञान स्वरूपी आत्मा तक पहुँचाती हैं।

- डॉ. नीरू बहन अमीन के

जय सच्चिदानंद

उपोद्घात

– **डॉ. नीरू बहन अमीन**

[1] प्रज्ञा

'मैं शुद्धात्मा हूँ' और यह देह अलग है, वह ध्यान कौन से भाग को रहता है? प्रज्ञा को।

प्रज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है? स्वरूप का ज्ञान मिलते ही प्रज्ञा प्रकट होती है। तब तक अज्ञा ही थी।

दो शक्तियाँ हैं। एक अज्ञा, जो जीवमात्र में है ही और ज्ञान मिलने के बाद में दूसरी शक्ति, आत्मा में से डायरेक्ट निकलती है, वह प्रज्ञाशक्ति है। प्रज्ञाशक्ति आत्मा में से बाहर नहीं निकलने देती और अज्ञाशक्ति संसार में से बाहर नहीं निकलने देती। अज्ञा से बंधन है, पाप-पुण्य है। जहाँ अज्ञा है वहाँ पर अहंकार होता ही है। यानी कि यह 'मैंने किया, मैंने भोगा' ऐसा रहा करता है। प्रज्ञा में ज्ञाता है, भोक्ता नहीं है और कर्ता भी नहीं है। जगत् में कोई भी कर्ता नहीं दिखाई दे, वह अंतिम ज्ञान है।

अज्ञा संसार के डिसिज़न लेती है और प्रज्ञा मोक्ष के।

प्रज्ञा, ज्ञान से उत्पन्न होने वाली शक्ति है। अज्ञा और प्रज्ञा दोनों आत्मा की शक्तियाँ हैं। विशेष परिणाम की वजह से अज्ञा उत्पन्न हो गई। जब तक आत्मा विशेष परिणाम में फँसा हुआ है तब तक अज्ञाशक्ति से बाहर निकल ही नहीं सकता न! जब 'खुद' 'खुद के' भान में आता है तब अज्ञाशक्ति हटती है उसके बाद प्रज्ञाशक्ति प्रकट होती है और काम करती है। उसके बाद वह संसार में नहीं घुसने देती, सावधान करती रहती है।

जड़ और चेतन के संयोग से जो विशेष ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह अज्ञाशक्ति है।

प्रज्ञा निर्विकल्पी है, चेतन है। वह मूल चेतन है लेकिन मूल चेतन में से अलग हुई है, वह मोक्ष में ले जाने के लिए ही है। उसके बाद वापस एक हो जाती है।

सम्यक् बुद्धि ही प्रज्ञा है? नहीं। प्रज्ञा सम्यक् बुद्धि से भी आगे की चीज़ है। प्रज्ञा तो प्रतिनिधि है मूल आत्मा की, इसीलिए मूल आत्मा ही कहलाती है।

अज्ञाशक्ति ने ही संसार में भटका दिया है। अज्ञा के साथ बहुत बड़ी सेना है। क्रोध-मान-माया-लोभ और अहंकार वगैरह सबकुछ बहुत विषम होते हैं और प्रज्ञा के पास कुछ भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है इसलिए वहाँ पर 'हमें' खुद हाज़िर रहना चाहिए। यदि 'हम' प्रज्ञा पक्ष में रहेंगे तो प्रज्ञा सबकुछ कर सकेगी। अंदर ज़रा सी भी चंचलता उत्पन्न हुई कि तुरंत ही दरवाज़े बंद कर देने चाहिए।

अज्ञा सफोकेशन करवाती है। उससे अपना सुख आवृत हो जाता है। अब चिंता नहीं होती।

अज्ञान दशा में इच्छाएँ उत्पन्न होती थीं, उन्हें पूर्ण करने के लिए अज्ञाशक्ति काम करती थी। ज्ञान के बाद नई इच्छाएँ उत्पन्न नहीं होतीं इसलिए पिछले बीज में से नए बीज नहीं पड़ते और जो हैं, उनका *निकाल* कर देना है।

क्या प्रज्ञाशक्ति को बढ़ाया जा सकता है? प्रज्ञा कम या ज़्यादा नहीं होती। बुद्धि कम-ज़्यादा होती रहती है। जितनी बुद्धि कम उतनी ही प्रज्ञा अधिक।

प्रज्ञा ही मूल जागृति है। कम-ज़्यादा दिखाई देती है इसलिए जागृति कहते हैं। प्रज्ञा फुल तो संपूर्ण जागृति।

आपको 'आज्ञा' का पालन करना है और पालन करवाती है प्रज्ञा। आज्ञा ही धर्म है और आज्ञा ही तप है। जब तक तप है तब तक प्रज्ञा है।

ज्ञानक्रिया महात्माओं की प्रज्ञा के माध्यम से होती है।

जो तन्मयाकार हो जाती है, वह अज्ञा है और जो न होने दे, वह प्रज्ञा। समझने की और देखने की शक्ति प्रज्ञा की है। ज्ञानी समझाते हैं और ग्रहण कौन करता है? प्रज्ञा।

ज्ञान मिलने के बाद अंदर लाइट प्रज्वलित रहती है। वह तो निरंतर

प्रज्वलित ही रहती है लेकिन अगर बीच-बीच में 'आप' कहीं और चले जाओ तो इसमें लाइट क्या करे?

प्रज्ञा, वही दिव्यचक्षु है? नहीं। दिव्यचक्षु तो सिर्फ एक ही, सामने वाले को शुद्धात्मा देखने का ही काम करते हैं जबकि प्रज्ञा तो बहुत सारा काम करती है।

पछतावा, वह प्रज्ञा करवाती है।

प्रतिक्रमण, वह प्रज्ञा करवाती है।

अक्रम में सामायिक में देखने वाला कौन है? प्रज्ञा।

आप्तवाणी पढ़ते हैं, त्रिमंत्र बोलते हैं तब अक्षर पढ़ने वाला कौन है? प्रज्ञा।

विचार आते हैं, वे मन में से और जो उन्हें देखती रहे, वह प्रज्ञा है। दादाश्री कहते हैं, 'हम से अज्ञा ने (बुद्धि ने) रिटायरमेन्ट ले लिया है यानी कि वह खत्म हो गई है इसीलिए अबुध बनकर बैठे हैं'। बुद्धि नफा-नुकसान दिखाती है। संसार में ही डुबाए रखती है। जब 'व्यवस्थित' के ज्ञान का उपयोग होता है तब बुद्धि बंद हो जाती है और अबुध दशा की तरफ प्रयाण!

बुद्धि का नहीं सुनना है वह टक-टक करे तब भी 'आप' 'अपने' में ही रहो न! जब तक बुद्धि को कीमती मानोगे तब तक टिकी रहेगी।

बुद्धि से बढ़कर प्रज्ञा है और प्रज्ञा से बढ़कर विज्ञान है! आत्म विज्ञान!

अध्यात्म में बुद्धि की कितनी ज़रूरत है? वह तो मात्र शुरुआत में अध्यात्म समझने के काम आती है, बाद में नहीं। हम जो दादाश्री से समझते हैं वह बुद्धि नहीं है। वह तो दादाश्री की वाणी ही इतनी पावर फुल है कि जो आत्मा के आवरणों को भेदकर आत्मा को टच कर लेती है! अत: इसमें बुद्धि का काम ही नहीं है, समझने में।

कौन बार-बार दादाश्री के पास खींचकर लाता है? बुद्धि या प्रज्ञा? दोनों में से एक भी नहीं। वह तो पुण्य से आ पाते हैं।

जिज्ञासा किसे होती है? बुद्धि को या प्रज्ञा को? बुद्धि को। जिज्ञासु की बुद्धि सम्यक् होती है, गढ़ी हुई होती है। सम्यक् बुद्धि और प्रज्ञा में क्या फर्क है?

जो एक घंटे तक आत्मज्ञानी से ज्ञान वार्ता सुन ले, उसकी बुद्धि सम्यक् हो जाती है। जो जितना अधिक सुनेगा उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक सम्यक् हो जाएगी लेकिन प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होगी। प्रज्ञा तो स्वरूप ज्ञान मिलने के बाद ही उत्पन्न होती है। प्रज्ञा, वह आत्मा का डायरेक्ट प्रकाश है। सम्यक् बुद्धि, वह इनडायरेक्ट प्रकाश है। प्रज्ञा तो आत्मा का ही भाग है।

जब तक प्रज्ञा प्रकट नहीं हुई तब तक सम्यक् बुद्धि खूब उपकारी है, उसके बाद नहीं। इसके बावजूद भी सम्यक् बुद्धि को पौद्गलिक नहीं कहा जा सकता और चेतन भी नहीं कहा जा सकता। सम्यक् बुद्धि आखिर में है तो बुद्धि ही न! बुद्धि मालिकी भाव वाली होती है। प्रज्ञा का कोई मालिक ही नहीं।

सम्यक् बुद्धि अर्थात् अटैक वाली नहीं। अटैक वाली तो विपरीत बुद्धि है।

संसार में अच्छा-बुरा, यों दो भाग होते हैं। जबकि अपने यहाँ पर उससे भी आगे अच्छा-बुरा नहीं लेकिन मिथ्या में से सनातन वस्तु की तरफ ले जाने वाली बातें हैं। इस प्रकार दोनों अलग हैं।

अव्यभिचारिणी बुद्धि वह है जो अशांति में भी शांति करवा दे, वह प्रज्ञा से पहले की स्टेज है।

स्थितप्रज्ञ और प्रज्ञा क्या है? जो खुद की सही पहचान है, उस समझ में स्थिर होना, वह स्थितप्रज्ञ है। स्थितप्रज्ञ दशा, प्रज्ञा के प्रकट होने की नज़दीकी दशा है। आत्मा प्राप्त होने से पहले की दशा है अतः व्यवहार अहंकार सहित होता है लेकिन वह व्यवहार बहुत सुंदर होता है। स्थितप्रज्ञ में साक्षीभाव रहता है। प्रज्ञा तो आत्मा प्राप्त होने के बाद में ही प्रकट होती है। उसमें अहंकार नहीं रहता। ज्ञाता-दृष्टा भाव रहता है। अतः स्थितप्रज्ञ में बुद्धि स्थिर हो जाती है जबकि प्रज्ञा, वह तो आत्मा का ही भाग है।

स्थितप्रज्ञ अर्थात् कोई व्यक्ति बहुत शास्त्र पढ़े, संतों की सेवा करे, संसार में खूब मार खाकर अनुभव लेकर स्थिर हो जाए, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है, उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। उसके बाद वह विचलित नहीं होता, भले ही कैसे भी विपरीत संयोग हों। स्थितप्रज्ञ दशा वह खूब ही सदविवेक वाली जागृति की दशा है।

स्थितप्रज्ञ दशा वाले का व्यवहार बहुत अच्छा होता है। लोकनिंद्य नहीं होता लेकिन स्थितप्रज्ञ को मोक्ष में जाने के लिए बहुत लंबा रास्ता तय करना पड़ता है। स्थितप्रज्ञ दशा की तुलना में जनक विदेही की दशा बहुत उच्च थी।

जब तक ऐसी मान्यता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ' तब तक स्थितअज्ञ दशा है। अक्रमज्ञान मिलने के बाद जब, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा हो जाता है, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जो स्थितप्रज्ञ से बहुत-बहुत आगे की है। यह क्षायिक सम्यक्त्व है। मिथ्यात्व दृष्टि पूर्णत: नष्ट हो जाती है।

स्थितप्रज्ञ क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? कौन सी भाषा होती है उनकी? अरे, आत्मा खाता ही कहाँ है? खाने वाला अलग ही है! ऐसी सूक्ष्म बात दादाश्री ने ही की है।

मोह नष्ट होने के बाद स्थिरता आती है। मोह टूटना, वह तो स्थितप्रज्ञ दशा से भी उच्च दशा है, जिसके लिए अर्जुन ने कहा है, 'नष्टो मोह, स्मृतिलब्ध स्थितोस्मि'।

वैकुंठ में जाते-जाते बुद्धि स्थिर हो जाती है, वह है स्थितप्रज्ञ दशा।

स्थितप्रज्ञ दशा में अहंकार का अस्तित्व है क्या? अहंकार की उपस्थिति में संसार का सार-असार निकालकर बुद्धि स्थिर हो जाए तो वह है स्थितप्रज्ञ। उसे विवेक ही माना जाता है। उसमें राग-द्वेष रहितता नहीं होती लेकिन हर एक प्रश्न को हल कर सकता है। स्थितप्रज्ञ होने के बाद वीतरागता की तरफ का मार्ग मिलता है।

स्थितप्रज्ञ दशा वाले में दया होती है, करुणा नहीं होती।

साइन्टिस्ट रिसर्च (अन्वेषण) कैसे करते हैं? बुद्धि से या प्रज्ञा से?

दोनों में से एक से भी नहीं। वह दर्शन से है और फिर वह कुदरती है। दर्शन के बिना साइन्टिस्ट बन ही नहीं सकते। महान संतों में भी जो है, वह दर्शन ही कहलाता है। प्रज्ञा तो आत्मा प्राप्त होने के बाद ही उत्पन्न होती है।

प्रज्ञा डायरेक्टली अहंकार को ही सावधान करती है।

जो ज्ञानी का निदिध्यासन करवाती है, वह प्रज्ञा है। निदिध्यासन नहीं होने में दखल किसकी है? उदयकर्म की।

शुद्ध चित्त, वही शुद्धात्मा है। जब ज्ञान मिलता है तब संपूर्ण शुद्ध चित्त हो जाता है, तब प्रज्ञा प्रकट होती है। जब अशुद्ध चित्त और मन का बहुत ज़ोर रहता है, तब निश्चय बल बंद हो जाता है।

दादाश्री कहते हैं, 'मैं कभी भी शुद्धात्मा की गुफा से बाहर निकलता ही नहीं। बाहर निकलूँगा तब अंदर जाना पड़ेगा न? और अगर मैं बाहर निकलूँ तो इन महात्माओं के घर कौन जाएगा? हर रोज़ दादा हर एक महात्मा के घर जाते हैं! वह प्रज्ञा की ज़बरदस्त शक्ति है! दादा को याद करते ही वह प्रत्यक्ष हाज़िर हो जाते हैं, वह क्या है? प्रज्ञाशक्ति पहुँच जाती है वहाँ पर'।

दादाश्री को याद करते ही दादा हाज़िर हो जाते हैं, वह क्या है? वह दादाश्री की प्रज्ञा का काम है। जैसा सामने वाले का भाव होता है, उसी अनुसार उसे मिल जाता है। उसमें दादाश्री को कोई लेना-देना नहीं हैं और वे इस चीज़ की खबर भी नहीं रखते।

यह जो फाइलों का *निकाल* करवाती है, वह प्रज्ञाशक्ति है और 'व्यवस्थित' शक्ति *निकाल* करती है।

आज्ञा पालन का निश्चय कौन करता है? प्रज्ञा।

ज्ञान मिलने के बाद जो डिस्चार्ज अहंकार प्रज्ञा में तन्मयाकार रहना चाहिए, वह स्लिप हो जाता है।

प्रज्ञा में तन्मयाकार रहना, इसका मतलब क्या है? प्रज्ञा के प्रति सिन्सियर रहना। सिन्सियर कब रहा जा सकेगा? निश्चय पक्का होगा, तब। हमें किनारे पर पहुँचना हो तो ज़ोर किनारे की तरफ ही मारना पड़ेगा न!

प्रज्ञा किसे सावधान करती है? प्रतिष्ठित आत्मा के अहंकार वाले भाग को। उस अहंकार को जो मुक्त होने के प्रयत्न में है।

जिससे भूल होती है उसे प्रज्ञा सावधान करती है लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा प्रतिभाव किसका है? इसमें प्रकाश प्रज्ञा का है और इस प्रकाश में जो चित्तवृत्ति शुद्ध हो चुकी है, वह प्रतिभाव देती है।

प्रज्ञा में से उत्पन्न होने वाले आनंद को कौन भोगता है? उसे रिलेटिव अहंकार भोगता है। रियल तो हमेशा आनंद में ही है न!

जो वेदता है, वह अहंकार है और जो जानता है वह प्रज्ञा है। वेदक में एकाकार होने से दुःख है और ज्ञायक में रहा जाए तो दुःख नहीं रहता।

ज्ञान मिलने के बाद वाणी का उदय होता है और उस उदय के जागृत होने के बाद यदि आपको बोलने न दिया जाए तब प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है अथवा सामने वाले को समझाने पर भी यदि वह न समझे तब भी आपको प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है। किसी से गलती हो और उसे खुद का ज्ञान बताना हो लेकिन उसे अवसर नहीं मिले तब भी अंदर प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है। 'कब कह दूँ, कब कह दूँ', वह प्रज्ञा परिषह है।

सूझ और प्रज्ञा में क्या फर्क है? सूझ प्रज्ञा की तरफ ले जाती है। अज्ञान दशा में सूझ ही काम करती है। सूझ, वह प्रज्ञा नहीं है।

इस अक्रम विज्ञान को किससे देखा है? प्रज्ञा से।

अज्ञान और अज्ञा में क्या फर्क है? अज्ञान, वह एक प्रकार का ज्ञान है और अज्ञा, वह किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं है। अज्ञा सिर्फ फायदा-नुकसान ही देखती है हर एक चीज़ में। अज्ञान-ज्ञान अर्थात् सांसारिक ज्ञान। अज्ञान प्राप्ति के लिए अज्ञा उत्पन्न हुई और ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रज्ञा उत्पन्न हुई है! अज्ञान, वह विशेष ज्ञान है। वह गलत नहीं है लेकिन वह दुःखदाई है।

रियल-रिलेटिव को अलग कौन रखता है? प्रज्ञा। प्रज्ञा, रिलेटिव-रियल है। उसका काम पूरा हो जाने पर प्रज्ञा मूल जगह पर आ जाती है। उसके बाद आत्मा में मिल जाती है। रियल तो अविनाशी होता है।

भेदज्ञान और प्रज्ञा में क्या फर्क है? दोनों लाइट हैं। ज्ञानीपुरुष के माध्यम से भेदज्ञान रियल-रिलेटिव में भेद डाल देता है और प्रज्ञा की लाइट टेम्परेरी परमानेन्ट है। मोक्ष में जाने तक प्रज्ञा लाइट देती है।

प्रज्ञा का ज़ोर किस चीज़ से बढ़ता है? पाँच आज्ञा का पालन करने पर प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' जो यह कहता है, वह टेपरिकॉर्डर है लेकिन उसके पीछे भाव प्रज्ञा का है।

जो प्रकृति को जानता है और प्रकृति के आधार पर चलता है, वह कौन है? अहंकार! खुद को जानता है और खुद के आधार पर चलता है, वह कौन है? प्रज्ञा।

प्रज्ञा और जागृति में क्या फर्क है? प्रज्ञा आत्मा की प्योर शक्ति है और जागृति प्योरिटी और इम्पयोरिटी का मिक्स्चर है। जब जागृति सौ प्रतिशत प्योर हो जाती है तब केवलज्ञान होता है। तब प्रज्ञा खत्म हो जाती है।

मोक्ष के लिए किस चीज़ की अधिक ज़रूरत है? जागृति या प्रज्ञा की? दोनों की। प्रज्ञा मोक्ष की तरफ मोड़ती रहती है और जागृति उसे पकड़ लेती है।

अज्ञाशक्ति का मूल क्या है? जड़ और चेतन दोनों के इकट्ठे होने से अज्ञाशक्ति उत्पन्न हो गई और दोनों के अलग होने पर खत्म हो जाएगी।

दादाश्री में भी प्रज्ञा है? हाँ, है। वह कैसी होती है? सामने वाले को मोक्ष में ले जाने के लिए दादाश्री से खटपट कौन करवाता है? वह प्रज्ञा है! खटपट वाली प्रज्ञा! प्रज्ञा न हो तो कोई खटपट करने वाला रहेगा ही नहीं न!

'दादा भगवान' की कृपा और ज्ञानी की कृपा में क्या फर्क है? 'दादा भगवान' की कृपा उतरने के बाद तो ज्ञानी को कोई झंझट ही नहीं रहती न! 'दादा भगवान' की कृपा प्रज्ञा के माध्यम से उतरती है।

जगत् कल्याण का काम करवाने वाली प्रज्ञा है और उसमें अहंकार निमित्त बनता है।

केवलज्ञान होने तक प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा रहती है। प्रज्ञा अर्थात् आत्मा का ही भाग।

बारीक कातना हो तो प्रज्ञा ज्ञाता-दृष्टा कहलाएगी और मोटा कातना हो तो आत्मा ज्ञाता-दृष्टा कहलाएगा।

ध्याता-ध्यान और ध्येय कौन है? ज्ञान मिलने के बाद प्रज्ञा ध्याता बनती है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह ध्येय। ध्याता-ध्येय की एकता हो जाने पर ध्यान उत्पन्न होता है।

ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञा क्या है? जब तक करना पड़े तब तक ज्ञान है और विज्ञान अपने आप ही हो जाता है! और प्रज्ञा उन दोनों की बीच की स्थिति है।

ज्ञान शास्त्रों में होता है और विज्ञान ज्ञानी के हृदय में रहता है। प्रज्ञा स्व के साथ अभेद और बुद्धि से तो बिल्कुल भिन्न है।

सावधान करने वाला और सावधान होने वाला एक ही है? अंत में तो एक ही है। दो चीज़ें हैं ही नहीं। सावधान करते समय और सावधान होते समय उसके पर्याय बदलते हैं।

आत्मा विभाविक हो गया है संयोगों के दबाव की वजह से, इसीलिए अलग हो गया है। जब पूर्ण स्वभाव में आ जाता है तब जुदाई नहीं रहती, अभेद हो जाता है। जब केवलज्ञान हो जाता है तब अज्ञा, अहंकार खत्म हो जाता है और दूसरी तरफ प्रज्ञा भी खत्म हो जाती है। जिस प्रकार सांसारिक व्यवहार चलाने के लिए यह अज्ञा और अहंकार उत्पन्न हुए उसी प्रकार ज्ञानी से ज्ञान मिलने के बाद मोक्ष में ले जाने के लिए प्रज्ञा उत्पन्न हुई। जब संसार खत्म हो जाता है तभी प्रज्ञा का काम पूर्ण होता है या फिर केवलज्ञान होने पर प्रज्ञा का काम खत्म होता है। अत: फिर अंत में जो बचता है वह मात्र ज्ञान हैं! केवलज्ञान! वही, केवल आत्मा ही!

संपूर्ण अभेदता प्राप्त हो, इसका मतलब क्या है? अभेदता अर्थात् तन्मयाकार। एक हो जाते हैं हम। ज्ञान मिलने के बाद महात्माओं को 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का विश्वास हो गया है, प्रतीति बैठ गई है। थोड़ा अनुभव

हुआ है, लेकिन उस रूप हो नहीं गए हैं। अभी तक भेद है। संपूर्ण शुद्धात्मारूप हो जाने पर संपूर्ण अभेद हो जाएँगे।

शुद्धात्मा के साथ अभेद कौन होता है? अहंकार? नहीं। प्रज्ञा शुद्धात्मा के साथ अभेद हो जाती है। प्रज्ञा आत्मा में से जुदा हुई है वह एक हो जाती है। व्यवहार पूर्ण करने के लिए जो प्रज्ञा अलग हुई है, (आत्मा से अलग हुई है,) काम पूरा होने के बाद वह एक हो जाती है।

अभी अपना 'मैं'पन प्रज्ञा में है। ज्ञान से पहले वह अहंकार में था, वह अब खत्म हो गया है। पहले हम अहंकार में बरत रहे थे, और अब आत्मा में बरतते हैं अत: अंतरात्मा हो गए। अंतरात्मा, वही प्रज्ञा है। जब तक अंतरात्मा दशा है तब तक स्व रमणता है और बाहर की रमणता भी है। अंत में केवल स्व रमणता, वही केवलज्ञान! वही परमात्मा!

[2.1] राग-द्वेष

संसार का रूट कॉज़ क्या है? अज्ञान। अज्ञान खत्म होने पर राग-द्वेष जाते हैं। मल-विक्षेप खत्म हो जाते हैं।

आप शुद्धात्मा हो या चंदूभाई? यदि शुद्धात्मा हो तो आपको राग-द्वेष नहीं हैं! अक्रम में ज्ञान मिलने के बाद राग-द्वेष बिल्कुल भी नहीं रहते हैं। जो दिखाई देता है, वह डिस्चार्ज है। भरे हुए माल का *गलन* हो रहा है क्योंकि अब हिंसक भाव नहीं रहा और *तांता* (तंत) भी नहीं रहा!

राग कॉज़ेज हैं और अनुराग व आसक्ति इफेक्ट हैं। इफेक्ट को नहीं लेकिन कॉज़ेज को बंद करना है। ज्ञान मिलने के बाद कैसा रहता है? बच्चों पर जो राग रहता है, वह क्या है? ऐसा रहता है या नहीं रहता? रहता है। वह किस के जैसा है? जैसे कि चुंबक के सामने आलपिन हो तो चुंबक को घुमाने से आलपिनें हिल जाती हैं या नहीं हिलती? क्या उन आलपिनों को आसक्ति है? नहीं, वह चुंबक का गुण है। उसी प्रकार अपने शरीर में भी इलेक्ट्रिसिटी से चुंबकीय गुण उत्पन्न होता है। वह अपने जैसे परमाणुओं को खींचता है। इसलिए ऐसा देखने को मिलता है कि पागल बहू से बनती है और अक्लमंद बहू से नहीं बनती।

शुद्धात्मा का स्वभाव राग-द्वेष वाला है ही नहीं, वीतराग है। *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) का स्वभाव रागी-द्वेषी है। वह भी वास्तव में साइन्टिफिकली तो परमाणुओं का आकर्षण-विकर्षण ही है। राग-द्वेष कब होते हैं? अगर अंदर उसका कर्ता बने तो! अब अंदर कोई कर्ता रहा ही नहीं न! तो फिर महात्माओं को राग-द्वेष होंगे कहाँ से?

आकर्षण बंद होने पर वीतरागता उत्पन्न होती है। दादा में भी भरा हुआ माल है लेकिन आकर्षण नहीं होता कहीं भी!

अंदर राग-द्वेष के प्रति अभिप्राय बदल गया, इसलिए वह वीतराग है।

'नहीं है मेरा' कहा कि जुदा हो जाते हैं। फिर राग-द्वेष नहीं होते। कौन सा 'मेरा' और कौन सा 'मेरा' नहीं है, दादाश्री ने हमें ज्ञान से वह बता दिया है।

मन विरोध करे तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। मन के ज्ञाता-दृष्टा रहेंगे तो वीतराग रहा जा सकता है।

चेहरा बिगड़ जाए तो भी राग-द्वेष हुए ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह तो *पुद्गल* की क्रिया है। जब चेहरा बिगड़े और वह खुद को अच्छा नहीं लगे तो वह खुद उससे जुदा ही है।

अब अंदर अच्छा-बुरा जो होता है वह भरा हुआ माल निकल रहा है। उसे 'देखना' है और बहुत फोर्स वाला हो तो उसका प्रतिक्रमण करना है।

निज कषाय ही निज को दुःख देते हैं, अन्य कोई नहीं।

जब तक विषय है तब तक आत्मा का स्पष्ट वेदन नहीं हो सकता। जहाँ वह खत्म होता है, वहाँ पर भगवान की हद और भगवान की हाज़िरी रहती है!

दादाश्री ने शुद्धात्मा पद दिया तभी से राग-द्वेष का एक भी परमाणु नहीं रहा। गारन्टेड मोक्ष मिल गया। अब मात्र आज्ञा का पालन ही करना रहा। फिर संसार अस्त हो जाएगा।

दादाश्री के महात्मा लड़े-झगड़ें तो भी वीतराग ही हैं! दादाश्री

हमेशा ऐसा कहते थे क्योंकि अंदर से जिसका 'मैं' और 'मेरा' चला गया, उसके राग-द्वेष जड़-मूल से चले गए। अब जो बचा है वह सब ड्रामे का खेल है।

राग-द्वेष व्यतिरेक गुण हैं। वह मूल आत्मा का गुण नहीं है और जड़ का भी नहीं है। दिखाई ज़रूर देते हैं लेकिन हैं नहीं। राग-द्वेष *पुद्गल* के गुण माने जाते हैं, लेकिन परमाणुओं के नहीं। मूल में वे नहीं हैं, विकृति में हैं। *पुद्गल* अर्थात् *पूरण-गलन*।

पुद्गल में राग-द्वेष होना, वह संसार कहलाता है और यदि नहीं हों तो वह ज्ञान, मुक्त!

ज्ञान मिलने के बाद मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होती। मूर्च्छा अर्थात् स्त्रियाँ सुंदर साड़ी देखकर कैसी मूर्च्छित हो जाती हैं! आत्मा-वात्मा सबकुछ भूल जाती हैं। वह प्राकृतिक स्वभाव की मूर्च्छा है। ज्ञान मिलने के बाद उसे चारित्र मोह कहा गया है।

जिसमें राग-द्वेष का अभाव हुआ, वही अहिंसक! जितने राग-द्वेष उतना रोग!

कोई बहुत दुःख देता है तो वह द्वेष का रोग है। बहुत दुःख नहीं दे, जल्दी दवाई मिल जाए तो वह राग की वजह से है।

कुछ भी करो लेकिन राग-द्वेष मत करो। पिछले हिसाबों का निबेड़ा ला दो। प्रतिक्रमण करके छूट जाओ।

राग-द्वेष रहित का ज्ञान-दर्शन, वह शुद्ध ज्ञान-दर्शन कहलाता है!

[2.2] पसंद-नापसंद

पसंदगी-नापसंदगी (लाइक एन्ड डिसलाइक) जो रहती हैं, वह भरा हुआ माल है। टूटी हुई बेन्च हो और अच्छी बेन्च हो तो लाइकिंग अच्छे के लिए ही होती है। उसमें हर्ज नहीं है लेकिन अगर उसमें अहंकार मिल जाए तो राग-द्वेष होंगे!

डिस्चार्ज राग-द्वेष को भी पसंदगी-नापसंदगी कहा जाता है। भोजन में भी जो भाता है और नहीं भाता, वह अंदर के परमाणुओं की दखल

से है। अंदर जो माँगने वाले परमाणु हैं, वे बदलते रहते हैं इसीलिए ऐसा हो जाता है कि भाने वाली चीज़ नहीं भाती और न भाने वाली चीज़ भाने भी लग जाती है।

क्या दादाश्री को पसंदगी-नापसंदगी रहती है? रहती है लेकिन वह ड्रामेटिक होती है। पसंदगी-नापसंदगी वह स्थूल शरीर का स्वभाव है। शास्त्र में रति-अरति कहा है उसे। दादाश्री भी गद्दी पर बैठना पसंद करते हैं लेकिन अगर कोई कहे कि 'नहीं नीचे बैठो', तो वैसा। फिर उसमें अंदर एक परमाणु भी नहीं हिलता।

महात्माओं का जितना डिस्चार्ज अहंकार शुद्ध करना बाकी है, उतने ही डिस्चार्ज राग-द्वेष होते हैं उन्हें।

उपेक्षा और द्वेष में क्या फर्क है? उपेक्षा यानी नापसंद हो, फिर भी द्वेष नहीं, और द्वेष अर्थात् नापसंद पर द्वेष रहता है। कुसंग की उपेक्षा रखनी है, द्वेष नहीं रखना है। अज्ञानी द्वेष रखते हैं। उपेक्षा अर्थात् द्वेष भी नहीं और राग भी नहीं।

खुद के हिताहित का साधन देखे तो उपेक्षा करता है। उपेक्षा में अहंकार है।

निःस्पृही और उपेक्षा में क्या फर्क है? निःस्पृही अर्थात् 'हम' वाला अर्थात् उसमें अहंकार बढ़ता जाता है और उपेक्षा में से वीतरागता जन्म लेती है।

अभाव में द्वेष रहता है। डिसलाइक में द्वेष नहीं रहता।

उपेक्षा और उदासीनता में क्या फर्क है?

उदासीनता और वीतरागता में बहुत ही कम डिफरन्स है। उदासीन होने के लिए अहंकार की ज़रूरत नहीं है। उपेक्षा में अहंकार की ज़रूरत है।

उदासीनता तो वैराग आने के बाद की उच्च दशा है। वीतराग होने से पहले की दशा है। उदासीन अर्थात् क्या? देखने पर कोई चीज़ अच्छी लगती है और जब तक नहीं देखे तब तक याद भी नहीं आता, उदासीन दशा। चीज़ भोगते हैं लेकिन जैसे ही वह चली जाए तो फिर कुछ भी

नहीं। उदासीनता में तो सभी नाशवंत चीज़ों पर से भाव टूट जाता है और अविनाशी की खोज होने के बावजूद भी उसकी प्राप्ति नहीं होती।

राग-द्वेष के बाद में उपेक्षा - वैराग- उदासीनता - समभाव - वीतरागता। इस प्रकार स्टेपिंग होते हैं क्रमिक में। अक्रम में राग-द्वेष में से तो सीधा स्वभाव में रख दिया। वीतराग के एकदम नज़दीक!

भाव, उदासीनता में कर्मबंधन नहीं होता।

उदासीनता वीतरागता की जननी है!

शुद्ध चेतन तो वीतराग भाव से ही है लेकिन अगर लोगों से कहा जाए कि उदासीन भाव से है तो उन्हें तुरंत समझ में आ जाएगा।

जिस चीज़ में राग या द्वेष होता है, वह चीज़ उसे याद आती ही रहती है।

स्नेह और राग में क्या फर्क है? स्नेह अर्थात् गाढ़। चिपक गया। राग अधिक मुश्किल है। स्नेह तो टूट भी सकता है। राग बिना ज्ञान के नहीं टूट सकता।

[2.3] वीतद्वेष

जगत् द्वेष से दुःखी है, राग से नहीं। पहले द्वेष छोड़ना है उसके बाद राग। भगवान पहले वीतद्वेष हुए, उसके बाद वीतराग हुए।

जगत् बैर से खड़ा है। बैर में से राग उत्पन्न होता है। बैर अर्थात् मूल द्वेष। आत्मज्ञान होने पर वीतद्वेष हो जाता है, उसके बाद वीतराग हो जाता है।

संसार में जो राग है, वह कैसा है? जेल में रहा हुआ व्यक्ति जेल को लीपता-पोतता है। क्या उसे जेल पर राग है? नहीं, ज़रा सा भी नहीं। वह तो इसलिए कि 'रात को कैसे सोऊँ?' इसलिए, लाचारी में।

संसार में भटकाने वाला मूल कारण द्वेष है। घर में सभी पर प्रेम ही आए, द्वेष हो ही नहीं तो जानना कि नया बीज नहीं पड़ेगा।

भगवान ने कहीं पर द्वेष करने को नहीं कहा है। कुसंग के प्रति भी नहीं। द्वेष को ही छोड़ना है। राग नहीं। वीतद्वेष बन जाओ, अपने

आप वीतराग हो जाओगे। द्वेष कॉज़ है और राग परिणाम है। वह किस तरह? खुद की पत्नी पर यदि ज़रा सा भी द्वेष न हो तो उसके प्रति राग होगा ही नहीं! द्वेष के रिएक्शन में राग होता है। द्वेष का ही फाउन्डेशन है। दादा का ज्ञान मिलने के बाद द्वेष चला जाता है। उसके बाद चीज़ों के प्रति आकर्षण रहता है लेकिन वह नाटकीय, उसके बाद वीतराग बनता है लेकिन बहुत समय बाद!

जंगल में खूब भूख लगे तब अकुलाहट होती है। उस अकुलाहट में द्वेष होता है, राग नहीं होता। सोना, हीरा वगैरह दिखाया जाए तो भी द्वेष होता है।

खूब भूख लगने पर इंसान को राग होता है या द्वेष? द्वेष। पाँच इन्द्रियों की बिगिनिंग द्वेष का कारण है। तो फिर राग कब होता है? रोटी हो और पराठा हो तो वह पराठा पसंद करता है। इसका मतलब उस पर राग है और उसका भोजन कोई ले ले तो द्वेष होता है। इस प्रकार द्वेष में से राग और राग में से द्वेष चलता ही रहता है, लेकिन मूल में द्वेष है।

अक्रम में वीतद्वेष हुआ अर्थात् उससे पहले ममता तो चली ही गई।

क्रोध-मान-माया-लोभ, वे चारों ही कषाय द्वेष हैं। कषाय अर्थात् जो व्यवहार आत्मा को पीड़ा दे। कुल मिलाकर ये सभी द्वेष हैं। लेकिन शास्त्रों में (राग-द्वेष) सिर्फ दो ही बताए गए हैं।

अक्रम में तो समभाव से *निकाल* करने को कहा गया है। अतः जो कुछ भी आए उसमें राग-द्वेष नहीं लेकिन *निकाल* करना है।

भूख लगे, प्यास लगे, विषय से संबंधित भूख लगे, देह से संबंधित भूख लगे, वह द्वेष का कारण है। वह सब नहीं होगा तो वीतराग हो जाएगा!

जिसने पिछले जन्म में ब्रह्मचर्य का भाव किया हो, उसे इस जन्म में उसका उदय आता है। उस उदय के बाद उसे विषय की भूख नहीं लगती।

ज्ञानी ने वीतद्वेष बनाया है, अब उनके साथ बैठकर वीतराग होना है!

भूख लगती है, प्यास लगती है, नींद आती है, थकान लगती है, वह सब *अशाता* (दु:ख-परिणाम) वेदनीय हैं। लगना अर्थात् सुलगना।

द्वेष हो जाता है और राग वह अपनी पसंद से है।

खुद की स्त्री काली हो और दूसरे की गोरी हो तो गोरी पर राग होता है। उसमें मूल कारण द्वेष है।

पहले द्वेष होता है तभी राग उत्पन्न होता है न! द्वेष के जाने के बाद, राग जाने में बहुत देर लगती है।

'मैं चंदूभाई हूँ' यह आरोपित जगह पर राग है और इसीलिए स्वरूप के प्रति द्वेष है।

दादा ज्ञान देते हैं तब अनंत काल के पाप नष्ट हो जाते हैं इसलिए द्वेष खत्म हो जाता है। उसके बाद डिस्चार्ज भाव से राग रहता है जो धीरे-धीरे जाता है।

सामने वाले के प्रति द्वेष के लिए प्रतिक्रमण करना है।

अटैक करना बंद हो जाए तो उसे धर्म कहते हैं। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि तेरे भाव में अटैक नहीं है तो तू महावीर ही है!

यह अक्रम विज्ञान तो संपूर्ण विज्ञान है। यह बहुत बड़ा सिद्धांत कहलाता है।

[2.4] प्रशस्त राग

आत्मा से संबंधित जो साधन हैं उनके प्रति यदि राग हो जाए तो, उसे प्रशस्त राग कहा गया है। इसमें सब से बड़ा साधन तो ज्ञानीपुरुष हैं, उसके बाद शास्त्र। अंत में यह राग भी निकालना पड़ेगा, तभी वीतराग हो पाएँगे। वीतद्वेष हो जाने के बाद ही प्रशस्त राग होता है।

प्रशस्त राग की अद्भुतता यह है कि इस राग के बाद द्वेष नहीं होता। यह राग संसार के सभी राग छुड़वाकर सिर्फ ज्ञानीपुरुष पर करवा देता है। इस राग से बंधन नहीं होता, यह मुक्ति देता है।

जब तक आत्मा का स्पष्ट अनुभव नहीं हो जाता तब तक ज्ञानीपुरुष ही मेरा आत्मा है। फिर वे भूले ही नहीं जा सकते।

प्रशस्त राग प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है।

कितने ही लोग प्रशस्त राग को भला-बुरा कहते हैं। कहते हैं कि उससे केवलज्ञान रुक जाता है! अब ऐसा कहने वाले को अभी तक आत्मज्ञान भी नहीं मिला होता! भगवान महावीर के प्रति गौतम स्वामी के प्रशस्त राग को खूब भला-बुरा कहा गया है! अरे, प्रत्यक्ष भगवान पर ऐसा राग होना क्या कोई ऐसी-वैसी बात है? पत्नी, बच्चों और पैसों के अलावा और कहीं पर राग हुआ है? गौतम स्वामी को भगवान के प्रति प्रशस्त राग था इसलिए अंत में भगवान महावीर ने ही खटपट की, उन्हें केवलज्ञान प्रकट करवाने के लिए। अर्थात् इससे ज्ञान रुकता नहीं है। थोड़ी देर लगती है तो उससे क्या बिगड़ गया?

ज्ञानी पर पौद्गलिक राग होता है? यदि हो जाए तब भी टिकता नहीं है। वह प्रशस्त राग में परिणामित हो ही जाता है।

राग संसार में भटकाता है और प्रशस्त राग मोक्ष में ले जाता है।

प्रशस्त राग और प्रशस्त मोह में क्या फर्क है?

प्रशस्त राग निकल सकता है जबकि मोह गाढ़ होता है। उसे जाने में देर लगती है। राग पकड़ी हुई चीज़ है और मोह चिपकी हुई चीज़ है।

ज्ञानी के प्रति जो भक्ति भाव है वह, इन चार कषायों में से लोभ में जाता है लेकिन वह कपट वाला लोभ नहीं है! वास्तविक राग तो वह है जिसमें कपट और लोभ दोनों ही होते हैं। इस प्रशस्त राग में सिर्फ लोभ ही है।

जगत् कल्याण की भावना, वह भी प्रशस्त राग है अर्थात् कपट रहित लोभ है।

भगवान सीमंधर स्वामी के दर्शन होते ही प्रशस्त राग अपने आप ही छूट जाएगा। यह जो प्रशस्त राग है, वह अंतिम अवलंबन है, निरालंब होने तक।

महात्माओं के प्रति जो राग होता है, वह भी प्रशस्त राग है!

दादाश्री के प्रति राग होना, वह भी प्रशस्त राग है। उससे खूब शांति का अनुभव होता है और अगर आसक्ति हो तो वहाँ पर बाद में अशांति हो जाती है। दादाश्री डाँटे तब भी प्रशस्त राग जाता नहीं है!

चूल्हा जलाया, खाना बनाया, फिर चूल्हा वापस बुझाना पड़ता है न? बुझाना था तो जलाया क्यों? वह करना ही पड़ता है, उसके बिना नहीं चलता। उसी प्रकार यह प्रशस्त राग उत्पन्न होता है और फिर अंत में चला जाता है। संसार का राग निकालने के लिए यह ज़रूरी है।

क्या दादाश्री वापस मिलेंगे? जिनके साथ का हिसाब बंध गया है, वे छोड़ेंगे क्या?

[2.5] वीतरागता

वीतरागता में वीतराग रहते हैं लेकिन ज्ञानी तो राग में भी वीतराग रहते हैं!

समत्व अर्थात् मान देने वाले पर राग नहीं और अपमान करने वाले पर द्वेष नहीं।

उदासीनता अर्थात् जब अहंकार सहित राग-द्वेष न रहें।

इन्द्रियों को राग-द्वेष नहीं होते। यह तो अज्ञान उल्टा दिखाता है। ज्ञानी को और अज्ञानी को जगत् एक जैसा ही दिखाई देता है। फर्क सिर्फ राग-द्वेष का ही है! ज्ञान विशाल और ऐश्वर्यवान है लेकिन खुद की बाड़ की वजह से दिखाई नहीं देता!

महात्माओं को वीतराग होने की जल्दी है? यों कहीं एकदम से सौ थोड़े ही हो जाएगा! उल्टे में से सुल्टे की तरफ गया वही बड़ी बात है। अब महात्माओं को राग-द्वेष में रुचि नहीं रहती।

ज्ञानी जैसी वीतरागता किस प्रकार से प्राप्त की जा सकती है? ज्ञानी के टच में रहने से। उन्हें देखकर सीखा जा सकता है। ज्ञानी की आँखें देखो। उन्हीं में वीतरागता देखने को मिलेगी। वीतराग को देखने से वीतराग बनते जाते हैं। थ्योरी लाख हो लेकिन प्रेक्टिकल देखा कि तुरंत ही आ जाता है।

जगत् निदोर्ष दिखे तो वह वीतराग होने की निशानी है।

कोई अपमान करे, गालियाँ दे फिर भी स्पर्श न करे तो आप उतने वीतराग हो गए, भगवान हो गए और यदि पूरा जगत् जीत गए तो पूर्ण भगवान! फिर किसी के भी साथ मतभेद नहीं रहेगा!

शरीर को खुला छोड़ देना यानी क्या? लट्टू फेंकने के बाद उस पर फिर से डोरी नहीं लपेटना। फिर तो उसे देखते ही रहना है कि वह कैसे घूम रहा है!

अब अगर *पुद्गल* को देखता रहे तो वह शुद्ध हो जाएगा और मुक्त हो जाओगे।

सम्यक् दर्शन और आत्म साक्षात्कार एक ही चीज़ है।

सम्यक् दर्शन वीतरागता की शुरुआत है।

क्या प्रतिष्ठित आत्मा वीतराग हो सकता है? नहीं। उसमें वीतरागता का पावर आता है लेकिन वीतरागता का गुण नहीं आता।

दादाश्री की आज्ञा में रहने का पुरुषार्थ ही वीतराग बनाएगा!

राम और महावीर वीतराग हुए, तो वे किसी क्रिया के आधार पर नहीं लेकिन ज्ञान के आधार पर हुए! ज्ञान ज्ञानी से मिला हुआ होना चाहिए!

वीतराग दशा में किस प्रकार से रह सकते हैं? किसी के प्रति क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं करना, वह वीतरागता। अगर वैसा (कषाय) हो जाए तो वीतरागता चूक गए। फिर से साधना पड़ेगा। ऐसे करते-करते स्थिर हो पाएँगे। जब छोटा बच्चा चलना सीखता है तब उसकी स्थिति कैसी होती है?

वीतराग हो जाए तो भगवान बन जाए। अंदर तो परमात्मा ही हैं लेकिन फिर पैकिंग भी भगवान बन गई, ऐसा कहा जाएगा!

कोई भी वैसा बन सकता है! वह *पुद्गल* की अंतिम दशा है।

यह ज्ञान होते ही दादाश्री में जगत् कल्याण की भावना जागी और 'व्यवस्थित' ने उन्हें निमित्त बनाया।

वीतरागता उत्पन्न होने के बाद करुणा उत्पन्न होती है। करुणा वालों को देह का, वाणी का और मन का मालिकीपन नहीं रहता। करुणा आत्मा का गुण नहीं है, वह वीतराग होने का लक्षण है। सहज क्षमा, सहज नम्रता और सहज सरलता, वीतराग में ये सभी गुण होते हैं। ये आत्मा के गुण नहीं हैं। वीतरागता भी आत्मा का गुण नहीं है। यह तो, व्यवहार की वजह से लक्षण उत्पन्न हुए हैं।

दादाश्री खटपटिया वीतराग। निःस्वार्थ खटपट। रात-दिन यही खटपट चलती रहती थी कि लोगों को मोक्ष में कैसे ले जाऊँ? इसीलिए उन्हें खटपटिया वीतराग कहा। तीर्थंकरों में किंचित्मात्र भी खटपट नहीं होती।

दादाश्री कहते हैं, 'मुझे जगत् की कोई चीज़ नहीं चाहिए। लक्ष्मी, विषय, मान या कीर्ति कुछ भी नहीं चाहिए। सिर्फ यही एक भाव रहता है कि जगत् का कल्याण होना ही चाहिए और वह होगा ही। यही हमारा *भेख* है (किसी ध्येय के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना)'।

संपूर्ण वीतरागता, वही शुद्ध प्रेम है। दादाश्री कहते हैं, 'हम प्रेम स्वरूप हो चुके हैं, जैसा जगत् ने कभी भी न देखा हो वैसा प्रेम उत्पन्न हुआ है'। वीतरागता में चार डिग्री कम हैं, चौदस रही इसलिए यह प्रेम लोगों को दिखाई देता है। पूनम वाले वीतराग का प्रेम पूर्ण होता है लेकिन वह दिखाई नहीं देता लेकिन वास्तविक प्रेम तो उन्हीं के प्रेम को कहा जाता है।

दादाश्री कहते हैं कि हमें पूनम नहीं हुई हैं लेकिन अंदर खुद के लिए इतनी अधिक शक्ति काम कर रही होती है कि ऐसा लगता है जैसे पूनम हो चुकी हो!

[3] मैला करे वह भी पुद्गल, साफ करे वह भी पुद्गल

जो वीतराग हैं उनमें शब्द या वाणी नहीं रहती। जड़ और चेतन दोनों संपूर्ण रूप से अलग हो ही चुके होते हैं।

भूल करने वाला *पुद्गल* और भूल को पकड़ने वाला भी *पुद्गल* और आत्मा तो उसे 'जानने वाला'। हमें भूल पकड़ने वाले क्यों बनना है? भूल को जानने वाले बनो।

हमें फाइल नंबर वन को बार-बार कचरा दिखाते रहना है। दिखाने वाले हम और साफ करने वाले वे।

इसमें प्रज्ञा अहंकार को दिखाती है और उसे शुद्ध करना है। अहंकार अर्थात् जहाँ *पुद्गल* और आत्मा, दोनों साथ में हैं। *पुद्गल* कर्ताभाव से उसमें जुड़ गया और आत्मा ज्ञाता भाव से, खुद ज्ञातापन में आ जाएगा तो मुक्त हो जाएगा और *पुद्गल* का कर्तापन गया तो वह मुक्त हो जाएगा।

जो उल्टा भाव करता है वह *पुद्गल* है, जो सुल्टा भाव करता है वह भी *पुद्गल* है और उसे जानने वाला शुद्धात्मा है! पराक्रम कौन करता है? वह भी *पुद्गल* करता है। पिछले जन्म में अज्ञानता से जिसे पुरुषार्थ मानते थे, वह आज पराक्रम के रूप में आया है।

अतिक्रमण भी *पुद्गल* करता है और प्रतिक्रमण भी *पुद्गल* करता है। आत्मा उसका ज्ञाता-दृष्टा है।

मैला करने वाला भी *पुद्गल* और साफ करने वाला भी *पुद्गल* ही है और जो मानता है कि 'मैंने किया', वह अहंकार है और 'मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया' उसे शुद्धात्मा कहते हैं।

जितना ज्ञान सुना, उस पर श्रद्धा बैठती है लेकिन वह तुरंत थोड़े ही आचरण में आ जाता है? वह निरंतर ध्यान में नहीं रहता। वर्तन हो तो निरंतर ध्यान रहता है। धीरे-धीरे बढ़ता है। साफ करने जाता है और उस रूप हो जाता है। यदि *ठपका* सामायिक में जुदा नहीं रह पाए तो खुद *ठपका* (उलाहना, डपटना) देने वाला बन जाता है इसलिए वह खूब डिप्रेशन में आ जाता है।

जो दर्शन में आता है, वह जैसे-जैसे अनुभव में आता जाएगा वैसे-वैसे वर्तन में आएगा।

पुद्गल क्या कहता है? 'हम तो शुद्ध ही थे, आपने हमें मैला किया। अब आप तो शुद्ध होकर बैठ गए, अब हमारा क्या? आपने हमें मैला किया, अब आप ही हमें साफ करो।' हमने भाव करके उसे बिगाड़ा है।

अब साफ किस तरह से करना है? भाव बिगाड़कर उन्हें बिगाड़ा अब समभाव से *निकाल* करके साफ करो या फिर प्रतिक्रमण करके धो दो तो आप मुक्त और वे भी मुक्त।

हमें अपना ज्ञायक स्वभाव नहीं छोड़ना है। जो भी विचार आएँ उन्हें देखना है तो वे साफ होकर चले जाएँगे।

अज्ञान मान्यता क्या कहती है कि मेरा आत्मा पापी है। ऐसा नहीं मानता कि *पुद्गल* अशुद्ध है।

दादा हर रोज़ नए-नए ज्ञानरत्न देते ही जाते हैं। दादा कहते हैं, 'हमारी इच्छा ऐसी है कि किसी ने हमारे लिए कुछ भी किया हो, हमें किसी ने चाय भी पिलाई हो तो उसे लाभ हो'। करुणा की ऐसी चरम सीमा!

[4] ज्ञान-अज्ञान

ज्ञान-अज्ञान के बीच क्या भेद है? अज्ञान भी एक प्रकार का ज्ञान है, प्रकाश ही है लेकिन वह प्रकाश पराई चीज़ों को, विनाशी चीज़ों को दिखाता है। जबकि ज्ञान खुद को व औरों को भी प्रकाशित करने वाली चीज़ है। अज्ञान, यह नहीं जानने देता कि 'मैं कौन हूँ'।

यह जो प्राकृत ज्ञान, पौद्गलिक ज्ञान है, वह अज्ञान है। फिर भी वह एक प्रकार का ज्ञान है लेकिन आत्मा के ज्ञान की तुलना में उसे अज्ञान कहा गया है।

संसार चलाने के लिए बुद्धि की ज़रूरत है, उसे अज्ञान कहा है।

आत्मा खुद ही ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान कभी भी अज्ञान नहीं हो जाता। आवरण आने पर उसमें से विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है लेकिन वह भी ज्ञान ही है।

अंधेरे की चाहे कितनी भी स्लाइस (भाग) की जाएँ तो उसमें से अंधेरा ही निकलता है, क्या उजाला निकल सकता है?

ज्ञान हमेशा सुख ही देता है, अज्ञान दु:ख देता है।

आत्मा का ज्ञान प्रकाश ऐसा है कि (उसमें) कभी भी अंधेरा नहीं हो सकता, उसकी कभी परछाई भी नहीं पड़ती।

ज्ञान का स्वभाव सदा सभी से निर्लेप ही रहा है। क्रिया में भी ज्ञान एकाकार नहीं होता।

ज्ञान लेने वाला कौन है? जो भटक गया है, वह। जो भोगता है, वह। खुद परमात्मा ही हैं लेकिन कहता क्या है, 'मैं दुःखी हूँ। बहुत चिंता होती है। मुझे कषाय हो जाते हैं'। यह तो सिर्फ भूत घुस गया है। जैसे रात को कुछ खड़खड़ाया तो वहम हो जाता है कि भूत है। पूरी रात घबराता रहता है, सुबह उठकर देखें तो वहाँ चूहा होता है! वैसा ही हुआ है यह सब! सही राहबर, ज्ञानी मिल जाएँ तो इस भूत को निकाल देते हैं और निर्भय और वीतराग बना देते हैं!

'खुद' खुद के अज्ञान द्वारा बंधता है और 'खुद' खुद के ज्ञान द्वारा मुक्त होता है। आत्मा तो ज्ञान वाला है ही।

ज्ञान मिलने पर ज्ञानी कौन बनता है? बंधन में आया हुआ वह, जो 'मैं और मेरा' कहता है।

ज्ञानी ज्ञान देते हैं तब अशुद्ध चेतन यानी कि पावर चेतन शुद्ध हो जाता है। यह पावर किसे रहता है? अहंकार को।

आत्मा के केवलज्ञान स्वरूप होने के बावजूद भी गलती कहाँ पर हो गई? गलती की ही नहीं है। यह तो विज्ञान से अहंकार उत्पन्न हो गया और विज्ञान से ही जाएगा। अहंकार को विलय कैसे किया जा सकता है? अक्रम ज्ञान से दो ही घंटों में यहाँ पर विलय हो जाता है! कई लोगों के अहंकार विलय हो गए!

अज्ञान का प्रेरणा बल कौन है? संयोग।

ज्ञान का प्रेरणा बल कौन है? संयोग। ओन्ली साइन्टिफक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स।

जगत् किसमें से उत्पन्न हुआ है? अज्ञान में से। अर्थात् विभाविक आत्मा प्रतिष्ठित आत्मा में से उत्पन्न हुआ है फिर उसी में लय हो जाता है और वापस उसी में से उत्पन्न होता है। इस तरह चलता रहता है... इससे मूल आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। सिर्फ आत्मा की विभाविक दृष्टि उत्पन्न हो गई है इसलिए बिलीफ बदल गई है। ज्ञान या चारित्र कुछ

भी नहीं बदला है। 'मैं'पन बदल गया है, वह मूल जगह पर बैठ जाए तो फिर हो चुका।

ज्ञान या अज्ञान का आदि क्या है? विज्ञान।

ब्रह्मांड में छः सनातन वस्तुएँ हैं। उनके इकट्ठे होने से व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो गए। क्रोध-मान-माया-लोभ, ये व्यतिरेक गुण कहलाते हैं। क्रोध और मान से 'मैं' और माया और लोभ से 'मेरा' बना। अब आत्मा और *पुद्गल* तत्त्वों को अलग करने पर सबकुछ खत्म हो जाता है।

दादाश्री ज्ञान देते हैं, वह किसे? आत्मा को या अज्ञानी को? अज्ञानी को। आत्मा को ज़रूर जुदा देखते हैं।

ज्ञान सहज होता है, सोचा-समझा हुआ नहीं होता। सोचा-समझा हुआ तो अज्ञान कहलाता है। ज्ञान को जान ले तो अज्ञान को जान सकता है। जो गेहूँ को जान ले वह कंकड़ को जान सकता है।

यानी कि अज्ञान को जानना भी ज़रूरी है। बंधन को संपूर्ण रूप से समझ ले, तभी मुक्ति की आराधना हो सकती है यानी जीव दोनों में से किसी का भी फायदा नहीं उठा सका (संसार में भी फायदा नहीं उठा सका और मोक्ष का भी फायदा नहीं मिला)।

जगत् में लाने वाला कारण अज्ञान है और जगत् से छुड़वाने वाला कारण ज्ञान! 'मैं कौन हूँ' का ज्ञान हुआ कि मुक्त हुआ!

माया वस्तु रूपी नहीं है। माया अर्थात् स्व-स्वरूप की अज्ञानता। सेल्फ इग्नोरन्स। स्वरूप का अज्ञान गया, 'मैं कौन हूँ' जाना तो माया गई!

इन सभी का रूट कॉज़ अज्ञानता हैं। माया दर्शनीय नहीं है, भास्यमान है।

अज्ञान क्या है और कहाँ से आता है? जन्म हुआ तभी से पहचानने के लिए 'चंदूभाई' नाम दिया गया लेकिन 'हमने' मान लिया कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ'। वह जो रोंग बिलीफ है, वही अज्ञान है। उसके बाद रोंग बिलीफ की परंपराएँ शुरू हो गई! रोंग बिलीफ अर्थात् मिथ्यात्व और राइट बिलीफ अर्थात् सम्यक्त्व।

कहा हुआ ज्ञान नहीं चलता। जो जाना हुआ–अनुभव किया हुआ ज्ञान हो वही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और वही मोक्ष में ले जाता है, अन्य नहीं।

'मैं चंदूभाई हूँ, मुझे नहीं पहचाना?' इस तरह अज्ञान को आधार दिया। उसी से खड़ा है यह जगत्। ज्ञान मिलने के बाद 'मैं' 'मैं' में आ गया इसलिए अज्ञान हो गया निराधार।

भ्रांति और अज्ञान में क्या फर्क है? अज्ञान में से जिसका जन्म होता है, वह भ्रांति है। अज्ञान में से काफी कुछ होता है, उसमें एक अंकुर भ्रांति का भी फूटता है।

जिसे अक्रम ज्ञान मिला हो, उसे भ्रांति नहीं रहती। कोई अच्छा सेठ हो लेकिन यदि उसने इतनी सी ब्रांडी पी ली तो? भ्रांति हो जाती है न? अतः ज्ञान मिलने पर अज्ञान का कुछ भाग कम हो गया। 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ' वह प्रतीति बैठी। सम्यक् दर्शन हो गया। अब सम्यक् ज्ञान होने लगा है।

माने हुए ज्ञान और जाने हुए ज्ञान में क्या फर्क है? जाना हुआ ज्ञान अर्थात् अनुभव किया हुआ। शक्कर मुँह में रखी अर्थात् जान लिया और अगर सुनकर मान लिया कि शक्कर मीठी है, मीठी है तो वह नहीं चलेगा।

समझ तो आकर जा भी सकती है लेकिन ज्ञान नहीं जाता।

मूलतः अज्ञान है और उसके बाद मोह। आत्मज्ञान होने के बाद मोह के अंश कम हो जाते हैं। आत्मज्ञान के अंश नहीं होते हैं।

ज्ञान का अंत है लेकिन अज्ञान का नहीं।

अहंकार किसे आया? अज्ञान को।

पूरे जगत् के तमाम सब्जेक्ट्स को जान ले, तब भी वह बुद्धि कहलाएगी और सिर्फ इतना ही जान ले, 'मैं कौन हूँ' तो वह ज्ञान कहलाएगा।

क्रिया वाला सारा ज्ञान, अज्ञान कहलाता है और क्रिया भी अज्ञान कहलाती है। अहंकार होगा तभी क्रिया हो सकती है, नहीं तो नहीं हो सकती, और चेतन ज्ञान स्वयं क्रियाकारी होता है।

दादाश्री को 1958 में सूरत स्टेशन पर ज्ञान हुआ, उससे पहले उनकी स्थिति कैसी थी? अहंकारी। बंधन दशा को देखा था और फिर मुक्त दशा का अनुभव किया!

ज्ञान किस तरह से हुआ? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स।

ज्ञान के समय कैसी स्थिति थी? अंदर आवरण हट जाएँ और सूझ पड़ने लगे तब उलझन में से बाहर निकलने पर कैसा फील होता है? उसी प्रकार अज्ञान के आवरण टूटते ही 'जगत् क्या है? कौन चलाता है? किस तरह चलता है? मैं कौन हूँ? यह कौन है?' वह सारा ज्ञान निरावृत हो गया!

आत्मा स्वाधीन है या पराधीन? अज्ञान के आधार पर पराधीन और ज्ञान के आधार पर स्वाधीन है। स्व पुरुषार्थ स्वतंत्र है और भ्रांति का पुरुषार्थ संयोगों के अधीन है!

अज्ञान दशा में वास्तविक पुरुषार्थ हो ही नहीं सकता, वह तो पुण्य के बल पर चलता है।

सिनेमा में जाना हो तो जल्दी से जा पाते हैं और सत्संग में नहीं, तो उसका क्या कारण है? सिनेमा में मन साथ (सहयोग) देता है। उससे वह अधोगति में जाता है। ध्येयपूर्वक जाने में मेहनत है। स्लिप तो आसानी से हुआ जा सकता है।

यदि संयोगों के अधीन सत्संग में नहीं आया जा सके तो संयोग किसके अधीन हैं? कर्म के अधीन? कर्म किसके अधीन हैं? उसका स्वरूप समझाते हुए दादाश्री एक अद्भुत खुलासा करते हैं कि वास्तव में हम क्या हैं? जितना अपना ज्ञान है या जितना अपना अज्ञान है, वही हम हैं और उस अनुसार संयोग मिलते हैं और उसी अनुसार कर्म बंधते हैं। बड़े व्यक्ति में उच्च प्रकार का ज्ञान होने की वजह से उच्च प्रकार के कर्म बंधते हैं। हल्के व्यक्ति में निम्न प्रकार का होने की वजह से वह निम्न प्रकार के कर्म बाँधता है। अतः खुद अहंकार या नाम नहीं है लेकिन 'वह खुद' है। 'वह खुद' अर्थात् क्या? ज्ञान और अज्ञान वही वह खुद, वही उसका उपादान! लेकिन क्योंकि यह सूक्ष्म बात समझ में नहीं आ सकती अतः यहाँ पर हम उसके

प्रतिनिधि अहंकार को स्वीकार करते हैं। यह बहुत गहरी बात है।

उपादान ही अहंकार है। वह 'खुद' ही। लेकिन यों वास्तव में अंहकार अलग है लेकिन 'वह' इस ज्ञान-अज्ञान के आधार पर ही करता है। जहाँ पर ज्ञान और अज्ञान दोनों ही हैं वहाँ पर अहंकार है ही।

ज्ञान मिलने के बाद पुरुष भाग कौन सा है? ज्ञान ही परमात्मा है, ज्ञान ही पुरुष। ज्ञान-अज्ञान का मिश्रण, वह प्रकृति है।

ज्ञान अर्थात् प्रकाश, समझ नहीं। ज्ञान का प्रकाश दिखाने पर ही सामने वाले को समझ में आता है। किसी के दिखाने पर ही ज्ञान समझ में आता है और फिर वर्तन में आता है। समझ में नहीं हो तो भले कितना भी ज्ञान प्रकाश दिया जाए फिर भी वर्तन में नहीं आएगा। अतः समझ और ज्ञान दो अलग चीज़ें हैं।

ज्ञान परिणाम सूर्य की किरणों जैसा है। ज्ञान ज्ञेय को ज्ञेयाकार दिखाता है।

मन अज्ञान परिणाम की गाँठ है। क्या ज्ञान की गाँठें पड़ती हैं? नहीं, कभी भी नहीं। ज्ञान के अंदर *पुद्गल* मिश्रित हो जाए तभी गाँठ पड़ती है। अतः अज्ञान परिणाम *पुद्गल* सहित ही होता है।

अज्ञान में स्पंदन होते हैं, ज्ञान में नहीं।

ज्ञान प्राप्ति का साधन क्या है? प्रत्यक्ष ज्ञानी ही एक मात्र साधन हैं और जो-जो स्वयंबुद्ध हुए हैं, उन्हें भी पिछले जन्म में सद्गुरु मिले थे।

क्या दादाश्री के ज्ञान और तीर्थंकरों के ज्ञान में फर्क है? नहीं, प्रकाश एक ही प्रकार का है। उसमें फर्क नहीं होता। हाँ, देशकाल के अधीन भाषा में फर्क हो सकता है।

शुद्ध ज्ञान ही परमात्मा है। शुभ ज्ञान, वह शुभ आत्मा है। अशुभ ज्ञान, वह अशुभ आत्मा है।

आदिवासी मनोरंजन के लिए जानवरों को काट लेता है, खाने के लिए नहीं। वह अशुद्ध ज्ञान है। दूसरे लोग बकरे काटते हैं लेकिन उन्हें

खा जाते हैं। वह अशुभ ज्ञान कहलाता है क्योंकि उसका हेतु खाने का है अत: अशुद्ध ज्ञान नहीं कहलाता। उससे भी आगे है शुभ ज्ञान और शुभ समझ। किसी को मारना मत। किसी को दु:ख मत देना। कोई मुझे दु:ख दे तो भी मैं उसे दु:ख नहीं दूँगा। अपने सभी धर्म शुभाशुभ में हैं। ज्ञान और समझ शुभाशुभ की है। शुभ ज्ञान और शुभ समझ, वह सुपर ह्यूमन बनाती है। यहाँ से देवलोक (स्वर्ग) में जाता है और शुद्ध ज्ञान वाला कैसा होता है? कोई जेब काट रहा हो तो भी उसे वह दोषित नहीं दिखाई देता। जिसे जगत् निर्दोष दिखाई देता है, वह वीतराग ही कहलाता है, वही परमात्मा है।

रिलेटिव ज्ञान और रियल ज्ञान दोनों एक सरीखे चलते हैं, पैरेलल चलते हैं, 99.99 तक दोनों एक सरीखे चलते हैं, तब तक रिलेटिव फोटो रूपी है और रियल एक्ज़ेक्ट रूप से है। उस चरम ज्ञान का फोटो नहीं लिया जा सकता। लेकिन क्योंकि रिलेटिव ज्ञान है इसीलिए वह क्रियाकारी नहीं होता और रियल ज्ञान स्वयं क्रियाकारी होता है!

आत्मा तो पूर्ण ज्ञानी ही है, अब जब अंत में *पुद्गल* का ज्ञान पूर्ण हो जाएगा तब मोक्ष मिल जाएगा। *पुद्गल* को भी भगवान बनाना है। ज्ञानी के पास बैठ-बैठकर, उन्हें देख-देखकर भगवान रूपी हुआ जा सकता है।

ज्ञान के दो प्रकार हैं। एक है 'अज्ञान ज्ञान'। जो 'ज्ञान' अज्ञान स्वरूप से है, वह जीवंत नहीं है। कार्यकारी नहीं है। उस ज्ञान को जितना जानते हैं, हमें उतना ही खुद करना पड़ता है जबकि चेतन ज्ञान स्वयं क्रियाकारी होता है। उदाहरण के तौर पर किसी संत ने ऐसा कहा है कि चोरी मत करो, लेकिन उसके लिए खूब स्ट्रगल करना पड़ता है, बंद करनी पड़े तो भी दूसरी तरफ चोरी चलती ही रहती है और ज्ञान की समझ तो स्वयं बंद करवा देती है। विज्ञान अंदर चेतावनी देता रहता है। बंधने ही नहीं देता।

पुस्तक का ज्ञान स्थूल ज्ञान कहलाता है। उतना मज़बूत कर ले तो भी आगे जाकर ज्ञान का अधिकारी हो जाएगा।

आत्मज्ञान होने तक ज्ञान कहलाता है और उससे आगे उसे विज्ञान

कहा जाता है। विज्ञान एब्सल्यूट कहलाता है। ज्ञान में करना पड़ता है और विज्ञान स्वयं क्रियाकारी होता है! भगवान विज्ञान स्वरूप हैं। जब तक ज्ञान, विज्ञान नहीं हो जाता तब तक उसे खरा (असल) आत्मा कह ही नहीं सकते। ज्ञान, वही आत्मा है, लेकिन कौन सा ज्ञान? विज्ञान ज्ञान!

जो फल दे वह विज्ञान है, वर्ना शुष्क ज्ञान है।

भेद ज्ञान ही सर्वस्व ज्ञान है वही केवलज्ञान का द्वार है। इस काल के प्रभाव की वजह से दादाश्री पूर्ण ज्ञानी होने के बावजूद भी निरंतर केवलज्ञान स्वरूप में नहीं रह पाते थे!

फिर भी खुद कभी, डिगे नहीं, थके नहीं, हारे नहीं, वैसे वीतराग हैं ये। कैसे ग़ज़ब के वीतराग!

जो अज्ञान को घुसने ही न दे उसे ज्ञान कहते हैं! अज्ञान खड़ा होने लगे उससे पहले ही जो हाज़िर हो जाए, वही असल में ज्ञान है। वही प्रज्ञा।

ज्ञान मिलते ही रूट कॉज़ गया अब जो दूसरी डालियाँ और पत्ते रह गए हैं, वे झड़ जाएँगे।

जब मान खड़ा होने लगे तब फाइल नंबर वन से कह देना कि बहुत रौब मार रहे हो? मज़े हैं आपके। ऐसे बात करना, या फिर उसे जुदा 'देखना'।

अज्ञान से परिग्रह उत्पन्न होते हैं, परिग्रह से उलझन होती है और ज्ञान से उलझन सुलझ जाती है। अतः परिग्रह छूटते जाते हैं।

दादाश्री कहते हैं कि हमें कोई फूल-माला चढ़ाए, उस समय चेहरा हँसता है, उसे भी हम जुदा 'देखते हैं'। अभिव्यक्ति अज्ञानी जैसी ही होती हैं लेकिन उसे भी हम जुदा देखते हैं।

ये *लागणियाँ* (लगाव, भावुकता वाला प्रेम) पूर्व काल के ज्ञान का असर है, उसे आज का ज्ञान देखता है!

जब से 'मैं शुद्धात्मा हूँ' की प्रतीति बैठी तभी से क्रोध-मान-माया-लोभ नष्ट हो गए। जब उदय का ज्ञान और आज का ज्ञान दोनों

एक हो जाते हैं तब क्रोध-मान-माया-लोभ कहलाते हैं और दोनों जुदा रहें तो नहीं कहलाते। बाहर क्रोध हो रहा हो लेकिन अंदर ऐसा लगता है कि 'यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए' तो आज का अभिप्राय उससे अलग रहा इसलिए फिर हिंसकभाव नहीं रहता। अत: उसे क्रोध नहीं कहते।

जब से आत्मा की प्रतीति बैठती है तभी से प्रज्ञा शुरू हो जाती है।

महात्माओं को जो ज्ञान मिला है, वह अगले जन्म का पराक्रम बनेगा! दादाश्री का जो पराक्रम हैं वह गतज्ञान पराक्रम है। पराक्रम कब कहलाता है कि जब वाणी पाताल में से निकले तब! वे जो कुछ कहते हैं उसी से शास्त्र रचे जाते हैं!

[5.1] ज्ञान-दर्शन

'सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्याणि मोक्षमार्ग।' रत्नत्रय से मोक्ष।

परमार्थ ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। वह ज्ञान उसे श्रुतज्ञान से, पढ़ने से या सुनने से हुआ होता है लेकिन उसके प्राप्त होने के बाद उसे आत्मा की प्रतीति बैठती है, आत्मा दर्शन में आता है। उसके बाद चारित्र में आता है और मोक्ष हो जाता है।

सम्यक् दर्शन अर्थात् भ्रांतिक दर्शन का अभाव! दृष्टि पलटे तो दर्शन वर्ना विनाशी चीज़ों में से श्रद्धा उठकर और सनातन वस्तु पर अटूट श्रद्धा बैठना, उसे कहते हैं सम्यक् दर्शन। दर्शन और ज्ञान होने के बाद चारित्र में आता है। राग-द्वेष रहित चारित्र, उसे कहते हैं सम्यक् चारित्र।

अज्ञान और अदर्शन का फल क्या है? कषाय और ज्ञान व दर्शन का फल क्या है? निरंतर 'समाधि'।

जिसे सम्यक् दर्शन हो जाता है, उसे समकिती कहा जाता है। इसमें उसकी दृष्टि बदली है। सम्यक् दर्शन हुआ है लेकिन सम्यक् ज्ञान नहीं हुआ है। समकित होने के बाद में जो अनुभव होते हैं, वह सारा ज्ञान है। उसके बाद वह चारित्र में आता है।

क्या श्रद्धा आत्मा का गुण है? नहीं। श्रद्धा, वह मन और बुद्धि

का गुण है। आत्मा का गुण तो दर्शन है। श्रद्धा, अश्रद्धा में बदल सकती है जबकि आत्मा का दर्शन कभी भी नहीं बदलता।

प्रतीति अर्थात् दर्शन, जबकि *लक्ष,* वह जागृति है और जो प्रतीति हुई है, उसका अनुभव में आना, वह ज्ञान कहलाता है। आत्मा के अनुभव और ज्ञान में क्या फर्क है? अनुभव एक-एक अंश करके बढ़ता जाता है और ज्ञान सर्वांश होता है।

दादाश्री जब ज्ञान देते हैं तब संपूर्ण दर्शन हो जाता है लेकिन ज्ञान एक-एक अंश करके होता जाता है। 'ज्ञान' देते हैं तब जागृति उत्पन्न होती है, और उस जागृति के आधार पर ही सब अनुभव होते हैं। अतः शुरुआत में दर्शनात्मा बनता है उसके बाद ज्ञानात्मा बनता है। ज्ञान वाले को खुद के बहुत दोष दिखाई देने शुरू हो जाते हैं और वह उनसे मुक्त होता जाता है।

दर्शन किसका कहा जाएगा? बुद्धि का या प्रज्ञा का? दर्शन तो, प्रज्ञा को भी दिखाए, ऐसी चीज़ है। दर्शन अर्थात् यह प्रतीति कि हम आत्मा ही हैं।

प्रतीति किसे बैठती है? अहंकार को।

प्रतीति प्रज्ञा करवाती है? नहीं! दादाश्री आत्मा का जो 'ज्ञान' देते हैं वह और दादा भगवान की कृपा, ये करवाते हैं। ज्ञान मिलते ही भगवान की कृपा से ज्ञान फिट हो जाता है। रोंग बिलीफ खत्म हो जाती है और राइट बिलीफ बैठती है।

राइट बिलीफ, राइट ज्ञान और राइट चारित्र, इन तीनों का समावेश सत् में होता है।

दर्शन का अर्थ क्या है कि 'मैं भगवान हूँ' ऐसी श्रद्धा बैठ गई लेकिन निश्चय से भगवान हूँ, व्यवहार से तो वकील हूँ या डॉक्टर हूँ।

खुद को जाने, वह खुदा लेकिन वह श्रद्धा से हुआ है, ज्ञान से नहीं। खुदा तो दादा हैं!

अक्रम में ज्ञानविधि में पहले तो अनंत काल के पाप भस्मीभूत हो जाते हैं, उसके बाद आत्मा की प्रतीति बैठती है। फिर आत्मा का कुछ-कुछ अनुभव होता है, उसकी शुरुआत हो जाती है।

अक्रम में दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं। दर्शन पूरा ही मिल जाता है उसके बाद अनुभव होते-होते ज्ञान में आता है तब फिर बाद में चारित्र में आता है।

दादाश्री ज्ञान, दर्शन और चारित्र को संक्षिप्त में समझाते हुए कहते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'चंदू फाइल है', ऐसी प्रतीति बैठ जाए तो उसे सम्यक् दर्शन कहा है। उसके बाद फाइल में क्या-क्या है और यह दूसरे में क्या-क्या है, यह सब जाने, वह ज्ञान है और ज्ञाता-दृष्टा रहना, वह चारित्र है।

महात्माओं के पास दर्शन तो पूर्ण है। पूरी दृष्टि ही बदल गई है। अब आत्म सम्मुख के अनुभव होने चाहिए।

महात्माओं को किस आधार पर अनुभव होता है? 'जेब कट जाए तब काटने वाला निर्दोष है, हुआ वह सब व्यवस्थित है।' अनुभव के बिना ऐसा नहीं रह सकता। पहले अनुभव हो चुका हो तो दूसरी बार ज्ञान हाज़िर रहता है। वर्ना बहुत *भोगवटा* (सुख या दु:ख का असर, भुगतना) आता है। जितना अनुभव हुआ उतना ही चारित्र की शुरुआत हो जाती है।

अक्रम में दर्शन-ज्ञान-चारित्र और क्रमिक में ज्ञान-दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है।

क्रमिक में जो प्रथम ज्ञान होता है, वह शब्द ज्ञान, शास्त्र ज्ञान से या सुनने से होता है। शब्द ज्ञान पर से धीरे-धीरे आत्मा की श्रद्धा बैठती है, क्रमिक में दर्शन होने में बहुत देर लगती है। दर्शन होने के बाद निश्चय से ज्ञान प्राप्त होता है। उसके बाद वह निश्चय-चारित्र में आता है। यह क्रमिक का तरीका है, ज्ञान दो बार आता है। पहले व्यवहार का, फिर निश्चय का। अत: क्रमिक में रिलेटिव में से रियल में जाते हैं और अक्रम में सीधे ही रियल मिल जाता है, ज्ञानविधि से!

जहाँ पर कुछ भी करना पड़ता है, वह सब रिलेटिव है। त्याग, तप, जप, ध्यान, सबकुछ। रिलेटिव के बाद उसमें से अंत में जाकर रियल में आ पाते हैं।

अक्रम में ज्ञान स्वयं ही क्रियाकारी होता है। अतः अक्रम में कुछ करना नहीं पड़ता। मात्र ज्ञान को ही समझना है।

गुह्य, गुह्यतर और गुह्यतम ज्ञान क्या है ? जो आत्मा की सौ प्रतिशत प्रतीति बिठाए, वह गुह्य ज्ञान है। वह दर्शन के रूप में है। गुह्यतर ज्ञान वह अनुभव ज्ञान के रूप में है, जिसका दर्शन हुआ उसका अनुभव होता है और गुह्यतम ज्ञान अर्थात् जो संपूर्ण चारित्र में आ जाए, वह। अतः निरंतर स्व में ही रहता है, पर में प्रविष्ट ही नहीं होता। अक्रम में गुह्य ज्ञान मिलता है जो स्वयं क्रियाकारी है। जिस दिन से गुह्य ज्ञान मिलता है, उसी दिन से प्रज्ञा प्रकट हो जाती है और रात-दिन अंदर से सावधान करती रहती है।

अक्रम विज्ञान तो ग़ज़ब का विज्ञान है। उसकी थाह पाना महात्माओं के लिए बहुत कठिन है। यह तो, जैसे-जैसे दादाजी स्पष्ट रूप से समझाते जाते हैं वैसे-वैसे महात्माओं को टेली (मेल खाना) होता जाता है कि इसका तो हमें अनुभव हो रहा है, यह तो हमें बरतता है, वैसे-वैसे उसकी कीमत समझ में आती है। बाकी बालमंदिर के लोगों को दादाश्री दो ही घंटों में सीधा ज्ञानमंदिर में बिठा देते हैं। इसीलिए तो इतना रौब है महात्माओं का अध्यात्म में!

[5.2] चारित्र

चारित्र दो प्रकार के हैं। एक व्यवहार चारित्र और दूसरा निश्चय चारित्र। व्यवहार चारित्र अर्थात् जिसका पालन करते हैं और जो बाहर से दिखाई देता है। तीर्थंकरों की आज्ञा में रहकर व्यवहार शुद्ध और उच्च कर दिया होता है। संपूर्ण रूप से तीर्थंकरों की आज्ञा में रहना, वह व्यवहार चारित्र कहलाता है, उसमें आत्मा का ज्ञान नहीं है। जबकि निश्चय चारित्र आत्मा का चारित्र है, वह ज्ञान होने के बाद होता है। निश्चय चारित्र अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी, बस! कषाय रहित व्यवहार। निश्चय चारित्र में कोई मेहनत नहीं करनी होती। व्यवहार चारित्र में खूब मेहनत करनी पड़ती है। लाख ज्ञानियों की एक ही आवाज़ होती हैं और तीन अज्ञानियों के बीच सौ मतभेद हो जाते हैं।

जो निश्चय चारित्र में आया, वह तो बन गया भगवान!

सम्यक् चारित्र में व्यवहार कषाय रहित होता है और दरअसल चारित्र में ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी रहते हैं।

व्यवहार चारित्र में पाँचों विषयों में वृत्ति नहीं रहती, ब्रह्मचर्य रहता है। यह त्यागियों में मिलता है। दूसरा, व्यवहार में ईमानदारी, नैतिकता, न्याय की तरफ झुकाव रहता है। विवाहित हो तो एक पत्नीव्रत ही रहता है और आगे जाकर तो विषय बंद ही हो जाता है। लक्ष्मी का व्यवहार भी नहीं रहता। पाँच महाव्रत व्यवहार चारित्र में ले आते हैं।

दादाश्री का लक्ष्मी व विषय का व्यवहार सौ प्रतिशत शुद्ध था। पैसे के सामने कभी भी नहीं देखते थे, दूसरे लोग ही संभालते थे। खाते-पीते, उठते-बैठते, ज्ञाता-दृष्टा रहना, वह अंतिम प्रकार का चारित्र, और वह प्राप्त करवाता है निर्वाण पद!

और एक वाक्य में दादाश्री चारित्र की परिभाषा देते हैं कि 'होम डिपार्टमेन्ट में रहना, वह चारित्र है। कभी फॉरेन में आए ही नहीं, वह खरा चारित्र'।

क्रमिक में व्यवहार चारित्र हो, तभी निश्चय चारित्र प्राप्त होता है। अक्रम विज्ञान में ऐसी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।

किसी को धौल लगाई तो वह मिथ्या चारित्र कहलाता है। मारने की श्रद्धा, वह मिथ्यादर्शन और मारने का भाव हुआ, वह मिथ्या ज्ञान। मिथ्या ज्ञान मिथ्यादर्शन में, मैं चंदूभाई, इनका ससुर, इनका बाप ऐसा निश्चय से बरतता है अत: वह मिथ्या चारित्र में आता है।

पहले सम्यक् दर्शन होता है अत: आगे जाकर अपने आप सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र में आ जाता है। अत: कीमत सम्यक् दर्शन की ही है।

ज्ञान मिलने के बाद ही महात्मा रियल चारित्र के अंश देखते हैं। बाकी सब जगह व्यवहार चारित्र ही है। इस निश्चय चारित्र के बारे में तो जगत् जानता ही नहीं कि यह क्या है?

निश्चय का ज्ञान-दर्शन और चारित्र, रूपी नहीं हैं, अरूपी हैं। लोग रूपी चारित्र ढूँढते हैं। बोलो उसका मेल कैसे बैठे? लोग तो कपड़े बदलने

को 'चारित्र' कहते हैं और ऐसा कहते हैं कि 'चारित्र के बिना मोक्ष नहीं है'। लेकिन कौन सा चारित्र? वीतरागों का या लोगों का माना हुआ?

सम्यक् दर्शन से चारित्र में नहीं आ सकते, ज्ञान से आ सकते हैं। पहले दर्शन से ज्ञान में आते हैं और फिर उसमें से चारित्र में आते हैं।

जहाँ कषाय नहीं होते, वह चारित्र उच्च है, लेकिन वास्तव में तो ज्ञाता-दृष्टा रहना, वही चारित्र है। फिर बुद्धि इमोशनल नहीं करती, जहाँ बुद्धि उत्पन्न हो जाए वहाँ पर इमोशनलपना आता ही है।

महात्मा और अज्ञानियों की प्रतिक्रिया में क्या फर्क है? पूरी तरह से अलग है। अज्ञानी भगवान जैसी बात करता है लेकिन उसके आर्तध्यान और रौद्रध्यान निरंतर चलते ही रहते हैं! और महात्माओं में आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद ही हो जाते हैं। उसे 'संसार में रहकर भी मोक्ष' कहा गया है।

जो ज्ञान और अज्ञान को एक न होने दे, उसे चारित्र कहते हैं और एक नहीं होने देने में जो कष्ट होता है उस समय जो तप करना पड़ता है वह मोक्ष का तप कहलाता है।

पुद्गल के हर एक परिणाम को, हर्ष के या शोक के, उन्हें पर परिणाम जाना, तो वह सम्यक् चारित्र कहलाता है।

दर्शन शुद्धि यानी दर्शन मोह खत्म हो जाता है। दर्शन मोह खत्म होने के बाद बाह्य संयोगों में तन्मयाकार हो जाना, वह चारित्र मोह है और जो ज्ञान उस चारित्र मोहनीय को देखता है, वह सम्यक् चारित्र है।

अक्रम में दादाश्री ने महात्माओं को सम्यक् दर्शन में ही नहीं बल्कि सम्यक् चारित्र में बिठा दिया है। उसके बिना मिथ्यात्व मोहनीय रहता है।

परमार्थ समकित का अर्थ क्या है? निरंतर ऐसा लक्ष्य में रहना कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। उसे चारित्र की भूमिका में आना कहते हैं। जैसे-जैसे चारित्र मोहनीय कम होता जाता है वैसे-वैसे शुद्ध चारित्र बढ़ता जाता है। जब तक चारित्र मोहनीय रहता है तब तक केवलचारित्र प्रकट नहीं हो सकता।

संयम और चारित्र में क्या फर्क है? संयम परिणाम ही चारित्र है। वह क्षयोपक्षम में है, क्षायिक नहीं है। संयम परिणाम बंद हो जाएँ तो वह क्षायक चारित्र है!

सराग चारित्र बहुत उच्च चीज़ है। वह ज्ञानियों में होता है। संपूर्ण ज्ञानी हो जाने पर वीतराग चारित्र। उनमें किंचित्मात्र भी राग-द्वेष नहीं रहता। सौ प्रतिशत वीतरागता होती है।

आत्मा का ज्ञान-दर्शन-चारित्र, इस प्रकार से अलग-अलग विभाग नहीं होते। यह तो वहाँ तक पहुँचते हुए, रास्ता पार करते हुए आता है तो उसमें पहले दर्शन, उसके बाद ज्ञान और फिर चारित्र! लेकिन है मूल वही का वही। खुद ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद उसका चारित्र, वह परिणाम है।

मोक्ष में जाते हुए दो प्रकार के ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप हैं। एक व्यवहार में, दूसरा निश्चय में। व्यवहार ज्ञान, व्यवहार दर्शन, व्यवहार चारित्र, व्यवहार तप, वे सब बाह्य हैं। अशुभ छोड़कर शुभ में आना, वह शुभ चारित्र है। उसके बाद शुद्ध चारित्र आता है। शुभ चारित्र में मान-अपमान नहीं रहता, कीर्ति की वासना नहीं रहती, खुले कषाय नहीं होते। उसमें आत्मा की पहचान नहीं हुई होती और यदि पहचान हो जाए तो वह सम्यक् चारित्र है जो कि मोक्ष का है।

देहाध्यास खत्म होने के बाद सम्यक् चारित्र उत्पन्न होता है, वर्ना लौकिक चारित्र कहलाता है।

महात्माओं के चारित्र का लक्षण क्या है? आत्म दृष्टि से देखना व जानना, वही चारित्र है। उसमें मन-बुद्धि से नहीं देखना होता।

खुद के मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार को देखता रहे, वह चारित्र। ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद में रहना, वह आत्मा का चारित्र है।

चारित्र बरत रहा हो तो उसके लक्षण क्या है? वीतरागता। खुद यदि जानपने में रहे तो वह सम्यक् चारित्र है।

खुद ज्ञाता-दृष्टा रहा फिर भी ज्ञेय में ज्ञेयाकार हो गया तो उस समय ज्ञान है लेकिन चारित्र नहीं है। अर्थात् पूरी तरह से बदला नहीं है।

चारित्र बलवान होने की परख क्या है? किसी के साथ टकराव में न आए, मन से भी नहीं, एडजस्ट एवरीव्हेर। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, किसी भी तरह से न टकराए। दखल न हो, मुँह न चढ़े, किसी को दुःख न हो। टकराव के बाद प्रतिक्रमण कर ले, तो वह चारित्र कहलाएगा? नहीं, वह चारित्र में जाने की निशानी है।

शीलवान तो पूर्ण चारित्र वाला होता है।

किसी भी संयोगों में अंदर से 'देखना-जानना' ही रहे तब वह निश्चय की हद में आ गया। कोई मामा की बेटी को उठा ले जाए तो नाटक सभी करता है बचाने का लेकिन अंदर से निर्लेप ही रहता है।

दादाश्री कहते हैं कि हमारा चारित्र बहुत उच्च है। सम्यक् चारित्र में, ज्ञान-अज्ञान एक न हो जाएँ, उसके लिए पुरुषार्थ है। केवलचारित्र तो केवलज्ञान के बाद में ही हो सकता है। सहज होता है, केवलज्ञानी को केवलचारित्र बरतता है।

दादा का चारित्र सफल चारित्र है। आत्मज्ञानी का चारित्र देखने को मिल जाए तो भी बहुत है। देखने से ही उस रूप होते जाते हैं। फिर भी दादाश्री कहते हैं कि हमारा चारित्र पिछले जन्म का परिणाम है, यह पूर्ण नहीं है।

भगवान महावीर ने कहा है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं हैं।

आज अस्तित्व सौ पर है लेकिन दिखाई देने वाला चारित्र अठानवे पर है। अस्तित्व इस जन्म का है और जो दिखाई देता है वह चारित्र पिछले जन्म का है।

प्राप्ति का मार्ग एक ही है विचार श्रेणी अलग-अलग होती है और वह हर एक की प्रकृति की भिन्नता के कारण है, बाकी प्रकाश में कोई अंतर नहीं होता। क्रमिक में ज्ञान-दर्शन और चारित्र होते हैं। अक्रम में दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। केवलज्ञान प्रकाश तो सभी में एक सरीखा ही है। अक्रम का तरीका महा पुण्यशालियों को प्राप्त होता है। यह तरीका एकदम आसान और सरल है।

शुक्लध्यान उत्पन्न होने पर यथाख्यात चारित्र उत्पन्न होता है। शुक्लध्यान अर्थात् केवल खुद के आत्म स्वरूप का ही ध्यान।

यथाख्यात चारित्र के पूर्ण होने के बाद केवलज्ञान उत्पन्न होता है। 'आत्मा क्या है', पूर्ण रूप से इसका लक्ष्य बैठ जाना, वह यथाख्यात चारित्र है। अर्थात् जैसा है वैसा चारित्र। वह सम्यक् चारित्र से उच्च है और वीतराग चारित्र से ज़रा सा ही कम है।

सम्यक् चारित्र अर्थात् गिरता है और खड़ा होता है, गिरता है और खड़ा होता है और यदि गिरना ही बंद हो जाए तो वह यथाख्यात चारित्र।

केवलचारित्र कोई देख नहीं सकता। वह इन्द्रियगम्य नहीं है, ज्ञानगम्य है। सम्यक् चारित्र को देखा जा सकता है।

इस प्रकार दादाश्री मोक्ष के चारित्र का यथार्थ विवरण देते हैं। कपड़े बदलने को चारित्र नहीं कहा गया है, मोक्ष का चारित्र स्थूल नहीं, सूक्ष्म है। पहले सम्यक् चारित्र उसके बाद यथाख्यात चारित्र और अंत में केवलचारित्र, जो कि केवलज्ञान सहित है और उसके बाद तो कुछ ही समय पश्चात मोक्ष में चला जाता है!

[6] निरालंब

लोग भयंकर दु:ख भोगते हैं लेकिन किस आधार पर जी रहे हैं? इन सब से तो मैं बड़ा हूँ न! इस आधार पर। कोई अहंकार के आधार पर, तो कोई रूप के आधार पर, तो कोई रिश्तेदारों के आधार पर, तो कोई विषय के आधार पर जी रहा है! देह भोजन से जीवित रहता है लेकिन यह मन ऐसे अवलंबनों पर जीवित है। ये सभी टेम्परेरी अवलंबन हैं। सनातन का अवलंबन ही खरा अवलंबन है। निरालंब! सिर्फ ज्ञानी ही निरालंब होते हैं। उन्हें किसी प्रकार का अवलंबन नहीं है, मन का आधार, पैसों का आधार वगैरह इन सब का अवलंबन नहीं है। मन का आधार, पैसों का आधार वगैरह सभी नाशवंत आधार हैं।

फॉरेनर्स को आधार की बहुत नहीं पड़ी होती। डिवॉर्स हो जाए तो दूसरी। अपने यहाँ तो निराधार हो जाते हैं!

महात्माओं को शुद्धात्मा का आधार मिला है, इसीलिए मोक्ष का

वीज़ा मिल गया! आज्ञा में रहेगा तो सीधा पहुँच जाएगा।

इस परदेश में रोज़ कितने हुल्लड़ होते हैं। उसके बजाय निज घर की तरफ जा। जहाँ बेहद ऐश्वर्य है! निरालंब दशा!

वह अद्‌भुत दर्शन क्या है जो गुप्त स्वरूप से है। ऐसी अद्‌भुतता दुनिया में अन्य कहीं भी नहीं मिलेगी! शास्त्रों ने उसे लाखों बार अद्‌भुत कहा है!

शुरू में शब्द स्वरूप प्राप्त होता है और अंतिम बात है निरालंब! जगत् में सिर्फ आत्मा ही निरालंब है, उसे किसी आधार की ज़रूरत नहीं है। स्वतंत्र!

शास्त्र भी अवलंबन रूपी हैं। उन्हें बीच में नहीं छोड़ा जा सकता लेकिन जब मंज़िल आ जाए तब रोड को छोड़ना पड़ता है या नहीं या फिर रोड को घर पर लेकर जाते हैं? सीढ़ियों को साथ में लेकर क्या ऊपर चढ़ा जा सकता है? भले ही सीढ़ियाँ कितनी भी प्यारी हों लेकिन ऊपर पहुँचने के बाद उन्हें छोड़ना ही पड़ता है न?

योगी भी आलंबन वाले होते हैं। आत्मयोगी निरालंबी होते हैं। आत्मयोगी को तो भगवान के आलंबन की भी ज़रूरत नहीं हैं क्योंकि वे खुद ही भगवान बन गए! कृष्ण भगवान आत्मयोगेश्वर कहलाते हैं। योगियों में मन-वचन-काया का योग रहता है। उससे थोड़ी शांति रहती है।

दादाश्री कहते हैं कि 'हमें आत्मा का संपूर्ण अनुभव हुआ है। हमने निरालंब आत्मा देखा है और हमें सभी में वैसा ही निरालंब आत्मा दिखाई देता है!'

दुनिया के लोग आलंबन के बिना जी ही नहीं सकते और बार-बार अवलंबन बदलते ही रहते हैं।

'सत्' निरालंब वस्तु है, वहाँ पर 'अवलंबन' लेकर ढूँढने जाएँ तो कैसे मेल पड़ेगा? वह तो, जो निरालंब हैं ऐसे ज्ञानी का अवलंबन लेंगे, तभी काम हो सकेगा। सिर्फ यही एक आलंबन ऐसा है जो निरालंब बनाता है!

दादाश्री निज दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ''मैं समाधि से बाहर निकलता ही नहीं हूँ'। मैं 'ए.एम.पटेल' नहीं हूँ, उनके जो मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार हैं, वह मैं नहीं हूँ। जो शुद्धात्मा है, वह मैं नहीं हूँ। 'शुद्धात्मा' शब्द स्वरूप से मैं नहीं हूँ, मैं तो दरअसल स्वरूप से हूँ, निरालंब स्वरूप से हूँ।''

दादाश्री कहते हैं कि इसके बावजूद भी पूर्ण दशा में मेरी चार डिग्री कम हैं। क्यों? मेरी एक इच्छा रह गई। 'मैंने जो सुख पाया, सभी वह पाएँ।'

निरालंब की बात शब्दों से नहीं समझाई जा सकती। कई वर्षों तक ज्ञानी के पास पड़े रहें, तब जाकर कुछ समझ में फिट होता है।

जब तक आत्म सम्मुख नहीं हुआ तब तक सुख-दुःख हैं, अवलंबन हैं, परवशता है। जब आत्मा के अलावा तमाम अवलंबन छूट जाएँगे तब पूर्ण होंगे!

महात्माओं को जो शुद्धात्मा पद प्राप्त हुआ है, वह शब्दावलंबन है। जैसे-जैसे आज्ञा में रहेंगे वैसे धीरे-धीरे अवलंबन जाएँगे और निरालंब हो पाएँगे। हाँ, सौ प्रतिशत मोक्ष की मुहर लग गई!

दादा का ज्ञान मिलने के बाद निरंतर सहज रूप से शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) रहे, संसार में कषाय नहीं हों, चिंता-टेन्शन नहीं हों फिर भी वह मूल आत्मा नहीं है। जो शुद्धात्मा महात्माओं को प्राप्त हुआ है, उससे मोक्ष के पहले दरवाज़े में प्रविष्ट हुए। मोक्ष की मुहर लग गई लेकिन मूल आत्मा बहुत दूर है। हाँ, महात्मा एकदम शोर्ट कट में आ गए हैं। अब मात्र पाँच आज्ञाओं का पालन करके अनुभव कर लेना है। अब मात्र ज्ञानी के पीछे पड़े रहना है। अनुभव करते-करते शब्द चले जाएँगे और अनुभव का भाग बचेगा। अनुभव इकट्ठा होते-होते जैसे-जैसे मूल जगह पर आता जाएगा वैसे-वैसे खुद का वह रूप पूर्ण होता जाएगा। उसके बाद अनुभव और अनुभवी दोनों एक हो जाएँगे।

जब तक पिछला कर्ज़ हैं तब तक वह निरालंब आनंद के अनुभव में नहीं रहने देता। हाँ, देहाध्यास चला गया इसलिए आत्मानुभव तो हो ही गया।

जब तक दूसरों से अपेक्षाएँ हैं तब तक परालंबी हैं, संसार है और विषय है तो वह मूल स्वाद नहीं आने देगा। एक बार का विषय तीन दिन तक भ्रांति में डाल देता है यानी कि वह सच्चे सुख को विस्मृत करवा देता है!

आत्मा की खुराक क्या है? निरंतर ज्ञाता-दृष्टा। उसका फल क्या है? परमानंद।

मनुष्य को आखिर तक आधार की ज़रूरत है। कोई न हो तो पैसे का आधार तो चाहिए ही। दादाश्री एक भाग्यशाली को समझाते हैं कि हमारी तरह बाह्य आधारों से छूट जाओ। सभी पैसे और घर-बार सौंप दो, फिर हमारी तरह निरालंब हो जाओगे। जब तक 'बैठक' की जगह रखी हो तब तक 'मैं', 'आत्मा' और 'बैठक' इस प्रकार से तीनों रहते हैं। 'मैं' समर्पण हो गया तो 'मैं' और 'आत्मा' एक ही। इस दुनिया में सिर्फ ज्ञानी को ही 'बैठक' का आधार नहीं है। इसीलिए वे निरालंब कहे जाते हैं। मैं ही आत्मा हूँ और आत्मा ही मैं हूँ। उसके बाद और कुछ रहा ही नहीं। बैठक को हटा दिया, इसलिए! जब तक बैठक है तब तक 'मैं' और 'आत्मा' एक नहीं हो सकते। बैठक के लिए गुरखा रखना पड़ता है। उसके बाद अंत में वह भी दगा ही निकलता है। बैठक में सिर्फ ज्ञानी को ही रखना चाहिए।

जो आँखों से दिखाई देते हैं वे दादा अलग हैं, वे 'ए.एम.पटेल' हैं, मूल दादा भगवान भीतर हैं और बीच का जो भाग है, वे सूक्ष्म दादा हैं, जिनका हम निदिध्यासन करते हैं। स्थूल दादा नहीं हों तो उससे परेशानी होगी लेकिन सूक्ष्म दादा हमेशा ही निदिध्यासन के रूप में रहेंगे उसमें कोई परेशानी नहीं आएगी। स्थूल टिके या न भी टिके। सूक्ष्म दादा, निदिध्यासन वाले, हज़ारों सालों तक चलेंगे। उसके बाद वाणी का निदिध्यासन आता है और अंत में तीसरा, भगवान का, वह निरालंब स्थिति है। उसका अन्य किसी भी प्रकार से चिंतवन नहीं हो सकता। मूल स्वरूप दिखाई देता है, हूबहू मूल स्वरूप, जिसे केवलज्ञान कहा गया है, वह दिखता रहता है।

सूक्ष्म दादा का निदिध्यासन निरालंब की तरफ ले जाता है। दैहिक

निदिध्यासन, वाणी का निदिध्यासन, ये सभी एक साथ मिलकर निरालंब होने में मदद करते हैं।

मूल स्वरूप दादा भगवान हैं, उसका अनुभव करने वाले उनसे अलग हैं न? मूल स्वरूप को देखने वाले जुदा ही हैं न अभी? अभी इस शुद्धात्मा स्वरूप को देखने वाली प्रज्ञा है। जब तक केवलज्ञान समझ में है, तब तक प्रज्ञा बाहर रहती है और जब केवलज्ञान ज्ञान में हो तब प्रज्ञा फिट हो जाती है। उसके बाद देखने वाला अलग नहीं रहता। निरालंब दशा हो गई!

भगवान दादा के वश में आ गए अर्थात् निरालंब आत्म स्वरूप भगवान वश में आ गए।

महात्माओं को अभ्युदय और आनुषांगिक दोनों फल मिलते हैं। अभ्युदय अर्थात् संसार में ज़बरदस्त अभिवृद्धि और आनुषांगिक जो मोक्ष फल सहित होता है।

बात को समझना ही है। कौन सी बात? एक विनाशी वस्तु और विनाशी के सगे-संबंधी, सभी विनाशी हैं और दूसरा निरालंब है वह 'मैं' है और उस पर कोई दुःख नहीं आता।

निरालंब की स्थिति प्राप्त करने की जल्दबाज़ी हो तो सभी में 'मैं' 'मैं' देखते-देखते चलना चाहिए। 'मैं ही' 'मैं ही' ज़ुबान पर, मन में और चित्त में रखना चाहिए।

हमें अपने आपको टटोलना है कि हम कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार से अवलंबित हैं? अंत में वहाँ से आत्मा की निरालंब दशा तक जाना है।

चाहे कैसी भी मुश्किलें आएँ, उस समय 'दादा दादा' करें या फिर दादा का निदिध्यासन करें तो भी बेड़ा पार हो जाएगा।

शुद्धात्मा शब्द का आधार बीच में नहीं छोड़ा जा सकता। वह कब छूटेगा? सभी फाइलें पूरी हो जाएँगी, तब।

महावीर भगवान जैसे शुद्धात्मा थे, वैसे ही हम शुद्धात्मा हैं।

दादाश्री कहते हैं कि निरालंब तो सिर्फ हम अकेले ही हैं। चौदहवें

गुणस्थानक का अर्थ क्या है? देह सहित निरपेक्ष। तब तक सापेक्ष का आधार है। यानी कि गाड़ी प्लेटफॉर्म पर खड़ी रह गई, बिस्तर बाहर निकाल दिए और खुद गाड़ी में है। बिस्तर रह जाएँ तो भी हर्ज नहीं है।

शुद्धात्मा का अवलंबन किसे हैं? प्रज्ञा को।

निरालंब होने का अर्थ ही है केवलज्ञान होते जाना। निरालंब और निरावरण दोनों साथ-साथ होता जाता है। एक-दो जन्मों में निरालंब हो जाएँगे।

दादाश्री को किसका अवलंबन था? लोगों का। क्यों? सभी को मोक्ष की प्राप्ति करवानी है बस उतना ही। बाकी खुद मालिक नहीं रहे थे देह के, मन के या वाणी के।

केवल ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद, वही परम ज्योति है। स्वभाव में निरालंब दशा है। विशेष भाव में अवलंबन हैं सारे। वह अवलंबन वाला (दादा का बावा) यदि रौब जमाने लगे तो दादाश्री कहते थे कि ''हम तुरंत ही उसके अवलंबन में से छूट कर निरालंब हो जाते हैं और उसे कह देते हैं कि 'बस, बहुत हो गया, आइ डोन्ट वोन्ट'। ऐसा करके उसका आधार हटा लेते थे।''

दादाश्री कहते हैं कि मेरे कितने ही अवतारों के फल स्वरूप यह निरालंब दशा प्राप्त हुई है। यदि खुद निश्चय करके इसके पीछे पड़ जाए तो हो सकता है। पहले स्थूल में फिर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम में निरालंब होते हैं।

निरालंब दशा प्राप्त करने के लिए कैसा रहता है कि जो मिल जाए वही खाए, जो मिलें वही कपड़े पहने, जो मिलें उन चीज़ों का उपयोग करे, तब काम होता है। अगर सत्संग में जाने का कोई साधन मिले तो ठीक और न मिले तो चलते हुए भी चले जाएँ।

दादाश्री कहते हैं कि हमें तो यह सत्संग भी बोझा लगता है लेकिन अभी आपके लिए काम का है फिर भी ध्येय ऐसा रखना चाहिए कि अंत में अन्य किसी सत्संग की ज़रूरत न रहे। खुद खुद के ही सत्संग में रहना है।

अवलंबन को देशी भाषा में *ओलंबा* (भूलंब, साहुल) कहते हैं। आधार पर लोड पड़ता है, जबकि अवलंबन पर नहीं पड़ता। दीवार बनाने से पहले *ओलंबा* रखना पड़ता है तभी वह सीधी बनती है न? अवलंबन से रेग्यूलर हो जाता है सभी कुछ। उसी प्रकार इस शुद्धात्मा के *ओलंबे* से आत्मा एक्युरेट रहता है। पूर्ण दशा हो जाने के बाद निरालंब दशा को 'शुद्धात्मा' के *ओलंबे* की ज़रूरत नहीं रहती!

जब आधार हटा लिया जाए तो वह तुरंत निराधार हो जाता है। निरालंब होने में देर लगती है। 'मैंने किया' इस भाव से आधार मिलता है और 'व्यवस्थित' ने किया, 'मैंने नहीं', तो आधार चला गया और हो गया निराधार। आत्मा के लिए कोई आधार-आधारी संबंध नहीं है।

कर्ताभाव से कर्म को आधार मिलता है और उससे प्रकृति बनती है और एक-एक आधार को पकड़ते हुए संसार खड़ा हो जाता है! ज्ञानी की आज्ञा में रहने से अकर्म दशा आती है।

भेदज्ञान के अवलंबन से शुद्धात्मा पद मिलता है। भेदज्ञान ज्ञानी के अवलंबन से मिलता है। निरालंब पद ज्ञानी की आज्ञा में रहने से मिलता है।

यहाँ पर स्वरूप का आधार है इसीलिए इन सभी में कहीं भी लोड नहीं है और दूसरा है अहंकार का आधार जो सामान्य लोगों को रहता है।

संसार अज्ञान की वजह से है। अज्ञान ही माया है, स्वरूप की अज्ञानता। अज्ञान को फिर मिलता है अहम् का सहारा! वह सहारा चला जाए तो मुक्त हो सकता है।

रिलेटिव मात्र आधार-आधारी संबंध वाला है। देह पित्त, वायु, कफ और शरीर के अंग-उपांग आधार-आधारी वाले हैं।

निरालंब की राह पर किस तरह जा सकते हैं? आलंबन कम करते-करते जाना है। आलंबन की ज़रूरत क्यों महसूस हुई। आलंबन की ही भक्ति की इसलिए। *पुद्गल* की ही भक्ति की। *हूँफ* (सहारा, सलामती, सुरक्षा, रक्षण) की वजह से पौद्गलिक इच्छाएँ हुई और इच्छाएँ

पूरी हो जाने पर *हूँफ* चली जाती है। इसमें से छूटा कैसे जाए? जब लिए हुए अवलंबन कड़वे ज़हर जैसे लगने लगेंगे तब। ज्ञान जागृति हो तो अवलंबन नहीं रहता लेकिन उतनी जागृति लाए कहाँ से? अवलंबन का कारण इच्छा है। जब तक मीठा लगे तब तक अवलंबन छूटेगा ही नहीं। ज्ञानी को भी सभी संयोग मिलते हैं लेकिन उन्हें उनकी ज़रूरत ही नहीं होती। वे उनका *निकाल* कर देते हैं।

कड़वे-मीठे संयोगों में से निकलें कैसे? उसके ज्ञाता-दृष्टा रहेंगे तो।

दादाश्री के सिवा कोई भी महात्मा निरालंब नहीं हुआ है इसलिए आज्ञा में रहकर आगे बढ़ना है।

जीवमात्र *हूँफ* ढूँढता है, वही अवलंबन है। *हूँफ* के बिना घबराहट होती है उसे। इसलिए दर्पण के पास जाकर खुद ही थप-थपाकर कहना कि 'हम हैं न! क्यों डरते हो!' इतना करने से किसी की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

हूँफ कैसी चीज़ है? स्त्री को पति के बिना अकेले नींद नहीं आती। फिर भले ही पति सो चुका हो! *हूँफ* रहित जीवन, वही मोक्ष है। *हूँफ* से परवशता रहती है।

क्या पति-पत्नी के बीच में कहीं प्रेम है? आसक्ति है! *हूँफ* के आधार पर। यह कप-प्लेट साथ में सो रहे हों तो क्या उनके बीच प्रेम है?

ज्ञानी की *हूँफ* रखेंगे तभी निरालंब हो सकेंगे।

दादाजी ने महात्माओं को सभी से छुड़वा दिया। अब जो *हूँफ* बची, वह डिस्चार्ज *हूँफ* है।

ज्ञानी का आधार कब तक रखना है? निरालंब होने तक। जैसे कि बच्चों को उठाकर समुद्र में रखना पड़ता है लेकिन जैसे ही उसके पैर रेती तक पहुँचे कि उसे तुरंत छोड़ देते हैं! अत: तब तक ज्ञानी के पीछे-पीछे घूमते रहना है!

महात्माओं का चीज़ों का अवलंबन छूट जाता है लेकिन व्यक्तियों

का अवलंबन रहता है। इसके लिए दादाश्री बहुत सुंदर, स्पष्ट रूप से समझाते हैं कि व्यक्तियों के साथ ऋणानुबंध की वजह से थोड़ा कॉम्प्लेक्स हो जाता है लेकिन वह भी धीरे-धीरे अपने आप छूट जाएगा। दादाश्री खुद के बारे में भी एक अच्छी बात बताते हैं कि 'व्यवहार में तो हमें भी नीरू बहन का अवलंबन हैं, औरों के भी हैं लेकिन यदि निश्चय अवलंबन खड़ा हो जाए यानी कि जिसकी वजह से अंदर अड़चन आए तब अवलंबन से आगे चले जाते हैं। बाकी के लोग अवलंबन का सब्स्टिट्यूट ढूँढते हैं। ज्ञानी को वैसा नहीं होता है।

महात्माओं के लिए तो एक ही शॉर्ट कट है। सभी अवलंबनों को छोड़कर सिर्फ दादाश्री का अवलंबन पकड़ लेना ही सब से बड़ा उपाय है और वास्तव में यह अवलंबन कोई अवलंबन नहीं है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार का रिएक्शन नहीं है।

दादाश्री ने महात्माओं को मन पर बोझ रखने के लिए मना किया है। बोझा कैसा? निरालंब पद नहीं है उसका! वह तो अपने आप सामने आएगा। मोक्ष के दरवाज़े में प्रविष्ट होने के बाद अब वापस जा सकें, वैसा तो रहा ही नहीं, आगे ही बढ़ना है। तो उस छोर पर मोक्ष ही है न!

दादाश्री कहते हैं कि 'हम थ्योरी नहीं लेकिन थ्योरम ऑफ एब्सॉल्यूटिज़म में हैं। थ्योरम अर्थात् अनुभव में हैं। एब्सल्यूट अर्थात् मूल आत्मा, निरालंब आत्मा!'

महाविदेह क्षेत्र में हमेशा ही तीर्थंकर होते हैं! बोलो, ब्रह्मांड तो निरंतर पवित्र ही हैं न! हमने वहाँ पर पहुँचकर दादाश्री के अक्रम ज्ञान का वीज़ा दिखाया कि मोक्ष में एन्ट्री!

दादाश्री कहते हैं कि 'मैंने आपको सभी कुछ दे दिया है, मेरे जितना ही। लेकिन आपकी फाइलें आपको बाधक हैं'।

एब्सल्यूट स्थिति का मतलब क्या है? पर-समय बंद हो गया। समय अर्थात् काल की छोटे से छोटी यूनिट।

कोई भी चीज़ टच न हो, ऐसा अपना आत्मा हैं यानी कि 'हम'

हैं ही ऐसे! फाँसी का भी असर नहीं होता और चारों तरफ बम फूट रहे हों तब भी असर नहीं होता।

गजसुकुमार के सिर पर सिगड़ी जलाई तो भी उन पर वेदना का असर नहीं हुआ और केवलज्ञान हो गया!

भगवान ने गजसुकुमार को समझाया था कि ''बहुत बड़ा उपसर्ग आ पड़े तब 'शुद्धात्मा, शुद्धात्मा' मत करना। शुद्धात्मा तो स्थूल स्वरूप है, शब्द स्वरूप है। तब सूक्ष्म में चले जाना। केवलज्ञान स्वरूप में!'' वह कैसा स्वरूप है? केवलज्ञान आकाश जैसा सूक्ष्म है जबकि अग्नि स्थूल है। स्थूल सूक्ष्म को जला सकता है क्या?

'केवलज्ञान स्वरूप कैसा दिखाई देता है?' 'पूरे शरीर में आकाश जितना ही भाग दिखाई देता है, और कुछ भी नहीं दिखाई देता। कोई मूर्त स्वरूप है ही नहीं उसमें।' आकाश अमूर्त है, सूक्ष्म है! इस स्वरूप का अनुभव गजसुकुमार को रहा और वे मोक्ष में गए!

महात्माओं की वह दशा कब आएगी? उसके आए बिना चारा नहीं है। तीर्थंकर के दर्शन होते ही वैसा हो जाएगा। तीर्थंकर की स्थिरता, उनका प्रेम देखते ही वैसा हो जाएगा।

महात्माओं का अब ऐसा निश्चय हो गया है कि 'अब *पुद्गल* के अवलंबन चाहिए ही नहीं'। इसलिए निरालंब होने लगे हैं। जो *पुद्गल* का अवलंबन लेते ही नहीं, वे परमात्मा और जो *पुद्गल* के आधार पर जीवित हैं, वे जीवात्मा।

दादाश्री कहते हैं, 'तीर्थंकरों ने ज्ञान में जो आत्मा देखा है वह सब से अंतिम है और वह हमने देखा है, जाना है। वह निर्भय और वीतराग रखता है'। दादाश्री कहते हैं, 'लेकिन मैं तो फेल हो चुका तीर्थंकर हूँ, चार मार्क से!'

ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं। एक शुद्धात्मा स्वरूप के शब्दावलंबन वाले और दूसरे निरालंब दशा वाले। दादाश्री निरालंब दशा में थे। इस काल का ग्यारहवाँ आश्चर्य! दादाश्री को कोई इच्छा थी ही नहीं, इसलिए उनके लिए हर एक चीज़ अपने आप हाज़िर हो जाती थी। दादाश्री की

उपस्थिति ही जगत् का कल्याण करती है। जिस प्रकार बर्फ की सिल्ली की उपस्थिति हमें अंधेरे में भी ठंडक देती है न!

केवलज्ञान, एब्सल्यूट ज्ञान, निरालंब दशा ऐसी है कि जहाँ पर राग-द्वेष नहीं हैं, अवलंबन नहीं है, शब्द भी नहीं हैं, कुछ भी नहीं है। निरा आनंद का ही कंद है। वहाँ पर सिर्फ केवलज्ञान ही है। कोई अवलंबन नहीं है, ऐसा उपयोग।

महात्माओं को दादाश्री ने ज्ञान का अवलंबन दिया है, पाँच आज्ञा का अवलंबन, जो निरालंब बनाएगा। मूल आत्मा प्राप्त करवाएगा। मूल आत्मा विज्ञान स्वरूप है!

[7] अंतिम विज्ञान - मैं, बावा और मंगलदास

परम पूज्य दादाश्री ने आत्मविज्ञान की अंतिम (उच्चतम) बात 'मैं, बावा और मंगलदास' का उदाहरण देकर बहुत गहराई से समझाई है और इससे तत्त्व से संबंधित, कर्ता से संबंधित तमाम उलझनों का एक्ज़ेक्ट स्पष्टीकरण मिल जाता है। ऐसा स्पष्टीकरण किसी भी शास्त्र में या किसी भी ज्ञानी से नहीं मिल सकता।

आत्मज्ञान होने के बाद महात्माओं को कदम-कदम पर ये उलझनें पैदा होती हैं कि ''मुझे तो सौ प्रतिशत आत्मा में और ज्ञान में ही रहना है, अकर्ता पद में ही रहना है। फिर भी ऐसी गलती हो जाती है कि कुछ अच्छा हो जाए तो ऐसा रहता है कि 'मैंने किया' और बिगड़ जाए तो 'किसी और ने किया।'' 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ', उसे तो ऐसा होगा ही नहीं न। तो ऐसा किसे होता है? तन्मयाकार कौन हो जाता है? मन-वचन-काया तो मिकेनिकल हैं, ऐसा भी अनुभव होता है, तो यह किसके इशारे पर उल्टा काम करता है? आत्मा तो ऐसा करवाता ही नहीं, कुछ भी नहीं करवाता। यह रहस्य समझ में नहीं आने के कारण प्रगति रुक जाती है और अंदर भयंकर फस्ट्रेशन आ जाता है। 'शुद्धात्मा और यह मिकेनिकल काम करने वाले मन-वचन-काया के बीच में कोई फोर्स है, वह क्या है? वह किस तरह काम करता है? उसका स्वरूप क्या है?', ऐसे तमाम प्रश्न उत्पन्न होते थे। उनका एक्ज़ेक्ट विवरण मिल जाता है दादाश्री के इस गुह्यतम ज्ञान से, 'मैं, बावा और मंगलदास'। अब यह क्या है?

अपने यहाँ गाँव में कहावत है कि 'मैं, बावा और मंगलदास' यानी कि कोई व्यक्ति अगर अकेला बहुत सारे काम संभाल रहा हो और हम उसे पूछें कि 'आप तो बहुत सारे काम करते हैं! कौन-कौन आपकी मदद करता है? तब वे कहते हैं, 'भाई, यहाँ पर तो कोई भूत भी मदद नहीं करता। यहाँ तो मैं ही हूँ, मैं ही बावा और मैं ही मंगलदास! सभी में मैं ही हूँ!' इसकी विशेष स्पष्टता करते हुए दादाश्री उदाहरण देते हैं कि ''आधी रात को कोई दरवाज़ा खटखटाए और हम पूछें कि कौन है? तो वह क्या कहता है कि 'मैं', लेकिन भाई मैं कौन? तो कहता है, 'मैं बावा'! अरे भाई, बावा लेकिन कौन सा बावा? तो वह कहता है, 'मैं, बावा, मंगलदास'। तभी पता चलता है कि कौन है।'' अब इसमें है तो वह एक ही व्यक्ति लेकिन तीन बार खुद का परिचय अलग-अलग तरह से देता है यानी कि उसकी पहचान बदलती रहती है।

अब इसमें आत्मा कहाँ पर आएगा?

मैं अर्थात् शुद्धात्मा, मूल परमात्मा, 360 डिग्री वाले! बावा वह बीच का अंतरात्मा है और जो मंगलदास है, वह चंदूभाई है! शरीर का जो मिकेनिकल भाग है वह, जिसे डॉक्टर चीरकर देख सकते हैं, वह स्थूल शरीर और उस शरीर के अवयव जो कि माइक्रोस्कोप से देखे जा सकते हैं, वे सभी मंगलदास में आता है। शरीर में फिज़िकल भाग है, जिसका *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना) होता है, वह सभी मंगलदास में आता है।

अब बावा का मतलब क्या है? कभी वह कहता है 'मैं चंदूभाई और कुछ देर बाद कहता है, मैं इस बच्चे का पापा हूँ, इसका पति हूँ, इसका ससुर हूँ, इसका बॉस हूँ!' 'अरे भाई, आप एक ही हो और इतने सब अलग-अलग नाम कैसे कह रहे हो? कोई एक कहो न!' तब वह कहता है, 'नहीं, वह सब मैं ही हूँ', सही है न? रियल में?' तो वह कहता है, 'हाँ, रियल में'। यह जो बदलता है, वह बावा है।

जब तक 'मैं' नाम से पहचाना जाता है तब तक वह मंगलदास है, लेकिन क्रिया के अधीन वह बावा कहलाया। वास्तव में मूलतः तो 'मैं' ही है। 'मैं' कोई गलत नहीं है लेकिन इस 'मैं' का अन्य जगह पर

उपयोग हुआ, वह गलत है। बावा बार-बार बदलता ही रहता है, नाम वही का वही रहता है। बावा विशेषण वाला है। मैं क्लर्क, मैं कलेक्टर, मैं कमिश्नर जो इस तरह बदलता रहता है, वह बावा है। पिछले डिस्चार्ज और नए चार्ज, इस प्रकार चार्ज-डिस्चार्ज करता है, वह बावा है।

दादाश्री खुद का परिचय देते हुए कहते हैं कि 'यह शरीर अंबालाल है। इसमें बावा कौन है? ये जो ज्ञानी हैं, वे। और मैं कौन? आत्मा। अत: ये ज्ञानी बावा ही कहलाएँगे न! और फिर हैं तो तीनों एक ही'। मैं आत्मा, डिज़ाइन वह मंगलदास है और उसके कामकाज, वह बावा! जो कर्तापना के भाव से काम करता है, वह बावा है।

जो संसार की खटपट करता है, वह बावा है। जो मोक्ष की खटपट करता है, वह भी बावा है। यह बावा ही सभी खेल करवाता है।

जैसा चिंतवन करता है, बावा वैसा ही बन जाता है। 'मुझे रोमान्स ही करना है' तो बावा वैसा बन जाता है। 'मुझे ब्रह्मचर्य का पालन ही करना है' तो बावा ब्रह्मचारी बन जाता है यदि ऐसा चिंतवन करे कि 'मुझे मोक्ष में ही जाना हैं' तो वैसा बन जाता है। तय करने की ज़रूरत है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', बावा ऐसा चिंतवन करे तो बावा शुद्धात्मा बन जाता है।

मंगलदास मंगली के साथ शादी करता है और संसार बढ़ता है।

'मैं स्त्री हूँ' वह बावा है, 'मैं पुरुष हूँ' वह भी बावा है। बूढ़ा, बच्चा, सभी बावा हैं। पति-पत्नी रात को झगड़ते हैं और मन में तय करते हैं कि 'इसे सीधा करके ही छोड़ूँगा'। वह भी बावा है! बावा क्या-क्या करता है?

जो कषायी है, वह भी बावा है और जो संयमी है, वह भी बावा है। जिसके विशेषण बदलते रहते हैं, वह बावा है और नाम हमेशा के लिए रहता है, वह है मंगलदास।

मन दो प्रकार के हैं, एक भावमन और दूसरा द्रव्यमन। द्रव्यमन अर्थात् जो विचार आते हैं, उन्हें बावा देख सकता है अत: वह मन बावा का नहीं है परंतु मंगलदास का है और भावमन जो कि सूक्ष्म है, उसे बावा देख नहीं सकता, वह बावा का मन है। जो भाव है, वही बावा है।

मन में विचार आते हैं, उनमें यदि बावा तन्मयाकार हो जाए तो वह बन जाता है मंगलदास! और अगला जन्म खड़ा किया और मन साफ नहीं हुआ। अलग रहकर उसे देखते रहें तो उतना ही मुक्त होगा! वास्तव में आत्मा कभी भी मन में, बुद्धि में, चित्त में या अहंकार में तन्मयाकार होता ही नहीं है। जो तन्मयाकार होता है, वह बावा है।

'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है, उससे भावमन शुरू हो जाता है। 'मैं अकर्ता हूँ', यदि ऐसा हो जाए तो भावमन बंद।

अर्थात् यह स्थूल मन मंगलदास में आता है और सूक्ष्म मन बावा में आता है।

स्थूल मन को देखने वाला बावा है और बावा को देखने वाली प्रज्ञाशक्ति है। मंगलदास जो करता है, उसे बावा जानता है और जो इन सब को देखता और जानता है, वास्तव में वह आत्मा ही आत्म दृष्टि से देखता और जानता है।

जब तक प्रज्ञा है तब तक बावा है। प्रज्ञा बावा को भी देखती और जानती है।

बावा खुद को कर्ता मानता था इसलिए कर्मबंधन होता ही रहता था। अब ऐसी मान्यता नहीं रही कि 'मैं बावा हूँ' और मानता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' इसलिए अकर्ता हो गया, इसीलिए कर्म नहीं बंधते।

तीर्थंकर भी नामकर्म है, वह चेतन नहीं है। जो इस सर्कल (सांसारिक अवस्थाओं) से बाहर खड़ा है, वह चेतन है। 'सर्कल' में कहीं भी अगर मेरापन नहीं रहे तो वह प्योर चेतन है। *पुद्गल* की सभी अवस्थाओं को दादाश्री ने 'सर्कल' कहा है। दादाश्री कहते हैं कि यह आपसे जो बातें कर रहा है, वह बावा है, सुनने वाला भी बावा है। जब बावा को ऐसा पता चलता है कि हम सर्कल से बाहर आ गए हैं, तब ऐसा कहा जाता है कि समकित हो गया।

मूल जानने वाला आत्मा है लेकिन बावा रोंग बिलीफ से मानता है कि 'मैं जान रहा हूँ'। 'मैं कर रहा हूँ और मैं जान रहा हूँ।' दोनों का मिक्स्चर है, वह बावा है और 'मैं जान रहा हूँ' 'मैं कर्ता नहीं हूँ' तो

वह शुद्धात्मा है। शुद्धात्मा तो बावा और मंगलदास को ही नहीं बल्कि उनके अंदर के सभी भागों को जानता है।

बावा जो देखता है वह शुद्धात्मा की वजह से ही देख पाता है। खुद स्वयं ज्ञाता-दृष्टा नहीं है।

बावा को खत्म करने के लिए क्या करना चाहिए? यदि बावा के पक्ष में नहीं बैठेंगे तो उसका वंश बढ़ेगा ही नहीं। किसी के अपमान करने पर यदि खुद का रक्षण न करे तो बावा खत्म।

मोक्ष में किसे जाना है? जो बंधा हुआ है, उसे। जिसे दुःख होता है उसे यानी कि अहंकार को। उसी को मुक्त होना है।

ज्ञानीपुरुष अर्थात् ए.एम.पटेल? ए.एम.पटेल तो मंगलदास है। ज्ञानीपुरुष तो जो 'आइ' (मैं) डेवेलप होते-होते 'आइ (मैं) रहित' तक डेवेलप हो चुका है, वह है। वही अहम् है। गलत अहम् चला जाए तो वह ज्ञानी बन जाता है। वास्तव में तो दो ही हैं। एक वह जो मोक्ष ढूँढ रहा था (बावा) और दूसरे भगवान, जो मोक्ष स्वरूप ही हैं।

मूल आत्मा तो परमात्मा ही हैं लेकिन इस समसरण मार्ग में व्यवहार में आत्मा डेवेलप होते-होते भगवान महावीर जैसा बन जाता है! देखो न, यह *पुद्गल* भी भगवान बन गया!

दादाश्री खुद अपने आपके लिए कहते हैं कि, 'हमारा *पुद्गल* अभी भी भगवान जैसा नहीं हुआ है। कुछ भूल रह जाती है। अभी भी सभी को मोक्ष में ले जाने के प्रयत्न होते हैं और कभी किसी को भारी शब्द भी कह देते हैं। भगवान के क्या कहीं ऐसे लक्षण होते हैं? इतना ज़रूर है कि हमारी भूलों का हमें तुरंत पता चल जाता हैं! हाँ, किसी के लिए एक बाल जितना भी विरोध नहीं रहता'।

यदि मंगलदास का रक्षण करे तो समझ जाना है कि यह बावा का बावा ही रहेगा। हमें 'देखते' ही रहना है उसे।

जब खुद को निजदोष दिखाई देंगे तभी से बावा खत्म होने लगेगा और भगवान बनने लगेगा!

हम से सामने वाले के प्रति भूल हो जाए तो उसे हमें वापस पलट

देना चाहिए। फिर भी अगर सामने वाला अपने आप ही उलझन में पड़े तो वह अपनी ज़िम्मेदारी नहीं है। अपनी वजह से उलझन में पड़े तो अपनी जोखिमदारी है। जब तक बावा है तब तक भूल होने की संभावना है। शुद्धात्मा में रहेंगे तभी सब भूलें दिखाई देंगी लेकिन वापस से बावा बन जाते हैं न!

पोतापणुं कौन रखवाता है? अज्ञान। शुद्धात्मा होने के बाद भी अभी तक पक्ष चंदूभाई का रखना है, वह बावा है।

चरणविधि कौन करता है? जिसे बंधन में से छूटना है वह, अर्थात् अहंकार। अहंकार ही प्रतिष्ठित आत्मा है।

एक व्यक्ति ने दादाश्री से कहा कि 'आप ऐसे आशीर्वाद दीजिए कि हम (बावा) और ज़्यादा ज्ञाता-दृष्टा पद में रह सकें'। तब दादाश्री ने उसे डाँट दिया, 'अरे, कहीं ऐसे आशीर्वाद होते होंगे? कि आप कुछ ऐसा कर दीजिए कि हम सो रहे हो तो खाना मुँह में आ जाए। ऐसी गलत बातें करके टाइम मत बिगाड़ो। सूक्ष्म बात हो तो करो'।

कषाय भी बावा को होते हैं, शुद्धात्मा को नहीं। बावा जब चिढ़ने लगे तो हमें उसे डाँट लेने देना है। फिर बाद में धीरे से कहना कि, 'भाई, ऐसा क्यों कर रहे हो? इससे क्या फायदा?' ऐसा कहने से एक तो वह नरम पड़ जाएगा और दूसरा हम ज्ञान में रहेंगे तो उससे शक्ति बढ़ेगी। अगर हम बावा को डाँटेंगे तो वह ऐसा है कि विरोध करेगा।

मंगलदास बाहर का स्वरूप है, बावा अंदर का स्वरूप है और मैं शुद्धात्मा! यदि इतना सा ही समझ जाएँ तो तमाम शास्त्रों का सार आ गया!

बावा ही अक्षर पुरुषोतम कहलाता है। मूल पुरुषोतम नहीं। मूल पुरुषोतम तो पूर्ण स्वरूप में ही (रहते) हैं!

क्षर, चंदूभाई है और जो अक्षर है, वह बावा, किसी एक पोइन्ट् से लेकर दूसरे पोइन्ट तक और मैं 'पूर्ण स्वरूप' है।

जब योजना गढ़ता है तब ब्रह्म में से बन जाता है ब्रह्मा और जब उसे अमल में लाता है तब हो जाता है भ्रमित। 'मैं हूँ चंदू, इसका पति...'

ऐसा कहता रहता है तो वह भ्रमित नहीं तो और क्या है? वही 'मैं' है, वही बावा और वही मंगलदास है।

पर्सनल, इमपर्सनल और एब्सल्यूट का मतलब क्या है? मंगलदास पर्सनल, बावा इम्पर्सनल और मैं एब्सल्यूट।

शुद्धात्मा और चंदूभाई के बीच में है इम्पयोर सोल (बावा)। यह इम्प्योर सोल मात्र बिलीफ ही है। वह खत्म हो जाए तो फिज़िकल (मंगलदास) की कोई ज़िम्मेदारी नहीं रहती।

इम्प्योर सोल ने चंदूभाई नाम को पकड़ लिया है कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ' उससे रोंग बिलीफ बैठ गई। 'मैं चंदूभाई हूँ', वह फर्स्ट रोंग बिलीफ है। खुद कहता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ' वही अहंकार है। ज्ञान मिलने पर अंहकार फ्रेक्चर हो जाता है और राइट बिलीफ बैठ जाती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

अब 'आप' शुद्धात्मा हो और 'आपको' अब (बावा का) मिश्रचेतन का *निकाल* करना है और निश्चेतन चेतन (मंगलदास) अपने आप ही सहज भाव से चलता रहेगा।

दादाश्री कहते हैं, 'हम व्यवहार में लघुतम और निश्चय में गुरुतम हैं!' ''हम और भगवान एकाकार हैं और जुदा भी हैं।' केवलज्ञान होने पर एकाकार हो जाता है। जब हम दर्शन करवाते हैं, 'दादा भगवान ना असीम जय जयकार हो', उस घड़ी भगवान की तरह रहते हैं। उससे सभी उल्लास में आ जाते हैं न! और जब बातें करते हैं, सत्संग करते हैं, तब भगवान से जुदा! अभी जुदा हैं। हालांकि यह जो बोल रहा है, वह टेपरिकॉर्डर बोल रहा है न! मैं उसका ज्ञाता-दृष्टा हूँ।''

प्रश्नकर्ता दादाश्री से पूछते हैं कि ''हम' भगवान के साथ एकाकार हैं? तो तब, 'हम उनसे जुदा हैं' तो इसमें 'हम' कौन है?' तब दादाश्री कहते हैं, '356 डिग्री वाला जो भाग है वह ज्ञानीपुरुष है, अंबालाल भाई जो ज्ञानी हो चुके हैं। वही मैं, वही बावा और वही मंगलदास है'।

जो मठिया खाता है, वह मंगलदास है। जो स्वाद वेदता है वह बावा है और जो जानता है वह आत्मा है। मज़ा करने वाला बावा और उसे जानते हो 'आप'।

आप चंदूभाई, सुन रहे हैं, अंबालाल बोल रहे हैं, ज्ञानी भोग रहे हैं और 'हम' जानते हैं।

जो खाता है, वह 'आप' नहीं हो, हाथ खिलाता है। दांत चबाते हैं, अंदर बावा जी वेदता है। कड़वे-मीठे को वेदने वाला बावा जी और जानने वाला 'मैं खुद'। ज्ञानी को भी, जब तक बावा है तभी तक वेदकता है। मूल पुरुष तो वह है जो केवलज्ञान स्वरूप को जानता है।

जो स्थूल है, वह मंगलदास है, उसके बाद जो सूक्ष्म भाग और कारण भाग रहा, वे दोनों बावा के हैं और 'मैं' शुद्धात्मा है। इतने में पूरा अक्रम विज्ञान आ गया! अब बावा का *निकाल* करना है समभाव से।

ज्ञान मिलने के बाद शुद्धात्मा के तौर पर जुदा हो गए अब जैसे-जैसे गर्वरस चखना बंद होता जाएगा वैसे-वैसे मार्क्स बढ़ेंगे। गर्वरस से मार्क्स कम हो जाते हैं क्योंकि उल्टी करने की चीज़ को खा गए!

बावा का स्टेशन बहुत लंबा है लेकिन है एक ही स्टेशन। इस प्रकार तीन ही स्टेशन हैं, मैं, बावा और मंगलदास लेकिन फाटक को छुआ कि हो गया 'खुद' पूर्ण भगवान।

स्त्रियों में मोह अधिक होता है, वह मोह बावा का है उसे 'हमें' जानना है कि इतना मोह है और ज्ञानी को बता देना।

दादाश्री कहते हैं, 'हमारा भी बावा है न!' जब तक चार डिग्री की कमी है तब तक 'मैं' शुद्ध नहीं होगा इसलिए ऐसा कहना पड़ता है कि 'मैं भगवान से जुदा हूँ'। 'मैं भगवान हूँ', ऐसा नहीं कह सकते। स्त्रियों का बावीपना नहीं छूटता। उसके लिए स्त्रियों को बावीपना नहीं होने देना चाहिए। बावी को बावा पद में ही रखना चाहिए, नहीं तो वापस स्त्रीपना आ जाएगा। स्त्री बावा तब खत्म हो जाएगा।

अपने बावा से हमें कह देना है कि 'जीवन इतना सुंदर जीओ, अगरबत्ती जैसा ताकि खुद जलकर दूसरों को सुख दो! नहीं तो ज़िंदगी बेकार ही गई समझो'।

दादाश्री का आत्मज्ञान मिलने के बाद और कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। आत्मा तो शुद्ध ही है। जैसे-जैसे बावा जी शुद्ध होते जाएँगे

वैसे-वैसे विज्ञान प्रकट होता जाएगा। जब तक ऐसा सब बोलता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं विज्ञान स्वरूप हूँ' तब तक खुद ज्ञान स्वरूप कहलाता हैं। जब 'खुद' पूर्ण विज्ञान स्वरूप हो जाएगा उसके बाद फिर बोलना नहीं पड़ेगा। जब तक बावा है तभी तक ज्ञान स्वरूप और बावा खत्म हो जाएगा तब विज्ञान स्वरूप।

बावा बढ़ता जाता है लेकिन 'मैं' वैसे का वैसा ही रहता है। 99 तक 'मैं' ज्ञान स्वरूप है और 100 हुआ कि विज्ञान स्वरूप हो गया।

'मैं' बावा के रूप में ज्ञान स्वरूप हूँ और रियली 'मैं' विज्ञान स्वरूप हूँ।

ज्ञान मिलने के बाद रिलेटिव यानी कि 'मंगलदास हूँ', वह छूट गया। उसके बाद उसका स्वरूप बावा स्वरूप हो गया। अब जैसे-जैसे फाइलों का समभाव से *निकाल* होता जाएगा, वैसे-वैसे बावा विलीन होता जाएगा।

356 डिग्री पर बावा है, 357, 358, 359 तक बावा है और 360 डिग्री हुआ कि 'मैं' हो जाएगा! 'मैं' तो शुद्धात्मा है ही लेकिन बावा भी शुद्ध 'मैं' हो गया।

रियल में शुद्धात्मा तो सभी का 360 डिग्री का है लेकिन यह बावा अलग-अलग डिग्री का होता है और अहंकार ही बावा को आगे नहीं बढ़ने देता। इसमें, 'मैं कुछ हूँ', वह भारी जोखिम बन जाता है। दादाश्री कहते हैं कि 'हम ज्ञानी हैं, भगवान नहीं हैं। 360 डिग्री तक पहुँच जाएँगे तो भगवान हैं। 359 तक ज्ञानी हैं। अभी हम 356 डिग्री पर हैं'। दादाश्री के देह विलय के एकाध सप्ताह पहले उन्होंने कहा था, 'इस ए.एम.पटेल की मीठे और मिरची की रुचि और स्वाद गया। अब हमारी दो डिग्री आगे बढ़ीं। 359 डिग्री हो गई'।

345 डिग्री से आगे पहुँचने के बाद ज्ञानी पद कहलाता है, 345 से 359 तक ज्ञानी बावा में ही आता है!

355 डिग्री से 360 डिग्री तक सभी भगवान ही कहलाते हैं। तीर्थंकरों में अंदर और बाहर दोनों जगह 360 डिग्री होती हैं।

बावा 345 डिग्री तक पहुँच जाए तब भी मंगलदास में बदलाव नहीं दिखाई देता क्योंकि प्रकृति तो स्वाभाविक रूप से काम करती ही है। हाँ, बावा में बहुत बदलाव हो जाता है।

बावा का खुद का इफेक्ट ज्ञान से भोग लिया जाता है इसलिए बावा 'मैं' में आता जाता है। 'मैं' बावा को रियालिटी समझाता है, उस आधार पर बावा 'मैं' में आता जाता है। प्रज्ञा के रूप में 'मैं' बावा को समझाता है।

बावा आगे बढ़ता जाता है, वह प्रज्ञा की हाज़िरी के कारण है। जागृति डाउन हो जाए तो बावा नीचे जाने लगता है।

बावा का असर मंगलदास पर नहीं पड़ता और मंगलदास का असर बावा पर नहीं पड़ता। बावा की लाख इच्छा हो कि मंगलदास में बदलाव हो जाए लेकिन वह नहीं हो सकता।

मंगलदास की प्रकृति बनाने में बावा ही कारणभूत है। प्रकृति प्रकृति को नहीं बनाती। बावा ने पूर्वजन्म में प्रकृति बनाई है। उसमें से कुछ भाग प्रकृति में आ गया और बाकी का बावा के पास रह गया। जो चेन्ज नहीं होता, वह प्रकृति है और जो चेन्जेबल है, वह बावा है।

क्या बावा का ज्ञान चेन्जेबल है? हाँ, ज्ञान हमेशा चेन्जेबल होता है। अज्ञान भी चेन्जेबल होता है।

मंगलदास का जन्म हुआ तब सपोज़ (मान लो कि) 202 डिग्री तक का था। वह तो वही का वही रहता है आखिर तक लेकिन ज्ञान मिलने के बाद बावा अलग हो जाता है (303 डिग्री) इसलिए उसकी डिग्रियाँ, आज्ञा में रहने से, जागृति में रहने से 303 डिग्री से आगे बढ़ने लगती हैं तो आखिर में जब वह 360 डिग्री हो जाती है तब बावा का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। वह केवलज्ञान स्वरूप हो जाता है। बावा का जन्म ज्ञान मिलने के बाद होता है। तब तक 'मैं' और मंगलदास और बावा सभी कुछ एक ही रहता है।

अत: श्रद्धा में 360 डिग्री है लेकिन वर्तन में 303 डिग्री है। श्रद्धा में 'मैं शुद्धात्मा हूँ' है लेकिन वर्तन में 303 डिग्री वाला बावा है। अत:

मंगलदास की रिलेटिव डिग्री 202 है, शुद्धात्मा की 360 डिग्री है, रियल की और बावा की 303 डिग्री, नियर रियल की।

ज्ञान मिलने से पहले हम बावा तो थे ही नहीं, मैं चंदूभाई, मैं डॉक्टर वगैरह सभी को एक ही मानते थे।

ज्ञान मिलने से पहले भी बावा होता है लेकिन वह बिना ड्रेस का बावा होता है। जब से 'मैं कर्ता हूँ, मुझे कर्म भोगना पड़ेगा', ऐसा जाना तभी से वह बावा बन जाता है लेकिन वह एक्ज़ेक्ट ड्रेस वाला बावा नहीं है। 'मुझे यह देहाध्यास बरतता (रहता) है', जब से ऐसा समझे तभी से वह रौब वाला बावा कहलाता है। काफी आगे बढ़ गया, ऐसा कहा जाएगा लेकिन फिर भी वह असल ड्रेस वाला तो है ही नहीं। वास्तव में फुल ड्रेस वाला बावा तो इस ज्ञान प्राप्ति के बाद ही कहलाता है।

मंगलदास को और बावा को सभी को जो जानता है, वह है 'मैं'! जो ज्ञानी है, वह भी 'मैं' नहीं हूँ। 360 डिग्री वाले जो ज्ञानी हैं, उन्हें भी 'मैं' जानता हूँ', ऐसा रहता है।

तीर्थंकरों की 360 डिग्री और दादाश्री की 356 डिग्री है। इसमें फर्क इतना ही है कि दादाश्री खटपटिया वीतराग हैं और तीर्थंकर पूर्ण वीतराग हैं। दादाश्री को दिन-रात सभी को मोक्ष में ले जाने की ही खटपट रहती है।

मंगलदास की प्रकृति नहीं बदलती। बावा पर प्रकृति का असर होता है लेकिन उतने ही भाग में होता है जहाँ पर अज्ञान रहा हुआ है। 360 डिग्री वाले पर बिल्कुल भी असर नहीं होता।

बावा का स्वरूप ज्ञान से दिखाई देता है। जैसे-जैसे डिग्री बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे और अधिक स्पष्ट स्वरूप समझ में आता जाता है।

बावा का और मंगलदास का स्वरूप जिसे समझ में आता है वह 'मैं' है और वह भी प्रज्ञा के रूप में।

एक महात्मा ने दादाश्री से पूछा कि 'बावा और अहंकार में क्या फर्क है?' तब दादाश्री ने कहा कि, 'अहंकार खुद ही बावा है और अहंकार कम होता जाता है वह भी बावा है और खत्म होता है वह भी बावा है'।

दादाश्री कहते हैं कि, 'हमारा अहंकार खत्म हो चुका है। मेरा अहंकार खत्म हो चुका है लेकिन बावा अभी भी अहंकारी है। 356 डिग्री वाला, अर्थात् हम में डिस्चार्ज अहंकार है, जिसके आधार पर सभी दैहिक क्रियाएँ होती हैं'।

दादाश्री कहते हैं कि ''दादा भगवान', वे भगवान हैं और दादा, वे भगवान नहीं हैं। दादा भी बावा हैं। अर्थात् ज्ञानी भी बावा और आप भी बावा।''

दादाश्री एकदम प्यॉर हैं इसलिए सभी को निरंतर याद रहते हैं, नहीं तो कोई याद नहीं रह सकता।

360 डिग्री का ज्ञान प्रकट क्यों नहीं होता? अभी भी बाहर की कितनी रुचि भरी पड़ी है! अभी भी कितनी जगहों पर मीठा लगता है?

दादाश्री जो अक्रम ज्ञान देते हैं, वह 360 डिग्री का पूर्ण केवलज्ञान ही देते हैं लेकिन वह पूरी तरह से पचता नहीं है। दादाश्री को भी 356 डिग्री पर रुक गया। महात्माओं में 200 से बढ़कर 300 तक, 310 तक या 320 तक जाता है!

ज्ञानी में और भगवान में क्या फर्क है? ज्ञानी सबकुछ समझ सकते हैं, देख सकते हैं लेकिन जान नहीं सकते! दादाश्री कहते हैं कि मेरा ज्ञान 356 डिग्री पर रुका हुआ है, यदि 360 डिग्री हो गया होता तो 'मैं' और दादा भगवान एक हो गए होते! लेकिन 356 डिग्री के कारण अलग रहे हुए हैं। इस काल में संपूर्ण प्रकट हो ही नहीं सकता!

चौदह लोक के नाथ अर्थात् जो पूर्ण प्रकट हुए हैं, फुल स्केल में हाज़िर हुए हैं, वे! और ऐसे चौदह लोक के नाथ प्रकट हुए हैं इस ए.एम. पेटल में!

एक महात्मा दादाश्री से पूछते हैं कि, 'आपमें कौन सा भाग ज्ञानी का है? आप तो आत्मा ही हैं न?' तब परम पूज्य दादाश्री कहते हैं कि, 'खुद जितना आत्म स्वरूप हुआ उतना ज्ञानी। 356 डिग्री वाला ज्ञानी'।

356 डिग्री अंतरात्मा की और 360 डिग्री परमात्मा की! श्रीमद् राजचंद्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'ज्ञानी देहधारी परमात्मा ही कहे

जाते हैं!' चार डिग्री पूरी होने पर परमात्मा बन जाएँगे। कोई एक महीने पहले कलेक्टर बना है और कोई बीस साल से कलेक्टर है। दोनों की पोस्ट एक सरीखी ही कही जाएगी। दोनों ही कमिश्नर बनेंगे लेकिन फिर भी एक सरीखा नहीं कहा जाएगा। 20 साल वाला कल जाकर कमिश्नर बन जाएगा जबकि एक महीने वाले को काफी समय लगेगा!

दादाश्री कहते हैं कि 'हमें केवलज्ञान की कोई जल्दी नहीं है! इस काल में उसकी परीक्षा ही नहीं ली जाती तो फिर मुझे उसकी तैयारी करने की क्या ज़रूरत है? क्यों न मैं जगत् कल्याण करूँ!' इसमें दादाश्री की जगत् कल्याण करने की कितनी उत्कृष्ठ भावना है!

इस जगत् में ऐसे ज्ञानी का संयोग मिलना दुर्लभ है। सभी कुछ मिलेगा लेकिन यह नहीं मिलेगा। जहाँ ब्रह्मांड के भगवान प्रकट हुए हैं, उनसे संबंध जोड़कर काम निकाल लो!

मैं, बावा और मंगलदास। ऐसे तीन भेद दादाश्री ने क्यों दिए? वर्ना इस दूषमकाल के लोग दादा भगवान और अंबालाल, इन दोनों में भेद नहीं समझ पाएँगे और हर बात पर शंका करेंगे, और बल्कि उनका बिगड़ जाएगा! इसलिए विशेष विवरण करके संपूर्ण क्लेरिटी दी है ताकि कभी भी लोगों को उलझन पैदा न हो!

मैं, बावा और मंगलदास का गुह्य रहस्य दादा श्री ने पहली बार ही खोला, 1987 में अमरीका में! और कहा था कि ''यह अंतिम ज्ञान आपको दे रहा हूँ। अब इससे आगे कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। यदि एक्ज़ेक्ट 'मैं', बावो और मंगलदास की जागृति में रहोगे तो ज्ञानी की तरह, हमारी तरह रह सकोगे!''

ऐसा गुह्य रहस्य किसी भी शास्त्र में नहीं बताया गया है। दादाश्री कहते हैं कि इस रहस्य को बताने के लिए... हम इसलिए रह गए कि इस काल की वजह से हमारी पूर्णाहुति नहीं हुई। वर्ना पूर्ण पद वाले तो कुछ कहे बिना ही मोक्ष में चले जाते हैं! दादाश्री खुद की आंतरिक आत्मिक दशा का वर्णन करते हुए बताते हैं कि 'हम संपूर्ण 360 डिग्री की दशा में रहते हैं! और दर्शन होते हैं 356 डिग्री की दशा के! इसलिए दर्शन करने वाले को बहुत फायदा होता है। ऐसे दर्शन कहाँ से मिलेंगे?'

दस लाख सालों बाद प्रकट हुए हैं ये अक्रम ज्ञानी!

मैं, बावा और मंगलदास का ज़बरदस्त विज्ञान निकला है। यह अंतिम विज्ञान है। जैसे कि मीठे पानी के बरसात से सारा ही धान उग निकलता है, उस जैसा!

'मैं, बावा और मंगलदास' की बात पहली बार ही प्रकट हो रही है। दादाश्री के हृदय में सालों से यह व्यथा थी कि किस तरह से यह गुह्य विज्ञान सभी को समझाऊँ?! उस प्रकार मंथन करते-करते 'मैं' 'बावो' और 'मंगलदास' के रूप में निकला और सब सेट हो गया! जगत् के भी ज़बरदस्त पुण्य हैं कि दादाश्री देह छोड़ने से पूर्व यह गुह्य ज्ञान बताते गए! धन्य है उन महात्माओं को जिन्होंने प्रत्यक्ष मैं, बावो और मंगलदास का यह सत्संग सुना और धन्य-धन्य है उन सभी महात्माओं को जिनकी जागृति में यह ज्ञान निरंतर सेट हो गया है!

अनुक्रमणिका

[1] प्रज्ञा

[2.1] राग-द्वेष

[2.2] पसंद-नापसंद

[2.3] वीतद्वेष

[2.4] प्रशस्त राग

[2.5] वीतरागता

[3] मैला करे वह भी पुद्गल, साफ करे वह भी पुद्गल!

[4] ज्ञान-अज्ञान

[5.1] ज्ञान-दर्शन

[5.2] चारित्र

[6] निरालंब

[7] 'मैं, बावा और मंगलदास'

आप्तवाणी
श्रेणी-१३ (उत्तरार्ध)

[1]
प्रज्ञा

प्रज्ञा की पहचान यथार्थ स्वरूप से...

प्रश्नकर्ता : यह जो ध्यान रहता है कि 'मेरा स्वरूप यह है और यह दूसरा है'। सतत वह जो ध्यान रहता है, वह कौन से भाग में है? वह कौन सा भाग है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा दिखाती है। प्रज्ञा सभी कुछ दिखाती है। ये सबकुछ अलग-अलग दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : उसका भी ध्यान रहता है कि इन दोनों को जो भिन्न दिखा रही है, वह भी मैं नहीं हूँ। मैं यह हूँ।

दादाश्री : वह तो ठीक है, प्रज्ञा दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा कैसे उत्पन्न होती है और कहाँ से उत्पन्न हुई?

दादाश्री : वह तो, जब 'हम' ज्ञान देते हैं तभी उत्पन्न हो जाती है। ज्ञान से प्रज्ञा उत्पन्न हो गई। प्रज्ञा का काम शुरू हो गया।

दो शक्तियाँ हैं अंदर! जब हम ज्ञान देते हैं तब प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न

हो जाती है। वर्ना अज्ञाशक्ति तो जीवमात्र में होती ही है यानी कि जब 'मैं' और 'मूर्ति' दोनों एक हो जाएँ, तब उसे अज्ञाशक्ति कहते हैं। संसार खड़ा करने वाली अज्ञाशक्ति है। वह संसार के बाहर निकलने नहीं देती। प्रज्ञाशक्ति उसे संसार में रहने नहीं देती। मार-ठोककर, खींचकर, यों बाँधकर मोक्ष में ले जाती है। अतः यह जो शक्ति उत्पन्न हुई है, वह काम करती रहती है। उसमें 'हमें' दखल नहीं करनी है बीच में। अपने आप काम हो ही रहा है, सहज रूप से काम हो रहा है।

ज्ञानीपुरुष जब इगोइज़म निकाल देते हैं, उसके बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इगोइज़म और ममता, वे अज्ञाशक्ति की देख-भाल में हैं। जब प्रज्ञा उत्पन्न होती है तब अज्ञा नाम की शक्ति अपना सबकुछ समेटकर, झाड़-बुहारकर जाने लगती है! जैसे कांग्रेस गवर्मेन्ट के आने पर सभी अंग्रेज चले गए थे न!

भगवान ने क्या कहा है कि बंध (बंधन) किसकी वजह से है? अज्ञा की वजह से बंध है। यह संसारबंध अज्ञा से हो रहा है। अज्ञा से पाप-पुण्य की रचना होती है। अज्ञा, और उसका प्रतिपक्षी शब्द है मुक्ति, वह प्रज्ञा से होती है। वह प्रज्ञा निरंतर 'आपको' सावधान करती है। पहले वह नहीं थी। पहले अज्ञा थी। यह जो अज्ञा है वह खुद उल्टा ही उल्टा लपेटती रहती है। अज्ञा से यह संसार खड़ा हो गया, प्रज्ञा से संसार का नाश हो जाता है। अज्ञा से अहंकार है। निर्अहंकारी होने के बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसका लक्ष्य बैठने के बाद प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है।

अब अज्ञा में क्या होता है कि 'यह मैंने किया, मैंने दुःख भोगा, उसने किया, उसने गालियाँ दीं मुझे'। प्रज्ञा क्या कहती है कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ, मैं भोक्ता नहीं हूँ, मैं ज्ञाता हूँ'। सामने वाले ने मुझे गालियाँ दीं तो वह निमित्त है बेचारा, वह भी कर्ता नहीं है। वह सब से अंतिम प्रकार का ज्ञान है। सामने वाला कर्ता नहीं दिखाई दे और खुद भी कर्ता नहीं है, ऐसा भान रहा तो वह मोक्ष का सब से अंतिम साधन है।

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष को राग-द्वेष जानना, क्या उसे प्रज्ञा का उपयोग कहा जाएगा? प्रज्ञा उस समय उपयोग में रहती है?

दादाश्री : प्रज्ञा का बेसमेन्ट तो अलग ही है। इतना तो अज्ञानी भी समझता है कि यह राग-द्वेष कर रहा है। 'राग-द्वेष चले गए हैं', उसे प्रज्ञा जानती है। वह अज्ञानी को समझ में नहीं आता। बाकी, छोटा बच्चा भी राग-द्वेष को समझता है न! हम मुँह चढ़ाएँ तो बच्चा चला जाता है, वापस नहीं आता।

अज्ञा के जाने पर प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जगत् के जीवमात्र में जब तक मिथ्यात्व है, तब तक अज्ञा है और मिथ्यात्व चला जाए, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : क्या संसार में रहकर प्रज्ञा प्रकट नहीं हो सकती? अज्ञा ही रहती है?

दादाश्री : नहीं। महात्माओं में प्रज्ञा उत्पन्न हो गई है। अब आप संसार में हो तो भी प्रज्ञा उत्पन्न हो गई है न! अतः अब संसार में जहाँ-जहाँ आपको बंधन है, हमेशा आपको वहाँ से छुड़वा देगी, सचेत करके। हमें अगर कोई जागृति न रहे तो अंदर से चेतावनी मिलती है, वह प्रज्ञाशक्ति का काम है और जब संसार व्यापार करता है तब अज्ञाशक्ति कहती है, 'ऐसा करो तो शादी हो पाएगी, यों मिल जाएगा'। अज्ञाशक्ति वह चेतावनी देती है लेकिन उससे तो संसार में भटकना होगा जबकि प्रज्ञा मोक्ष के लिए सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : सभी डिसिज़न बुद्धि लेती है न?

दादाश्री : हाँ, डिसिज़न बुद्धि लेती है लेकिन दो प्रकार के डिसिज़न। मोक्षमार्ग के डिसिज़न प्रज्ञा लेती है और सांसारिक डिसिज़न अज्ञा लेती है। अज्ञा अर्थात् बुद्धि। अज्ञा-प्रज्ञा के डिसिज़न हैं ये सारे।

अज्ञा का प्राकट्य?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और प्रज्ञा में फर्क क्या है?

दादाश्री : प्रज्ञा तो ज्ञान से उत्पन्न होने वाली एक शक्ति है।

प्रज्ञा आत्मा की ही डायरेक्ट शक्ति है, डायरेक्ट लाइट है और

अज्ञा इनडायरेक्ट लाइट है। टॉप पर पहुँची हुई बुद्धि अज्ञा कहलाती है या फिर छोटी से छोटी बुद्धि से लेकर भी... वह सारी अज्ञा ही है। इसके बावजूद भी वह आत्मा की शक्ति है। अज्ञाशक्ति आत्मा की शक्ति है और प्रज्ञा, वह भी आत्मा की शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : उस शक्ति को आत्मा की शक्ति कैसे मानेंगे?

दादाश्री : विशेष परिणाम की वजह से अज्ञाशक्ति उत्पन्न हो गई है।

प्रश्नकर्ता : दादा! क्या ऐसा नहीं है कि शक्ति एक ही है? यदि बाहर गई तो अज्ञा में परिणामित होती है और खुद में समा जाए तो...

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। वह अज्ञाशक्ति अलग ही है लेकिन वे दोनों ही आत्मा की शक्तियाँ हैं। जबकि *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) में ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : तो उसका अर्थ यह है कि ये जो सभी शक्तियाँ हैं, वे सभी आत्मा की ही शक्तियाँ हैं?

दादाश्री : आत्मा की ही शक्तियाँ हैं लेकिन जब तक आत्मा विशेष परिणाम में फँसा हुआ है, तब तक अज्ञाशक्ति से बाहर नहीं निकल सकता न! जब अज्ञाशक्ति में से बाहर निकलता है, खुद को खुद का भान होता है, तब अज्ञाशक्ति हट जाती है। तब निज परिणाम उत्पन्न होता है। उसके बाद प्रज्ञाशक्ति काम करती है। फिर वह संसार में नहीं जाने देती।

अत: दोनों शक्तियाँ आत्मा की ही हैं। बाकी कोई बाहर की, अन्य किसी की शक्ति है ही नहीं इसमें। वह प्रज्ञाशक्ति और अज्ञाशक्ति दोनों मानी हुई चीज़ें हैं, बिलीफ हैं।

प्रश्नकर्ता : अज्ञाशक्ति की शुरुआत क्यों हुई, उसके पीछे क्या हेतु था?

दादाश्री : मूल आत्मा, और उसे इस जड़ का संयोग प्राप्त हुआ।

चेतन के साथ जड़ का संयोग हुआ। उस संयोग से विशेष ज्ञान उत्पन्न हुआ। वही है अज्ञाशक्ति।

प्रश्नकर्ता : अज्ञा और प्रज्ञा, इन दोनों में से किसका चलता है?

दादाश्री : दोनों का ही चलता है। हर एक के अपने क्षेत्र में, अपने-अपने क्षेत्र में दोनों का ही चलता है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा और प्रतिष्ठित आत्मा में फर्क है क्या?

दादाश्री : बहुत फर्क है। प्रतिष्ठित आत्मा तो यह जो 'चंदूभाई' है, वह है और प्रज्ञा तो आत्मा का एक विभाग है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा का उद्‌भव स्थान कौन सा?

दादाश्री : उसका कोई स्थान नहीं होता, उसका तो काल (समय) होता है। जिस समय मिथ्यात्व फ्रेक्चर हो जाता है, तब प्रज्ञा हाज़िर हो जाती है। बुद्धि पर आघात लगे तो हाज़िर हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : कई बार बातचीत में हम ऐसे शब्दों का उपयोग करते हैं न कि प्रज्ञा आत्मा का ही भाग है।

दादाश्री : हाँ, वह तो है ही न!

प्रश्नकर्ता : आत्मा का भाग है?

दादाश्री : आत्मा का भाग, उसका ऐसा अर्थ नहीं निकालना है। आप अपनी भाषा में ले जाते हो सभी बातें।

वह उसका स्वभाव है कि किसी काल का संयोग हुआ कि प्रज्ञा खुद उत्पन्न हो जाती है और फिर मोक्ष में पहुँचाकर लय हो जाती है। यह अज्ञा भी उत्पन्न हुई है और लय हो जाएगी। जब प्रज्ञा उत्पन्न होती है, तब अज्ञा लय हो जाती है। जैसे कि अंधेरे के बाद दिन (उजाला) आता है।

प्रज्ञा जड़ है या चेतन?

प्रश्नकर्ता : तो प्रज्ञा में थोड़ा-बहुत विकल्प का भाग है न?

दादाश्री : विकल्प से कोई लेना-देना नहीं है वहाँ पर। सभी विकल्प अज्ञा हैं। इसमें विकल्प वगैरह कुछ भी नहीं है, निर्विकल्पी है यह। चेतन है, जड़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा भी पावर चेतन ही है न?

दादाश्री : नहीं, वह पावर चेतन नहीं है, वह मूल चेतन है लेकिन वह मूल चेतन में से अलग हुई है, वह भी सिर्फ इस कार्य को पूर्ण करने के लिए ही। उसके बाद फिर एक हो जाएगी वापस।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा *पुद्गल* नहीं है? वह आत्मा और *पुद्गल* के बीच का भाग है?

दादाश्री : नहीं, आत्मा और *पुद्गल* के बीच का भाग नहीं है। आत्मा का एक भाग अलग हो जाता है, जब हम ज्ञान देते हैं उस दिन। मोक्ष में ले जाने तक आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता। अतः आत्मा का यह भाग उससे अलग रहकर काम करता रहता है। आत्मा के सभी अधिकार प्रज्ञा के हाथ में हैं। मुख्तारनामे की तरह।

प्रश्नकर्ता : तो फिर भगवान क्या करते हैं? वे तो ज्ञाता-दृष्टा हैं। किसी भी चीज़ में हाथ ही नहीं डालते। वीतराग हैं।

दादाश्री : हाथ डालने को रहता ही नहीं न? प्रज्ञा तो भगवान की रिप्रेज़ेन्टेटिव जैसी है।

नहीं है वह सम्यक् बुद्धि

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या सम्यक् बुद्धि ही प्रज्ञा है?

दादाश्री : नहीं, प्रज्ञा उससे उच्च प्रकार का भाग है। प्रज्ञा तो प्रतिनिधि है आत्मा की। अभी आत्मा संसार में से आपको मोक्ष ले जाने के लिए खुद कुछ भी काम नहीं करता। उसी का भाग है यह प्रज्ञा। यह प्रज्ञा ही आपको निरंतर मोक्ष में ले जाने के लिए सचेत करती रहती है।

वह प्रज्ञा है और वही मूल आत्मा है, लेकिन अभी वह प्रज्ञा मानी जाती है। मूल आत्मा की ऐसी कोई क्रिया नहीं होती, जो मोक्ष में ले जाए।

प्रज्ञा अपना काम पूरा करने के बाद वापस जैसी थी वैसे ही आत्मा में स्थिर हो जाती है। अब, हर एक जीव में प्रज्ञा नहीं हो सकती। वह तो, जब ज्ञानीपुरुष आपका खुद का स्वरूप जागृत कर देते हैं, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जीवमात्र में प्रज्ञा नहीं होती पर अज्ञा तो रहती ही है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा का काम यही है न कि वह अज्ञा को घुसने न दे?

दादाश्री : अज्ञा को घुसने देने की तो बात ही नहीं है। अज्ञा को तो वहाँ पर घुसने ही नहीं देती लेकिन इसके साथ ही मोक्ष में ले जाने का काम है उसका। अज्ञान उत्पन्न हो जाए तो उसे दबाकर, उसे समझाकर मोक्ष की तरफ ले जाती है। जबकि अज्ञा का काम क्या है कि थोड़ी-बहुत भी लाइट होने लगे तो वहाँ अंधेरा कर देती है, वह 'उसे' संसार में ले जाती है।

अतः हमें अज्ञाशक्ति की तरफ नहीं रहना है। अज्ञाशक्ति ने तो संसार में भटका मारा है। अज्ञाशक्ति के पास क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह सभी हथियार हैं। अहंकार बहुत विकट होता है। वह पूरा लश्कर है ज़बरदस्त। प्रज्ञाशक्ति में अहंकार नहीं है इसीलिए 'हमें' खुद को हाज़िर रहना चाहिए। हम अगर इस पक्ष में रहेंगे, तो प्रज्ञाशक्ति ऐसी है कि हारेगी नहीं। वह अपना काम करती ही रहेगी। यह सारा उपशम भाव है इसलिए अंदर चंचलता खड़ी हुई कि तुरंत दरवाज़े बंद कर देने हैं। वर्ना अगर कोई खुद जान-बूझकर उल्टा करे कि 'अब मुझे राग-द्वेष करने हैं', तो प्रज्ञा वहाँ से हट जाती है।

प्रज्ञाशक्ति को कोई रुकावट न आए, सिर्फ इसलिए ज्ञानीपुरुष का अनुसरण करना है। इससे वह शक्ति मज़बूत होती जाएगी। इस शक्ति को कोई परेशानी नहीं आनी चाहिए। अभी तो बस आई ही हो और अगर कोई परेशानी आ गई तो चली जाएगी।

ज्ञान के बाद अज्ञाशक्ति की स्थिति

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब ज्ञान के बाद अज्ञा और प्रज्ञा दोनों साथ में रहते हैं। अज्ञा होती है तब प्रज्ञा नहीं होती और जब प्रज्ञा होती है तब अज्ञा नहीं होती?

दादाश्री : नहीं, दोनों साथ में रहती हैं। उनमें खिंचातानी चलती रहती है। आपको यह ज्ञान दिया है, फिर भी देह में दोनों साथ में रहती हैं। अतः यह जो अज्ञा है, उसकी वजह से थोड़ा सफोकेशन होता है, घुटन होती है। धीरे-धीरे अब उस अज्ञाशक्ति का नाश हो जाएगा, और प्रज्ञा बढ़ती जाएगी।

प्रश्नकर्ता : उलझन होती है तब ऐसा लगता है कि अज्ञाशक्ति जाने वाली है।

दादाश्री : जब उलझन होती है उस समय अज्ञाशक्ति है। फिर जब उसका कुछ नहीं चलता है तो वह उलझन में पड़ जाती है और बाद में खत्म हो जाती है। जब तक अज्ञान है तब तक वह अज्ञाशक्ति रहेगी और अज्ञाशक्ति जितनी कम हुई, प्रज्ञाशक्ति उतनी ही मुक्त हुई। अज्ञा शक्ति की वजह से सफोकेशन और घुटन होती है अज्ञाशक्ति की वजह से। वह अपना कुछ ले नहीं जाती लेकिन उसकी वजह से घुटन होती है इसलिए जो सुख आ रहा हो, उसे आने नहीं देती। आत्मा के साथ बैठे हैं तो सुख आना चाहिए, वेदन होना चाहिए लेकिन नहीं होने देती। उसे घुटन होने देती है। चिंता नहीं करवाती, उसकी वजह से सिर्फ घुटन होती है।

पहले जो हमें संसार की सभी इच्छाएँ उत्पन्न हुई थीं, उन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए अज्ञाशक्ति काम कर रही है लेकिन अब अज्ञाशक्ति का ज़ोर बिल्कुल भी नहीं बढ़ेगा। ऐसा नहीं है कि उसमें से अन्य इच्छाएँ उत्पन्न हो जाएँ। अतः ऐसा नहीं है कि बीज में से बीज पड़ें। जो हैं, वही के वही और साथ-साथ प्रज्ञाशक्ति हम से कहती है, 'मुझे *निकाल* कर ही देना है इन सब का। अब पेन्डिंग नहीं रखना है, भाई'। *निकाल* अर्थात् जिसे कहते हैं न, निपटारा कर देना!

पंचाज्ञा का पालन करवाने वाला कौन है?

मेरी अज्ञाशक्ति खत्म हो चुकी है, हम में बुद्धि खत्म हो चुकी है, बुद्धि हम में है ही नहीं। साइन्टिस्ट भी यह नहीं मानते कि हमारी बुद्धि खत्म हो गई है। कोई मानेगा ही नहीं न! बुद्धि कैसे खत्म हो सकती है?

प्रश्नकर्ता : अज्ञा किसी में कम या ज़्यादा हो सकती है?

दादाश्री : अज्ञा तो कम-ज़्यादा हो सकती है सभी में। यह ज्ञान मिलने के बाद प्रज्ञा तो तुरंत ही काम करने लगती है। उसके बाद 'उसका' पुरुषार्थ किस तरफ है, पुरुषार्थ अर्थात् पाँच आज्ञा का पालन करना। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ नहीं करे तो उसकी खुद की ही भूल है न! ज्ञान मिलने के बाद पुरुष हो गया, ऐसा कहा जाएगा और पुरुष होने के बाद आज्ञा पालन करने से वह पुरुषोत्तम होता जाता है। जो पुरुषोत्तम हो जाए, वही परमात्मा है। रास्ता सुव्यवस्थित वाला हाईवे ही है न!

प्रश्नकर्ता : आज्ञा का पालन कौन करता है, प्रतिष्ठित आत्मा ही पालन करता है न?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा के लिए आज्ञा पालन का प्रश्न ही कहाँ है इसमें? यह तो आपको जो आज्ञा का पालन करना है, वह आपका जो प्रज्ञा स्वभाव है, वही आपसे सबकुछ करवाता है। आत्मा की प्रज्ञा नामक शक्ति है, तो फिर और क्या रहा उसमें? बीच में किसी की दखल है ही नहीं न! आज्ञा का पालन करना है। अज्ञाशक्ति जो नहीं करने दे रही थी, वह प्रज्ञाशक्ति करने देती है। आज्ञा पालन करने से आपको प्रतीति में रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। और वह *लक्ष* (जागृति) में है लेकिन अनुभव में कम है। उस रूप हुए नहीं हो अभी। उसके लिए, जब पाँच आज्ञा का पालन करोगे तब उस रूप हो पाओगे। अत: अन्य कुछ भी करना बाकी नहीं रहा।

अत: आज्ञा ही धर्म और आज्ञा ही तप। जब तक तप है, तब तक प्रज्ञा है। तब तक मूल स्वरूप नहीं है। आत्मा में वह तप नामक गुण है ही नहीं, प्रज्ञा तप करवाती है।

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान लेने के बाद महात्माओं को ऐसा *लक्ष* रहता है कि वह खुद शरीर से जुदा है। शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) आ गया है और उसके बाद देखने की जो सभी क्रियाएँ चलती रहती हैं, वे सब प्रज्ञा से होती हैं न?

दादाश्री : सारा प्रज्ञाशक्ति का ही काम है।

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान क्रिया से देखना, वह तो बहुत दूर रहा?

दादाश्री : वही, अभी प्रज्ञाशक्ति की ही ज्ञान क्रिया है। जो वास्तविक ज्ञान क्रिया है, वह तो जब इन सभी फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तब वह ज्ञान क्रिया हो पाएगी।

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी में पढ़ा है कि जो अशुद्ध है, अशुभ है व शुभ है, उन सभी क्रियाओं को जो जानती है, वह बुद्धि क्रिया है और जो सिर्फ शुद्ध को ही जानती है, वह ज्ञान क्रिया है इसलिए मुझे ऐसा लगा कि हमारी प्रज्ञा सब देखती है।

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा से। वह जो प्रज्ञा है, वह कुछ हद तक, जब तक फाइलों का *निकाल* करता है तब तक प्रज्ञा रहती है। फाइलें खत्म हो जाने के बाद आत्मा ही खुद जानता है।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब यह प्रज्ञा मोक्ष के दरवाज़े तक मदद करने के लिए है?

दादाश्री : दरवाज़े तक नहीं, अंत में मोक्ष में बिठा देती है। हाँ, पूर्णाहुति करवाने वाली यह प्रज्ञा ही है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने के बाद प्रज्ञाशक्ति वापस आती है?

दादाश्री : नहीं, वह शक्ति मोक्ष में पहुँचाने तक ही रहती है (यानी 'केवलज्ञान होने तक ही' समझना है)!

जुदा ही रखे, वह प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : हम एकाकार न हों, उसका ध्यान तो प्रज्ञा रखती है न?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा अलग ही रखती है, एकाकार न हो जाए उसी का ही ज्ञान दिया है आपको। प्रज्ञा आपको सचेत करती है। जब भूल हो जाए उस समय आपको सचेत करती है, बस।

प्रश्नकर्ता : सचेत होना है, ऐसा किस तरह से कहती है?

दादाश्री : जागृत रहना है। एकाकार न हो जाए 'उसके' साथ।

प्रश्नकर्ता : हाँ, विशेष भाव के साथ एकाकार न हो जाए। तो यह क्रिया आत्मा की नहीं हुई दादा?

दादाश्री : आत्मा की क्रिया मानी ही नहीं जाती किसी में भी।

प्रश्नकर्ता : सचेत करने की क्रिया आत्मा की है या नहीं?

दादाश्री : सचेत करने की क्रिया तो स्वाभाविक क्रिया है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा की नहीं है? आत्मा की या प्रज्ञा की?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा की है। सब एक ही है न! वास्तव में इसमें अन्य कुछ है ही नहीं। हम सचेत रहने को नहीं कहते? उपयोग रखो। उपयोग अर्थात् वहाँ सचेत रहना है।

प्रश्नकर्ता : ये जो तन्मयाकार हो जाते हैं, वह?

दादाश्री : हाँ, वही अज्ञाशक्ति है और जो तन्मयाकार नहीं होने दे, वह प्रज्ञाशक्ति है।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा होने के बाद अपने हाथ में मात्र 'देखना' ही रहा न?

दादाश्री : देखने और समझने की वह सारी शक्ति प्रज्ञा की है। शुद्धात्मा की जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह प्रज्ञाशक्ति है और अहंकार की जो शक्ति है, वह अज्ञाशक्ति है। वह बुद्धि के रूप में होती है। हर कहीं फायदा और नुकसान ही दिखाती है। बस में बैठे तो वहाँ भी फायदा-नुकसान दिखाने लगती है। खाना खाने जाए तो वहाँ भी फायदा-नुकसान दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : आप जो समझाते हैं, वह किसे पहुँचता है? देह को या आत्मा को?

दादाश्री : आत्मा को ही न! पर वह कौन सा आत्मा? जो शुद्धात्मा है, वह नहीं, प्रज्ञा नामक जो शक्ति है, उसके साथ सत्संग चलता रहता है। देह को भी नहीं, देह और आत्मा दोनों के बीच की जो शक्ति है, उसे पहुँचता है। प्रज्ञाशक्ति ही समझती है यह। यहाँ जो समझाते हैं, उसे जो कैच करती है, वह प्रज्ञाशक्ति है।

अंदर जो सावधान करता है, वही है आत्मानुभव

पूरे दिन सावधान करती है, वही प्रज्ञा है। अलग ही करती रहती है। इतना सारा अनुभव, पूरे दिन का अनुभव हमें अलग का अलग ही रखता है। नहीं?!

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : एक नहीं होने देती।

प्रश्नकर्ता : जब से प्रज्ञा शुरू हुई है, तभी से आत्मा के अनुभव की शुरुआत हो गई न?

दादाश्री : आत्मा का अनुभव हो ही जाता है। तभी वह सचेत करती है न, वर्ना यह *लक्ष* (जागृति) में ही नहीं रहता कि 'मैं आत्मा हूँ'। यह तो निरंतर *लक्ष* में रहता है और निरंतर जागृति ही रहती है। वह लाइट जलती रहती है, लेकिन अगर आप दूसरी जगह पर चले जाओ तो उसमें वह क्या करे? और आज्ञा पालन करे तो निरंतर लाइट रहती ही है। यों विज्ञान को पूरी तरह से समझ ले तो काम का है! अंदर सचेत करती है आपको? ज़रा सा भी इधर-उधर किया तो सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तुरंत ही सावधान करती है अंदर। यह हमारा अनुभव है!

दादाश्री : अब यों जो सचेत करती है, उसमें आपको ऐसा

लगता है न कि आप कुछ नहीं करते फिर भी ऐसा चलता रहता है! हर बार भूल होने पर सचेत करती है न! जहाँ-जहाँ दोष होता है वहाँ पर सचेत करती है न! वह क्या है? प्रज्ञा। दोष होते ही तुरंत सचेत करती है। अतः यह जो विज्ञान है, वह चेतन विज्ञान है। जहाँ पर शास्त्रज्ञान होता है, वहाँ पर हमें करना पड़ता है। शास्त्र में लिखी हुई चीज़ हमें करनी पड़ती है और इसमें आपको करना नहीं पड़ता। अपने आप ही होता है न!

प्रश्नकर्ता : अब, यह प्रज्ञा सचेत करती रहती है, वैसा अनुभव तो होता ही है लेकिन उसके साथ ही अपने खुद के पुरुषार्थ की भी ज़रूरत है न?

दादाश्री : कैसा पुरुषार्थ?

प्रश्नकर्ता : इस प्रज्ञा की मदद से पता चलता है कि यह गलत हो गया है तो फिर वहाँ पर प्रतिक्रमण करके उसे साफ कर देना चाहिए न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण का पुरुषार्थ तो रहता ही है। प्रतिक्रमण हो ही जाते हैं। जिससे अतिक्रमण होता है उससे प्रतिक्रमण का पुरुषार्थ होता ही रहता है। पुरुष पुरुषार्थ धर्म का पालन करता ही रहता है।

प्रतिक्रमण हो ही जाता है। सहज स्वभाव से होता रहता है और अगर नहीं होता है तो उसे करना चाहिए। उसमें करने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ भाव ही करना है। अजागृति है तो उसके बजाय जागृति में रहना है।

प्रज्ञा से उल्टा कौन चलाता है?

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा सचेत करती है, इसके बावजूद भी उस अनुसार नहीं होता, तो ऐसे उल्टा कौन करवाता है?

दादाश्री : अगर उस अनुसार नहीं होता है तो हमने ही ऐसे अंतराय डाले हुए हैं। तो अपनी इच्छा हो फिर भी वैसा नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : ये सब अंतराय डाले हुए हैं, तो उसका उपाय क्या है?

दादाश्री : जो हो गया, वह अंतराय का फल आया है। उस अंतराय को तो भुगतना ही पड़ेगा लेकिन नए नहीं डालने चाहिए।

प्रज्ञा और दिव्यचक्षु

प्रश्नकर्ता : हम सभी को आपके द्वारा प्रदान किए गए दिव्यचक्षु से हम में उद्भव होने वाले क्रोध-मान-माया-लोभ व अब्रह्मचर्य के परिणाम दृष्टिगोचर होते रहते हैं। क्या वह दिव्यचक्षु ही प्रज्ञाशक्ति है?

दादाश्री : प्रज्ञाशक्ति से ही यह दिखाई देता है। जबकि दिव्यचक्षु तो एक ही काम करते हैं कि औरों में शुद्धात्मा देखने का। बाकी का यह सब क्रोध-मान-माया-लोभ, अब्रह्मचर्य के परिणाम वगैरह सभी अंदर दिखाई देते हैं, वह सब प्रज्ञाशक्ति का काम है। जब तक संसार के परिणामों का *निकाल* करना बाकी है, तब तक यह प्रज्ञा काम करती है।

दिव्यचक्षु तो बस एक ही काम करते हैं। ये चमड़े के चक्षु रिलेटिव को दिखाते हैं और दिव्यचक्षु रियल को दिखाते हैं। दिव्यचक्षु अन्य कोई भी काम नहीं करते।

अज्ञानी को कौन सचेत करता है?

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है, हमने कुछ खराब काम किया हो न, तो हमें ऐसा लगता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। यह किसे होता है? अहंकार को होता है या वास्तव में आत्मा को होता है?

दादाश्री : 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह आत्मा को नहीं होता। वह, अंदर यह जो प्रज्ञाशक्ति है न, उसे होता है यानी कि अभिप्राय बदल गया कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। यह अहंकार कहता है, 'होना चाहिए' और यह प्रज्ञा कहती है 'नहीं होना चाहिए'। दोनों के अभिप्राय अलग-अलग हैं। यह पूर्व में चला और यह पश्चिम में चला।

प्रश्नकर्ता : अब, जिसने ज्ञान नहीं लिया है, उसे भी ऐसा लगता

है कि, 'ऐसा काम नहीं करना चाहिए मुझे'। तो फिर क्या उसका खुद का भी ईमानदारी का कोई लेवल होता है?

दादाश्री : वह तो, उसने जो ज्ञान जाना है न, वह ज्ञान उसे बताता है, लेकिन वह ज्ञान सफल (फल सहित) नहीं होता, क्रियाकारी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी कि मुझे यह जानना था कि ऐसा किस प्रकार से होता है?

दादाश्री : वह ज्ञान उगता नहीं है। वह शुष्कज्ञान है जबकि विज्ञान उगता है। यह विज्ञान है।

पछतावा किसे होता है?

आत्मा को जान लिया, अब इसके बाद और क्या जानना बाकी है? आत्मा को जान लिया कि यह भाग आत्मा है और यह नहीं है। जब समभाव से *निकाल* करता है उस समय, वह आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह समभाव से *निकाल* आत्मा करता है या चंदूभाई करता है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है। आत्मा को तो जैसे कुछ करना ही नहीं है। चंदूभाई अगर उग्र हो जाएँ, सख्ती करें तो आपको अच्छा नहीं लगता कि 'ऐसा क्यों?' यह आत्मा है और जो उग्र हो जाता है, वह है चंदूभाई।

प्रश्नकर्ता : गुस्सा होने के बाद जो पछतावा करता है वह गुण जड़ का है या चेतन का है?

दादाश्री : वह गुण तो जड़ का भी नहीं और चेतन का भी नहीं है। वह तो प्रज्ञा का स्वभाव है। इन जड़ और चेतन के गुण ऐसे नहीं होते। ऐसा गुस्सा करने का गुण नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : यह जो पछतावा होता है, वह कौन करवाता है?

दादाश्री : वह सब प्रज्ञा करवाती है।

प्रश्नकर्ता : ये प्रतिक्रमण कौन करवाता है?

दादाश्री : वह सब प्रज्ञा ही करवाती है।

भूलें दिखने लगें तो भगवान बन जाए। भूलें किसकी वजह से दिखाई देने लगती है? वह तो, अपनी प्रज्ञाशक्ति की वजह से। आत्मा में जो प्रज्ञाशक्ति रही हुई है, उसकी वजह से सभी भूलें दिखने लगती हैं और वही हमें भूलें दिखाती है इसीलिए तुरंत हम उनका निबेड़ा ले आते हैं। हम कहते हैं कि 'भाई प्रतिक्रमण करो'।

वह प्रज्ञाशक्ति दाग़ दिखाती है, तब हम कहते हैं कि 'धो दो, इसे धो दो। इन दाग़ों को धो दो'। तो फिर सभी दाग़ों को धो देता है। प्रतिक्रमण किया तो साफ!

प्रश्नकर्ता : अक्रम में यह जो सामायिक करते हैं, उसमें जो पिछले सारे दोष दिखाई देते हैं, तो सामायिक में देखने वाला वह कौन है? आत्मा या प्रज्ञा?

दादाश्री : प्रज्ञा। आत्मा की शक्ति। जब तक आत्मा संसार में काम करता है तब तक वह प्रज्ञा कहलाता है। मूल आत्मा खुद नहीं करता है।

प्रश्नकर्ता : आप कई बार सामयिक में बैठाकर त्रिमंत्र बोलने को कहते हैं न, 'पढ़ो, नमो अरिहंताणं करके', तो क्या उस समय आत्मा ही वह पढ़ता है? और जब हम सत्संग की पुस्तक पढ़ते हैं, आप्तवाणी पढ़ते हैं, वह शुद्ध चित्त पढ़ता है और सामायिक में आत्मा पढ़ता है, वह एक समान ही है?

दादाश्री : मूल आत्मा जो पढ़ता है, वह अलग प्रकार का है। यहाँ पर आत्मा कहने के पीछे हमारा भावार्थ क्या है कि रास्ते पर लाने के लिए कहते हैं। ये इन्द्रियाँ नहीं हैं, ऐसा कहना चाहते हैं लेकिन यह मूल आत्मा तो, खुद की बुद्धि क्या कर रही है, मन क्या कर रहा है,

उन सभी को जानता है। वह भी वास्तव में मूल आत्मा नहीं है, अपनी प्रज्ञा है। वह मूल आत्मा की शक्ति कहलाती है इसलिए वह सबकुछ जानती है। 'वह (आत्मा) जानता है' वह सही है लेकिन यह (प्रज्ञा से जाना हुआ) भी गलत नहीं कहा जाएगा। यहाँ पर इन्द्रियाँ नहीं हैं। उसी प्रकार इसमें मूल आत्मा तो बिल्कुल ही नहीं है। ऐसा तो इस रास्ते पर लाने के लिए कहते हैं। अतः इसे रिलेटिव-रियल कहा जाएगा!

विचार और प्रज्ञा बिल्कुल अलग-अलग

प्रश्नकर्ता : अब अगर कोई विचार आए तो वह प्रज्ञाशक्ति को आया या चंदूभाई को आया, ऐसा कैसे डिस्टिंग्विश हो पाएगा?

दादाश्री : नहीं, कोई भी विचार प्रज्ञाशक्ति का नहीं होता। विचार तो डिस्चार्ज होकर जाने के लिए आते हैं सारे। विचार डिस्चार्ज हैं। वे प्रतिष्ठित आत्मा के हैं, वे चंदूभाई के हैं। प्रज्ञाशक्ति तो देखती है कि क्या विचार आए! अच्छे आए या खराब आए, उन्हें देखती है। उसमें गहरे नहीं उतरती अतः विचार ज्ञेय बन जाते हैं। वे प्रज्ञाशक्ति के लिए ज्ञेयस्वरूप हैं। ज्ञेय अर्थात् जानना और दृश्य अर्थात् देखना। विचार ज्ञेय और दृश्य हैं, अब हम ज्ञाता और दृष्टा हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि अंदर मन भी रडार की तरह दिखाता है तो अभी मन बता रहा है या प्रज्ञा दिखा रही है, इस भेद को किस तरह समझें?

दादाश्री : अभी की बात जाने दो न! अपना ज्ञान प्राप्त होने के बाद प्रज्ञा ही है। जो सभी विचारों से मुक्त करके मोक्ष की तरफ ले जाती है, उसे कहते हैं प्रज्ञा! और पहले अज्ञा नाम की जो शक्ति थी जो मन के थ्रू बरतती (कार्य करती) थी, बुद्धि के थ्रू बरतती थी, वह संसार में गहराई तक ले जाती है। अतः अभी जो प्रज्ञा नाम की शक्ति है तो वह इस ओर ले जाती है। मन के जो विचार हैं न, वह प्रज्ञा का काम नहीं है। विचार आते हैं या नहीं आते?

प्रश्नकर्ता : आते हैं। उन्हें तो ज्ञाता-दृष्टा भाव से देखते रहते हैं।

दादाश्री : देखते रहना है बस! जिसने मन को देखा, उसने मन को जीत लिया और उसने जगत् को भी जीत लिया। भगवान महावीर ने इसी प्रकार से जगत् को जीता था। अत: विचार तो मन का काम है। वे तो आएँगे। उन्हें हमें देखते रहना है। विचार प्रज्ञा के नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : उनमें प्रज्ञा की प्रेरणा होती है?

दादाश्री : नहीं! मन तो विचार दिखाता है अत: उसे हम अपनी भाषा में समझ जाते हैं। प्रज्ञा में विचार होते ही नहीं हैं। विचार का मतलब क्या है? विचार अर्थात् विकल्प और निर्विचार अर्थात् निर्विकल्प। यह तो निर्विकल्प दशा है अत: मन में जो विचार आते हैं, उन्हें देखना है, बस! और प्रज्ञा उन्हें दिखाती है।

देखने वाले को थकान कैसी?

प्रश्नकर्ता : इन मन-वचन-काया को देखने वाली प्रज्ञा है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : पूरे दिन मन-वचन-काया को देखते-देखते थक जाते हैं तो यह थकने वाला कौन है?

दादाश्री : वह जो थक जाता है, अपने मन में जो उल्टा असर हो जाता है तो वे असर ही थक जाते हैं, और कोई भी नहीं थकता। थकता ही नहीं है न! देखने वाला थकता नहीं है। काम करने वाला थक जाता है।

प्रश्नकर्ता : देखने वाली तो प्रज्ञा है न?

दादाश्री : प्रज्ञा ही है। अभी तो प्रज्ञा ही काम कर रही है न! जब तक ये सब दखल हैं तब तक प्रज्ञा काम करेगी उसके बाद जब ये दखल नहीं रहेगी तो आत्मा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, थक तो जाते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि यह सब कब बंद होगा? तो जब थकान होती है तभी ऐसा लगता है न? सहज हो तो ऐसा नहीं होगा न?

दादाश्री : वह जो थकान महसूस होती है, वह भी सिर्फ ऐसा प्रतीत होता है। थकान तो होती ही नहीं है न! देखने वाले को थकान नहीं होती। काम करने वाले को थकान होती है। देखने वाले को तो थकान छूती तक नहीं है। यह पहले का परिचय है न! थक जाने का। उसे ऐसा लगता है कि 'थकान हो गई'।

प्रश्नकर्ता : यह मन ऐसा क्यों करता है? वचन ऐसा क्यों निकला? अंदर ऐसे कुछ अभिप्राय हो जाते होंगे, इसलिए भी थकान होती होगी शायद।

दादाश्री : अभिप्राय! हाँ, ऐसा सब होता है।

अलग हो चुका शुद्ध चित्त, वही है प्रज्ञा

अज्ञा तो अंदर रास्ता दिखाती है फायदे-नुकसान के लिए। द्वंद्व खड़े करती है।

प्रश्नकर्ता : अभी आपने कहा कि द्वंद्व खड़े करती है। अब ये जो शब्द निकले कि 'खड़े करती है', वह भाग कौन सा है?

दादाश्री : वह तो, शब्द बोले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे शब्द, क्या यह जो स्थूल मन है, वह बोलता है?

दादाश्री : नहीं, बुद्धि में से उत्पन्न होते हैं। खड़े होने का मतलब ऐसा नहीं कि कोई इंसान खड़ा होता है। बुद्धि से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन आपने यह जो वर्णन किया, वह एक्ज़ेक्ट है न? उत्पन्न होता है, ऐसा आपको दिखाई देता है और आप कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, लेकिन 'दिखाई देता है और कहते हैं', वह भी औरों को तो नहीं दिखाई देता न! अतः उसके लिए ऐसा कहना पड़ता है कि ये खड़े होते हैं या उत्पन्न होते हैं। वह मन नहीं है, मन का काम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जो दिखाई देता है, वह कौन सा भाग है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा का भाग है। वह आत्मा का मूल भाग है। सभी कुछ देखा जा सकता है। आपमें प्रज्ञा उत्पन्न हो चुकी है लेकिन अभी जब तक निरालंब न हो जाएँ, तब तक प्रज्ञा फुल काम नहीं करेगी। अभी तो गाँठों में ही घूमता रहता है न?! जब ग्रंथियों का छेदन हो जाएगा तब काम आगे बढ़ेगा। मन दिखा ही नहीं सकता ऐसा सब।

प्रश्नकर्ता : अब वह वर्णन करता है, वर्णन के स्तर तक आता है इसलिए उसे प्रज्ञा कहना पड़ा?

दादाश्री : हाँ, वह खुद ही प्रज्ञा है और वह आत्मा का भाग है। अतः यह चित्त, जो अशुद्ध हो रहा था, जो अलग हो गया है आत्मा में से, वही खुद शुद्ध होकर वहाँ प्रज्ञा की तरह काम कर रहा है। तभी तो देखकर बोला जा सकता है न, नहीं तो देखकर बोला नहीं जा सकता न! और जब देखकर कहते हैं तब जोखिमदारी नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : जो देखकर बोलने वाले लोग हैं न, उन्हें अगर ढँकना हो, छुपाना हो, टेढ़ा-मेढ़ा बोलना हो, तब भी नहीं बोल सकते!

दादाश्री : नहीं बोला जा सकता। कैसे बोल पाएँगे? जैसा है वैसा कह देना पड़ेगा वर्ना फिर भी बाहर टेढ़ा असर होगा न! देखकर बोलूँ और उससे कुछ अलग करने जाऊँ तो फिर बाहर वाले तो समझ जाएँगे कि कुछ अलग आया। यह नहीं है। भले ही बाहर वाले को बोलना न आए, लेकिन ऐसा समझते तो हैं न कि इतना देखकर बोले हैं और इतना बिना देखे।

फर्क आसमान-ज़मीन का

प्रश्नकर्ता : दादा, सामान्य बुद्धि और प्रज्ञा में क्या फर्क है?

दादाश्री : सामान्य बुद्धि का मतलब है कॉमनसेन्स। वह हमेशा ही संसार की उलझनें सुलझा देती है। संसार के सभी ताले खोल देती

है, लेकिन मोक्ष का एक भी ताला नहीं खोल सकती। आत्मज्ञान मिले बिना प्रज्ञा उत्पन्न नहीं हो सकती या फिर अगर समकित हो जाए तब प्रज्ञा की शुरुआत होती है। उस समकित में प्रज्ञा की कैसी शुरुआत होती है? बीज के चंद्रमा जैसी शुरुआत होती है और यहाँ पर तो पूरी प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद मोक्ष में ले जाने के लिए वह प्रज्ञा सचेत करती है। बार-बार सचेत कौन करता है? वह प्रज्ञा है। जबकि इन्हें क्या था? भरत राजा को सचेत करने वाले नौकर रखने पड़े थे। हर पंद्रह मिनट पर कहते थे कि 'भरत चेत, चेत', चार बार बोलते थे। देखो, आपको तो कोई सचेत करने वाला भी नहीं है, तब फिर अंदर से प्रज्ञा सचेत करती है।

इस देह में टकराव करती रहती है, हमारे अंदर की वह अज्ञाशक्ति तो कब से ही हम से पेन्शन लेकर बैठ गई है। शोर नहीं और शराबा नहीं। उस तरफ का शोर ही नहीं है न, वह पकड़ ही नहीं है न! उस अज्ञाशक्ति ने ही संसार में भटकाया है।

हम तो अबुध होकर बैठे हैं। कोई कहेगा, 'आपमें बहुत बुद्धि है?' मैंने कहा, 'नहीं भाई! अबुध।' तब कहते हैं, 'अबुध कह रहे हैं?' मैंने कहा, 'भाई, हाँ। वास्तव में अबुध हैं'। अगर बुद्धि होती, तभी फायदा-नुकसान दिखाती न!

हम तो अबुध हैं! बिल्कुल भी झंझट ही नहीं न! फायदे को नुकसान कहा न, नुकसान को फायदा कहा हमने, और फिर व्यवस्थित ऐसा है कि बुद्धि वाले के लिए भी नहीं बदलता और अबुध के लिए भी नहीं बदलता। वर्ना अगर हम 'व्यवस्थित है', ऐसा नहीं जानते तो हम भी बुद्धि को नहीं छोड़ते। अगर हमने व्यवस्थित को नहीं जाना होता न, तो हम अबुध नहीं हो पाते लेकिन हम जानते हैं कि व्यवस्थित है, तो फिर क्या परेशानी या झंझट है? अत: आपसे भी कहा, 'व्यवस्थित है'। अत: यदि बुद्धि का उपयोग नहीं करोगे तो अबुध हो जाओगे, तो चलेगा। मुझमें बुद्धि चली गई, उसके बाद मुझे यह सब समझ में आया था कि यह क्या घोटाला चल रहा है।

बुद्धि का सुनने में सावधान

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का दखल होता है, तब हमें पता चलता है कि बुद्धि ने यह दखल किया वह कौन बताता है? शुद्धात्मा बताता है या प्रज्ञाशक्ति बताती है?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो काम करता ही नहीं। प्रज्ञाशक्ति ही बताती है। शुद्धात्मा के बजाय उसके प्रतिनिधि के रूप में प्रज्ञाशक्ति ही काम करती है और वह सब बताती है और वह तो बल्कि अगर आप उस तरफ जा रहे हों न, तो वापस खींचकर यों फिर आत्मा की तरफ ले आती है। बुद्धि को अज्ञा कहा जाता है। उस अज्ञा का काम क्या है कि 'ये मोक्ष में न चले जाएँ', इसलिए वह इसी तरफ खींचती रहती है। प्रज्ञा और अज्ञा, यह झंझट इन दोनों की है और अगर हम एकाकार हो गए तो फिर हो जाता है अज्ञा का काम, फिर वह खुश हो जाती है। तब फिर प्रज्ञा थक जाती है। अगर मूल मालिक ही उसमें एकाकार हो जाए तो फिर क्या हो सकता है!

प्रश्नकर्ता : दादा, यह बुद्धि कब तक दखल करेगी इस तरह से?

दादाश्री : जब तक उसे कीमती माना है तब तक। पड़ोस में एक पागल इंसान रहता हो। पाँच गालियाँ देकर चला भी जाता है रोज़, तो जब वह गालियाँ देने आता है तब हम समझ जाते हैं कि यह पागल आया। हम चाय पीते रहते हैं और वह गालियाँ देता रहता है। इसी प्रकार से भले ही बुद्धि आए और जाए, हमें अपने में रहना है। बाकी का सब जो है वह *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना) है। आप नहीं कहोगे तब भी अलग रहेगा और अगर आप कहोगे तो भी आए बगैर रहेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं कि जब यह बुद्धि दखल कर रही हो, तब हमें उसकी नहीं सुननी चाहिए?

दादाश्री : नहीं सुनो तो बहुत अच्छा लेकिन सुने बगैर रहोगे ही

नहीं न आप। अगर कहें कि आप मत सुनना तो भी आप सुने बगैर रहोगे नहीं न! मोक्ष में जाना हो तो बुद्धि की ज़रूरत नहीं है, संसार में भटकना हो तो बुद्धि की ज़रूरत है। जिसने ऐसा सब नहीं पढ़ा हो और ब्लैन्क पेपर हो न तो उसे तो बस 'यह चंदूभाई और यह मैं', बस! हो गया बहुत अच्छा। अर्थात् यह सारा डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमें पता चलता है कि यह बुद्धि दखल कर रही है, अगर फिर भी हम बुद्धि का सुनें तो उसे क्या कहेंगे?

दादाश्री : वह तो इसलिए कि अभी तक बुद्धि का सुनने में इन्टरेस्ट है लेकिन फिर भी यह जो प्रज्ञाशक्ति है, वह उसे उसी तरफ खींचती है।

प्रश्नकर्ता : हमें पता चलता है कि बुद्धि दखल कर रही है, फिर भी हम बुद्धि का सुनते रहते हैं। उसे टेढ़ापन कहा जाएगा न?

दादाश्री : यदि सुनते रहें लेकिन उस पर अमल न करें तो हर्ज नहीं है। बाकी देखते ही रहना चाहिए कि बुद्धि क्या कर रही है! अपने स्वभाव में रहें तो झंझट नहीं है। आपमें बुद्धि ज़्यादा है लेकिन दादा की कृपा प्राप्त हो चुकी है इसलिए परेशानी नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरी बुद्धि बहुत चलती है लेकिन फिर उसे ज़रा शांत कर देता हूँ। अब मैं उसकी नहीं सुनता हूँ।

दादाश्री : उसे छूने ही मत दो। हमारी बुद्धि चली गई है तभी यह झंझट गई न! स्वतंत्र! कोई कुछ भी दखल ही नहीं करता न फिर!

प्रज्ञा स्वतंत्र है बुद्धि से!

अब प्रज्ञा जो है वह मूल आत्मा का गुण है और इन दोनों (तत्वों) का संपूर्ण डिविज़न हो जाने के बाद, पूरी तरह से मुक्त हो गए-अलग हो गए, उसके बाद फिर वह आत्मा में फिट हो जाती है। तब तक मोक्ष में ले जाने के लिए वह अलग हुई है आत्मा से।

प्रश्नकर्ता : क्या टोटल सेपरेशन हो जाने के बाद प्रज्ञा का उदय होता है और यह जो लौकिक बुद्धि है, वह चली जाती है?

दादाश्री : अलग हो जाने के बाद बुद्धि खत्म हो जाती है। प्रज्ञा का अनुभव तो पहले से ही शुरू हो जाता है, संपूर्ण अलग (जुदापन) नहीं हुआ हो तब भी। प्रतीति बैठने का अर्थ यही है कि एक तरफ प्रज्ञा शुरू हो गई। बुद्धि, बुद्धि की जगह पर रहती है और प्रज्ञा प्रकट हो जाती है।

प्रज्ञा की सिर्फ ज्ञानक्रियाएँ

प्रश्नकर्ता : इसके बाद प्रज्ञा की जो दशा आती है, उसे ज्ञान कहा जाता है?

दादाश्री : नहीं! प्रज्ञा ज्ञान का ही स्वरूप है, उसी का भाग है लेकिन जब तक यह शरीर है तब तक उसे प्रज्ञा कहा जाता है और सभी कार्य भी वही करती है। और जब शरीर नहीं रहता तब उसी को आत्मा कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि आत्मा कुछ भी नहीं करता इसलिए उसके एजेन्ट के रूप में प्रज्ञा ही सबकुछ करती है?

दादाश्री : हं, वह कर्ता के तौर पर नहीं, सिर्फ ज्ञानक्रियाएँ करती है।

बुद्धि से बड़ी है प्रज्ञा, उससे भी बड़ा है विज्ञान

प्रश्नकर्ता : अज्ञाशक्ति अर्थात् बुद्धि?

दादाश्री : हाँ, वह बुद्धि ही है लेकिन वह शक्ति बुद्धि-अहंकार वगैरह सब मिलकर बनती है। सिर्फ बुद्धि हो तब तो उसे हम बुद्धि कहेंगे, अब प्रज्ञा का अर्थ है ज्ञान। आत्मा वगैरह सब मिलकर प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रज्ञा बुद्धि से भी बड़ी चीज़ है?

दादाश्री : हाँ, वह बुद्धि से बड़ी है लेकिन विज्ञान प्रज्ञा से भी

बहुत बड़ा है लेकिन आप जिसे विज्ञान मानते हो न, वह बौद्धिक विज्ञान है। अर्थात् अभी जो चल रहा है, उस विज्ञान की बात कर रहे हो? उस विज्ञान का अर्थ आपने अपनी भाषा में समझा है। जिसे लोक भाषा में विज्ञान कहते हैं, आप उसी को विज्ञान कह रहे हो? वह तो भौतिक विज्ञान है और हम आध्यात्मिक विज्ञान की बात कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : सामान्य तौर पर लोग उसी विज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

दादाश्री : लेकिन मैं उस विज्ञान को विज्ञान नहीं कहता। मैं विज्ञान उसे कहता हूँ कि जो प्रज्ञा से भी बहुत बड़ी स्टेज है। जहाँ पर बुद्धि की ज़रूरत ही नहीं है। जब बुद्धि खत्म होने की शुरुआत होती है, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

अध्यात्म में बुद्धि का सहारा

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का सहारा कब तक है? अध्यात्म में वह हमारे लिए कब तक उपयोगी रहती है?

दादाश्री : बुद्धि अध्यात्म में कुछ हद तक ही ले जा सकती है लेकिन मोक्ष की तरफ नहीं जाने देती।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन अध्यात्म की किस स्टेज तक ले जा सकती है?

दादाश्री : कुछ हद तक का समझने की स्टेज तक ही। 'समझने' के अलावा, मोक्ष की ओर आकर्षण होने लगे, उस तरफ नहीं ले जाती। तुरंत इस तरफ खींचती है, वापस संसार की तरफ खींचती है। यदि 'उसे' मोक्ष की तरफ आकर्षण होने लगे तो बुद्धि तुरंत ही संसार की तरफ खींचती है। अतः बुद्धि तो हमें सिर्फ अध्यात्म को समझने में काम आती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मोक्ष में जाने के लिए काम नहीं आती।

दादाश्री : चलेगी ही नहीं न! काम ही नहीं आती न बुद्धि। बुद्धि तो बल्कि उसे भटका देती है। बल्कि उल्टा-सीधा सिखाती है।

प्रश्नकर्ता : कोई भी व्यक्ति जब दादा के पास आता है तो दादा

का जो ज्ञान है, वह पहले उसे बुद्धि से ही समझना है न? दादा का 'ज्ञान' लेने के बाद क्या बुद्धि की बातें पर (पराई) हो जाती है?

दादाश्री : फिर बुद्धि का वर्चस्व ही बंद हो जाता है। फिर प्रज्ञा का वर्चस्व हो जाता है। प्रज्ञा का स्वभाव है कि वह निरंतर मोक्ष में ले जाने के लिए ही सचेत करती रहती है।

जो यहाँ पर अध्यात्म को समझने के लिए आता है, वह तो बुद्धि से नहीं समझता। मेरे पास कोई व्यक्ति बुद्धि से समझ ही नहीं सकता क्योंकि मैं जो वाणी बोलता हूँ न, वह वाणी आवरणों को तोड़कर आत्मा को टच होती है और उसे खुद को समझ में आता है। बाकी, मैं जो कहता हूँ, बुद्धि उसका विश्लेषण कर ही नहीं सकती बल्कि बुद्धि थक जाती है, हमें परेशान कर देती है। उस बुद्धि का इसमें उपयोग ही नहीं करना है। उसकी ज़रूरत ही नहीं रहती।

मैं ये जो बोल रहा हूँ, ये आवरण भेदी शब्द हैं इसलिए आवरण को भेदकर उसके आत्मा तक पहुँचते हैं और मैं क्या कहता हूँ कि अगर आपका आत्मा कबूल करे तभी एक्सेप्ट करना। और आपका आत्मा कबूल करता है। इसलिए अब इसमें बुद्धि दूर ही रहती है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा का ज्ञान लेने के बाद महात्माओं को जो बार-बार दादा के पास आने का मन होता है, तो वह प्रज्ञा से है या बुद्धि से?

दादाश्री : बुद्धि और प्रज्ञा दोनों का ही काम नहीं है। प्रज्ञा और बुद्धि का काम अलग है। कुछ भाग प्रज्ञा का है। बाकी यह जो आपको यहाँ पर लेकर आता है, वह सारा काम पुण्य का है!

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ठीक है लेकिन वह भी तभी होगा न जब प्रज्ञा काम कर रही होगी?

दादाश्री : यानी कि यदि प्रज्ञा काम कर रही होती तो सभी महात्मा आ जाने चाहिए न? लेकिन सभी नहीं आ सकते। कहते हैं न, 'अभी मेरे पुण्य कुछ कम है', यदि प्रज्ञा ही उसके लिए ज़िम्मेदार होती, तब तो सभी आ जाने चाहिए न?

संसार चलाती है बुद्धि

प्रश्नकर्ता : संसार चलाने के लिए हम जितनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, वह सब अज्ञा ही कहलाती है न?

दादाश्री : वह सब अज्ञा कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो अज्ञा और प्रज्ञा के बीच खींचातानी चलती है, उसमें जो पुण्यशाली होता है, उसी की प्रज्ञा जीत जाती है न?

दादाश्री : नहीं। उसमें तो अब प्रज्ञा ही जीत जाती है क्योंकि दादा द्वारा दिया हुआ ज्ञान बुद्धि के पैर तोड़ देता है। अर्थात् बुद्धि को अपंग बना देता है। और प्रज्ञा तो मज़बूत है, बार-बार सावधान करती है। वह बात पक्की है न?

और लोग मुझसे पूछते हैं, 'दादा, क्या मुझे आत्मा का अनुभव होगा? तो कहा, 'वह तो रोज़ हो ही रहा है न और वापस दूसरा कौन सा करना है?' जब लाठी मारेंगे तब होगा। नहीं? पीछे से लाठी मारते हैं न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन अज्ञा टूटे हुए पैरों से भी बहुत ज़ोर लगाती रहती है।

दादाश्री : हाँ, अपंगों का काम ही ऐसा है। ज़्यादा उछलते हैं। हमें कहना है, 'अपंग हो गई है, बैठ जा चुपचाप। बहुत दिनों तक तूने उपकार किया है हम पर, अब बैठ। बहुत हो गया'।

प्रश्नकर्ता : दादा, ये जो *निकाली* बातें, विचार वगैरह आते हैं तब सफोकेशन होता है, दम घुटता है। क्या उस समय अज्ञा का ज़ोर रहता है?

दादाश्री : अज्ञा का ज़ोर रहता है न!

प्रश्नकर्ता : उसी कारण सफोकेशन होता है?

दादाश्री : नहीं। ऐसा नहीं है कि सिर्फ अज्ञा से ही होता है।

अगर अंदर मन भी वैसा ही हो चुका हो न, तब भी ज़ोर लगाती है। ज़्यादातर तो बुद्धि ही ज़ोर लगवाती है।

प्रश्नकर्ता : जिज्ञासा प्रज्ञा का भाग कहलाती है या बुद्धि का?

दादाश्री : बुद्धि का। प्रज्ञा तो होती ही नहीं है न! यदि प्रज्ञा उत्पन्न हो जाए तो ज्ञानी कहा जाएगा। लेकिन जिज्ञासु की बुद्धि कैसी होती है? समझदारी वाली, गढ़ी हुई बुद्धि, सम्यक् बुद्धि होती है।

क्या सम्यक् बुद्धि और प्रज्ञा एक ही हैं?

जितने समय तक मेरे साथ बैठे, बुद्धि उतनी ही सम्यक् होती जाएगी लेकिन प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होगी। प्रज्ञा तो ज्ञान के बिना उत्पन्न हो ही नहीं सकती। जिसे स्थितप्रज्ञ दशा कहते हैं न, वह तो जब क्रमिक मार्ग में कभी ज्ञान की उच्च दशा तक पहुँचने पर प्रकाश दिखाई देता है, वह है। जबकि यहाँ पर तो हमारे ज्ञान देते ही प्रज्ञा शुरू हो जाती है। यहाँ मेरे पास आकर बैठे न, तो जिसने ज्ञान नहीं लिया हो तो भी उसकी बुद्धि सम्यक् हो जाती है।

प्रज्ञा डायरेक्ट प्रकाश है और सम्यक् बुद्धि इनडायरेक्ट प्रकाश है अर्थात् प्रज्ञा डायरेक्ट आत्मा का ही भाग है। जबकि सम्यक् बुद्धि वैसी नहीं है। फिर भी उसका भी निबेड़ा तो लाना ही पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सम्यक् बुद्धि उपकारी तो है न?

दादाश्री : जब तक इस स्टेशन तक नहीं पहुँचे हैं, तब तक उपकारी है। इस स्टेशन पर पहुँचने के बाद, इससे आगे जाने के लिए वह उपकारी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञान लेने के बाद सम्यक् बुद्धि नहीं रहती या फिर रहती है?

दादाश्री : ज्ञान लेने के बाद तो प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद समभाव से *निकाल* करने में प्रज्ञा हेल्प करती है। अत: सम्यक् बुद्धि

और प्रज्ञा में बहुत अंतर है! सम्यक् बुद्धि तो बुद्धि कहलाती है और प्रज्ञा तो एक प्रकार से परमानेन्ट चीज़ का भाग है।

प्रश्नकर्ता : क्या सम्यक् बुद्धि पौद्गलिक कहलाती है? वह भी एक भाग तो है ही न?

दादाश्री : वह *पुद्गल* में नहीं आता क्योंकि *पुद्गल* में प्रकाश नहीं होता। यह भले ही कम है लेकिन प्रकाश तो है न! लेकिन न तो यह चेतन में आता है, न ही *पुद्गल* में।

हालांकि शास्त्रों में इसे चेतन लिखा गया है लेकिन उसमें चेतन नहीं होता। यदि इसे चेतन कहोगे तो वास्तविक चेतन नहीं मिल पाएगा। अब वह सापेक्षभाव से लिखा गया है। लोगों को सापेक्षभाव समझ में नहीं आता। लोगों में समझने की इतनी शक्ति नहीं होती है। मैं समझ जाता हूँ कि यह सापेक्षभाव से लिखा हुआ है।

सम्यक् बुद्धि में मालिकी भाव

प्रश्नकर्ता : सम्यक् बुद्धि और प्रज्ञा में मूल अंतर क्या है?

दादाश्री : बुद्धि अर्थात् बुद्धि। जब तक बुद्धि है, तब तक उसका मालिक है। बुद्धि मालिकीपने वाली होती है। प्रज्ञा का कोई मालिक नहीं है। बुद्धि तो अगर विपरीत हो, तब भी वह मालिकी वाली होती है। सम्यक् बुद्धि हो तो वह भी मालिकी वाली।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् बुद्धि हो, लेकिन यदि मालिकी वाली हो तो नुकसान पहुँचाती है या सबकुछ सही ही बताती है?

दादाश्री : अवश्य, नुकसान ही करती है न! बुद्धि तो न जाने कब पलट जाए, उसके बारे में क्या कहा जा सकता है? जो सम्यक्ता की भजना करता है, वह कब विपरीतता को भजने लगे, वह कहा नहीं जा सकता। और सम्यक् बुद्धि का मतलब क्या है? संसार में सम्यक् बुद्धि नहीं होती। सम्यक् बुद्धि पुस्तक पढ़ने से उत्पन्न नहीं हो सकती। सम्यक्

बुद्धि तो, जब वह ज्ञानीपुरुष की बातें सुने, तब उसकी बुद्धि सम्यक् होती है। हाँ, फिर वह बुद्धि अटैकिंग स्वभाव या ऐसा कुछ उल्टा-सुल्टा नहीं करती। जो अटैक न करे, हमला न करे, वह कहलाती है सम्यक् बुद्धि। चाहे कैसे भी संयोग हों लेकिन हमला न करे, वह कहलाती है सम्यक् बुद्धि और जो प्रत्येक संयोग में हमला करे, वह कहलाती है विपरीत बुद्धि।

जिस तरह से हार्ट का अटैक आता है न, उसी तरह उसे भी अटैक आता है। बुद्धि को अटैक नहीं आता? चंदूभाई साहब (फाइल नं-1) थे विकट, नहीं देखा आपने?

प्रश्नकर्ता : देखा है। अटैक तो आते थे लेकिन वे अटैक दिखाई नहीं देते थे। आपके पास आकर जब एक्स-रे निकाला तब पता चला कि अंदर का ऐसा सब है।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। तभी पता चलेगा न! जब तक देखा नहीं है, तब तक इन दूसरी चीज़ों को, वह तो ऐसा ही जानता है कि यही अपना है और यही मालिकी। उसमें और क्या अंतर है? हर्ज क्या है? सभी के यहाँ है, वैसा ही अपने यहाँ है। उसमें फिर विभाग बनाता है कि यह अच्छा है और यह खराब। यहाँ पर तो अच्छा-बुरा है ही नहीं न! यहाँ पर तो सनातन की तरफ ले जाने वाली चीज़ें हैं। यह मिथ्या है न, उसमें से सनातन की तरफ ले जाने वाली चीज़ें हैं। बातचीत, व्यवहार वगैरह सब सनातन की ओर ले जाने वाली चीज़ें हैं। आप जब उसे देखते हो तब आपको ऐसा लगता है कि यह अलग है। यह, वह वाला नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् बुद्धि गलतियाँ नहीं करवाती?

दादाश्री : अटैक नहीं करवाती।

प्रश्नकर्ता : और जागृति गलतियाँ दिखाती है?

दादाश्री : जागृति तो सभी कुछ दिखाती है। अंदर कोई भी आया-

गया हो तो उसे दिखाती है। जागृति तो केवलज्ञान का भाग है और जब तक जागृति उत्पन्न नहीं होती, तब तक जगत् खुली आँखों से निद्रा में है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार प्रज्ञा सचेत करती है, उसी प्रकार सम्यक् बुद्धि क्या हेल्प करती है?

दादाश्री : वह भी वैसा ही काम करती है लेकिन वह तो खुद ही विनाशी है न! इसलिए कोई बहुत बड़ी चेतावनी नहीं दे सकती।

प्रश्नकर्ता : बस इतना ही है कि हिताहित का भान रखती है।

दादाश्री : यह तो वही बुद्धि है, यह सांसारिक बुद्धि होती है न, वैसी ही। वह भी, जब ज्ञानीपुरुष के पास बैठे रहें तब फिर वह बुद्धि सम्यक् होती जाती है। सम्यक् होती जाती है बुद्धि! बाकी, सम्यक् तो सिर्फ ज्ञान ही है, लेकिन यह बुद्धि सम्यक् हो जाती है।

अव्यभिचारिणी बुद्धि तो अशांति में भी शांति करवा देती है, प्रज्ञा प्रकट होने से पहले की स्टेज।

स्थितप्रज्ञ दशा और प्रकट प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा व स्थितप्रज्ञ, इन शब्दों में से 'स्थितप्रज्ञ' क्या है, यह समझाइए?

दादाश्री : खुद को सही तरह से पहचानने की जो समझ है न, उसमें स्थिर होना, वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा शब्द से उन शास्त्रों की तरफ ध्यान जाता है कि आत्मा के बारे में जो ज्ञान दिया गया हो, उसे हमने ग्रहण कर लिया तो फिर प्रज्ञा उत्पन्न होती है। आपने अभी जो बात कही कि प्रज्ञा तो स्वाभाविक ही है।

दादाश्री : वह प्रज्ञा स्वभाविक है न! यह स्थितप्रज्ञ अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं चंदूभाई हूँ' इससे तो अज्ञदशा हुई है। फिर जब आपके पास आऊँ और आप हमें कहें, 'आप शुद्धात्मा हो' तो उससे स्थितप्रज्ञ बनते हैं।

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ भी नहीं, स्थितप्रज्ञ से आगे की बात है। स्थितप्रज्ञ, वह तो एक दशा है। प्रज्ञा उत्पन्न होने वाली हो, उससे पहले यह दशा आती है। प्रज्ञा शुरू होने वाली हो, तब यह दशा आती है। जो संसार में साक्षीभाव वाली दशा होती है।

प्रज्ञा तो आत्मा प्राप्त होने के बाद उत्पन्न होती है और स्थितप्रज्ञ दशा आत्मा प्राप्त होने से पहले आती है। व्यवहार में वह स्थिति अहंकार सहित होती है लेकिन वह व्यवहार बहुत सुंदर होता है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में प्रज्ञा को आत्मा में स्थिर हो चुकी बुद्धि कहते हैं, तो क्या अपने यहाँ प्रज्ञा का मतलब ज्ञाता-दृष्टापना है?

दादाश्री : वह आत्मा ही है। वह आत्मा का ही भाग है जबकि अन्य कहीं तो स्थिर बुद्धि को स्थितप्रज्ञ दशा कहते हैं। वह प्रज्ञा नहीं है। अर्थात् ऐसी दशा, जिसमें बुद्धि स्थिर हो गई है।

स्थितप्रज्ञ होने के बाद भी कभी अज्ञाशक्ति सवार हो जाती है। स्थितप्रज्ञ की मदद से चली भी जाती है लेकिन स्थितप्रज्ञ दशा में उसके सवार होने का भय भी रहता है। प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होने के बाद भय नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् स्थितअज्ञ दशा में से बाहर निकलने के बाद ही यह स्थितप्रज्ञ दशा प्राप्त हो सकती है?

दादाश्री : नहीं! उसमें तो बुद्धि स्थिर हो जाती है। अज्ञा चंचल होती है। अतः जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है, वैसे स्थितप्रज्ञ। प्रज्ञा तो वहाँ पर है ही नहीं, स्थितप्रज्ञ दशा है। फिर भी उसे प्रज्ञा कहते हैं, लेकिन वह क्रमिक में है। यह प्रज्ञा तो, प्योर आत्मा का ही अलग हुआ एक भाग है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन टुकड़े नहीं किए जा सकते हैं न आत्मा के, प्रतिष्ठित आत्मा और मूल आत्मा के?

दादाश्री : वह उलझ जाएगा बल्कि। सभी कुछ धारण करके रखने की शक्ति हो, तब जाकर वह उसके सभी विभागों सहित जान सकता है। उतनी जागृति होनी चाहिए न! चारों तरफ *लक्ष* (जागृति) में रखना चाहिए। हम उसका एक-एक अंश जानते हैं।

प्रश्नकर्ता : इस स्थितप्रज्ञ की जो बात है, वह ज़रा और विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : वह तो जब कोई व्यक्ति शास्त्रों का खूब अध्ययन करता है, संतों की सेवा करता है, खूब मेहनत से व्यापार करता है और व्यापार में नुकसान हो जाता है, तब इन सभी प्रकार के अनुभवों में से पार निकलता जाता है। फिर आगे पहुँचकर जब बुद्धि स्थिर हो जाती है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। इधर से हवा आए तो भी यों हिल नहीं जाता, इधर से आए तो भी यों हिल नहीं जाता। ऐसी स्थिर बुद्धि हो तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

स्थितप्रज्ञ दशा बहुत ही सद्विवेक वाली जागृति दशा है। वह अनुभव करते-करते आगे बढ़ता है। जनकविदेही की दशा स्थितप्रज्ञ से भी बड़ी थी।

स्थितप्रज्ञ दशा की तुलना में प्रज्ञाशक्ति बहुत उच्च दशा है। स्थितप्रज्ञ दशा में तो वह व्यवहार में एक नंबर होता है। दूसरा, जिसके प्रति लोगों की तरफ से निंदा जैसी चीज़ न रहे, वह अपने आपको स्थितप्रज्ञ मान सकता है लेकिन यह प्रज्ञा तो मोक्ष में ही ले जाती है। स्थितप्रज्ञ को तो अभी मोक्ष में जाने के लिए बहुत लंबा मार्ग तय करना पड़ेगा।

अक्रम में तो बहुत उच्च दशा

प्रश्नकर्ता : तो यह स्थितप्रज्ञ, वह प्रज्ञा से पहले की स्थिति है?

दादाश्री : यह प्रज्ञा से पहले की स्थिति है लेकिन लोगों ने तो

इसे बहुत बड़ी चीज़ बना दिया है। स्थितप्रज्ञ तो इससे निम्न स्थिति है। उसके बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। पहले स्थितप्रज्ञ बनता है, उसके बाद धीरे-धीरे-धीरे प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मुझे ऐसा सवाल होता है कि स्थितप्रज्ञ का मतलब है प्रज्ञा प्राप्ति के बाद उसमें स्थिर होना, तो फिर स्थितप्रज्ञ उसके बाद की स्थिति हुई?

दादाश्री : नहीं, वह बाद की स्थिति नहीं है। पहले की स्थिति है। वह (स्थिति) स्थितप्रज्ञ हुई कि मानो स्थिर ही हो गया। स्थितप्रज्ञ का मतलब तो प्रज्ञा ज़रा-ज़रा सी, एक-एक अंश करके आती है और वह खुद उसमें स्थिर होता जाता है। जबकि हम जब यहाँ पर ज्ञान देते हैं, तब तो प्रज्ञा सर्वांश उत्पन्न हो जाती है।

यह जो स्थितप्रज्ञ है, उसकी विपरीत दशा है स्थितअज्ञ। 'मैं चंदूभाई हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', वह सारी स्थितअज्ञ दशा है। यह जो अज्ञा छूटी और प्रज्ञा उत्पन्न हुई, उसके बाद प्रज्ञा में दुःख नहीं रहता क्योंकि वह खुद के सनातन सुख का भोगी बन गया।

प्रश्नकर्ता : गीता में जिस स्थितप्रज्ञ दशा की बात कही गई है, वह यही है न?

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ से तो बहुत आगे की स्थिति है यह।

प्रश्नकर्ता : उससे भी आगे?

दादाश्री : बहुत उच्च स्थिति है यह तो। अद्‌भुत स्थिति है यह तो! कृष्ण भगवान की जो स्थिति थी, वह स्थिति है यह। यह तो क्षायक समकित की स्थिति है। कृष्ण भगवान को क्षायक सम्यक्त्व था यानी कि मिथ्यात्व दृष्टि पूरी तरह से खत्म हो चुकी थी।

सम्यक् दृष्टि अर्थात् आत्मा की ही दृष्टि उत्पन्न हुई है, अतः यह तो बहुत उच्च दशा है। स्थितप्रज्ञ वगैरह तो इससे बहुत निम्न कोटि की दशा है लेकिन लोगों को स्थितप्रज्ञ समझ में नहीं आया।

स्थितप्रज्ञ दशा भी नहीं हुई है क्योंकि लोगों को स्थितप्रज्ञ किस प्रकार से होता है? उसे ऐसा लगता है कि 'मैं आत्मा हूँ' कुछ देर के लिए उसमें स्थिर रह पाए और फिर वापस विचलित हो जाए, तो वह स्थितप्रज्ञ है। प्रज्ञा में स्थिर होने जाता है और वापस विचलित हो जाता है। उसमें निरंतर रह ही नहीं पाता न! पूरा साइन्स हाथ में नहीं आता न! क्योंकि चार वेद पढ़ने के बाद वेद इटसेल्फ कहते हैं, 'दिस इज़ नॉट देट। दिस इज़ नॉट देट। दिस इज़ नॉट देट'। तो व्हॉट इज़ देट? तब कहते हैं 'गो टू ज्ञानी'। क्योंकि उस अवक्तव्य, अवर्णनीय को शब्दों में कैसे उतारा जा सकता है? आत्मा शब्दों में कैसे उतारा जा सकता है? इसलिए उसे अवक्तव्य कहा है, अवर्णनीय कहा है।

जो नहीं खाता, नहीं पीता और नहीं बोलता, वह है आत्मा

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ की भाषा क्या होती है? वह किस प्रकार का भोजन खाता है और क्या पीता है?

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ की दशा बहुत उच्च है, भाषा उच्च है लेकिन उसमें कभी टेढ़ा भी बोल लेता है। लो! क्या खाता है? उस दशा का और खाने-पीने का लेना-देना ही क्या है? क्योंकि खाने वाला तो बिल्कुल अलग ही है। खाने वाला मुक्त होने वाले से बिल्कुल अलग ही है। जो बंधा हुआ है, खाने वाला उससे बिल्कुल अलग है। जो मुक्त होने की इच्छा रखता है, खाने वाला उससे भी अलग है। फिर उसे लेना-देना ही क्या है खाने वाले से? यह सूक्ष्म बात कौन बताए? कोई बता सकता है? आपको क्या लगता है? अलग है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : अलग है।

दादाश्री : खाने वाला अलग ही है इसीलिए तो हमने भेद बताया। भाई, कोई परेशानी नहीं है। आप जो भी खाते हो, उससे हमें कोई परेशानी नहीं है। तो कहते हैं 'कपड़े पहनें?' 'फर्स्ट क्लास कपड़े पहनना'। शरीर ही पहनता है न?' इयरिंग भी पहनना। 'बालियाँ पहनें?' तो कहा 'बाली भी पहनना'। ये इस प्रकार से अलग हैं, ऐसा देखने के

बाद ही हम यह बात बताएँगे न, नहीं तो बताएँगे ही नहीं न! क्योंकि यह देह मुक्त होने वाले से बिल्कुल अलग है। खाने वाला, पीने वाला, रंग-राग करने वाला, चाय-पानी पीने वाला, टेस्ट से पीने वाला, मूँछ पर हाथ फेरने वाला, सभी अलग हैं। जो बंधन में है, उससे भी वह अलग ही है। बंधा हुआ तो ऐसा कुछ करेगा ही नहीं न? बंधा हुआ तो 'बंधन' को जानता है। जो बंधन को जानता है और बंधन को अनुभव करता है, उसे कहते हैं, बंधा हुआ। ये सभी लोग तो बंधे हुए नहीं कहलाएँगे न? बंधे हुए यह जानते ही नहीं हैं। हम बंधे हुए हैं, ऐसा उन्हें भान ही नहीं है।

यह जो स्थितप्रज्ञ शब्द है, वह व्यवहारिक शब्द है।

बुद्धि इतनी अधिक स्थिर हो चुकी होती है कि चाहे कैसी भी मुश्किल आए लेकिन उसमें ज़रा सा भी नहीं डरता। बुद्धि का विभाग है वह। बुद्धि स्थितप्रज्ञ तक पहुँच चुकी है और प्रज्ञा अभी तक प्रकट नहीं हुई है। सभी जीवों की अज्ञ दशा है।

निन्यानवे तक स्थितप्रज्ञ और प्रज्ञा है सौ पर

कृष्ण भगवान ने जिस स्थितप्रज्ञ दशा का वर्णन किया था, वह प्रज्ञा से भी निम्न दशा है।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ निम्न दशा है?

दादाश्री : प्रज्ञा से निम्न दशा है। स्थितप्रज्ञ दशा अर्थात् बुद्धि से होते, होते, होती जाती है। फिर वह बुद्धि भी कौन सी? अव्यभिचारिणी बुद्धि। कृष्ण भगवान ने दो प्रकार की बुद्धि के बारे में बताया था। व्यभिचारिणी और अव्यभिचारिणी। अव्यभिचारिणी बुद्धि स्थिर हो जाती है, अस्थिर तो है ही अभी। अस्थिर अर्थात् इमोशनल। स्थिर होती जाती है दिनों दिन। स्थिर होने के बाद जैसे संख्या में सतानवे के बाद अठानवे, निन्यानवे गिना जाता है और सौ को मुख्य चीज़ कहा जाता है। तब जाकर पूर्णाहुति होती है, हन्ड्रेड परसेन्ट, सेन्ट परसेन्ट है, ऐसा कहते हैं। यह जो स्थितप्रज्ञ दशा है, वह बुद्धि की स्थिरता का सेन्ट परसेन्ट है और प्रज्ञा तो है ही फुल चीज़, मूल वस्तु है।

प्रश्नकर्ता : 'स्थितप्रज्ञ दशा आत्मा की अनुभव दशा नहीं है', वह समझाइए।

दादाश्री : जब प्रज्ञा पूर्ण दशा तक पहुँचती है, तब आत्मानुभव होता है। स्थितप्रज्ञ, जब तक 'स्थित' विशेषण है, तब तक वह अनुभव नहीं कहा जा सकता, लेकिन जब विशेषण खत्म हो जाए और सिर्फ प्रज्ञा रहे, तब अनुभव है।

जो बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं। उसके परिणाम बदलते नहीं हैं और जब विशेषण खत्म हो जाते हैं, तब प्रज्ञा कहलाती है। तब अंतिम दशा में अनुभव होता है। निन्यानवे तक पहुँचता है, तब तक स्थितप्रज्ञ और जब सौ तक पहुँच जाए, तब प्रज्ञा।

मोह मिटा और हुए स्थिर अचल में

प्रश्नकर्ता : अर्जुन कहते हैं कि 'नष्टो मोह स्मृतिलब्ध स्थितोस्मि'।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह तो स्थिर हो ही गया था न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो मुझे यह जानना है कि किस प्रकार से?

दादाश्री : जिसमें इतने लक्षण आ जाएँ, जिसका मोह नष्ट हो गया है, तो वह स्थिर होने की निशानी हुई। दूसरी उसे यह हेल्प हुई कि स्मृतिलब्धा हो गई अर्थात् दूसरी हेल्प हुई। इन सभी कारणों से वह स्थिर हो रही है और कुछ-कुछ स्थिर रहती है। तभी से उसे स्थितप्रज्ञ दशा कहा गया है। यदि इस प्रकार से स्थिर रह सके तो। हालांकि वे ऐसा कहते हैं कि 'मेरा मोह खत्म हो गया है'। वह तो बहुत उच्च दशा कही जाती है।

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर सामान्य तौर पर सभी की स्थिति लट्टू जैसी है, तो ये अर्जुन भी मनुष्य ही थे और उन्होंने 'स्थितोस्मि' कहा था। उसमें लिखा गया है कि उन्होंने कृष्ण भगवान से कहा, 'हे अच्युत! आपकी कृपा से मैं स्थिर हो गया हूँ'। तो क्या मनुष्यों में ऐसी विरोधाभासी स्थिति आ सकती है?

दादाश्री : लट्टू खत्म हो गया और वह खुद रियल में आ गया। प्रकृति के रहते हुए भी रियल में आ गया। क्योंकि देहाध्यास में उसकी जो मान्यता थी कि 'मैं यह हूँ', वह मान्यता पूरी ही टूट गई। क्योंकि मोह नष्ट हो गया था और मान्यता इसमें आ गई कि 'मैं यह शुद्धात्मा हूँ'। यह प्रकृति सचल है और मूल आत्मा अचल है, अतः सचल में जो मान्यता थी, वह खत्म हो गई और अचल में मान्यता उत्पन्न हुई, अतः फिर वह स्थिर हो गया।

जब तक शंका, तभी तक स्थितअज्ञ

इन लोगों को खुद की कितनी भूलें दिखाई देती हैं?

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा नहीं हो तो खुद की भूलें नहीं दिखाई देंगी!

दादाश्री : हाँ, और फिर दूसरी तरफ कितने ही लोग ऐसा भी पूछते हैं कि, 'क्या मेरी दशा स्थितप्रज्ञ है?' मैंने कहा, ऐसा क्यों पूछना पड़ा? आपको शंका हुई? अगर शंका हो तो मान लेना कि 'आपकी दशा स्थितअज्ञ है'। तो यह पोल (ध्रुव) सामने की तरफ का नहीं है न! नोर्थ तो गया। नोर्थ पोल (उत्तर ध्रुव) हाथ में नहीं आए तो इसका मतलब क्या वह साउथ पोल पर नहीं है?

प्रश्नकर्ता : स्थितअज्ञ का अर्थ समझाइए।

दादाश्री : अज्ञान में ही मौज-मज़े मानता है और उसी में स्थित रहता है। यदि अज्ञान में अस्थिर हो जाए तो समझना कि आगे बढ़ा। अज्ञान में यदि अस्थिर हो जाए तो किसमें आगे बढ़ा? तब कहा जाएगा कि वह प्रज्ञा की तरफ आगे बढ़ा।

स्थितप्रज्ञ दशा से आगे

प्रश्नकर्ता : 'स्थितप्रज्ञ दशा से बहुत-बहुत आगे कुछ है', वह समझाइए।

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ दशा, वह एक प्रकार की ऐसी दशा है कि

वैकुंठ में जाते हुए बुद्धि स्थिर हो जाती है। कृष्ण भगवान का जो वैकुंठ है, कृष्ण भगवान की उस बात को सुनते-सुनते, जैसे-जैसे गीता का अभ्यास बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे बुद्धि स्थिर होती जाती है और जिसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसे भगवान ने स्थितप्रज्ञ कहा है। उससे आगे तो बहुत कुछ जानना बाकी है। अभी तो वह इस एक जगह का वीज़ा पाने के लायक हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् शुद्ध समकित और परमार्थ समकित?

दादाश्री : नहीं। वह शुद्ध समकित नहीं है। शुद्ध समकित से भी निम्न कक्षा का समकित है। अभी तो, अगर कभी उल्टे संयोग मिल जाएँ तो उल्टा भी कर ले, लेकिन बुद्धि स्थिर हो गई है इसलिए डिगेगा नहीं।

हाँ! अतः समकित कब है? उसमें कुछ उल्टा नहीं घुसे, तब समकित कहा जाएगा। कोई भी संयोग उसे हिला नहीं सके, तब समकित कहा जाएगा। जबकि स्थितप्रज्ञ को संयोग हिला देते हैं इसलिए उसे भय रहता है। लेकिन बुद्धि स्थिर हो जाने के बाद समझदारी आती है। बहुत उच्च प्रकार की समझदारी आ जाती है। अभी स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य बहुत ही कम होंगे, शायद ही कोई होंगे। हिंदुस्तान में एक दो, वर्ना वह भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ वाले में प्रज्ञा कभी जागृत ही नहीं हुई थी?

दादाश्री : नहीं। इस काल में स्थितप्रज्ञ नहीं होते, सत्युग में स्थितप्रज्ञ हो सकते हैं। इस काल में तो अगर बेटी कॉलेज जा रही हो और अगर शाम को न आए तो सोचते हैं कि 'क्यों नहीं आई?' तो पता चलता है, 'उसने शादी कर ली'। बोलो, फिर बुद्धि स्थिर कैसे रहेगी? और उन दिनों यों शादी नहीं कर लेते थे। ऐसा नहीं होता था। कोई परेशानी ही नहीं आती थी। अभी तो बुद्धि स्थिर कैसे रह सकती है? पलभर में बेटी शादी कर लेती है। पलभर में पत्नी डिवॉर्स ले लेती है, ऐसे ज़माने में इंसान की बुद्धि स्थिर कैसे रह सकती है? नहीं रह सकती। यह तो धन्य है इस अक्रम विज्ञान को कि सभी का कल्याण

कर दिया। 50,000 लोगों का कल्याण हो गया। ज़रा कम ज़्यादा रहा होगा लेकिन कल्याण तो ज़बरदस्त हो गया।

अहंकार का स्थान स्थितप्रज्ञ में?

प्रश्नकर्ता : क्या स्थितप्रज्ञ अहंकार का लक्षण है?

दादाश्री : अहंकार होते हुए भी स्थितप्रज्ञ हो जाए, यों दोनों साथ में हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : और नहीं भी हो सकता?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है, होता ही है।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ और वीतराग के बीच की डिमार्केशन लाइन बताइए। दोनों के बीच की लक्ष्मणरेखा...

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ अर्थात्, अहंकार की उपस्थिति में संसार का सार-असार निकालकर बुद्धि का स्थिर हो जाना, वह स्थितप्रज्ञ है। स्थितप्रज्ञ दशा को विवेक ही माना जाएगा। वह सार-असार के विवेक को समझता है।

प्रश्नकर्ता : और क्या वीतरागता में अहंकार की हाज़िरी नहीं है?

दादाश्री : नहीं! सार-असार निकाला इसलिए अब वीतरागता की ओर चला। उसने सार निकाल लिया यहाँ पर कि इसमें सुख नहीं है, लेकिन अहंकार की उपस्थिति में। अब यहाँ उसे आगे जाने का रास्ता मिल गया, यहाँ से शुरुआत हो गई।

अब अपने यहाँ पर स्थितप्रज्ञ नहीं है, प्रज्ञा है। स्थितप्रज्ञ अहंकारसहित होता है, और यह प्रज्ञा अहंकाररहित होती है। अतः स्थितप्रज्ञ होने के बाद तो बहुत समय बाद 'वस्तु' (आत्मा) की प्राप्ति होती है और प्रज्ञा तो कुछ जन्मों में, एक-दो जन्मों में मोक्ष में ले जाती है।

फर्क, स्थितप्रज्ञ और वीतराग में

प्रश्नकर्ता : तो फिर स्थितप्रज्ञ और वीतराग में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। स्थितप्रज्ञ का मतलब क्या है कि खुद अपनी बुद्धि से सोच-सोचकर स्थिर होता है। और क्योंकि स्थिर हो जाता है इसलिए खुद अपने सॉल्यूशन ला सकता है। लेकिन वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। सिर्फ इतना ही है कि स्थितप्रज्ञ ने बुद्धि को स्थिर कर लिया है। अन्य कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहा गया है कि उसमें भी राग-द्वेष रहितता है, वीतराग जैसी।

दादाश्री : नहीं, वह राग-द्वेष रहित दशा नहीं है। लेकिन हर एक प्रश्न का सॉल्यूशन ले आता है। इसीलिए वह किसी पर राग-द्वेष नहीं करता न! सॉल्यूशन आ जाए तो फिर कौन करेगा? सबकुछ बुद्धि से। अव्यभिचारिणी बुद्धि की स्थिरता को स्थितप्रज्ञ कहा गया है। जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है। लोगों की बुद्धि अस्थिर होती है। स्थिर हो चुकी बुद्धि ही स्थितप्रज्ञ कहलाती है क्योंकि बहुत बढ़ते-बढ़ते, अज्ञा में से आगे बढ़ते-बढ़ते अंत में वह प्रज्ञा तक पहुँचती है।

अभी तो उसे वीतरागता की स्टडी करनी है, वीतराग मार्ग की स्टडी करनी है। वीतराग मार्ग हाथ में आ गया है और धीरे-धीरे वीतरागता बढ़ती जाएगी। स्थितप्रज्ञ के स्टेशन पर आने के बाद वीतरागता का गुण बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : और स्थितप्रज्ञ का संबंध दया से है या करुणा से?

दादाश्री : हाँ! दया से है। करुणा नहीं होती। वीतराग भगवान के अलावा अन्य किसी में करुणा नहीं हो सकती। करुणा का अर्थ क्या है? राग भी नहीं और द्वेष भी नहीं। चूहे को बचाने में राग नहीं और बिल्ली के प्रति द्वेष नहीं, उसे कहते हैं करुणा।

ये खोज, प्रज्ञा से या बुद्धि से?

प्रश्नकर्ता : ये साइन्टिस्ट जो खोज (रिसर्च) वगैरह करते हैं, वह प्रज्ञा से है? नहीं तो फिर वह क्या होता है? बुद्धि से?

दादाश्री : नहीं, उनमें दर्शन होता है। दर्शन के बिना तो कभी साइन्टिस्ट बना ही नहीं जा सकता। वह दर्शन कुदरती है। कुदरत ने उसे हेल्प की, वह उसका दर्शन ही है।

प्रश्नकर्ता : ये जो 'अखो' वगैरह सारे संत हो चुके हैं, उनमें प्रज्ञा थी या नहीं?

दादाश्री : नहीं, वह दर्शन कहलाता है। प्रज्ञा नहीं कहलाती। प्रज्ञा, आत्मा प्राप्त होने के बाद प्रज्ञा कहलाती है। लौकिक भाषा में उसे प्रज्ञा कहते हैं लेकिन लौकिक का यहाँ पर चलेगा नहीं न! लौकिक का यहाँ क्या करना है? लौकिक को वहाँ पर पैसे नहीं देते!

प्रज्ञा सावधान करती है अहंकार को

प्रश्नकर्ता : जब कुछ विचार आते हैं, तब हम उनसे कहते हैं कि 'तेरा यह सब गलत है'। अब, यह कहने वाला कौन है? आपसे मिलने के बाद! पहले तो ऐसा कुछ था ही नहीं। तो वह मार्गदर्शन कौन देता है? प्रज्ञा या बुद्धि?

दादाश्री : हमें प्रज्ञा सचेत करती है क्योंकि अब मोक्ष में जाने का वीज़ा मिल गया है। उसके बाद यदि मनुष्य अहंकार करके उस प्रज्ञा को दबा देता है, तो फिर वापस पागलपन करता है।

प्रश्नकर्ता : अंदर जो यह प्रज्ञा सचेत करती है, तो वह मन द्वारा सचेत करती है या बुद्धि द्वारा सचेत करती है? चित्त द्वारा या अहंकार द्वारा सचेत करती है?

दादाश्री : प्रज्ञा अहंकार को सचेत करती है, अन्य किसी को नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या डायरेक्ट सचेत करती है?

दादाश्री : डायरेक्ट! अन्य किसी को अधिकार ही नहीं है न! अहंकार का कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक)नहीं है। अहंकार का कोई *ऊपरी* नहीं है, फिर भी पूरे दिन वह करता तो है सारा बुद्धि का कहा हुआ।

प्रश्नकर्ता : यह प्रज्ञा जब अहंकार को सचेत करती है, तब बुद्धि क्या करती है? तब फिर क्या बुद्धि अलग रहती है?

दादाश्री : बुद्धि को क्या लेना-देना? बुद्धि नाम ही नहीं लेती।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कुछ भी नहीं?

दादाश्री : बुद्धि का कार्य ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा के हाज़िर हो जाने पर बुद्धि का अस्तित्व ही नहीं रहता न?

दादाश्री : अतः फिर बुद्धि उसकी हेल्प करती है अहंकार के कहे अनुसार।

प्रश्नकर्ता : अच्छा, तो फिर इसे सीधा भी बुद्धि ही कर देती है?

दादाश्री : फिर सभी मिलकर सीधा कर देते हैं। सिर्फ बुद्धि ही नहीं, सभी।

दादा का निदिध्यासन करवाए प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : आज सुबह सामायिक में आपका ही निदिध्यासन रहा। वह क्या है? मैं उसे शुद्ध चित्त समझता हूँ।

दादाश्री : नहीं, वह सारा काम तो प्रज्ञाशक्ति का है। शुद्ध चित्त तो आत्मा खुद ही है। शुद्धात्मा ही शुद्ध चिद्रूप (चित्त स्वरूप) है। यह सब तो प्रज्ञा करती है।

प्रश्नकर्ता : सभी जगह दादा बैठे हुए दिखाई देते हैं। वह क्या है?

दादाश्री : वही प्रज्ञा है न। अज्ञाशक्ति तो दूसरा ही दिखाती है। जो लक्ष्मी दिखाती है, स्त्रियाँ दिखाती है, वह अज्ञाशक्ति है। अज्ञाशक्ति स्त्री का निदिध्यासन करवाती है और प्रज्ञाशक्ति ज्ञानीपुरुष का। ज्ञानीपुरुष अर्थात् आत्मा का निदिध्यासन करवाती है।

प्रश्नकर्ता : अब जिसने अभी ज्ञान लिया है, उसे भी स्त्री का निदिध्यासन हो जाता है तो क्या वह अज्ञा डिपार्टमेन्ट है?

दादाश्री : वह तो चंदूभाई का भाग है, उससे हमें क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : नहीं, तो फिर उसमें चित्त का फंक्शन कहाँ पर आया?

दादाश्री : वह तो चंदूभाई का भाग है, अशुद्ध चित्त है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह प्रज्ञा ज्ञानीपुरुष का जो निदिध्यासन करवाती है, उसमें चित्त का फंक्शन कहाँ आया?

दादाश्री : उसमें चित्त की ज़रूरत ही नहीं है। प्रज्ञाशक्ति खुद ही देख सकती है।

प्रश्नकर्ता : इसे एक्ज़ेक्ट फोटोग्राफी कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, एक्ज़ेक्ट! फोटोग्राफी से भी अच्छा। फोटोग्राफी में इतना अच्छा नहीं आता। सपने में तो फोटोग्राफी से भी ज़्यादा अच्छा दिखाई देता है। स्वप्न में तो प्रत्यक्ष देखने से भी ज़्यादा अच्छा आता है।

प्रश्नकर्ता : चित्त का काम ही नहीं रहा।

दादाश्री : शुद्ध चित्त था, वह आत्मा में एक हो गया। आत्मा में मिल गया।

शुद्ध चित्त, वही शुद्धात्मा!

प्रश्नकर्ता : तो निदिध्यासन को देखने वाला कौन है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है।

प्रश्नकर्ता : वह खुद ही देखती है और खुद ही धारण करती है?

दादाश्री : वह खुद ही है सबकुछ। उसी की हैं सभी क्रियाएँ। चित्त की ज़रूरत ही नहीं रही वहाँ पर। जब तक अशुद्ध चित्त है तब तक सबकुछ संसार का ही दिखाई देता है उसे। अशुद्ध चित्त, शुद्ध की

बातें नहीं देख सकता। अतः जब चित्त शुद्ध हो जाता है तब आत्मा में एक हो जाता है। आत्मा में मिल जाता है, बचा कौन? बीच में कोई नहीं बचा। प्रज्ञाशक्ति चलती रहती है बस। अगर दखल रहे तो वापस शुद्ध चित्त भी बिगड़ता जाता है। अगर अंधेरा हो न, तो वापस बिगड़ता जाता है, तो उसे वापस कहाँ रिपेयर करवाने जाएँ? उसके कारखाने तो कहीं भी नहीं होते। और प्रज्ञाशक्ति को हमें रिपेयर नहीं करना पड़ता। जो वस्तु है, अगर उसे रखा जाए तो रिपेयर करवाने नहीं जाना पड़ेगा। जो वस्तु नहीं है, उसे तो बिगड़ने पर रिपेयर करवाने जाना पड़ेगा। अतः बीच में किसी चीज़ की कोई ज़रूरत नहीं है। सभी क्रियाएँ प्रज्ञा करती है।

प्रश्नकर्ता : यह चित्त जब शुद्ध हो जाता है, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है न?

दादाश्री : चित्त जब शुद्ध हो जाता है तब शुद्धात्मा में मिल जाता है। उसके बाद प्रज्ञाशक्ति की शुरुआत हो जाती है। शुद्ध चित्त, वही शुद्ध चिद्रूप आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानीपुरुष का निदिध्यासन रहता है, उसे आपने प्रज्ञा कहा है तो आप ऐसा भी कहते हैं न कि जितना अधिक निदिध्यासन रहेगा उतना ही चित्त शुद्ध होगा?

दादाश्री : चित्त शुद्धि तो हो चुकी है न!

प्रश्नकर्ता : जड़ से हो गई है संपूर्ण, तो वह जो अशुद्ध चित्त है, उसका क्या होता है?

दादाश्री : अशुद्ध चित्त तो सभी सांसारिक कार्य कर लेता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार! क्या शुद्ध चित्त कभी दखल करता है? अशुद्ध चित्त हो तो दखल हो जाती है बीच में। शुद्ध चित्त होगा तो दखल नहीं होगी। यदि तीसरा व्यक्ति होगा तभी दखल होगी। दखल होती है? आप निदिध्यासन करके आओ कभी।

प्रश्नकर्ता : निदिध्यासन करने में किसकी दखल रहती है?

दादाश्री : वे तो ये उदयकर्म हैं।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि यदि वह प्रज्ञा का खुद का स्वतंत्र डिपार्टमेन्ट होता तो प्रज्ञा सभी महात्माओं में उत्पन्न हो चुकी है, उसके बावजूद भी अपने महात्माओं को ज्ञान के बाद में एक सरीखा...

दादाश्री : सभी को एक सरीखा ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, हर एक को उसके सामर्थ्य के अनुसार होता है, फिर उसी अनुसार आज्ञा पालन हो पाता है।

प्रश्नकर्ता : यानी आपने सामर्थ्य के अनुसार कहा। ऐसा क्यों?

दादाश्री : ऐसा ही है न! उसका निश्चय बल वगैरह ऐसा सब होना चाहिए न! अलग-अलग नहीं होता हर एक का? हर एक का अलग। तेरा अलग, उसका अलग, इन सब का अलग-अलग है न।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप ऐसा कहते हैं न कि चित्त तो सभी का पूर्णतः शुद्ध हो चुका है?

दादाश्री : हाँ, तभी तो आत्मा प्राप्त होगा न!

प्रश्नकर्ता : तो यदि शुद्ध चित्त पूर्णतः शुद्ध हो जाएगा तो उतनी ही प्रज्ञा उत्पन्न होगी?

दादाश्री : हाँ। हम जब ज्ञान देते हैं तब आत्मा शुद्ध हो जाता है इसलिए प्रज्ञा उत्पन्न हो ही जाती है। फिर उसकी पाँच आज्ञा पालन करने की जो शक्ति है न, उसके जितने प्रयत्न रहते हैं उतना ही उसका लाभ कम होता जाता है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जितना आज्ञा का पालन किया जाए उतनी ही प्रज्ञाशक्ति खिलती जाती है?

दादाश्री : हाँ, वैसा निश्चय बल होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें निश्चय बल किसका है?

दादाश्री : सबकुछ खुद का ही।

प्रश्नकर्ता : ऐसा है कि निश्चय खुद ही करता है और फिर खुद ही बलवान होता जाता है? वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : जब अशुद्ध चित्त और मन वगैरह का ज़ोर रहता है तब निश्चय बल बंद हो जाता है। यह सब जिसमें कम है, उसमें चित्त शुद्धि ज़्यादा मज़बूत रहती है। दखल करते हैं न ये सब, वर्ना हम भले ही कितना भी एकांत में ध्यान करके बैठे हुए हों लेकिन बाहर लोग हो-हो-हो करें तो? इसी प्रकार ये सब बाहर हो-हो-हो होता है न, तो जिसे ज़्यादा हो-हो-हो होता है, उसका ठिकाना नहीं पड़ता।

प्रश्नकर्ता : यह चीज़ बहुत करेक्ट है। बाहर की हो-हो कम हो जाए तो...

दादाश्री : हमारी यह बाहर की हो-हो नहीं है, तो है क्या कोई झंझट? जबकि आपको तो अगर तीन लोगों की हो-हो रहे तो भी घबराहट हो जाती है, 'मुझे ऐसा कर रहे हैं'। मुझे ऐसा सब स्पर्श ही नहीं करता न! मैं इस प्रकार से बैठता हूँ। बाहर बैठता ही नहीं न! मुझे शौक नहीं है ऐसा। आपको अगर शौक है तो बाहर बैठकर तीन लोगों के साथ आप हो-हो करो, मैं तो अपने रूम (आत्मा) में बैठे-बैठे (नाटकीय रूप से) हो-हो करता रहता हूँ। इतने सारे लोग! इसका कब अंत आएगा?

प्रश्नकर्ता : आप खुद के रूप में इस तरह सिफत से सरक जाते हैं, चले जाते हैं अंदर।

दादाश्री : बैठा हुआ ही हूँ अंदर। बाहर निकलता ही नहीं हूँ। शायद कभी परछाई दिखाई दी हो तो आपको लगता है कि बाहर निकले होंगे, वही भूल है। वास्तव में वह मैं नहीं हूँ।

प्रश्नकर्ता : वह बात सही है। हमारे खींचने पर भी नहीं आते।

दादा की प्रज्ञा की अनोखी शक्ति

दादाश्री : अगर मैं बाहर निकलूँ तो इन भाई के घर कौन जाएगा?

आते हैं न आपके यहाँ सुबह पाँच बजे! वह हमेशा का है न! वे अमरीका वाले भी कहते हैं कि 'मेरे यहाँ आते हैं'। जाते हैं, वह बात तो सही है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह कौन जाता है?

दादाश्री : लेकिन यह हकीकत है न कि जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : लोगों को अनुभव होता है। यहाँ से जाते हैं, वह मालूम नहीं है, लेकिन उन्हें ऐसा लगता है। वह क्या है?

दादाश्री : वह सब तो शक्ति है न, प्रज्ञाशक्ति की ज़बरदस्त शक्ति!

प्रश्नकर्ता : हम दादाजी का स्मरण करते हैं और दादा हमारे घर पर आकर आशीर्वाद देते हैं, वह क्या है? वह फिनोमिना (घटना) क्या है? वह कौन सी प्रक्रिया है?

दादाश्री : वह सारा प्रज्ञा की प्रक्रिया में जाता है।

प्रश्नकर्ता : हम याद करते हैं और दादा आ जाते हैं, तो तब आपका कुछ अंश आता है या संपूर्ण आता है?

दादाश्री : वह सारा प्रज्ञा का काम है। दादा जो याद आते हैं न, वह तो आत्मा के तौर पर एक ही स्वभावी हैं। आपका ही आत्मा दादा बनकर काम कर रहा है। अर्थात् यह चीज़ खुद के भाव पर आधारित है और फिर वे भाव प्रज्ञा के होने चाहिए। तब अगर कोई कहे कि 'अज्ञानी लोगों को भी उनके गुरु दिखाई देते हैं'। तो वह चित्त की शुद्धता है!

प्रश्नकर्ता : तो 'आपकी' तरफ से प्रज्ञाशक्ति काम कर रही है? उन्हें जो अनुभव होता है कि दादा यहाँ पर आए थे, वह आपकी प्रज्ञाशक्ति की वजह से है या उनकी प्रज्ञाशक्ति की वजह से?

दादाश्री : यह जो प्रज्ञाशक्ति है, उसी में से है। जो 'जाते' हैं, उन्हीं की प्रज्ञाशक्ति है।

प्रश्नकर्ता : 'जाता' है का मतलब?

दादाश्री : उनके पास 'जो' आते हैं, 'उनकी' प्रज्ञाशक्ति।

प्रश्नकर्ता : 'उनके पास जो आते हैं', मूलतः वह ऐसी जो कल्पना करते हैं या उन्हें ऐसा आभास होता है तो वह उनका खुद का ही हुआ न? आपको तो जब बताया तभी पता चला कि आप वहाँ पर गए थे।

दादाश्री : वह तो, अगर उनके भाव होंगे तो मिल जाएगा। उस शक्ति को देर नहीं लगती। सामने वाले का भाव हो तो शक्ति पहुँच जाती है। यहाँ से अमरीका भी पहुँच जाती है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह जो आपकी प्रज्ञाशक्ति है, वह तो वीतराग भाव से है। जो भाव करते हैं, खिंचकर उनके पास चली जाती है।

दादाश्री : खिंचकर चली जाती है। और क्या? जिनका भाव मज़बूत होता है, खिंचकर उनके पास चली जाती है।

प्रश्नकर्ता : क्या आपको पता चल जाता है कि वह खिंचकर चली गई?

दादाश्री : मैं क्यों ध्यान रखता फिरूँ?

प्रश्नकर्ता : नहीं! ध्यान नहीं रखते फिर भी पता चल जाता है क्या?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : यों दिखाई नहीं देता? आपके ज्ञान में यों दिखाई नहीं देता?

दादाश्री : दिखाई देता है लेकिन अगर हम ध्यान रखें तब न! हम उस तरफ क्यों ध्यान रखें? कितने ही लोगों की फिल्में हैं, उसमें मैं कहाँ ध्यान रखूँ और कब उसका अंत आए?

प्रश्नकर्ता : ऐसा करने की क्या ज़रूरत है? देखते रहना है।

दादाश्री : उसमें तो बल्कि इन्टरेस्ट आ जाएगा। ऐसा है कि

आदत पड़ जाएगी। हमें वह फिल्म देखने की ज़रूरत नहीं है। फिल्म देखनी हो तो थिएटर में जाकर न देख लें? फिल्म तो खत्म हो जाती है तीन घंटों में, जबकि यह तो जाएगी ही नहीं अपने पास से।

समभाव से निकाल में प्रज्ञा का रोल

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति का एक नंबर की फाइल पर कंट्रोल है या नहीं?

दादाश्री : नहीं! नो कंट्रोल।

प्रश्नकर्ता : अब मैं कहूँ कि 'चंदूभाई, आप ज़रा इसमें ठीक से ध्यान रखो'। अब चंदूभाई से यह किसने कहा? उस समय जो व्यवहार क्रिया होती है, वह बुद्धि की है या अहंकार की है या फिर प्रज्ञा की है?

दादाश्री : व्यवहार क्रिया बुद्धि और अहंकार दोनों की है।

प्रश्नकर्ता : उसमें प्रज्ञा है क्या?

दादाश्री : प्रज्ञा नहीं है। प्रज्ञा तो, जो ऐसा बताती है कि समभाव से *निकाल* करना है, वह प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बुद्धि और अहंकार, उसमें जब ये दोनों भाग लेते हैं तब तो फिर वह क्रिया व्यवस्थित के अधीन रहकर हुई न?

दादाश्री : व्यवस्थित के अधीन ही है, आपकी कोई ज़ोखिमदारी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जब 'मैं' चंदूभाई से कुछ कहता हूँ, तब तो फिर 'मैं' अर्थात् प्रज्ञा ही कहती है न चंदूभाई से?

दादाश्री : हाँ, वह प्रज्ञा ही कहती है। 'मैं' प्रज्ञा ही है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद बाकी की क्रिया क्या व्यवस्थित के अधीन होती है?

दादाश्री : हाँ, व्यवस्थित के अधीन है लेकिन अगर व्यवस्थित

के अधीन रहकर सामने वाले को हाथ लग जाए तो आपको कहना चाहिए कि 'चंदूभाई अतिक्रमण किया, इसका प्रतिक्रमण करो', बस। उससे फिर वो सेफसाइड रहती है। उसे अगर कोई छोटा-मोटा दु:ख हो जाए तो हर्ज नहीं है, लेकिन प्रतिक्रमण कर लेने के बाद हमें कोई लेना-देना नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : फाइलों का *निकाल* कौन करता है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है। वही सचेत करती है, सभी कुछ वही करती है। फाइलों का *निकाल* वगैरह सबकुछ वही करती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर चंदूभाई भी फाइल है न, इसीलिए मन में शंका हुई। इसीलिए मैंने पूछा। वर्ना क्या ऐसा नहीं है कि चंदूभाई सभी फाइलों को देखते हैं?

दादाश्री : ऐसा हो ही नहीं सकता न! चंदूभाई को लेना-देना नहीं है। फाइलों का *निकाल* प्रज्ञाशक्ति करती रहती है और सावधान भी करती है। कुछ भूल हो जाए न तो सचेत करती है। चंदूभाई सचेत नहीं करते। चंदूभाई तो भूल वाले हैं, आत्मा भी सचेत नहीं करता। आत्मा सचेत करने का धंधा नहीं करता। अत: यह सब काम प्रज्ञाशक्ति ही कर रही है। अर्थात् प्रज्ञाशक्ति फाइलों का समभाव से *निकाल* करती है।

निश्चय, अज्ञा-प्रज्ञा के

प्रश्नकर्ता : निश्चय कौन करता है? यह फाइल नंबर वन निश्चय करती है?

दादाश्री : आपको ही करना है! आपको खुद को निश्चय करना है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् शुद्धात्मा निश्चय करता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, शुद्धात्मा नहीं, उसकी प्रज्ञाशक्ति। प्रज्ञाशक्ति निश्चय करवाए बगैर रहती ही नहीं। यह तो ज्ञान मिलते ही निश्चय कर ही लेती है।

प्रश्नकर्ता : दादा ऐसा कहते हैं कि 'इसमें तेरे आज्ञा पालन करने की बात नहीं है। तू निश्चय कर कि तुझे आज्ञा में रहना है, बस। बाकी सब मुझ पर छोड़ दे'। आप ऐसा कहते हैं न?

दादाश्री : सिर्फ आज्ञा का पालन ही करना है। आज्ञा के अनुसार हुआ या नहीं, वह आपको नहीं देखना है। बस! पालन करना है, ऐसा तय करो।

प्रश्नकर्ता : अत: यह जो निश्चय करने की बात है, उसमें हम कहते हैं कि 'तुझे कुछ करना नहीं है'। फिर वापस ऐसा भी कहते हैं कि 'निश्चय कर'।

दादाश्री : वे तो शब्द हैं न, यों सिर्फ शब्द ही। ड्रामेटिक शब्द, उसमें कोई कर्ताभाव नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी इसीलिए वह तो सिर्फ भाषा की बात हुई लेकिन यह जो निश्चय है, वह निश्चय कौन करता है?

दादाश्री : वह खुद का ही हुआ है। यह जो प्रज्ञाशक्ति है न, वही यह निश्चय करती है। बस!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे जब ज्ञान नहीं था, तब अहंकार निश्चय करता था, तब प्रज्ञा नहीं करती थी।

दादाश्री : ठीक है। वह अहंकार नहीं लेकिन अज्ञा करती थी। अब प्रज्ञा कर रही है। अज्ञानी के सभी निश्चय अज्ञा करती है और जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके प्रज्ञा करती है। अज्ञा और प्रज्ञा दो शक्तियाँ हैं। अज्ञा रोंग बिलीफ है और प्रज्ञा राइट बिलीफ है।

प्रश्नकर्ता : वह निश्चय करती है ऐसा कहने के बजाय क्या ऐसा कहना चाहिए कि 'निश्चय रखना'?

दादाश्री : करना या रखना, जिस भी शब्द से अपना मनचाहा सिद्ध होता है, वही करना है। शब्द चाहे कोई सा भी बोलो, 'करो या रखो', उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा निश्चय करती है या करवाती है?

दादाश्री : वह निश्चय करती है, करवाती है, सबकुछ उसी एक में आ जाता है। वह अलग-अलग नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा भी कह सकते हैं न कि निश्चय करवाती है, निश्चय रखवाती है?

दादाश्री : हाँ, कहा जा सकता है। कुल मिलाकर वही का वही है। वह एक ही चीज़ है। इसमें हाथ डालने जाएँगे तो पोस्टमॉर्टम हो जाएगा, बेकार ही बिगड़ जाएगा। हम जो कहना चाहते हैं न, वह आशय खत्म हो जाएगा। इसमें हाथ नहीं डालना है। सीधी-सादी बात समझ लेनी है। भाई, यह प्रज्ञा कर रही है और यह अज्ञा कर रही है, बस। बुद्धि उसमें वापस तरह-तरह के स्वाँग भरती है।

प्रज्ञा में किस प्रकार से रहें तन्मय?

प्रश्नकर्ता : 'यह भरोसे वाली और यह बिना भरोसे की पूँजी है', ऐसा ध्यान रखने वाला कौन है?

दादाश्री : यह सारा प्रज्ञाशक्ति का ही काम है लेकिन जब प्रज्ञाशक्ति अपना काम नहीं संभालती, तब 'डिस्चार्ज' अहंकार ही सारा काम करता रहता है। वह जब ऐसा करे तब हमें उसे देखना है कि किसमें तन्मयाकार है! इसमें, प्रज्ञा में तन्मयाकार रहना चाहिए, उसके बजाय उसमें तन्मयाकार, स्लिप हो जाता है। यदि जागृति रहेगी तो प्रज्ञा में रह पाएगा। अगर उसमें चला जाएगा तो अजागृति रहेगी।

प्रश्नकर्ता : आपने जो ज्ञान दिया है तो उसे जागृति में तो रहना ही है।

दादाश्री : उसकी इच्छा तो है लेकिन रह नहीं पाता। आदत पड़ी हुई है न! पिछली आदत पड़ी हुई है इसलिए फिर उस तरफ चला जाता है लेकिन जिसका भाव स्ट्रोंग है, वह तो गए हुए को भी वापस बुला लेता है कि 'अरे! नहीं जाना है'। पता तो चलता है न खुद को!

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा में तन्मयाकार रहने को कहा है, तो वह ज़रा ठीक से खुलासा करके समझाइए।

दादाश्री : सिन्सियर रहना है। किसके प्रति सिन्सियर है? अब आपको अगर मोक्ष में जाना है तो प्रज्ञा के प्रति सिन्सियर रहो और यदि मौज-मज़े उड़ाने हैं तो कुछ देर के लिए उस तरफ चले जाओ। अभी अगर कर्म के उदय ले जाते हैं तो वह अलग बात है। कर्म का उदय घसीटकर ले जाए तो भी हमें इस तरफ का रखना है। नदी उस तरफ खींचेंगी लेकिन हमें तो किनारे पर जाने के लिए ज़ोर लगाना है। नहीं लगाना चाहिए? या फिर जैसे वह खींचे वैसे खिंच जाना है?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यदि उसका निश्चय पक्का होगा, तभी सिन्सियर रहेगा न?

दादाश्री : पक्का होगा तभी रह पाएगा न! नहीं तो फिर जिसका निश्चय ही नहीं है, उसका क्या? नदी जिस तरफ खींचेगी उसी तरफ चला जाएगा। किनारा तो न जाने कहाँ रह जाएगा। हमें तो किनारे की तरफ जाने के लिए ज़ोर लगाना चाहिए। नदी उस ओर खींचेगी पर हमें इस तरफ आने के लिए हाथ-पैर मारने चाहिए। थोड़ा बहुत, जितना खिसक पाए, उतना ठीक है। तब तक तो अंदर ज़मीन में आ जाएगा।

अर्थात् इस विज्ञान से, मोक्ष के लिए उसे सावधान करने वाली प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद उसे खुद पॉज़िटिव रहना चाहिए। नेगेटिव सेन्स नहीं रखना चाहिए। पॉज़िटिव अर्थात् उसमें अपनी खुशी होनी चाहिए और पॉज़िटिव सेन्स रखते भी हैं सभी और फिर इस संसार की कोई अड़चन भी स्पर्श नहीं होने देते। यदि वह खुद ठीक तरह से रहे न, तो अंदर ऐसी सेटिंग हो जाती है कि संसार की कोई अड़चन स्पर्श नहीं होने देता! क्योंकि जब आत्मा प्राप्त नहीं हुआ था अर्थात् भगवान प्राप्त नहीं हुए थे, तब भी संसार चल ही रहा था तो क्या प्राप्त होने के बाद वह बिगड़ जाएगा? नहीं बिगड़ेगा।

प्रज्ञा कौन से भाग को सचेत करती है?

प्रश्नकर्ता : फिर यह जो प्रज्ञा है, क्या वह प्रतिष्ठित आत्मा को सचेत करती है?

दादाश्री : हाँ, वह प्रतिष्ठित आत्मा के अहंकार वाले भाग को सचेत करती है। हाँ, जिसे मुक्त होना है, उस भाग को। बंधने का अहंकार और मुक्त होने का अहंकार। वह मुक्त होने वाले अहंकार को सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : तो वास्तव में वह चंदूभाई को ही सचेत करती है न? ऐसा ही हुआ न?

दादाश्री : नहीं! अहंकार को। चंदूभाई नाम का जो मालिक है, अहंकार। अहंकार दो प्रकार के हैं। एक वह अहंकार जिसने यह खड़ा किया। वह अहंकार चला गया। यह वह अहंकार है जो मुक्त होने के लिए वापस लौट रहा है...

प्रश्नकर्ता : उसे सचेत करती है?

दादाश्री : हाँ अर्थात् जो मुक्त होना चाहता है, उसे हेल्प हो गई। बाकी, जो मुक्त होना चाहता है, ऐसा अहंकार हर एक में है तो सही लेकिन जब तक उसमें प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होगी, तब तक कौन कहेगा? इसलिए उलझा रहता है।

भूल के सामने प्रतिभाव किसका?

प्रश्नकर्ता : अगर हम कोई भूल करते हैं तो अंदर प्रज्ञा सचेत करती है। अब वहाँ पर, जो भूल करते हैं, अंदर जो प्रतिभाव होता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए, तो वह कौन बताता है? क्या वह भी प्रज्ञा करती है? जो ऐसा प्रतिभाव दर्शाता है, वह और प्रज्ञा दोनों साथ-साथ रहते हैं?

दादाश्री : प्रकाश प्रज्ञा का है। उस प्रकाश में जो चित्तवृत्ति शुद्ध

हो चुकी है, वह वृत्ति ऐसा करती है लेकिन प्रकाश प्रज्ञा का है। अत: ऐसा कहा जाता है कि प्रज्ञा कर रही है। सभी दोष बताती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो भूल होती है उसके सामने प्रज्ञा का जो हावभाव है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए', ऐसा जो प्रतिभाव होता है, वे दोनों साथ में ही होते हैं?

दादाश्री : वह प्रतिभाव नहीं कहलाता।

प्रश्नकर्ता : 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह प्रतिभाव नहीं है? हम से कोई खराब भाव हो जाए तो उसके विरुद्ध ऐसा होता है न?

दादाश्री : वह आत्मभाव है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए' और जो हो जाता है, वह देहाध्यास भाव है। दोनों के भाव अलग हैं न! आत्मभाव स्वभाव भाव है और यह विभाव भाव है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या प्रज्ञाशक्ति ही विशेष भाव है?

दादाश्री : नहीं। क्रोध-मान-माया-लोभ को विशेष भाव कहा जाता हैं। मैं-अहंकार वगैरह सब विशेष भाव कहे जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मधर्म का कुछ पुरुषार्थ करना, वह किसकी क्रिया है?

दादाश्री : वह सारी प्रज्ञाशक्ति है। प्रज्ञाशक्ति कब तक रहती है? जब हमें यह ज्ञान मिलता है, तब आत्मा बन जाते हैं लेकिन अभी तक आत्मा श्रद्धा में, प्रतीति में, दर्शन में है लेकिन ज्ञान में नहीं आया है। जब तक यह चारित्र में नहीं आ जाता तब तक प्रज्ञाशक्ति काम करती रहती है।

प्रज्ञा के परिणाम कौन भोगता है?

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा से कोई काम होता है, प्रज्ञाशक्ति काम करती है तो उसके जो परिणाम आते हैं, वे परिणाम कौन भोगता है?

दादाश्री : भोगना कैसा? प्रज्ञाशक्ति द्वारा की गई चीज़ में भोगना नहीं होता। आनंद ही होता है और आनंद खुद का स्वभाव है। जिसे वह आनंद नहीं था, वह भोगता है।

प्रश्नकर्ता : उस आनंद को कौन भोगता है? रिलेटिव भोगता है या रियल भोगता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। रिलेटिव ही भोगता है न! रियल तो आनंद में ही है ना! जिसे कमी थी, वह भोगता है और आप खुद ही कहते हो न कि पहले आप ऐसे थे। अब आपका अहंकार भोग रहा है और आप अब शुद्धात्मा हो गए हो अर्थात् प्रज्ञा स्वरूप में आ गए हो। अहंकार भोग रहा है इसलिए उसे जो विषाद होता था, उसे जो कमी थी, वह सारी इस आनंद को भोगने से निकल जाती है। प्लस-माइनस हो जाता है।

दोनों अलग हैं, वेदक और ज्ञायक

प्रश्नकर्ता : वेदनीय कर्म के उदय के समय जो वेदना का वेदन करता है, वह कौन है और उस समय कौन जानता है कि वेदना हो रही है?

दादाश्री : वेदन करता है अहंकार और प्रज्ञा जानती है। प्रज्ञा जो है, वह वेदक को भी जानती है और यह जो वेदक है, वह वेदना का वेदन करता (भुगतता) है। वेदक अर्थात् अहंकार। अहंकार में सभी कुछ आ गया।

अहंकार मानता है कि यह दुःख मुझे ही हो रहा है, इसीलिए वह वेदता है। इसी वजह से उसे वेदक कहा जाता है और प्रज्ञाशक्ति इसे जानती है। अब अपने काफी कुछ महात्माओं में प्रज्ञाशक्ति (एक तरफ) रह जाती है और वे वेदक भाव में आ जाते हैं। उससे दुःख बढ़ जाता है, बाकी उन्हें अन्य कोई नुकसान नहीं होता। यदि खुद तन्मयाकार हो जाए तो दुःख बढ़ जाता है।

मैं यहाँ पर सभी बच्चों को प्रसाद देता हूँ। अगर प्रेम से प्रसाद

दें तो उन्हें दु:ख नहीं होता लेकिन अगर ज़रा सा भी मुँह बिगाड़कर दिया जाए तो उन पर असर हो जाता है। उसका कारण यह है कि उसमें अहंकार मिश्रित है। जबकि प्रेम में खाने वाले में भी अहंकार एकाकार नहीं है और देने वाले में भी अहंकार एकाकार नहीं है। अहंकार का अस्तित्व ही नहीं है वहाँ पर, इसलिए अच्छा लगता है।

अत: यदि इसमें हम वेदक में एकाकार हो जाएँ तो बहुत दु:ख होगा लेकिन यदि ज्ञायक रहा जाए तो दु:ख बिल्कुल कम हो जाएगा। अगर 'जानने' में रहे तो ऐसा रहेगा जैसा कि प्रेम से देने पर महसूस होता है न!

प्रज्ञा परिषह

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का अंश प्राप्त होने पर क्या वाणी का उदय होता है?

दादाश्री : हाँ, होता है। वाणी का उदय जागृत होता है और उस उदय के जागृत होने के बाद यदि उसे बोलने नहीं दिया जाए तब प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है। उसका समभाव से वेदन करना पड़ेगा। वाणी का उदय अपने आप ही होगा। उसके बाद फिर ज्ञानवाणी निकलेगी। वाणी ऐसी निकलेगी कि सामने वाले को समझा सकेंगे। लेकिन आपके समझाने पर भी यदि वह नहीं सुने तो आपको प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होगा।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा भी हो सकता है कि इच्छा तो होगी बोलने की, किसी को समझाने की, लेकिन मैं वाणी द्वारा प्रकट न कर पाऊँ?

दादाश्री : हाँ, हो सकता है। वाणी द्वारा प्रकट होना तो बहुत बड़ी चीज़ है। वह तो जब बहुत दिनों तक आप सुनते रहोगे, तब जाकर वह श्रुतज्ञान प्रगमित होगा और फिर वह मतिज्ञान में रूपांतरित होगा। फिर वह वाणी के रूप में निकलेगा। अत: बहुत दिनों तक सुनते रहना है फिर अंदर उसका दही जमता रहेगा। उसके बाद मक्खन निकलेगा, फिर उससे घी बनेगा। यदि विस्तार से समझें तो ऐसा है यह सब।

और अगर किसी की भूल हो, वह भी कहना हो, खुद का ज्ञान बताना हो और अगर कहने का अवसर नहीं मिले, तब भी अंदर परिषह उत्पन्न होता है। 'कब बोलूँ', 'कब कह दूँ', 'कब कह दूँ', वह है प्रज्ञा परिषह।

भगवान ने जो परिषह बताए हैं, उनमें प्रज्ञा को भी परिषह कहा है। क्रमिक मार्ग में प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होने के बाद समकित होता है। वास्तविक समकित उसके बाद ही होता है। अपने यहाँ पर ज्ञान मिलने के बाद यह सब निकलता ही रहता है, खिचड़ी पकती ही रहती है।

यदि आप उपाश्रय में जाकर बात करने लगोगे तो कोई आपकी सुनेगा नहीं ना? आप बिल्कुल सही बात कहने जाओगे तो भी नहीं सुनेंगे इसीलिए तो आपको प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है। मैं अपनी सही बात बता रहा हूँ लेकिन सुनते ही नहीं। ऐसी बेचैनी होती है, उसे परिषह कहा गया है। उस परिषह का समभाव से *निकाल* करने के बाद प्रज्ञा और ज़्यादा मज़बूत हो जाएगी।

श्रद्धा व प्रज्ञा की सूक्ष्म समझ

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा, प्रज्ञा, दृष्टा और चेतन, इनके बारे में कुछ बताइए।

दादाश्री : दृष्टा और चेतन एक ही हैं। श्रद्धा दो प्रकार की होती हैं। संसार व्यवहार में जो श्रद्धा रखी जाती है, वह सब मिथ्यात्व श्रद्धा है और अगर इस तरफ आ जाए, तो वह सम्यक्त्व श्रद्धा है, जिसे प्रतीति कहा जाता है। वह चेतन का भाग है और प्रज्ञा भी चेतन का भाग है लेकिन प्रज्ञा अलग है। श्रद्धा, वह प्रतीति वाला भाग है और फिर वापस (आत्मा के साथ) एक हो जाती है। तब तक यह श्रद्धा व प्रतीति तो हमेशा अलग ही रहेंगे। गुणों को लेकर दोनों अलग ही हैं लेकिन स्वभाव से एक हैं।

प्रश्नकर्ता : इसके लिए तीन अंग्रेज़ी शब्दों का उपयोग किया गया

है। फेथ (faith)-श्रद्धा, रीज़न (reason)-प्रज्ञा और कॉन्शियसनेस (consciousness) चेतन है।

दादाश्री : ऐसा है न, अर्थ तो किसे कहते हैं? जो समतोल हो, उसे अर्थ कहते हैं। यदि दस रतल इस तरफ है तो उस तरफ भी दस रतल होना चाहिए। जबकि इस तरफ श्रद्धा, प्रज्ञा और चेतन दस रतल हैं तो उस तरफ डेढ़ रतल हैं, तीनों ही (faith, reason, consciousness)।

प्रश्नकर्ता : तो इम्बैलेन्स (असंतुलन) हो गया।

दादाश्री : अर्थात् डेढ़ रतल (पाउन्ड/454 ग्राम) मतलब वह स्थूल वस्तु है जबकि यह दस रतल यथार्थ वस्तु है। अर्थात् यह डेढ़ रतल है और वह दस रतल।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपने क्या कहा था? जो चेतन है, उसी के दो भाग हैं-श्रद्धा और प्रज्ञा।

दादाश्री : नहीं, श्रद्धा तो उसका मूल स्वभाव ही है। जब वह प्रतीति में आता है तब श्रद्धा के रूप में होता है और तब प्रज्ञा अलग हो जाती है और प्रज्ञा खुद का कार्य पूरा करने के बाद एकाकार हो जाती है। प्रज्ञा, अज्ञा का नाश करने के लिए है। प्रज्ञा में अज्ञा का नाश करने का गुण है लेकिन अलग होकर अज्ञा का नाश करने के बाद वह तुरंत आत्मा में मिल जाती है। अतः प्रज्ञा तो खुद ही आत्मा है लेकिन क्योंकि वह अलग हो जाती है इसलिए उसे प्रज्ञा कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : तो इसमें बेस है श्रद्धा। जिसे आप प्रतीति कहते हैं, वह।

दादाश्री : हाँ, प्रतीति बेस है। इसका मतलब उसे इस जगत् की उल्टी प्रतीति बैठी है या सीधी, उस अनुसार यह चलेगा। उल्टी प्रतीति इस संसार में भटकाती ही रहती है। यदि प्रतीति सीधी हो जाए तो मोक्ष में ले जाएगी। प्रतीति बैठाने वाले निमित्त की ज़रूरत है।

संबंध, सूझ और प्रज्ञा के बीच

प्रश्नकर्ता : तो यह जो कुदरती सूझ है उसका प्रज्ञा से क्या संबंध है?

दादाश्री : यह जो सूझ है, वही प्रज्ञा की ओर ले जाती है। हाँ, वह सूझ ही काम करती है। अगर इसमें कुदरती रूप से कोई काम करता है तो वह सिर्फ सूझ है। अज्ञान दशा में सूझ ही काम करती है।

प्रश्नकर्ता : वह प्रज्ञा का भाग नहीं है?

दादाश्री : नहीं! सूझ अर्थात् जहाँ आवरण खुल गए हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या वह प्रज्ञा की तरफ ले जाती है?

दादाश्री : उसी तरफ, परमानेन्ट की तरफ ले जाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह जो भाव है, वह भाव कहाँ आएगा इसमें?

दादाश्री : वह जो भाव करता है, वह सूझ (समझ) में से ही आता है। अहंकार अलग चीज़ है लेकिन जो समझ है, वह समझ बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते प्रज्ञा तक पहुँच जाती है। और जब प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है तब वह आत्मा में ही मिल जाती है। लेकिन सूझ, समझ का भाग है तो वह उस समझ के अनुसार, ज्ञान के अनुसार भाव करता है।

वह है दर्शन, सूझ नहीं है

प्रश्नकर्ता : सूझ को प्रज्ञा कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं! प्रज्ञा ज्ञान है जबकि यह सूझ तो दर्शन है। अज्ञा को बुद्धि कहा जाता है। हमें तो दिखाई देता है, आगे-पीछे का सभी! पीछे क्या हो रहा है, वह भी दिखाई देता है। अगर कोई कहे, 'मैं पीछे खड़ा हूँ, मैंने हाथ ऊँचा किया या नहीं?' वैसा नहीं दिखाई देता। स्थूल नहीं दिखाई देता। सूक्ष्म दिखाई देता है। जो सूक्ष्म विभाग है न, वह सारा दिखाई देता है। समझ की वजह से वह दिखाई देता है यह स्थूल तो, जब संपूर्ण केवलज्ञान हो जाता है, तब दिखाई देता है।

मैंने तो देखा है न छत से लेकर तले तक सारा। नीचे भी देखा है कि नीचे कैसा है? ऊपर कैसा है? परस्पेक्टिव (परिप्रेक्ष्य) कैसा है, सभी तरफ से देख लिया इसलिए पता चल गया कि यह बात तो ऐसी है। परस्पेक्टिव व्यू बहुत कम लोग देख सकते हैं। यों सामने खड़े रहना और परस्पेक्टिव व्यू देखना, दोनों एक साथ नहीं हो सकता। हमें वह आता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, उसे सूझ कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं! वह दर्शन है। सूझ तो हर एक व्यक्ति में होती है। सूझ तो हर एक में अपनी शक्ति के अनुसार होती है। दर्शन फैला हुआ है न! जिसका विस्तार हुआ है, वह है दर्शन! उसकी तो बात ही अलग है न! इतने कड़वे अनुभवों के बीच भी वह आनंद में रखता है। उसकी तो बात ही अलग है न!

प्रश्नकर्ता : टेपरिकॉर्डर बोलता है और 'मैं सुनता हूँ। फिर यह टेपरिकॉर्डर है और मैं इसे देख रहा हूँ', वह देखने वाला भाग प्रज्ञा है?

दादाश्री : वह भाग प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए आप कहते हैं न कि 'देखकर बोलता हूँ'।

दादाश्री : देखकर बोलता हूँ। पहले जो अज्ञा स्थिति थी, वह अब प्रज्ञा स्थिति हो गई है। इस अक्रम विज्ञान को किससे देखा है? प्रज्ञाशक्ति से। संसार में तो बुद्धि से देखा हुआ ज्ञान काम का है लेकिन अपने यहाँ पर तो निर्मल ज्ञान की आवश्यकता है।

क्या अज्ञा ही अज्ञान है?

प्रश्नकर्ता : 'अज्ञा अर्थात् अज्ञान', क्या ऐसा नहीं है? हम इसका अर्थ अज्ञान समझते हैं लेकिन अज्ञा कौन है? यानी कि अज्ञा की शुरुआत कहाँ से हुई? ठेठ प्रज्ञा की शुरुआत तक की बाउन्ड्री बुद्धि की है। वह सारी अज्ञा ही मानी जाती है। तो अज्ञा बुद्धि से नीचेवाला स्थर है या बुद्धि का समतुल्य स्थर है?

दादाश्री : अज्ञा तो... बुद्धि की शुरुआत हुई, तभी से उसे अज्ञा कहा जाता है। जैसे-जैसे वह बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे अज्ञा बढ़ती जाती है।

प्रश्नकर्ता : यह जो अज्ञान है, वह बुद्धि से भी निम्न स्टेज है?

दादाश्री : अज्ञान अलग चीज़ है और अज्ञा अलग है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, मुझे वही समझना है। अज्ञान और अज्ञा इन दोनों के बीच का फर्क समझना है।

दादाश्री : अज्ञान तो एक प्रकार का ज्ञान है और अज्ञा किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं है। सिर्फ बुद्धि! यानी कि एक ने कहा, 'यह सही है' तो दूसरा भी कहता है, 'यह सही है'। मैच नहीं होने देता। उनकी खुद की दृष्टि से प्रॉफिट और लॉस है। दोनों की दृष्टि अलग रहती है प्रॉफिट में, हर एक चीज़ में। अज्ञा हमेशा प्रॉफिट और लॉस ही देखती है। यही उसका काम है जबकि अज्ञान ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'अज्ञान में एक प्रकार का ज्ञान है', यह समझाइए।

दादाश्री : अज्ञान अर्थात् पूरे सांसारिक ज्ञान को जानना। वह अज्ञान कहलाता है। जबकि भीतर आत्मा के बारे में जानना, उसे ज्ञान कहते हैं। अज्ञान को प्राप्त करने के लिए अज्ञा उत्पन्न हुई है और ज्ञान को प्राप्त करने के लिए प्रज्ञा उत्पन्न हुई।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अज्ञान अर्थात् सही-गलत लेकिन वह ज्ञान तो है न?

दादाश्री : नहीं। अज्ञान अर्थात् एक प्रकार का ज्ञान, लेकिन वह विशेष ज्ञान है। गलत नहीं है। वह आत्मा का विशेष ज्ञान है। आत्मा का जो ज्ञान है, यह उससे आगे का विशेष ज्ञान है। विशेष ज्ञान है लेकिन दु:खदाई है, उसके जैसा सुखदायी नहीं है इसीलिए उसे अज्ञान कहा गया है।

विशेष अर्थात् आत्मा का विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है लेकिन वह

रिलेटिव होने की वजह से विनाशी है इसलिए वह हमारे लिए काम का नहीं है। हम तो मूल अविनाशी सुख के भोक्ता हैं। सनातन सुख के भोक्ता हैं हम। जो सनातन को एक ओर रखकर इस तरह भटकेगा तो कल उसका ठिकाना नहीं रहेगा। आज मनुष्य योनि में है लेकिन फिर कल चार पैर वाला बनकर वापस आड़ा हो जाता है! इसे क्या आबरू कहेंगे? लेकिन इतना अच्छा है कि पता नहीं चलता। अगर पता चलने लगे तो यहाँ पर रौब मारना बंद हो जाएगा, एकदम ढीला पड़ जाएगा।

प्रज्ञा न तो रियल है, न ही रिलेटिव

प्रश्नकर्ता : रियल और रिलेटिव को अलग कौन रखता है?

दादाश्री : विनाशी को तो हम पहचान सकते हैं न! मन-वचन-काया से, यह सब जो आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, वह सब रिलेटिव ही है। जबकि रियल का अर्थ है अविनाशी। अंदर प्रज्ञाशक्ति है। वह दोनों को अलग रखती है। रिलेटिव का भी अलग रखती है और रियल का भी अलग रखती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर दादा ऐसा हुआ न कि रियल, रिलेटिव और प्रज्ञा, ये तीन चीज़ें हैं? प्रज्ञा रियल से अलग चीज़ है?

दादाश्री : प्रज्ञा रियल की ही शक्ति है लेकिन बाहर निकली हुई शक्ति है। जब रिलेटिव नहीं रहता, तब वह आत्मा में एकाकार हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा रिलेटिव है या रियल है?

दादाश्री : 'रिलेटिव रियल' है। जब उसका काम पूरा हो जाता है तो मूल जगह पर बैठ जाती है, वापस आत्मा में एकाकार हो जाती है। प्रज्ञा 'रिलेटिव रियल' है। रियल होती तो अविनाशी कहलाती।

प्रश्नकर्ता : वह 'रिलेटिव-रियल' जब 'रियल' बन जाती है, तब रिलेटिव नहीं बचता न?

दादाश्री : रियल में रिलेटिव नहीं हो सकता। रिलेटिव मात्र विनाशी है। अत: यह प्रज्ञा विनाशी है लेकिन रियल है इसलिए वापस खुद के स्वभाव में आ जाती है। उसका संपूर्ण नाश नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव भाग पर प्रज्ञा का कंट्रोल है?

दादाश्री : किसी का भी कंट्रोल नहीं है। बल्कि रिलेटिव का रियल पर कंट्रोल था इसलिए शोर मचाते थे कि, 'हम बंधे हुए हैं, हम बंधे हुए हैं, हमें मुक्त करो, मुक्त करो'। जब ज्ञानीपुरुष मुक्त कर देते हैं, तब चैन की साँस लेता है कि, 'ओह! अब मुक्त हो गए'।

भेद, भेदज्ञान और प्रज्ञा में

प्रश्नकर्ता : जो बार-बार अंदर भेद डालता रहता है, उस भेदज्ञान और प्रज्ञा के बीच क्या संबंध है?

दादाश्री : ज्ञानीपुरुष भेद रेखा डाल देते हैं। फिर उसके बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। तब तक प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होती। जब तक भेद रेखा न डालें, तब तक अज्ञा तो है ही।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा और भेदज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : भेदज्ञान हो जाने के बाद ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है। प्रज्ञा लाइट है और यह भेदज्ञान भी लाइट है। वह लाइट तो सिर्फ दोनों को अलग रखने के लिए ही है।

प्रश्नकर्ता : और प्रज्ञा की परमानेन्ट लाइट?

दादाश्री : प्रज्ञा की लाइट टेम्परेरी-परमानेन्ट है। वह अपने आप ही फुल लाइट देती है चारों ओर से, मोक्ष में ले जाने तक। अगर उत्पन्न हो गई तो छोड़ेगी नहीं।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा का ज़ोर लाना हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : इन पाँच आज्ञाओं का पालन करने से प्रज्ञा हाज़िर हो

जाती है। अन्य कुछ नहीं। आपको आज्ञा में रहने का जो आकर्षण रहता है, तब आप पूछते हो कि ऐसा किस वजह से होता है? वह प्रज्ञा करती है। जो प्रकाश देती है, उसका नाम प्रज्ञा रखा गया है।

'ऐसा' करने से बुद्धि मर जाएगी

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ, यह देह नहीं हूँ' वह भी बुद्धि ही कहती है न?

दादाश्री : इसमें वह बुद्धि नहीं कहती है। बुद्धि ऐसा कहने ही नहीं देगी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। अगर बुद्धि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहने दे तो उसका खुद का नाश हो जाएगा। उसका खुद का अस्तित्व खत्म हो जाएगा। अतः वह खुद इस पक्ष में बैठती ही नहीं है कभी भी। अगर वह 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलेगी तो मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का संपूर्ण अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा इसलिए मन भी ऐसा कुछ एक्सेप्ट नहीं करता (ज्ञान मिलने के बाद)। सभी समझते तो हैं लेकिन जब डिस्चार्ज का फोर्स आता है, तब वह एक्सेप्ट नहीं करता। बुद्धि तो हमेशा संसार के पक्ष में ही रहती है, कभी भी शुद्धात्मा के पक्ष में नहीं रहती। विरोधी पक्ष में रहती है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा कहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'?

दादाश्री : वह नहीं कहता। आत्मा में से प्रज्ञा अलग हुई है, वह कहती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और वह प्रतिष्ठित आत्मा को देखती है कि यह लट्टू क्या कर रहा है! शुद्धात्मा में रहकर देखती है वह।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा देखती है?

दादाश्री : सारा काम अभी प्रज्ञा ही कर लेगी। जब तक मोक्ष में न चले जाएँ, जब तक यह सामान है, तब तक प्रज्ञा है। इस सामान के खत्म होते ही प्रज्ञा अंदर शुद्धात्मा में एकाकार हो ही जाएगी।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा कहते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो उसे भी प्रज्ञा ही देखती है?

दादाश्री : बोलता है टेपरिकॉर्डर लेकिन भाव प्रज्ञा का है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वह प्रज्ञा की सहज क्रिया है?

दादाश्री : प्रज्ञा की सभी क्रियाएँ सहज ही होती हैं, स्वाभाविक।

शुद्धात्मा, प्रतिष्ठित आत्मा और प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और प्रतिष्ठित आत्मा के बीच संबंध प्रज्ञा के माध्यम से है न?

दादाश्री : दोनों का संबंध? हमें प्रज्ञा से संबंध है। (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है) उन लोगों में प्रज्ञा है ही नहीं। उनमें अज्ञा के माध्यम से संबंध है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के साथ अज्ञान का संबंध है क्या?

दादाश्री : आत्मा को अज्ञान स्पर्श कर ही नहीं सकता न! प्रकाश को अंधेरा छू कैसे पाएगा? वह तो आधार रहित है जबकि यह (आत्मा) तो खुद के आधार पर खड़ा है।

प्रश्नकर्ता : खुद के अर्थात् क्या?

दादाश्री : अर्थात् खुद के गुणधर्मों के आधार पर। *पुद्गल* खुद के गुणधर्मों के आधार पर। प्रतिष्ठित आत्मा यानी पावर। पावर वाला खत्म हो जाएगा जबकि मूल 'वस्तु' को कुछ भी नहीं होता। बस, इसके अलावा कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह प्रतिष्ठित आत्मा मूल वस्तु में से उत्पन्न हुआ है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा संयोगवश हुआ।

प्रश्नकर्ता : जो प्रकृति को जानता है और प्रकृति के आधार पर चलता है, वह कौन है?

दादाश्री : वह अहंकार है, बस। प्रकृति को जानता है। जब उस पर सोचने बैठता है तब सभी कुछ जानता है।

किस वजह से ये सारे दोष हुए, वह यह सबकुछ जानता है। कुछ ही भाग नहीं जानता, बाकी सबकुछ जानता है। निन्यानवे तक जान सकता है, सौ तक नहीं जान सकता। बुद्धि का बहुत ज़्यादा विकास करे तो निन्यानवे तक जान सकता है लेकिन इसके बावजूद भी उस अहंकार से काम नहीं हो सकता। शुद्ध की ही आवश्यकता है।

प्रश्नकर्ता : जो खुद को जानता है और खुद के आधार पर चलता है, वह कौन है?

दादाश्री : वह अपनी प्रज्ञाशक्ति है। वह खुद अपने प्रकाश से ही जान रही है। चलना अर्थात् भाषा में जिसे चलना कहते हैं, वह नहीं। वह व्याप्त होती है!

ज्ञायकता किसकी?

प्रश्नकर्ता : आत्मा के स्वरूप में तो सभी चीज़ें झलकती हैं न? आत्मा का जो स्वरूप है दर्पण जैसा, दर्पण कभी भी देखने के लिए बाहर नहीं आता लेकिन यों दर्पण में सभी दृश्य झलकते (प्रतिबिंबित होते) हैं।

दादाश्री : वह जो झलकता है, वह अलग चीज़ है लेकिन यह तो ज्ञायक है! तो अभी यह ज्ञायकता किसकी है? वह प्रज्ञाशक्ति की है। हाँ, क्योंकि अभी प्रज्ञाशक्ति कार्यकारी है। मूल आत्मा कार्यकारी नहीं होता है। जब तक यह संसार है, तब तक के लिए कार्यकारी शक्ति उत्पन्न हुई है। वह है प्रज्ञा। वह प्रज्ञा सभी कार्य पूरे करके, सबकुछ समेटकर मोक्ष में चली जाती है।

जुगल जोड़ी, जागृति और प्रज्ञा की

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति और जागृति में कोई अंतर है?

दादाश्री : प्रज्ञाशक्ति, आत्मा की प्योर शक्ति है और जागृति अर्थात् जिसमें प्योरिटी और इम्प्योरिटी दोनों ही होती हैं। जागृति प्योर होते-होते जब फुल हो जाती है, तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : अब मोक्ष में जाने के बाद क्या प्रज्ञाशक्ति खत्म हो जाएगी?

दादाश्री : उसके बाद प्रज्ञाशक्ति खत्म हो जाती है। प्रज्ञाशक्ति हमें मोक्ष में ले जाने तक हेल्प करती है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में पहुँच जाने के बाद जागृति कोई काम करती है क्या? जागृति मंद हो जाती है?

दादाश्री : नहीं-नहीं! कुछ भी नहीं। अलग हो जाती है। वहाँ जागृति है ही नहीं। वहाँ पर तो फिर सिर्फ खुद प्रकाश ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मोक्ष में पहुँचने तक जागृति की ज़रूरत है या प्रज्ञाशक्ति की?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञाशक्ति और जागृति दोनों साथ में चलते हैं। प्रज्ञाशक्ति उसे वापस लाने की कोशिश करती है और जागृति उसे पकड़ लेती है।

अज्ञाशक्ति की जड़

प्रश्नकर्ता : अज्ञाशक्ति मूल आत्मा की कल्पशक्ति में से उत्पन्न होती है। क्या वह कल्पशक्ति आत्मा का स्वभाव है?

दादाश्री : नहीं, अज्ञाशक्ति साइन्टिफिकली उत्पन्न होती है। इसमें छः तत्त्व कार्य करते रहते हैं, निरंतर! इसमें जब चेतन और *पुद्गल* दोनों मिलते हैं, तब अज्ञाशक्ति बन जाती है और जब हम दोनों को अलग कर देते हैं तो चले जाते हैं, अहंकार और ममता दोनों ही।

जिस तरह पर (पराए) संयोगों के दबाव से अज्ञान होते-होते, अज्ञान पद उत्पन्न हो गया था, उसी तरह अन्य दबाव से (ज्ञानीपुरुष के निमित्त से) ज्ञान पद उत्पन्न हो गया।

वह नहीं है प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : जितना स्वभाव उत्पन्न होता है, क्या उस विभाग को हम प्रज्ञा कहते हैं?

दादाश्री : वह प्रज्ञा विभाग नहीं है। स्वभाव भाव उत्पन्न होने पर जो उसे भी जानती है, वह प्रज्ञा है। 'कितना विशेष भाव कम हुआ और कितना स्वभाव भाव उत्पन्न हुआ या बढ़ा', उन सभी को जो जानती है, वह प्रज्ञा है और उस समय जो यह सब जानती है कि आत्मा क्या है, वह प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा भी यों बढ़ती-घटती है न?

दादाश्री : बढ़ती-घटती है न, प्रज्ञा भी कम-ज़्यादा होती है। गुरु-लघु हो जाती है क्योंकि अंत में जब स्वभाव भाव पूर्ण हो जाता है और अहम् भाव खत्म हो जाता है, तब प्रज्ञा खुद ही खत्म हो जाती है। तब तक यह प्रज्ञा काम करती है।

दादा की खटपट वाली प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : दादा में प्रज्ञा है? दादा में? आपके बारे में?

दादाश्री : सभी में! प्रज्ञा रहित तो हो ही नहीं सकते न!

प्रश्नकर्ता : दादा जो सत्संग करते हैं, वह सारा जो व्यवहार चलता है, वह प्रज्ञा से है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रज्ञा तो हमारे लिए है, आपके लिए तो नहीं है न?

दादाश्री : है न! मुझमें भी प्रज्ञा है न! प्रज्ञा कब बंद होती है? जब केवलज्ञान हो जाता है तब वह खुद ही आत्मा में विलीन हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : वह एकरूप हो जाती है।

दादाश्री : एकरूप हो जाती है। तब तक अलग ही रहती है, वर्ना मुझसे खटपट कैसे हो पाती? यों 'आओ, आपको ज्ञान देंगे', क्या यह सब खटपट नहीं कहलाएगी? वह खटपट प्रज्ञा की वजह से है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा खटपट करवाती है।

दादाश्री : हाँ, और जिनमें प्रज्ञा नहीं है, वे खटपट नहीं करते। आप दर्शन करने जाओ और उन्हें दिखाई दे कि आपका अहित होने वाला है, तब भी कुछ नहीं कहेंगे। इमोशनल नहीं होंगे उस समय। क्योंकि हम में बुद्धि नहीं है। हमें बुद्धि इमोशनल नहीं करवाती, यह खटपट प्रज्ञा करवाती है। आपके हिताहित की बात करते हैं इसलिए हम खटपटिया कहलाते हैं। हमारी खटपट कैसी है कि 'जो सुख मुझे मिला वह सभी को प्राप्त हो', यह है हमारी खटपट। और यदि आप उसकी प्राप्ति के लिए नहीं आते हो तो हम आपसे कहते हैं कि 'भाई कल क्यों नहीं आए थे?' कोई पूछे कि इसमें आपकी क्या गर्ज़ है? तब कहते हैं, 'यह हमारी खटपट है, गर्ज़ नहीं है'। लोग मुझसे कहते हैं, 'दादा यह खटपट शब्द निकाल दीजिए न! खराब लगता है'। मैंने कहा, 'नहीं-नहीं! यही अच्छा लगता है। यही अच्छा है'। देखना तो सही, इसकी कैसी कद्र होगी एक दिन। खटपट शब्द की कद्र होगी एक दिन। पूरा ही 'खटपट' शब्द, जिसके प्रति लोगों को घृणा हो गई है, उसी खटपट शब्द से उन्हें आनंद हो जाएगा। खटपट ऐसी भी होती है, वैसी भी होती है और ऐसी भी होती है।

कृपा का रहस्य

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान की कृपा और ज्ञानीपुरुष की कृपा, क्या दोनों अलग हैं? इनमें क्या अंतर है?

दादाश्री : दादा भगवान की कृपा, मैं जान जाता हूँ कि इस पर अच्छी है और ज्ञानी को कृपा या अकृपा से कोई लेना-देना ही नहीं है न! ऐसा कुछ खास लेना-देना नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को कृपा से क्यों लेना-देना नहीं है?

दादाश्री : नहीं, लेकिन दादा भगवान की कृपा उतरने के बाद फिर ज्ञानी को और कोई झंझट नहीं रही न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यों कहा तो ऐसा जाता है न कि ज्ञानीपुरुष का *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता), ज्ञानीपुरुष की कृपा।

दादाश्री : वह तो व्यवहार में कहने की बात है। वही भगवान है और वही सबकुछ है। यह तो हम इनका विभाजन करते हैं। बाकी, अन्य सभी जगह पर तो विभाजन होता ही नहीं है न! हम इसीलिए इसका विभाजन करते हैं ताकि लोगों को करेक्ट लगे कि यह साफ-साफ बात है! और हमें कोई ऐसा शौक नहीं है भगवान बन बैठने का।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा भगवान खुद अंदर वीतराग हैं न?

दादाश्री : हाँ, वीतराग।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उन्हें ऐसा क्यों है कि कम या ज़्यादा कृपा उतारनी है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। उनके (भगवान के) अलावा, हम जो ज्ञानी हैं, उन्हें ऐसा नहीं है कि 'ये सब हमें भगवान कहकर बुलाएँ तो अच्छा'। उस स्वाद और उस मिठास की कोई ज़रूरत नहीं है। वह सारी भूख मिट चुकी है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, वह तो ठीक है लेकिन ये अपने दादा भगवान...

दादाश्री : वे तो संपूर्ण वीतराग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : जो कृपा उतरती है, वह ऑटोमैटिक है न? वह स्वयं (अपने आप ही होती) है न? या फिर दादा भगवान की कृपा है?

दादाश्री : दादा भगवान, वे तो वीतराग प्रभु हैं लेकिन यह जो प्रज्ञा है न, इस प्रज्ञा द्वारा सारी कृपा मिलती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब, ज्ञानीपुरुष में तो आत्मा खुद ही है, फिर प्रज्ञा कहाँ से आई?

दादाश्री : नहीं! वह कृपा प्रज्ञा के माध्यम से मिलती है। प्रज्ञा

तो सभी जगह रहेगी। प्रज्ञा तो, जब तक मोक्ष में न पहुँच जाएँ, तब तक बाहर रहकर काम करती रहेगी।

प्रश्नकर्ता : यानी उस प्रज्ञा से हम पर कृपा उतरती है।

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा से कृपा उतरती है। तब हमें पता चल जाता है कि कृपा उतरी है इस व्यक्ति पर।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या फिर प्रज्ञा को वीतरागता में परेशानी नहीं आती?

दादाश्री : प्रज्ञा वीतराग है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा वीतराग नहीं है?

दादाश्री : हो ही नहीं सकती न! प्रज्ञा तो इन सब का *निकाल* करने की ही झंझट लेकर आई है। जैसे-तैसे करके, सब समेटकर उसे मोक्ष में ले जाना है। यही उसका काम है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपकी प्रज्ञा तो बहुत बड़ी है।

दादाश्री : वह तो खूब डेवेलप्ड है लेकिन काम तो उसका भी यही है। हम ऐसा कहते भी हैं कि 'देखो भाई, भगवान की कृपा कम हो गई है तुम पर'।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् वह प्रज्ञा की ही बात है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा भी कहते हैं कि कृपा कुछ कारणों की वजह से कम हो गई है। उन कारणों को बदल दो तो वापस मिलेगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या वे सारी बातें प्रज्ञा की हैं?

दादाश्री : दादा भगवान तो वीतराग ही हैं न! वीतराग को तो ऐसा कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या प्रज्ञा केवलज्ञान होने तक रहती है?

दादाश्री : तब तक, ठेठ तक प्रज्ञा है। केवलज्ञान होने के बाद नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान होने के बाद में तीर्थंकर बनते हैं अथवा केवली बनते हैं तो फिर उनकी कृपा का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि प्रज्ञा नहीं है।

दादाश्री : पूर्ण हो जाता है न! सबकुछ खत्म हो जाता है। जब तक प्रज्ञा है तब तक देह के साथ कुछ लेना-देना है, उसके बाद तो देह से बिल्कुल अलग! हमें केवलज्ञान नहीं हुआ है। हाँ, फिर भी हमने यह देखा है कि केवलज्ञान क्या है।

जगत् कल्याण में अहंकार निमित्त है और प्रज्ञा करवाती है

प्रश्नकर्ता : हमें निमित्त बनाकर जगत् कल्याण का काम कौन करवाता है?

दादाश्री : वह सब प्रज्ञाशक्ति का काम है। प्रज्ञाशक्ति सब करवाती है। इसमें आत्मा कुछ नहीं करवाता। आत्मा में करवाने की कोई शक्ति है ही नहीं। इगोइज़म निमित्त है।

प्रश्नकर्ता : निमित्त है इगोइज़म। 'मैं कर रहा हूँ', वह निमित्त है?

दादाश्री : हाँ, कौन करवाता है? प्रज्ञाशक्ति। सबकुछ प्रज्ञाशक्ति का ही कामकाज है।

प्रश्नकर्ता : अब यह सब जो दिखाई देता है, वह आत्मा में दिखाई देता है लेकिन देखने वाला तो उससे परे है न?

दादाश्री : आत्मा में सब प्रतीत होता है। अलग है, ऐसा दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन जो उसका वर्णन करता है, वह देखने वाला तो उससे परे ही है न?

दादाश्री : वर्णन करना, वह सारा प्रज्ञा का काम है। अज्ञाशक्ति जो वर्णन करती थी, वह बुद्धि बल से करती थी और प्रज्ञाशक्ति ज्ञान बल से करती है, स्वाभाविक बल से।

प्रश्नकर्ता : अज्ञा परिग्रह सहित बात करती है और प्रज्ञा परिग्रह के बिना बात करती है।

दादाश्री : नाम मात्र को भी परिग्रह नहीं। नो परिग्रह!

तब तक प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा

प्रश्नकर्ता : हम यह जो ज्ञाता-दृष्टा भाव में रहते हैं, तो उस ज्ञाता-दृष्टा भाव में प्रज्ञा रहती है या आत्मा?

दादाश्री : नहीं, अभी प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा है। प्रज्ञा आत्मा का ही भाग है। अभी सारा काम प्रज्ञा कर रही है। वह प्रज्ञा जब आत्मा में एकाकार हो जाती है तब केवलज्ञान होता है और केवलज्ञान होने के कुछ समय बाद मोक्ष में चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : अभी आपका, ज्ञानीपुरुष का आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है। हम में प्रज्ञा ज्ञाता-दृष्टा है।

दादाश्री : मुझमें भी प्रज्ञा है। जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता, तब तक प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा सभी कुछ जानता है, देखता है। क्या आत्मा ही जानता और देखता है?

दादाश्री : वही, लेकिन वह प्रज्ञा नामक भाग है।

प्रश्नकर्ता : तो इस ज्ञान प्राप्ति के बाद जो खुद की प्रकृति को देखता है, वह खुद कौन है?

दादाश्री : वही, आत्मा ही देखता है। और कौन? सबकुछ आत्मा के ही सिर पर। आत्मा अर्थात् फिर वही, प्रज्ञा। यहाँ पर फिर

इसे सीधा आत्मा नहीं मानना है। आत्मा अर्थात् प्रज्ञा ही सारा... यह सारा कार्य करती है लेकिन हम उसे आत्मा कहते हैं। बस इतना ही है कि कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं तो पहले ऐसा समझा था कि हम महात्माओं में ज्ञान लेने के बाद प्रज्ञा ही जागृति को सही रखती है। कोई भी दोष होने पर तुरंत टोकती है कि, 'इतने, ये-ये दोष हुए हैं'।

दादाश्री : हाँ, सचेत करती है, सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यही ज्ञाता-दृष्टा रहती है, वह ठीक से समझ में नहीं आया था।

दादाश्री : नहीं! सब जगह प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा है। आत्मा सिर्फ केवलज्ञान को ही देख सकता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जब केवलज्ञान होता है तभी आत्मा ज्ञाता-दृष्टा बनता है, तब तक प्रज्ञा ही काम करती है।

दादाश्री : यह भी आत्मा ही है। इसे अलग मत मानना। इस तरह से आप अलग करने जाओगे तो आपको समझ में नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आप इसे प्रज्ञा क्यों कहते हैं? आत्मा ही कह दीजिए न।

दादाश्री : हं! ऐसा कह देते हैं लेकिन उसमें भी लोग वापस खुद का कुछ ले आते हैं। समझाने के लिए विस्तारपूर्वक कहा है। विस्तार का अर्थ ऐसा मत लगाना कि यों...

प्रश्नकर्ता : अगर इसे बारीक कातें तो प्रज्ञा और मोटा कातना हो तो आत्मा तो फिर क्या मूल आत्मा सचेत नहीं करता?

दादाश्री : हाँ, मूल आत्मा सचेत नहीं करता। अभी प्रज्ञा सचेत कर रही है। बाद में वह एक ही हो जाती है। जब अपनी पूरी रामायण खत्म हो जाती है, तब वह भी उसमें (आत्मा में) समा जाती है।

जिस ज्ञान से संसार छूट जाता है, वह आत्मज्ञान कहलाता है और जिस समय उस ज्ञान का उपयोग होता है, उस समय उसे प्रज्ञा कहा जाता है।

जो वर्तना में रखवाता है, वह आत्मा है और जो श्रद्धा में रखवाता है, वह प्रज्ञा है। वर्तन अर्थात् चारित्र।

प्रश्नकर्ता : आपमें उस देखने वाले को प्रज्ञा कहा जाएगा या आत्मा? आपके संदर्भ में प्रज्ञा नहीं कहा जाएगा या कहा जाएगा?

दादाश्री : प्रज्ञा ही कहा जाएगा। प्रज्ञा के सिवा तो अन्य कुछ कह ही नहीं सकते। आत्मा तो कह ही नहीं सकते। संसार दशा में प्रज्ञा ही काम करती रहती है। सचेत करती है, अंदर सबकुछ वही करती है।

ध्याता कौन है और ध्यान किसका?

प्रश्नकर्ता : ध्याता, ध्येय और ध्यान किसे कहा जाता है? शुद्धात्मा ध्याता है या प्रतिष्ठित आत्मा?

दादाश्री : इस ज्ञान प्राप्ति के बाद प्रज्ञा ध्याता है, प्रतिष्ठित आत्मा भी ध्याता नहीं है। प्रज्ञा ध्याता है। ध्येय वह 'खुद' है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ध्येय है। ध्याता और ध्येय की एकता हो जाने से अंदर ध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : अभी शुद्धात्मा को ध्याता नहीं कह सकते?

दादाश्री : शुद्धात्मा (केवलज्ञानी आत्मा) तो अपना ध्येय है। शुद्धात्मा होना, वह अपना ध्येय है। शुद्धात्मा ही परमात्मा है, उसे जो भी कहो, वह यही है। प्रज्ञा ध्याता है और शुद्धात्मा ध्येय है क्योंकि आपको जो यह शुद्धात्मा पद दिया है, वह प्रतीति पद है। आप शुद्धात्मा हो नहीं गए हो लेकिन अगर अपलक्षण दिखाई दें तो आप अपने आपके लिए ऐसा मत मान लेना कि मेरा बिगड़ गया है। इसलिए शुद्धात्मा कहा है।

अभी उस शुद्धात्मा को प्रज्ञा कहो या अंतरात्मा दशा कहो, दशा

अंतरात्मा कहलाएगी। लेकिन अंतरात्मा दशा कब तक है, प्रज्ञा के रूप में कब तक है? जब तक फाइलों का *निकाल* करना बाकी है, तभी तक। फाइलों का *निकाल* हो जाने के बाद तो फिर फुल गवर्नमेन्ट अर्थात् परमात्मा।

ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञा, इन तीनों के बीच में क्या भेद है?

दादाश्री : ज्ञान अर्थात् जो खुद को करना पड़े। जितना जानते हैं उतना खुद को करना पड़ता है और विज्ञान अपने आप ही हो जाता है, हमें करना नहीं पड़ता और प्रज्ञा इन दोनों के बीच की स्थिति है। एक बार आप वैज्ञानिक तरीके से समझ गए कि इस दवाई को पीने से इंसान मर ही जाता है तो आप वापस कभी भी वह दवाई नहीं पीओगे। अगर वैज्ञानिक तरीके से समझ लोगे तो! और यों ही अगर कोई आपसे कहे कि यह दवाई पोइज़नस है और इस दवाई से मर जाते हैं तो भी इंसान पी लेता है। अतः जो ज्ञान क्रियाकारी है, वह वैज्ञानिक ज्ञान कहलाता है। जो ज्ञान क्रियाकारी होता है, स्वयं क्रियाकारी, वह है विज्ञान। और जो ज्ञान क्रियाकारी नहीं है, खुद को करना पड़ता है, वह ज्ञान है। 'दया रखो, शांति रखो', वह करना पड़ता है। वह फिर खुद से हो नहीं पाता, वह ज्ञान कहलाता है।

अतः शास्त्रों में ज्ञान है, शास्त्रों में विज्ञान नहीं है। शास्त्रों में शास्त्रज्ञान है जबकि यह विज्ञान है इसलिए चेतन ज्ञान अंदर काम करता रहता है, वह ज्ञान ही काम करता रहता है जबकि शास्त्रों का ज्ञान चाहे कितना भी पढ़ो, रटो, लेकिन वह काम नहीं करता। हमें करना पड़ता है, जबकि यह विज्ञान तो अपने आप ही काम करता रहता है। अंदर से जागृति देता है, सबकुछ अपने आप ही होता रहता है। आपमें करता है न, सबकुछ अपने आप? उसे कहते हैं विज्ञान। विज्ञान का अर्थ क्या है? चेतन ज्ञान, जो ज्ञान चेतन है, जो जागृति सहित है, वही विज्ञान है

और वही आत्मा है। अभी प्रज्ञा के रूप में है। जब प्रज्ञा अपना काम पूरा कर लेगी, जब इन फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तो प्रज्ञा खुद के स्वरूप में आ जाएगी। परमात्मा स्वरूप में।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा स्व से अभिन्न कब है?

दादाश्री : अभी स्व से अभिन्न नहीं है, लेकिन यह कहने का भावार्थ क्या है? प्रज्ञा, वह खुद ही 'स्वरूप' है। अभी जब तक आत्मा प्रकट नहीं हुआ है, तब तक गुनाह होते ही तुरंत चेतावनी देने का काम प्रज्ञा का है। जब वीतरागता रहती है, बाहर वाले गुनाह नहीं होते, तब फिर प्रज्ञा खुद ही 'स्वरूप' है।

बुद्धि से भेद, प्रज्ञा से अभेद

प्रश्नकर्ता : यह जो अभेदता रहती है, वह उच्चतम कक्षा की बुद्धि कहलाती है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, अभेदता अर्थात् बुद्धि का अभाव, वह ज्ञानभाव है। ज्ञान से सभी एक हैं और बुद्धि से अलग-अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : उसमें प्रज्ञा का समावेश है या नहीं?

दादाश्री : वही है न! प्रज्ञा से सभी एक ही हैं लेकिन बुद्धि से हम अलग-अलग हैं। हमने खुद में वह बुद्धि खत्म कर दी है। हम जैसे-तैसे करके उसे निकालते रहे हैं, जैसे-जैसे उदय में आती गई वैसे-वैसे *निकाल* कर दिया। उदय को संभालकर नहीं रखा। मूलत: पिछले जन्म में निकाल दी थी, इसलिए इस जन्म में बहुत नहीं निकालनी पड़ी। पहले निकाल दी थी न। अब आपको बुद्धि बहुत परेशान नहीं करती न?

अभेदता की प्राप्ति अर्थात्?

प्रश्नकर्ता : अभेदता क्या है? 'संपूर्ण अभेदता प्राप्त हो', ऐसा चरणविधि में माँगते हैं न!

दादाश्री : अभेदता अर्थात् तन्मयाकार। भगवान के साथ एक हो जाते हैं हम। अभी जो जुदाई है न, शुद्धात्मा और आपमें कितना भेद है कि अभी प्रतीति से शुद्धात्मा हुए हैं। संपूर्ण श्रद्धा बैठ गई है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इसका विश्वास हो गया है। थोड़ा बहुत अनुभव हो गया है लेकिन उस जैसे (रूप) हुए नहीं हैं। अतः भगवान से ऐसा कहते हैं कि उसी जैसा (रूप) बना दो। वही अभेदता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् बिल्कुल भी भेद नहीं।

दादाश्री : भेद है, अभी तक भेद है। अभी मुझे आपको शुद्धात्मा में लाना पड़ता है। बाद में लाना नहीं पड़ेगा। अभेद हो जाना है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार शुद्धात्मा के साथ अभेद होता है न?

दादाश्री : नहीं, अहंकार नहीं। व्यवहार का *निकाल* करने के लिए यह जो प्रज्ञा अलग हुई है न, तो अब जब वह एक हो जाएगी तो काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कौन किसके साथ अभेद होता है?

दादाश्री : प्रज्ञा और शुद्धात्मा। ये दोनों जो अलग हैं, वे एक हो जाएँगे। अभी 'मैं'पन प्रज्ञा में बरतता है। हम जिसमें बरतते हैं, वह प्रज्ञा है। अब अहंकार में नहीं बरतता। अतः 'मैं' चंदूभाई में बरतता था, तब अहंकार में कहलाता था। अभी प्रज्ञा में बरतता है। अर्थात् शुद्धात्मा नहीं, यानी कि वह, जिसे अंतरात्मा कहा गया है।

हमारी यह प्रज्ञा लगभग ऐसी ही है जैसे आत्मा में स्थिर हो गई हो। अतः हमें 'शुद्धात्मा' बोलना नहीं पड़ता या सोचना नहीं पड़ता कुछ भी और उस रूप में अभेदता जैसा ही लगता है। ज़रा सा बाकी है, चार प्रतिशत की वजह से। जबकि आपको अभेद होना है, धीरे-धीरे-धीरे करके जैसे-जैसे इन फाइलों का *निकाल* होता जाएगा, वैसे-वैसे अभेद होता जाएगा। फाइलों का पूर्ण रूप से *निकाल* हो गया तो समझो अभेद हो गया। फाइलों की ही झंझट है यह सारी। लेकिन अभी वह प्रज्ञा के

रूप में है और प्रज्ञा भगवान का अंश है। जब काम पूर्ण हो जाएगा तब वापस उनमें समा जाएगी। भगवान और आत्मा एक ही हैं। आत्मा जब भौतिक में से छूटकर खुद के स्वरूप में ही रहता है, तब परमात्मा कहलाता है। निरंतर स्वरूप की रमणता, वही परमात्मा है और जब तक स्वरूप की रमणता भी है और यह रमणता भी है, तब तक अंतरात्मा। वही प्रज्ञा है।

[2.1]
राग-द्वेष

संसार का रूट कॉज़ - अज्ञान

वेदांत कहते हैं कि मल-विक्षेप और अज्ञान। जैन कहते हैं राग-द्वेष और अज्ञान। ये दोनों मत हैं मोक्ष में जाने के। ये तीन चीज़ें चली जाएँ तो इंसान मोक्ष पा ले। इनमें से मुख्य कॉमन क्या है? तो वह है 'अज्ञान'। रूट कॉज़ क्या है? राग-द्वेष रूट कॉज़ नहीं हैं, मल-विक्षेप रूट कॉज़ नहीं हैं तो फिर रूट कॉज़ क्या है? अज्ञान। यदि अज्ञान चला जाए तो फिर मोक्ष हो जाएगा।

इस ज्ञान प्राप्ति के बाद यहीं से हमें मोक्ष बरतता है, मुक्ति ही बरतती है। पहले अज्ञानता से मुक्ति होती है और फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सभी राग-द्वेष का *निकाल* हो जाता है। समभाव से *निकाल* होने लगा है, तो सभी राग-द्वेष का *निकाल* हो जाने पर फिर अंतिम मुक्ति, आत्यंतिक मोक्ष हो जाता है।

देहधारी ही बनता है वीतराग

जब तक ऐसा था कि 'मैं चंदूलाल हूँ', तब तक राग-द्वेष थे लेकिन अज्ञान चला गया तो राग-द्वेष गए। भले ही छोटा बच्चा हो, लेकिन फिर भी यदि अज्ञान चला जाए तो राग-द्वेष भी चले जाएँगे, सौ प्रतिशत। क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों का सौ प्रतिशत अज्ञान नहीं जाता। अपने यहाँ तो सौ प्रतिशत अज्ञान चला जाता है अर्थात् राग-द्वेष बिल्कुल भी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब तक देह है, तब तक राग-द्वेष नहीं जाएँगे।

अब आप तो कहते हैं कि जब तक अज्ञान है, तब तक राग-द्वेष नहीं जाएँगे?

दादाश्री : अज्ञान चला जाएगा तो राग-द्वेष रहेंगे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : फिर शरीर रहता है या नहीं रहता?

दादाश्री : शरीर भले ही सौ बरस तक रहे और मस्ती में रहे।

प्रश्नकर्ता : वह 99.99 प्रतिशत। सभी के लिए नहीं है, वह आपके लिए है।

दादाश्री : अभी तो कितने सारे लोग ऐसे हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो ठीक है लेकिन यह तो राग-द्वेष छोड़ने की बात है अतः मेरा कहना ऐसा है कि जब तक देह है, जब तक प्राण हैं, तब तक प्रकृति रहेगी और तब तक राग-द्वेष हैं।

दादाश्री : तो फिर देह के जाने के बाद बचेगा क्या? वह तो जब देह की उपस्थिति में राग-द्वेष निकल जाएँगे, तभी वीतराग कहलाएगा, वर्ना राग-द्वेष तो रहते ही हैं। वीतराग तो बहुत हो चुके हैं हिंदुस्तान में! अतः आपको यह जो पहले का प्रेजुडिस है न, इसीलिए आपको मन में ऐसा लगता है। अतः आपको समझ लेना है कि, 'ओहोहो! अभी भी प्रेजुडिस है'।

इनके परिणाम बताता हूँ कि जहाँ राग-द्वेष होंगे, वहाँ पर चिंता हुए बगैर रहेगी ही नहीं। इसलिए इन क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों को चिंता होती है जबकि अक्रम में राग-द्वेष नहीं रहने की वजह से चिंता नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : संसार में राग नहीं रखें तो दुःख होता है और अगर राग रखें तो मोक्ष रुक जाता है।

दादाश्री : ऐसा है न, अब आप वास्तव में क्या हो? रियली स्पीकिंग चंदूभाई हो या शुद्धात्मा?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा।

दादाश्री : तो फिर आपको राग-द्वेष वगैरह कुछ भी नहीं रहा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो राग-द्वेष नहीं हैं और अगर वास्तव में चंदूभाई हो तो आपको राग-द्वेष हैं।

यदि आप किसी पर गुस्सा हो गए तो मैं आपसे इतना पूछ लूँगा कि, आप चंदूभाई हो या शुद्धात्मा हो? तब यदि आप कहो कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो फिर मुझे आपसे कुछ भी कहने को रहा ही नहीं। अगर गुस्सा करते हो तो मैं समझ जाता हूँ कि जो माल है, वह निकल रहा है। उसे रोकने का हमें अधिकार नहीं है। आपको चंदूभाई से ऐसा ज़रूर कहना चाहिए कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। चंदूभाई से कहने में हर्ज नहीं है क्योंकि पड़ोसी है न! फाइल नं-1!

बाकी, लाइन ऑफ डिमार्केशन खिंच चुकी है। यह भाग आपका है और यह भाग इनका। जैसे कोई मकान हो, उसे वाइफ और पति बाँट लेते हैं सहमति से। बाँटने के बाद फिर तुरंत ही समझ जाते हैं कि यह मेरा नहीं है। इसी प्रकार से यह बँटवारा करने के बाद क्या आपका है और क्या उनका, उसमें दखल कैसे की जा सकती है?

अक्रम में राग-द्वेष रहित दशा

राग-द्वेष संसार का कारण है और जो राग-द्वेष रहित हो गए, वे संसार से मुक्त हो गए। जगत् राग-द्वेष में ही रहता है। जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, समकित प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक राग-द्वेष रहते हैं और क्रमिक मार्ग में समकित प्राप्त होने के बाद भी राग-द्वेष रहते हैं, यों अनुपात में। बीस प्रतिशत समकित प्राप्त हो चुका है और अस्सी प्रतिशत राग-द्वेष बचे हैं और यहाँ पर अक्रम में तो सौ प्रतिशत राग-द्वेष चले गए।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई की वृत्तियाँ शायद राग-द्वेष वाली हो सकती हैं।

दादाश्री : इसे राग-द्वेष नहीं कहेंगे। राग-द्वेष का मतलब क्या

है? 'मैं खुद ही चंदूभाई हूँ', वह जो मान्यता है, वही राग-द्वेष है और वह मान्यता बदलती नहीं है। 'मैं सो रहा हूँ, मैं ऐसा हूँ', वह सब जाता ही नहीं है। जबकि यह तो, जब हम ज्ञान देते हैं तब कहते हैं, 'यह मेरी फाइल है। मैं अलग हूँ और फाइल अलग है'। जिसने इस फाइल को फाइल जाना, वह आत्मा शुद्ध ही है। क्रमिक में तो इसे, 'मैं ही हूँ' ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो प्रतिष्ठित आत्मा है, उसे राग-द्वेष होते हैं?

दादाश्री : उसे भी राग-द्वेष नहीं होते। राग-द्वेष कब कहा जाता है? जब उसमें हिंसक भाव हों। यह तो सिर्फ डिस्चार्ज भाव है। जब तक चार्ज और डिस्चार्ज दोनों रहें, तब वह राग-द्वेष कहा जाता है। जबकि यह तो डिस्चार्ज भाव है अर्थात् भरे हुए माल का *गलन* (डिस्चार्ज) हो रहा है।

अर्थात् अब गुस्सा हो जाता है या कुछ भी होता है तो वह राग-द्वेष नहीं कहलाता। चंदूभाई किसी को एक धौल लगा दे तो वह राग-द्वेष नहीं है या फिर अगर चंदूभाई दो गालियाँ दे दे या किसी को दो धौल लगा दे तो चंदूभाई को उसका फल मिल जाएगा। आपको यह देखते रहना है कि चंदूभाई को लोगों ने कितनी धौल लगाई। अपना विज्ञान अब आपको समझ में आ गया?

राग, आसक्ति - परमाणु का विज्ञान

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर राग में से अनुराग हो जाता है और फिर आसक्ति होती है और फिर चाहे कोई भी दोष हो वह अच्छा ही लगता है।

दादाश्री : ऐसा है, राग कॉज़ेज़ हैं। अनुराग और आसक्ति इफेक्ट हैं। तो इफेक्ट को बंद नहीं करना है, कॉज़ेज़ बंद करने हैं।

क्योंकि यह आसक्ति कैसी है? एक महिला ने कहा, 'आपने मुझे और मेरे पुत्र को भी ज्ञान दिया है, फिर भी मुझे उस पर इतना अधिक

राग है। यह ज्ञान दिया है फिर भी राग नहीं जाता'। मैंने कहा, 'वह राग नहीं है बहन। वह आसक्ति है'। तब कहने लगीं, 'लेकिन ऐसी आसक्ति नहीं रहनी चाहिए न?' मैंने कहा, 'वह आसक्ति आपको नहीं है'। अपने यहाँ लोहचुंबक हो और आलपिन पड़ी हों तो ऐसे-ऐसे करने से आलपिन हिलने लग जाती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हिलती हैं।

दादाश्री : इन आलपिनों में आसक्ति कहाँ से आई? उसी प्रकार से इस शरीर में लोहचुंबक जैसे गुण हैं क्योंकि यह इलेक्ट्रिकल बॉडी है। इलेक्ट्रिसिटी से शरीर में लोहचुंबक जैसा गुण आ जाता है लेकिन वह लोहचुंबक चाहे कैसा भी हो पर वह तांबे को नहीं खींच सकता। किसे खींचता है? सिर्फ लोहे को, स्व जाति को।

उसी तरह इसमें जो परमाणु हैं न, अपनी बॉडी में! वे लोहचुंबक वाले हैं तो स्व जाति को खींचते हैं। वही यह आसक्ति है, उसका तूफान तू देखता रह। तू यह देखता रह कि यह शरीर ऐसे कूदा और कहाँ जा रहा है वगैरह और यह समझना छोड़ दे कि 'मुझे हो रहा है'। अतः वापस फिर 'मुझे अब कुछ भी नहीं छू सकता', ऐसा करके दुरुपयोग कर लेगा तो क्या होगा? वह तो अंगारों में हाथ डालने के बराबर है। यह जागृति रखनी चाहिए कि 'मुझे' अर्थात् किसे? 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यदि ऐसी जागृति रहती है तब तो फिर उसे कहने की ज़रूरत ही नहीं है कि 'मुझे कुछ नहीं हो सकता'! उस बच्चे पर सिर्फ आसक्ति है। परमाणु से मिलते-जुलते परमाणु आ गए हैं। तीन परमाणु आपके और तीन परमाणु उसके, मेरे तीन और आपके चार तो कोई लेना-देना नहीं है। विज्ञान है यह सब तो।

पागल पत्नी के साथ अच्छा लगता है और समझदार पत्नी उसे बुलाए तो अच्छा नहीं लगता क्योंकि परमाणु नहीं हैं पति में। मिलते-जुलते परमाणु नहीं हैं।

भगवान तो सिर्फ यह देखते हैं कि कितने राग-द्वेष होते हैं।

राग-द्वेष नहीं होते! बाकी की सब चीज़ों से अब कोई लेना-देना नहीं है। क्रमिक वाले दूसरी क्रियाएँ क्यों बंद कर देते हैं? क्योंकि क्रियाएँ हैं, इसीलिए राग-द्वेष होते हैं। 'अतः इन क्रियाओं को कम कर दो', जबकि यहाँ पर तो राग-द्वेष होते ही नहीं हैं, फिर क्या बचा? अब अगर ऐसा कहेंगे तो वह उल्टे रास्ते चलने लगेगा। और अगर आज्ञा पालन कर रहा होगा तो वह भी बंद हो जाएगा इसलिए कह नहीं सकते और फिर (आज्ञा पालन) कम हो जाएगा। अतः ऐसा चलाते रहना पड़ता है।

नहीं है शुद्धात्मा को राग-द्वेष

अभी इस ज्ञान के बाद जो राग-द्वेष होते हुए दिखाई देते हैं न, वह आकर्षण और विकर्षण है। वह *पुद्गल* का गुण है लेकिन 'मुझे ऐसा हो रहा है' कहा, वही राग है।

और फिर ये राग-द्वेष खुद का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव राग-द्वेष वाला है ही नहीं। स्वभाव से आत्मा वीतराग है। ये राग-द्वेष तो *पुद्गल* का स्वभाव है। अर्थात् आकर्षण और विकर्षण *पुद्गल* का स्वभाव है। *पुद्गल* के इस स्वभाव को खुद का स्वभाव मानकर खुद ऐसा कहता है कि मुझे राग-द्वेष हो रहे हैं। जब तक यह रोंग बिलीफ है कि 'मैं *पुद्गल* हूँ, यही मैं हूँ, चंदूभाई ही हूँ' तब तक ऐसा हाल रहेगा और जब 'मैं चंदूभाई हूँ' छूट जाएगा और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' हो जाएगा, तब ऐसा हाल नहीं रहेगा।

जहाँ राग-द्वेष हैं, वहाँ आत्मा नहीं है। जहाँ आत्मा है, वहाँ राग-द्वेष नहीं हैं। राग-द्वेष जितने कम आत्मा उतना ही प्रकट हुआ है! राग-द्वेष खत्म तो संपूर्ण आत्मा! यानी कि वीतराग पद दे दिया है। क्या यह कोई ऐसा-वैसा पद है? यह एक्ज़ेक्ट है। यह विचार करने योग्य नहीं है और अगर चिंता शुरू हो जाए तो समझना कि यह वीतरागता नहीं है। अब आपने इस तरफ का रुख किया है न, तो अब आपको उसके पुष्टि के कारण मिल आएँगे क्योंकि आप खुद शुद्धात्मा हो। यह बाकी का

जो कुछ भी बचा है न, उस ज्ञेय और दृश्य को आप सामने लाओ तो उससे लेना-देना नहीं है। ज्ञेय तो ऐसा भी हो सकता है और वैसा भी हो सकता है। ज्ञेय तो, अंदर मन में क्या कहता है, 'आत्म हत्या करनी पड़ेगी' लेकिन किसे? उसे न! हमें क्या? हम तो जानने वाले हैं। अर्थात् यह पद कुछ अलग ही प्रकार का है, वीतराग पद है।

प्रश्नकर्ता : पहले तो ज्ञाता-दृष्टा नहीं रह पाता और कहता है, 'नहीं, यह मुझे सेट नहीं होगा'।

दादाश्री : हाँ, ऐसा होता है और अब तो वास्तव में ज्ञाता-दृष्टा रह ही पाते हैं! उसमें तो रह ही नहीं सकते। उसमें तो ज़रा सा अंदर कुछ खिंचाव रहता था, आकर्षण रहता था। यह तो आकर्षण रहित है, कितना अच्छा है! आकर्षण बंद हुआ कि वीतरागता उत्पन्न हो जाती है तो यहाँ पर आपका आकर्षण बंद हो गया है और अब वीतरागता उत्पन्न होगी।

हम में भी पहले का वैसा माल भरा हुआ तो है लेकिन आकर्षण नहीं होता हमें। ज़रा सा भी आकर्षण नहीं। अतः फिर वहाँ पर वीतरागता रहती है हमें।

भरा हुआ माल है इसलिए अगर आपको अभी आकर्षण होने लगे तो, वह राग नहीं कहलाएगा। राग करने वाला कोई होना चाहिए, राग का कर्ता होना चाहिए और बिना कर्ता के राग नहीं हो सकता। क्या तू कर्ता है?

प्रश्नकर्ता : कभी तन्मयाकार हो जाते हैं इसलिए कर्ता बन जाते हैं।

दादाश्री : वह तो, जहाँ रुचि हो वहाँ पर तन्मयाकार हो जाता है। लोग जब पैसे गिनते हैं, तब तन्मय हो जाते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ बस! उसमें कोई गुनाह नहीं है। उसके लिए आत्मा

ऐसा नहीं कहता कि आप तन्मयाकार क्यों हो गए? आत्मा तो आत्मा ही है और धीरे-धीरे वह दशा कम होती जाती है। यह केवलज्ञान की ओर बढ़ता जाता है। निरंतर ज्ञान रहे, तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है। यहाँ तो, अभी फाइलों का *निकाल* करना पड़ रहा है न!

तभी प्राप्त हो सकता है मोक्ष का पंथ

आप खुद चंदूभाई बन जाओ तो राग-द्वेष आपके कहलाएँगे वर्ना उसे राग-द्वेष कैसे कहेंगे? तो फिर पूछते हैं कि 'यह क्या हो रहा है?' यह जो हो रहा है, वह चंदूभाई को हो रहा है और आप शुद्धात्मा इसे जानते हो कि यह क्या हो रहा है और आप ऐसा भी कहते हो कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह सब सही है।

दादाश्री : यानी कि आपका अभिप्राय अलग है इसलिए आप वीतराग हो। अतः हमने कहा है न कि पुरुषार्थ तो आपका ज़बरदस्त चल रहा है। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ रह सकता है वर्ना यों तो ज़रा सी देर के लिए भी राग-द्वेष बंद नहीं होते। किसी पर राग-द्वेष होते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं होते।

दादाश्री : तो वही आत्मा है और वह यह सब देखता ही रहता है। मन में खराब विचार आए, अच्छा विचार आए, यह हो, वह हो तो तुरंत ही सब को देखता है। किसी ने कैसी वाणी बोली, किसी ने कुछ बुरा कह दिया या अच्छा कह दिया हो तो भी राग-द्वेष नहीं होते। जहाँ राग-द्वेष नहीं होते, उसी को आत्मा कहते है और जहाँ राग-द्वेष होते हैं, वह कहलाता है संसार! देहाध्यास!

'राग-द्वेष, अज्ञान ए मुख्य कर्म नी ग्रंथ, थाय निवृति जेहथी ते ज मोक्षनो पंथ।' - श्रीमद् राजचंद्र।

जिस पंथ से राग-द्वेष की निवृति हो, वही मोक्ष का पंथ है। आपके राग-द्वेष निवृत हो चुके हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अक्रम से ऐसा हो जाता है। अत: अक्रम मोक्ष का पंथ है।

दादाश्री : हाँ, यही मोक्ष का पंथ है।

'नहीं है मेरा' कहा, तभी से छूटने लगे

जिसे बंधना हो उसके लिए तो है ही न मार्ग! जिसे बंधना हो उसके लिए बुद्धि का मार्ग है ही। जिसे मुक्त होना है उसके लिए हर प्रकार की छूट है।

राग-द्वेष न किए जाएँ, उसी को मोक्षमार्ग कहते हैं। जो हो उसे देखता रहे। संसार तो है ही राग-द्वेष का निमित्त, खुद ही निमित्त है। निमित्त क्या करवाता है?

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष ही करवाता है।

दादाश्री : हाँ, तो फिर उस निमित्त में पड़ें ही नहीं न! यह 'मेरा नहीं है', ऐसा कहेंगे तो फिर मुक्त हो जाएँगे। यह 'मेरा नहीं है' कहा कि, वह खुद उससे अलग हो गया। हमने जो ज्ञान दिया है, उसमें यह दिखाया है कि 'क्या तेरा है' और 'क्या तेरा नहीं है'। यदि अभी वह ऐसा कह देगा तो मुक्त हो जाएगा। उस ज्ञान को चूक गए और एकाकार हुए कि चिपक पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : अंदर से इस प्रकार अलग रखकर ही बैठने योग्य है।

दादाश्री : अंदर और बाहर भी अलग रखना है। बाहर भी क्या लेना-देना है? तुझसे क्या लेना-देना है। अगर एक घंटे गाली-गलौच हो जाए तो वह मारपीट करने लगेगा। उससे क्या लेना-देना?

मन के विरोध के सामने...

मन के विरोध करने पर भी अगर राग-द्वेष नहीं हों तो बहुत हो गया। अगर मन विरोध करे तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन राग-द्वेष नहीं होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मन विरोध करे तब वीतरागता कैसे रह सकती है?

दादाश्री : रह सकती है। मन के विरोध को तो देखते रहना है। मन को तो पूरा देखना ही है न! मन दृश्य है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जहाँ मन का विरोध होता है, वहाँ वीतरागता नहीं रह सकती लेकिन ज्ञाता-दृष्टा रहा जा सकता है।

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहना ही वीतरागता है। राग-द्वेष रहित हुए बगैर ज्ञाता-दृष्टा में नहीं रह सकते। जितने समय तक राग-द्वेष रहित रहे उतने समय तक ज्ञाता-दृष्टा रह सकेंगे।

प्रश्नकर्ता : मन का विरोध बहुत लंबे समय से चल रहा हो लेकिन फिर यदि एक्ज़ेक्टनेस में यह दिखाई दे कि, 'यह मन ज्ञेय है और हम ज्ञाता है', तो मन का वह विरोध खत्म हो जाता है।

दादाश्री : उसका समाधान होते ही खत्म हो जाएगा। बस! मन समाधान ढूँढता है, किसी भी तरीके से, एट एनी वे। अगर आप कह देते हो कि 'समाधान हो गया' तो वह खत्म हो जाएगा, पूरा बल्ब उड़ जाएगा उस क्षण।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि उस समय मन को समाधान हो जाता है लेकिन वह रिलेटिव ज्ञान से होता है तो फिर वापस उसका रिऐक्शन तो आएगा ही न?

दादाश्री : उसके पीछे अवस्थाओं के रिएक्शन होते हैं। एक परत चली जाती है, फिर दूसरी परत आती है। हर एक चीज़ परत वाली होती है।

अब लोग तो यह नहीं जानते कि ऐसी स्थितियाँ होती हैं! क्या लोग ऐसा जानते हैं? इस चीज़ की कल्पना भी नहीं है न लोगों को।

महात्माओं में नहीं रहे राग-द्वेष

राग-द्वेष रहित जो सारी क्रियाएँ हैं, वे *पुद्गल* की क्रियाएँ हैं।

उन सब को क्रिया नहीं माना जाएगा। जो राग-द्वेष वाली क्रियाएँ हैं उनमें आत्मा की जवाबदेही आती है। चेहरे पर चिढ़-चिढ़ाहट आ जाए तब भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि राग-द्वेष हो गए हैं। सिर्फ वह व्यक्ति ही हमें बता सकता है कि राग-द्वेष हुए थे। चेहरे पर चिढ़-चिढ़ाहट दिखे तो भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि 'द्वेष हो गया'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह चिढ़ा तो वह एकाकार हुआ होगा तभी चिढ़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह चिढ़ता क्यों है?

दादाश्री : वह एकाकार नहीं हुआ हो तो भी ऐसा हो सकता है, *पुद्गल* क्रिया है। उसे यह पसंद नहीं हो तब भी यह क्रिया होती रहती है।

प्रश्नकर्ता : वह उसे पसंद नहीं है, क्या इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि वह अलग है?

दादाश्री : वह तो दीये जैसी बात है न! ऐसा तो सभी कह सकते हैं। छोटा बच्चा भी कह सकता है लेकिन अगर वह चिढ़ जाए तो हम ऐसा नहीं मान लेंगे कि इसे राग-द्वेष हुए हैं। अगर तू चिढ़ जाए तो मैं यह नहीं मानूँगा लेकिन यदि अन्य कोई नहीं चिढ़े तब भी मानेंगे कि इसे राग-द्वेष हैं। जिसने ज्ञान नहीं लिया हो और बहुत शांति से बात कर रहा हो तो भी हम कहेंगे कि 'राग-द्वेष हैं'। सामान तैयार है, राग-द्वेष वाली मशीनरी चल ही रही है। चिढ़ जाता है तो वह द्वेष में है और नहीं चिढ़े तो किसी राग में है लेकिन किसी न किसी में है ज़रूर। और इस अक्रम विज्ञान का प्रताप तो देखो! और फिर कोई साधु-आचार्य इसे कबूल भी नहीं करेंगे। इसके बावजूद भी अपने महात्मा कबूल करते हैं। दो-पाँच नहीं, सभी। सभी एक साथ सहमत होंगे। जबकि वे सब लोग क्या कहते हैं? 'अरे, ये सभी पागल लगते हैं, हं!' उन सब की दुनिया सयानों की और हमारी सारी दुनिया पागलों की!

पहले तो अगर साहब कुछ उल्टा-सीधा करते थे तो हमें रात-दिन उसी बारे में विचार आते रहते थे और मन में ऐसा होता रहता था कि 'अगर मौका मिले तो साले को चपेट में ले लूँ'। उसके लिए जो खराब विचार आते थे, उन सब को द्वेष कहा जाता है और यदि कोई बॉस हमारी बहुत हेल्प करे तो उसके लिए बहुत अच्छे भाव होते हैं तो वह राग कहलाता है, बस। अब द्वेष भी नहीं होता और राग भी नहीं होता, समभाव से *निकाल* हो जाता है।

क्रियाएँ सभी प्राकृतिक हैं। उनमें राग-द्वेष नहीं हों, वही मोक्ष है। अगर कड़वे पर द्वेष और मीठे पर राग होता है तो वह अज्ञानता का स्वभाव है। अज्ञान चला जाए तो कड़वा-मीठा नहीं रहेगा।

फिर वह है भरा हुआ माल

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले और अभी भी कई बार ऐसा होता है कि हमें खुद को कोई तकलीफ हुई हो और वैसी ही कोई तकलीफ किसी और को भी हो जाए तो अंदर से ऐसा लगा कि 'अच्छा हुआ जो ऐसा हुआ'। वह क्या है?

दादाश्री : ऐसा जो होता है कि 'अच्छा हुआ' तो वह द्वेष का परिणाम है और अगर ऐसा लगे कि 'बुरा हुआ' तो राग का परिणाम है। वे जो राग-द्वेष के परिणाम के भाव अंदर भरे थे, वह माल आज निकल रहा है। भगवान के वहाँ कुछ भी अच्छा या बुरा है ही नहीं। सभी कुछ ज्ञेय ही है। वह सिर्फ जानने योग्य ही है।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा हो तब क्या करना चाहिए? प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए?

दादाश्री : जब ऐसा हो तो उसे देखना है, यहाँ पर ऐसा हुआ और यहाँ पर ऐसा हुआ। इसमें हमें यही देखना है। और यदि कभी द्वेष परिणाम से सामने वाले व्यक्ति के साथ कुछ ज़्यादा ही अन्याय होने लगे तो वहाँ पर चंदूभाई से ऐसा कहना है कि, 'भाई, तुम प्रतिक्रमण करो। तुमने ऐसा क्यों किया? अतः प्रतिक्रमण करो'। अगर ऐसा कुछ ज़्यादा

हो जाए तो! यदि सामने वाले के लिए दु:खदाई नहीं है तो कोई ज़रूरत नहीं है। वह तो सिर्फ अपनी समझ है। हमें अपनी तरह से धो देना है। ज्ञेय की तरह देखने से धुल जाएगा। और अज्ञान दशा में तो इस तरह किसी का कुछ बिगड़ जाए तो ऐसा लगता है कि अच्छा हुआ और उसके प्रति द्वेष रहता ही है। अभी बाद में पीछे से द्वेष नहीं रहता। लगता ज़रूर है कि खराब हुआ, अच्छा हुआ ऐसा लगता है। अत: यह जो सब निकल रहा है, वह भरा हुआ माल है।

विषय ग्रंथि छेदन, वहाँ निज स्पष्ट वेदन

प्रश्नकर्ता : यह जो द्वेष है, वह जागृति में रखता है और राग तन्मयाकार करवाता है तो इन काम-क्रोध से क्या नुकसान होता है? उसकी ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : काम-क्रोध वगैरह सभी दु:ख ही देते रहते हैं। बहुत दु:ख देते हैं। उसकी ज़रूरत तो, ऐसा है न कि जब तक संसार उसे अच्छा लगता है, तब तक उसकी ज़रूरत है लेकिन यदि उसे दु:ख सहन नहीं होता है तो वास्तव में दु:ख देने वाले काम-क्रोध ही हैं, बेटा नहीं देता। बाहर कोई भी दु:ख नहीं देता। ये खुद के अंतर शत्रु ही दु:ख देते हैं।

ये षडरिपु ही दु:ख देते हैं। बाहर कोई दु:ख देने वाला है ही नहीं, ये ही सब हैं। वे यदि इससे अलग हो गए तो निबेड़ा आ जाएगा। यह मैं देखता हूँ कि बाहर से मुझे कोई दु:ख नहीं देता। जब तक अंदर षडरिपु थे, तब तक दु:ख दे रहे थे। अब अंदर उन लोगों ने वह सब बंद कर दिया है। सभी अपने-अपने गाँव चले गए हैं।

घर में अकुलाहट होती है, उसका क्या कारण है? क्या इसलिए कि पति ऐसा है? नहीं! तो क्या पत्नी ऐसी है? नहीं! राग-द्वेष हैं इसलिए दु:ख होता है। राग-द्वेष नहीं होंगे तो किसी के साथ टकराव होगा ही नहीं। राग-द्वेष हैं, खुद को। राग-द्वेष अर्थात् स्वार्थ। हर कोई अपने स्वार्थ में पड़ा रहे तब उसे कहते हैं राग-द्वेष। हमें क्या स्वार्थ की कोई झंझट

है? हमें किसी से कुछ भी नहीं चाहिए। तो कोई झंझट ही नहीं है। यह तो एक रसास्वाद चखने के लिए देखो कितनी झंझट, कितनी झंझट, कितनी झंझट और मान लो कि चखकर हमेशा के लिए सुखी हो जाते तो भी अच्छा था लेकिन इन्हें चखने के बाद भी रोना-धोना, रोना-धोना। सच बताना, रोना-धोना है या नहीं, चखने के बावजूद भी?

प्रश्नकर्ता : होता है। एकदम सत्य!

दादाश्री : यह सब राग-द्वेष की वजह से है। स्त्री का भी दोष नहीं है और पुरुष का भी दोष नहीं है। अच्छे-अच्छे लोगों के बीच भी झगड़े होते हैं। उसका कारण है राग-द्वेष और यदि वीतरागता पूर्वक होता तब तो झगड़ा होता ही नहीं लेकिन ऐसा कब हो सकता है? आत्मज्ञान सहित हों, तब। तब यदि स्त्री कहे कि, 'आपमें अक्ल नहीं है' तो पति कहेगा, 'यह अच्छा हुआ कि तूने आज कहा, यह चंदू तो ऐसा ही है, शुरू से ऐसा ही है। तूने आज कहा तब मैंने जाना। तुझे तो अभी पता चला, मैं तो पहले से ही जानता हूँ इस चंदू को!'

प्रश्नकर्ता : जब स्पष्ट वेदन होता है, तब तो विषय-विकार भी नहीं रहते न?

दादाश्री : जब तक विषय का अस्तित्व है, तब तक स्पष्ट वेदन हो ही नहीं सकता। स्पष्ट वेदन कब होता है, जब इस मन-वाणी व देह पर भी खुद का मालिकीपन न रहे। हमारी निर्विचार दशा है, हमारी निर्विकल्प दशा है, हमारी निरीच्छक दशा है, तभी यह दशा उत्पन्न हुई है। इस दशा के प्रति हम धन्य-धन्य हैं, उसे नमस्कार करते हैं। इस दशा तक पहुँचना है, उसके बाद एकाध स्टेशन बाकी बचा है, तो भले ही बचा। इतने सारे स्टेशन पार कर लिए। अब एक का क्या हिसाब? और वह भी भगवान की हद में ही होगा। सिग्नल भी आ चुका है, सभी कुछ आ चुका। कब से ही आ चुका है। आपने भी सिग्नल पार कर लिया है। प्लेटफॉर्म तो नहीं आया है लेकिन सिग्नल तो पार कर लिया है।

प्रश्नकर्ता : भगवान की हद और भगवान की उपस्थिति दोनों ही।

दादाश्री : हाँ, भगवान की हद और भगवान की उपस्थिति! कल्याण कर देंगे न!

सौ प्रतिशत, जा चुके हैं राग-द्वेष

देखो इसमें ऐसा लिखा है कि, 'यदि एक परमाणु जितना भी राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ का भाव विद्यमान है तो सभी शास्त्रों का जानकार होने के बावजूद भी वह आत्मा को नहीं जानता है और क्योंकि आत्मा को नहीं जानता है इसलिए अनात्मा को भी नहीं जानता। यानी कि सम्यक् दृष्टि भी नहीं है' ऐसा कहा है। क्या करोगे अब? बिल्कुल सौ प्रतिशत सही बात लिखी है और मैंने सौ प्रतिशत सही बात दी है। तो यह भूल किससे हो रही है?

प्रश्नकर्ता : 'राग का एक भी परमाणु नहीं रहा है', व्यक्ति को ऐसा भान कब होता है? और वह भान क्यों नहीं हो पाता?

दादाश्री : लेकिन उसे भान के बारे में पूछना चाहिए। 'यह करेक्ट है या मुझसे कोई गलती हो रही है', ऐसा पूछना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे पता चलेगा कि राग-द्वेष का एक भी परमाणु बचा है या नहीं बचा?

दादाश्री : राग का परमाणु नहीं बचा है, ऐसा मैं जानता हूँ और आप नहीं जानते, ऐसा क्यों?

प्रश्नकर्ता : यों नहीं। व्यवहार में?

दादाश्री : उसे व्यवहार कहो या त्यौहार कहो लेकिन ये परमाणु नहीं हैं आपमें। व्यवहार क्या एक ही तरह का होता है? त्यौहार नहीं आते? दिवाली का त्यौहार, धनतेरस का त्यौहार वगैरह नहीं आते! लेकिन आपमें राग के परमाणु नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : राग का एक भी परमाणु नहीं है। बहुत ही बड़ी बात है यह तो!

दादाश्री : हाँ। यदि एक भी परमाणु होता तब तो फिर वह सम्यक् दृष्टि कैसे हो सकती है? हाँ। और नहीं तो क्या! आप सम्यक् दर्शन वाले हो। इनका लिखा हुआ गलत है या आपका?

प्रश्नकर्ता : यह लिखा हुआ सही है।

दादाश्री : मेरा दिया हुआ हंड्रेड परसेन्ट सही है। मैंने जो सम्यक् दर्शन दिया है, हंड्रेड परसेन्ट सही है और इसमें जो लिखा हुआ है, वह भी सही है तो यह ढूँढ निकालो कि भूल किसकी है।

अब आप चंदूभाई हो या शुद्धात्मा हो?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा।

दादाश्री : तो शुद्धात्मा में राग या द्वेष का एक भी परमाणु नहीं बचा है। तो आपको संपूर्ण शुद्धात्मा बना दिया है पद में, तो तब फिर ऐसा क्यों कर रहे हो? आपको हंड्रेड परसेन्ट उस पद पर बिठा दिया है न, जहाँ पर किंचित्मात्र भी राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं। आपको समझ में आ गई न यह अंटी? यह तो आपकी जो पहले की आदत है न, वह जाती नहीं है। आदत में ऐसा, कि यह मुझे ही हो गया। यह तो गारन्टेड है। यह कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है। यह गारन्टेड मोक्ष दिया हुआ है। हाथ में मोक्ष दिया हुआ है लेकिन जिसे जितना भोगना आए उतना उसके बाप का।

लड़ते-करते हैं तो भी वीतराग

राग-द्वेष ही संसार है। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद यदि आज्ञा का पालन किया जाए तो आज्ञा पालन करते ही राग-द्वेष बिल्कुल खत्म हो जाते हैं। यानी कि यहाँ राग-द्वेष नहीं रहते। और अगर वह बच्चों को मार रहा हो तब भी हम कहते हैं कि यह मोक्ष में ही है। अभी अगर आपके साथ बस में महात्मा आएँ, चार सौ-पाँच सौ लोग हों बसों में, तो अगर वे लड़ाई-झगड़ा करें तो हम तो उन्हें आशीर्वाद देंगे। कहेंगे, 'लड़ना, मेरी हाज़िरी में लड़ना'। गैरहाज़िरी में ऐसा छूट कारा नहीं हो

पाएगा। यहाँ मेरी हाज़िरी में लड़ो तो इसका हल आ जाएगा। साफ हो जाएगा न यह सब। फाइलें क्लियर हो जाएँगी।

अपने सभी महात्मा मानो, जैसे वीतराग ही हैं। व्यापार करते हैं, लड़ाई-झगड़ा करते हैं, फिर भी वीतराग हैं। यह उन्हें पता नहीं चलता फिर भी मुझे तो पता चलता है न! आपको पता नहीं चलता? आपको मन में ऐसा लग सकता है कि 'अरे, किस प्रकार से वीतराग हूँ?' लेकिन मुझे तो पता है न! क्योंकि डॉक्टर तो जानता है। मरीज़ के मन में ऐसा लगता है कि, 'अरे यह दर्द बढ़ा या घटा?' वहम होता है लेकिन मुझे तो पता है न कि क्या दवाई दी है। इन्हें ऐसा लगा कि इनमें बढ़ा या घटा तो तुरंत इसे दवाई बता दी न! सभी जगह राग-द्वेष, राग-द्वेष, राग-द्वेष, चाहे किसी भी धर्म में जाओ, राग-द्वेष रहित नहीं है। संतों पर राग और नालायक पर द्वेष! और क्या!

एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, 'मैं गुरु के आश्रम में गया था, वहाँ पर मुझे राग-द्वेष नहीं हैं न?' मैंने कहा, 'वहाँ पर भी बहुत सारे, यहाँ जितने ही वहाँ पर भी हैं'। क्योंकि जब तक तेरे पास राग-द्वेष हैं तब तक वे होते रहेंगे, चाहे तू किसी भी जगह पर जा। जगह क्या करेगी इसमें? तेरे पास पूँजी ही राग-द्वेष की है। तू यदि जगह बदल देगा तो भी पूँजी तो पूँजी है, बोलेगी ही। मैंने आपके पास पूँजी रहने ही नहीं दी, तो फिर चाहे किसी भी जगह पर जाओ लेकिन राग-द्वेष होंगे ही कैसे? 'मैं' और 'मेरा', वही राग-द्वेष हैं। 'मैं' और 'मेरा' नहीं रहेगा तो राग-द्वेष कहाँ से होंगे? जिनमें 'मैं' और 'मेरा' नहीं हो, ऐसे कौन से साधु-संत बचे हैं? आपका 'मैं' और 'मेरा' है तो ज़रूर लेकिन ड्रामेटिक है। तब फिर, ड्रामा में राग-द्वेष नहीं होते, चाहे कितना भी लड़ाई-झगड़ा करें, मारा-मारी करें, गालियाँ दें, फिर भी राग-द्वेष नहीं रहते। राग-द्वेष रहित जगह यदि देखनी हो तो वह देखना। आपने ड्रामा नहीं देखा? नहीं?

राग-द्वेष हैं व्यतिरेक गुण

प्रश्नकर्ता : यों तो राग-द्वेष व्यतिरेक गुण कहलाते हैं।

दादाश्री : हाँ, व्यतिरेक। यदि ज्ञानीपुरुष ज्ञान दें न, तो दोनों के ही छूट जाते हैं। आपको दिखाई ज़रूर देते हैं अस्तित्व में लेकिन दोनों के ही नहीं हैं। ये गुण मूल चेतन में नहीं हैं और मूल परमाणुओं में भी नहीं हैं। विकृति में हैं ये। अतः ये गुण दोनों के ही नहीं हैं, फिर भी उत्पन्न हुए हैं और विकृति की वजह से कितने ही लोग कहते हैं, 'मेरे आत्मा में हैं'। कितने ही लोग कहते हैं कि '*पुद्गल* में हैं'।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल,* वह व्यतिरेक गुण कहा जाता है?

दादाश्री : हाँ, यह मूल परमाणुओं का गुण नहीं है, न ही चेतन का गुण है।

पुद्गल अर्थात् *पूरण* और *गलन*। ज्ञान मिलते ही वह *पूरण* बंद हो गया। अब सिर्फ *गलन* ही बचा है। *पूरण* दोषों से बंधन है, *गलन* दोष *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) हैं। *गलन* होते हुए दोष बंध (कर्म बंधन) रहित *निर्जरा* हैं और *पूरण* दोष *संवर* रहित बंध हैं।

पुद्गल में राग-द्वेष नहीं, वही ज्ञान

वह तो *पुद्गल* ही है। *पुद्गल* के अलावा और कुछ है ही नहीं! *पुद्गल* में राग-द्वेष होने को ही कहते हैं संसार। मूर्च्छा आ जाए उसी को कहते हैं संसार और *पुद्गल* में राग-द्वेष नहीं हों, तो उसे कहते हैं ज्ञान। उसी को कहते हैं मुक्ति। बस इतना ही है। है *पुद्गल* ही। वही का वही *पुद्गल।* कुछ भी नहीं बदलता। पहले राग-द्वेष होते थे और अब राग-द्वेष नहीं होते। खाना-पीना, घूमना-फिरना, बोलना-चलना, सत्संग-वत्संग वगैरह सब *पुद्गल* हैं लेकिन जिस तरह से साबुन से मैल निकालने के बाद साबुन अपना मैल चिपकाता जाता है। ज्ञानीपुरुष के साथ किया गया सत्संग शुद्ध सत्संग कहलाता है। हम यहाँ पर ऐसा ही सत्संग करते हैं। इस सत्संग में ज्ञानियों का मैल नहीं चढ़ता और आपका मैल उतर जाता है जबकि बाहर तो वापस गुरु का मैल चढ़ जाता है। तो वापस टीनोपॉल डालना पड़ता है। उसके बाद

जब वह मैल निकल जाता है तब टीनोपॉल का मैल चढ़ता है। यह शुद्ध सत्संग है इसलिए मैल नहीं चढ़ता। अब राग-द्वेष नहीं होते न? तो हो चुका!

इन्द्रियों से देखते हैं, जानते हैं, इसके बावजूद भी राग-द्वेष नहीं होते, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है और जिसे राग-द्वेष हैं, वह इन्द्रिय ज्ञान से देखता है, जानता है! इन्द्रिय दृष्टि राग-द्वेष करवाती है, समकित दृष्टि शुद्धात्मा ही देखती है।

ज्ञानप्रकाश को नहीं है मूर्च्छा

प्रश्नकर्ता : यह जो शुद्धात्मा है, वह तो ज्ञान स्वरूप है और प्रकाश स्वरूप है न?

दादाश्री : इस तरह का प्रकाश नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं। अलग तरह का प्रकाश लेकिन प्रकाश रूपी शुद्ध चेतन...

दादाश्री : यह तो पर प्रकाशक है। वह ऐसा प्रकाश नहीं है। प्रकाश का मतलब क्या है कि किसी भी चीज़ में मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होने देता। जगत् की सभी चीज़ें देखता है लेकिन इस जगत् में मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होने दे, ऐसा प्रकाश है। यदि कोई फोर्ट (बोम्बे का एक बाज़ार) में जाए और सभी चीज़ें देखे तो कितनी चीज़ों के प्रति मूर्च्छा होती है?

प्रश्नकर्ता : होती है।

दादाश्री : लेकिन यह प्रकाश मूर्च्छा नहीं होने देता। जेब में अगर कुछ हो, रुपए हों तब भी लेने का मन नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : देखते रहने का मन करता है।

दादाश्री : नहीं, देखने में हर्ज नहीं है। देखना तो आत्मा का धर्म ही है लेकिन उससे उसे मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकाश की वजह

से देख पाता है फिर भी मूर्च्छा नहीं होती लेकिन यदि प्रकाश न हो और देखे कि तुरंत ही मूर्च्छा आ जाती है उसे। साड़ी देखी कि घर आकर उसे याद आती रहती है कि वह वाली साड़ी अच्छी थी न! वह साड़ी में खो जाती है। जबकि यह ज्ञान मिलने के बाद प्रकाश मिला है इसलिए उसे मूर्च्छा नहीं होती। मूर्च्छा कम हो गई है न?

प्रश्नकर्ता : चीज़ देखते हैं लेकिन उसकी इच्छा नहीं होती।

दादाश्री : हाँ! अर्थात् मूर्च्छा नहीं होती। यह प्रकाश मूर्च्छा नहीं करवाता। अरे, राग-द्वेष वाला सभी कुछ देखते हैं, ऐसे देखते हैं, वैसे देखते हैं। ऐसे उलट-पलटकर देखते हैं, वैसे उलट-पलटकर देखते हैं लेकिन मूर्च्छा नहीं होती है। आत्मा, आत्मा की जगह पर और वे उनकी जगह पर। जबकि (अज्ञान दशा में) मूर्च्छा आने पर आत्मा पूरा ही उसमें घुस जाता है।

प्रश्नकर्ता : जो मूर्च्छा आती है, क्या वह प्राकृतिक स्वभाव की मूर्च्छा है?

दादाश्री : हाँ, प्राकृतिक स्वभाव की मूर्च्छा है। हमने उसे चारित्रमोह कहा है अर्थात् पहले का जो मोह भरा हुआ है, वही आज प्रकट हुआ। उसका हम ज्ञान द्वारा समभाव से *निकाल* करते हैं। समभाव से *निकाल* करना, उसी को कहते हैं ज्ञान से *निकाल* कर देना। आँखें यों आकर्षित होती हैं लेकिन उसी के साथ ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए तो उससे खत्म हो जाता है। यह ज्ञान मूर्च्छा को खत्म किए बगैर नहीं रहता, लेकिन चारित्रमोह तो रहता ही है।

प्रश्नकर्ता : वह सारा व्यवस्थित है क्या?

दादाश्री : हाँ, व्यवस्थित है।

जो राग-द्वेष रहित है, वह है अहिंसक

प्रश्नकर्ता : कौन सी स्टेज में होने वाले राग हिंसा हैं?

दादाश्री : यह राग और द्वेष दोनों ही हिंसा हैं। द्वेष भी हिंसा है और राग भी हिंसा है। राग से ही लोग हिंसा करने को प्रेरित होते हैं। यह समझने जैसी बात है। एकदम से समझ में नहीं आएगा। भगवान अहिंसक क्यों कहलाए? क्योंकि उनमें राग-द्वेष नहीं थे इसलिए वे अहिंसक कहलाए। संपूर्ण अहिंसक!

प्रश्नकर्ता : स्वभाव में आ जाए, वह अहिंसक।

दादाश्री : स्वभाव में आ जाए तब तो वह भगवान ही कहलाएगा लेकिन राग-द्वेष का अभाव हो जाए तो उसी को कहते हैं अहिंसक। राग-द्वेष का अभाव हो जाने के बाद स्वभाव में आ जाता है।

जितना रोग उतना राग

प्रश्नकर्ता : गांधी जी ने श्रीमद् राजचंद्र के बारे में लिखा है कि उनमें जितना रोग था, अंदर उतना ही उन्हें राग था।

दादाश्री : नियम ऐसा ही है। जितना रोग उतना ही राग होता है। आज उसे रागरूपी रोग हो या न भी हो। ऐसा क्यों? अभी यह जो रोग है, वह राग का ही परिणाम है लेकिन आज शायद राग न भी हो। अब आप सब को अगर कोई रोग है तो वह राग का परिणाम है। आपको राग-द्वेष नहीं हैं इसलिए अभी अन्य कोई वैसे रोग परिणाम नहीं हैं।

इसलिए कृपालुदेव के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'ऐसा ही है'। क्योंकि ऐसा कहा जा सकता है कि यह राग का परिणाम है लेकिन ऐसा नहीं माना जा सकता कि अभी राग है। अब ऐसा है कि ऐसी सूक्ष्म बात तो किसी को समझ में नहीं आ सकती न? ज्ञानीपुरुष बताएँ तब समझ में आता है। यह तो जैसा दिखाई दिया वैसा कह दिया।

और तीर्थंकरों को? उनकी भूमिका ही ऐसी होती है, बस वीतराग!

राग-द्वेष रहित परिणाम होते हैं उनके। और फिर उन (परिणामों) में वे खुद राग-द्वेष रहित रहते हैं। ये दोनों साथ में रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : द्वेष की वजह से भी रोग होता है या फिर राग की वजह से ही होता है?

दादाश्री : राग-द्वेष दोनों ही से रोग। राग कहने का मतलब इतना ही है कि राग-द्वेष दोनों ही रहते हैं। जहाँ इनमें से एक है, वहाँ पर दूसरा रहता ही है। ज़्यादातर रोग तो द्वेष की वजह से ही होते हैं। काफी कुछ द्वेष के, जो बहुत दुःख देते हैं न, वे द्वेष के रोग हैं और यदि बहुत दुःख नहीं दे तो, वह राग का रोग है। बहुत दुःख न दे, और जल्दी से दवाई मिल जाए तो वे सब राग के परिणाम हैं।

अतः यह सब हिसाब है। जितना कूदना है उतना कूदो। आपको अपने दम पर कूदना है इसलिए अगर कोई गाली दे तो उसका निबेड़ा ला देना क्योंकि गाली देने की किसी की सत्ता नहीं है और अगर उसने गाली दी तो देअर इज़ समथिंग रोंग। उसका निबेड़ा ला देना। अगर वह कोई नुकसान कर दे तब भी निबेड़ा ले आना। आप किसी का नुकसान कर दो तो प्रतिक्रमण कर लेना। जितने तरीके हैं, वे आपको बता दिए। किसी के लिए कुछ उल्टा हो जाए तो प्रतिक्रमण करना। समाधान होते-होते यदि वह समाधान अपने मन में फिट हो जाता है तो उसके बाद जैसे ही हमारी वह दशा उत्पन्न हुई कि उसी समय यह समाधान हाज़िर हो जाएगा। यह ज्ञान हाज़िर हो जाएगा और वह फल देगा हमें, इसलिए रात-दिन सुनते रहना है। व्यापार बंद करके नहीं। व्यापार भी करते रहना और यह भी करते रहना। जो एक पक्ष में पड़ता है, वह दोनों ही पक्षों का बुरा करता है। अगर संसार पक्ष में पड़ा तो संसार भी बिगाड़ता है और इस निश्चय पक्ष में, आत्मा का भी बिगाड़ता है। धर्म में पड़ा हुआ संसार बिगाड़ता है और आत्मा को भी बिगाड़ता है। दोनों को बिगाड़ता है लेकिन जो दोनों में संतुलित रहे वह कुछ भी नहीं बिगाड़ता। हम यही बताना चाहते हैं। पागल मत बनना।

राग-द्वेष रहित, वही शुद्ध ज्ञान

अब, आत्मा को उपयोग में रखना यानी आत्मा कोई चीज़ नहीं है, ज्ञान दर्शन है। उस ज्ञान दर्शन को उपयोग में रखना है, शुद्ध ज्ञान दर्शन। शुद्ध ज्ञान दर्शन किसे कहा जाता है? राग-द्वेष रहित ज्ञान दर्शन, वही शुद्ध ज्ञान दर्शन है और इस जगत् के पास जो ज्ञान दर्शन है, वह राग-द्वेष वाला है। वह अशुद्ध है, राग-द्वेष सहित है और जो राग-द्वेष रहित है, वह शुद्ध ज्ञान कहलाता है।

[2.2]

पसंद-नापसंद

अहंकार एकाकार हो तभी राग-द्वेष

प्रश्नकर्ता : अपनी चित्तधारा में यह पसंद-नापसंद आए तो क्या यह ज्ञाता-दृष्टा में अजागृति है या नहीं?

दादाश्री : जागृति पूर्वक खुद को पता चलता है कि यह यहाँ पर बैठेगा और यहाँ पर नहीं बैठेगा। फिर वहाँ पर भी नहीं बैठता। मेरा कहना है कि बैंच है घर पर। हम रास्ते पर चल रहे हैं और थकान की वजह से बैठना पड़ा। एक टूटी हुई बैंच है और नीचे से ज़रा सड़ी हुई है, तो उस बैंच पर बैठने लगे तो उसमें कहीं उसके प्रति राग-द्वेष नहीं है, पसंद व नापसंदगी रहती है। लाइक और डिसलाइक।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् प्रकृति में जो माल भरा हुआ है, वही?

दादाश्री : वही, और कुछ नहीं। उसमें यदि अहंकार एकाकार रहता तो राग-द्वेष होते। आज यदि उसका अहंकार चला नहीं गया होता, तो उसी चीज़ के लिए राग-द्वेष होते। अहंकार जा चुका है उसी का यह फल है कि राग-द्वेष नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ पसंद व नापसंदगी रहती है।

नहीं रहे राग-द्वेष, अक्रम विज्ञान की प्राप्ति के बाद

प्रश्नकर्ता : पसंद आए और बहुत पसंद आए, इन दोनों में क्या फर्क है? बहुत पसंद आए तो क्या वह राग कहलाता है?

दादाश्री : अच्छा लगे अर्थात् आइ लाइक और बहुत अच्छा लगे तो उसमें वेरी लाइक। उसमें कोई फर्क नहीं है। इससे राग नहीं होता। अपना ज्ञान देने के बाद फिर राग होता ही नहीं है। हमारी आज्ञा का पालन करने से राग नहीं होता। राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता और राग-द्वेष से ही संसार कायम है। अपना ज्ञान मिलने के बाद राग-द्वेष नहीं होते और जो क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं, वे राग-द्वेष रहित हैं। उनमें से एक्सट्रैक्ट निकल चुका है। जिस तरह अगर दालचीनी में से एक्सट्रैक्ट खींच लिया जाए न तब भी वह कहलाती है दालचीनी ही लेकिन उसमें दालचीनी के गुण नहीं होते, वह सिर्फ लकड़ी ही होती है। उसी तरह इसमें भी एक्सट्रैक्ट निकल चुका है।

जिसमें अहंकार मिश्रित हो, वे राग-द्वेष कहलाते हैं। डिस्चार्ज राग-द्वेष को पसंदगी-नापसंदगी कहते हैं। अतः यदि कोई चीज़ हमें अच्छी लगती है और कोई चीज़ पसंद नहीं है तो वह राग-द्वेष नहीं है। पसंद-नापसंद डिस्चार्ज हैं। अगर राग-द्वेष होते तब तो कर्म बंधन हो ही जाता। पसंद में अहंकार मिल जाए तब वह राग कहलाता है।

ऐसा नहीं है कि पसंद-नापसंद सिर्फ आप ही को हैं, हमें भी हैं। अगर कोई यहाँ गद्दी पर नहीं बैठा हो तो हम यहाँ अंदर आकर सीधा गद्दी पर ही बैठ जाएँगे। यहाँ नीचे नहीं बैठेंगे। तब अगर कोई कहे कि क्या आपको गद्दी पर राग है? 'नहीं।' तब अगर वह कहे, 'आप यहाँ नीचे बैठ जाइए' तो हम वहाँ पर बैठ जाएँगे। हमें द्वेष नहीं है लेकिन फिर भी लाइक और डिसलाइक बचे हैं। पहले तो हम यही लाइक करेंगे लेकिन अगर कोई यहाँ से उठा दे तो हमें द्वेष नहीं होगा लेकिन (पहली बार में) बैठेंगे तो यहीं पर। वे कर्म कहीं बंधेंगे नहीं।

भाए या न भाए तो उसमें दखल किसकी

भोजन खा लेने के बाद फिर याद न आए, वह इसलिए है क्योंकि राग-द्वेष चले गए हैं।

प्रश्नकर्ता : भोजन में भी लाइक-डिसलाइक होता है न? भोजन में भी यह पसंद है और यह नहीं पसंद, ऐसा होता होगा न?

दादाश्री : होता है न। सभी में, वह हर एक चीज़ में होता है। भोजन नहीं भाना और पसंद नहीं आना, उन दोनों में बहुत फर्क है। उसे खट्टा खाना हो फिर भी खा नहीं पाए तो वह और भी अलग चीज़ है। उसमें अंदर परमाणु की दखल है। वे नहीं खाने देते। दस साल पहले शायद आप कहते होंगे कि मुझे गुड़ का लड्डू नहीं भाता और आज आप कहते हो कि गुड़ का भाता है लेकिन शक्कर का नहीं भाता। इसका क्या कारण है? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स! अंदर परमाणु बदल गए। अंदर जो माँगने वाले हैं, वे सभी बदल गए जबकि व्यवहारिक व्यक्ति को ऐसा समझ में आता है कि यह सब मैं ही कर रहा हूँ।

हम अगर उससे पूछें कि, 'यदि तू कर रहा है, तब फिर यदि तुझे खाना है तो तू क्यों नहीं खा पा रहा है?' 'लेकिन मैं क्या करूँ? नहीं भाता' ऐसे कहता है। अरे, लेकिन क्यों? तुझे खाना है और नहीं भाता तो मुझे यह बता कि इसमें दखल किसकी है? वह यही समझता है कि मुझे इसलिए नहीं भाता क्योंकि मेरा स्वभाव ऐसा हो गया है। अब ऐसा कैसे समझ में आएगा? अन्य कोई दखल है, उसकी खबर ही नहीं है न?

दादा की पसंद-नापसंद

प्रश्नकर्ता : अक्रम ज्ञानी को पसंदगी-नापसंदगी रहती है क्या?

दादाश्री : पसंदगी-नापसंदगी सिर्फ दिखाने को होती है। नाटकीय। नाटक में जो पसंद न हो उस पर द्वेष नहीं और जो पसंद है उस पर राग नहीं।

प्रश्नकर्ता : ज़रा उदाहरण देकर समझाइए न! नाटकीय पसंदगी-नापसंदगी।

दादाश्री : 'भिक्षा देना मैया पिंगला' कहता है न लेकिन अंदर मन में समझता है कि 'मैं लक्ष्मीचंद हूँ, यह नाटक नहीं करूँगा तो मेरी तनख्वाह काट लेंगे'। इसलिए रोता है, बनावटी रोता है। अब उसे देखकर चार लोग घर छोड़कर चले गए, वे वापस नहीं आए। वे समझे कि

वास्तव में इस बेचारे को इतना दु:ख हो रहा है। उसे पूछा होता तो पता चलता कि यह नाटक में है। 'मैं लक्ष्मीचंद तरगाडा हूँ', ऐसा जानता है न वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो जानता है। ठीक है।

दादाश्री : हाँ। इसलिए आप जानते हो कि मैं शुद्धात्मा हूँ और चंदूभाई का नाटक करते रहो। नाटक तो करना पड़ेगा न, हूबहू!

ये पसंदगी-नापसंदगी वगैरह सब शरीर का स्वभाव है। शरीर का अर्थात् स्थूल का, *पुद्गल* का स्वभाव है। आपको जो होता है वह रति-अरति कहलाता है। जब दादा आते हैं तो हर एक व्यक्ति सेफसाइड (दादा के नज़दीक बैठने की जगह) ढूँढता है या नहीं ढूँढता? तो सेफसाइड पर बैठना रति कहलाता है। तब अगर कोई पूछे, 'अरे, आपने दादा का ज्ञान लिया है न? यह रति क्यों है आपको?' इस *पुद्गल* का स्वभाव ही ऐसा है। जहाँ अच्छी जगह होती है पहले वहीं जाकर बैठता है। फिर अगर कोई कहे कि 'आप इस गद्दी पर क्यों बैठे हो, नीचे बैठो' तो मैं नीचे बैठ जाऊँगा भाई! उससे आंतरिक वातावरण चेन्ज नहीं होता, एक बूँद बराबर भी नहीं। अत: रति-अरति तो रहेंगे ही अंत तक। यह तो *पुद्गल* का स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक के जो ज्ञानी होते हैं, उन्हें यदि सिर्फ इफेक्ट ही है? तो रति-अरति ही होता है?

दादाश्री : जितना उनका अहंकार शुद्ध करना बाकी है, उतने में ही उन्हें राग-द्वेष होते हैं और बाकी के भाग में सिर्फ रति-अरति ही रहती है। बाहर के लोगों को तो सभी चीज़ों में राग-द्वेष होते हैं। छोटी-छोटी बातों में भी राग और द्वेष। यह ज्ञानी होने का फल है। आधा ज्ञान हो तो आधा। जितना अहंकार कम हुआ उतने राग-द्वेष कम हो जाते हैं। जितना साबुत है, उसमें राग-द्वेष होते हैं। ये सारी बातें बहुत सूक्ष्म हैं! आपको तो इतनी ही समझनी हैं। मेरी पाँच आज्ञा का पालन करो। उसी में हैं आपके कॉज़ेज़! बाकी सब इफेक्ट है।

उपेक्षा से शुरू वीतरागता की राह

प्रश्नकर्ता : उपेक्षा और द्वेष के बारे में ज़रा समझाइए न!

दादाश्री : उपेक्षा अर्थात् पसंद न हो, फिर भी द्वेष नहीं और द्वेष अर्थात् उपेक्षा नहीं होती लेकिन नापसंद है तो वहाँ पर द्वेष रहता है। इतना तो वह समझता है कि द्वेष करने में फायदा नहीं है। यह नुकसानदायक है, ऐसा समझकर उपेक्षा रखता है।

उपेक्षा तो हम वहाँ करते हैं न! कुसंग की उपेक्षा करते हैं। शराबी हो, या और कोई जो रमी खेलते हैं ऐसे ही दूसरे लोग तो ऐसा कहना चाहते हैं कि वहाँ पर उपेक्षा रखते हैं, द्वेष नहीं रखते। जहाँ द्वेष नहीं है, वह उपेक्षा कहलाती है और अगर द्वेष हो तो उपेक्षा नहीं कहलाती। संसार के लोग द्वेष रखते हैं। गलत चीज़ पसंद नहीं आए तो उस पर द्वेष और पसंदीदा पर राग। उपेक्षा अर्थात् उस तरफ द्वेष भी नहीं और राग भी नहीं। 'हमें क्या लेना-देना', ऐसा कहते ही हो जाएगा अलग।

प्रश्नकर्ता : उपेक्षा किस वजह से उदय में आती है?

दादाश्री : वह खुद के हिताहित के साधन देखता है इसलिए उपेक्षा करता है। द्वेष करने पर बुरा लगता है। गलत है और गलत को गलत जानना है और उसके प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। अतः खुद के आत्मा के हित के लिए उपेक्षा रखनी है।

प्रश्नकर्ता : जिसका प्रवर्तन उदय कर्म के अनुसार होता है, उसे उपेक्षा कह सकते हैं?

दादाश्री : सभी उदय कर्म ही हैं न! उपेक्षा कहने का तात्पर्य क्या है कि अगर उदय कर्म की वजह से किसी के प्रति हमें खराब भाव होते रहें और उससे खुद अलग रहें कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो आप कई बार कहते हैं न कि, 'भाई, हम तो पोटली जैसे हैं। जहाँ ले जाओ वहीं पर चले जाएँगे'। तो वह उपेक्षा भाव का उदाहरण कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं! वह तो मालिकी रहित भाव ही कहा जाएगा।

उपेक्षा अर्थात् क्या कहना चाहते हैं कि जैसे वह है ही नहीं। यों उस पर ध्यान ही मत दो।

प्रश्नकर्ता : उपेक्षा में अहंकार है न?

दादाश्री : वह तो अहंकार का ही काम है। जब तक अहंकार है, तभी तक उपेक्षा है।

प्रश्नकर्ता : नि:स्पृहता और उपेक्षा में क्या फर्क है?

दादाश्री : नि:स्पृहता, वह तो उसकी कमी है। नि:स्पृही अर्थात् 'हम' वाला, 'हम' वाला। इगोइज़म बढ़ता जाए तो नि:स्पृही जबकि उपेक्षा में इगोइज़म नहीं बढ़ता और उपेक्षा में से धीरे-धीरे उदासीनता और उसके बाद वीतरागता का जन्म होता है। उपेक्षा और उदासीनता में से जन्म होता है, वीतरागता का।

नि:स्पृहता तो सभी जगह पर है। नि:स्पृहता तो एक बार मन में तय कर ले, कोई साधु नि:स्पृह हो और उसके साथ यह भी बैठा है तो उसे देखकर वह भी नि:स्पृह हो जाता है। जो नि:स्पृही होते हैं न, उनमें बरकत ही नहीं होती। कहते हैं, 'हम नि:स्पृह हैं' इसलिए वह लड़का भी सीख जाता है, 'हम नि:स्पृह हैं'। वह संन्यासी मना करता है कि 'खाने-पीने का कुछ मत लाना!' तब वह भी मना करता है। नि:स्पृह तो एक उच्च प्रकार का द्वेष है इसलिए हम कभी भी नि:स्पृह नहीं हुए न! आपके *पुद्गल* के बारे में हम नि:स्पृह हैं और आपके आत्मा के बारे में सस्पृह हैं। नि:स्पृह-सस्पृह। यदि नि:स्पृह रहेंगे तो अंदर द्वेष रहेगा।

आत्मा के बारे में सस्पृह अर्थात् हम नि:स्पृह-सस्पृह हैं। आपने देखे हैं नि:स्पृह? 'हमें क्या, हमें क्या, चले जाओ, ले जाओ' ऐसा करके गालियाँ देते हैं और ऐसा सब करते हैं!

जो सस्पृही व्यक्ति होता है न, वह विनयी होता है इसलिए क्योंकि उसे इच्छा है और जो नि:स्पृही हो गया है, उसमें विनय नहीं होता। वह

तो जानवर जैसा होता है। अगर कुछ बोले तब भी जानवर जैसा बोलता है। मैंने तो ऐसे बहुत नि:स्पृह साधु देखे हैं।

नि:स्पृह हो जाए तो इस तरफ गिर जाता है और अगर सिर्फ सस्पृह रहे तो उस तरफ गिर जाता है। सस्पृह-नि:स्पृह की आवश्यकता है।

प्रश्नकर्ता : नापसंदगी में द्वेष न रहे तो वह उपेक्षा कहलाती है, तो अभाव में भी ऐसा ही है न? किसी व्यक्ति पर यदि हमें अभाव रहे तो उस पर द्वेष तो होता ही नहीं है न?

दादाश्री : नापसंदगी का सवाल ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : नहीं! उपेक्षा में?

दादाश्री : उपेक्षा में अर्थात् 'अपने लिए हितकारी नहीं है यह चीज़!' लेकिन उसके प्रति द्वेष रहित व्यवहार। संसार के लोग द्वेष रखते हैं। प्याज़ के प्रति द्वेष रहा करता है। देखते ही चिढ़ मचने लगे तो उसे उपेक्षा नहीं कहेंगे। उसे देखें या वह हमारे पैर से छू जाए तब भी चिढ़ नहीं मचती। इसके बावजूद भी हमें (उससे कुछ) लेना-देना नहीं होता। उन लोगों को इफेक्ट होता है।

प्रश्नकर्ता : किसी पर अभाव की वजह से द्वेष आता है न दादा? किसी पर अभाव है उसका अर्थ यह कि ज़रा द्वेष है न?

दादाश्री : अभाव उसी को कहते हैं कि जहाँ द्वेष हो। जहाँ द्वेष नहीं हो उसे डिसलाइक कहा जाता है। वह आत्मा तक नहीं पहुँचता। वह इन्द्रियों तक पहुँचता है इसलिए द्वेष नहीं कहलाता। अगर आत्मा तक पहुँचे तो द्वेष कहलाता है। यानी कि लाइक और डिसलाइक तक पहुँचता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो उदासीनता है, वह उपेक्षा से भी आगे की चीज़ है न?

दादाश्री : उदासीनता अलग चीज़ है। वह आगे की स्टेज है। उदासीनता और वीतरागता, इन दोनों के बीच में कुछ डिफरेन्स है और

वह तो ज्ञानी भी कर सकते हैं। अहंकार की ज़रूरत नहीं है, उदासीन होने के लिए। जबकि उपेक्षा में तो अहंकार की ज़रूरत है ही।

उपेक्षा से आगे है उदासीनता

प्रश्नकर्ता : उदासीनता और आलस्य, इन दोनों के बीच किस तरह से भेदांकन किया जाए? गहने पहनने में आलस्य आता है क्योंकि बैंक में से लाने पड़ते हैं, यह करना पड़ता है, तो इन दोनों के बीच के भेद को कैसे परखें?

दादाश्री : आप बच्चों को क्या सिखाते हो? आप बच्चे को यह कैसे बताते हो कि वह आलसी है या उदासीन हो गया है? उदासीन व्यक्ति को अगर आलसी कहा जाए तो बहुत बड़ा गुनाह है। उदासीनता तो वीतराग होने से पहले की दशा है। वह साधारण जन समाज की बात नहीं है। अत: आप जो कह रहे हो वह सब प्रमाद है, आलस्य ही है। उदासीनता नहीं आई है। उदासीनता कैसे आएगी? इतने बड़े अहमदाबाद शहर में उदासीनता आती होगी? अगर सभी चीज़ें मिल जाएँ तो? आपको किस वजह से लगता है कि उदासीनता है?

प्रश्नकर्ता : घूमने-फिरने की, पहनने-ओढ़ने की, ये सब जो हैं, उसे ऐसा लगता है कि ये सारी तकलीफें क्यों उठानी तो उसमें मेरा प्रमाद है या आलस्य है? उसे खुद को कैसे पता चलेगा कि 'मुझमें उदासीनता प्रकट हुई है या फिर यह मेरा आलस्य है?'

दादाश्री : उदासीनता तो वैराग्य आने के बाद की उच्च दशा है और वीतराग होने से पहले की दशा है। बहुत सख्त वैराग्य रहने लगे और जब तक वीतरागता उत्पन्न न हो जाए, उस समय उदासीन दशा रहती है। वह बहुत उच्च दशा है। वह यों ही नहीं रह सकती, इन लोगों में नहीं रह सकती!

प्रश्नकर्ता : पच्चीस साल की उम्र में जो इच्छाएँ होती हैं, वैसी इच्छाएँ चालीस साल या पैंतालीस साल में नहीं रहती तो इन सब में

डिफरेन्शिएट किस तरह से करें कि वास्तव में यह उदासीनता है या फिर यह सब मंद पड़ चुका है?

दादाश्री : यह तो, जो ऐसा लगता है कि मंद हो गई हैं, वे तो अभी फिर से जागेंगी। अभी तो वे जागेंगी। सत्तर साल के बूढ़े को जलेबी याद आती है, लड्डू याद आते हैं। अरे, तरह-तरह के स्वाँग याद आते हैं। चबा नहीं पाता तब भी जो नहीं चबाई जा सकें, ऐसी चीज़ें याद आती हैं। अतः यह तो ऐसा है न कि विषय सिर्फ जवानी में ही नहीं रहता, बुढ़ापे में भी बहुत विषय जागता है। इसलिए कोई उदासीनता नहीं आने वाली। परेशान मत होना। उसका डर मत रखना।

प्रश्नकर्ता : उदासीनता की सही डेफिनेशन बताइए।

दादाश्री : उदासीन का मतलब क्या है? जब देखता है तब अच्छा लगता है। जब तक देखे नहीं तब तक उसे याद नहीं आता। याद आए पर कचोटे नहीं, तो वह उदासीन दशा है। उससे आगे की दशा वीतरागता कहलाती है। तब तक उदासीन दशा रहती है। उसे खुद को वह याद ही नहीं आता और जब ऐसी कोई चीज़ दिखाई दे तब वह उसे सिर्फ भोग लेता है लेकिन जैसे ही वह चीज़ गई तो फिर कुछ भी नहीं, उदासीन।

हम जिसे उपेक्षा भाव कहते हैं वैसा नहीं। यह उदासीन तो उच्च स्थिति है। अतः उदासीनता आने में देर लगती है। अभी तक तो वैराग्य भी नहीं आया है। उदासीनता अर्थात् नाशवंत चीज़ों के प्रति भाव टूट जाता है और अविनाशी की खोज रहने के बावजूद भी वह प्राप्त नहीं हो पाता!

प्रश्नकर्ता : उदासीनता या उपेक्षा, क्या ये वीतरागता के आधार हैं?

दादाश्री : उदासीनता से शुरुआत होती है वीतरागता की। उपेक्षा उदासीनता के पहले की स्टेज है। वह बुद्धि द्वारा है।

प्रश्नकर्ता : सामान्य उदासीनता और भाव उदासीनता के बारे में ज़रा समझाइए। इनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : भाव उदासीनता का अर्थ क्या है? कर्म नहीं बाँधता और सामान्य उदासीनता अर्थात् वीतराग भाव के नज़दीक। उपेक्षापन। उपेक्षा अर्थात् उसके प्रति उदासीन भाव, अर्थात् उस तरफ कोई राग-द्वेष नहीं।

भाव उदासीनता तो बहुत उच्च चीज़ है। उसमें तो कर्म ही नहीं बंधते। अपने यहाँ जब ज्ञान देते हैं तो वह ज्ञान भाव उदासीनता का है। यह विज्ञान भाव उदासीनता वाला है। आलू नहीं खाता और यह नहीं खाता, वह नहीं खाता। भाई! हमें अगर इसी जन्म में मोक्ष में जाना होता तब अगर ये फूलों की माला नहीं पहनेंगे तो भी चलेगा। लेकिन अभी तो एक जन्म की देर है और शायद दो भी हो जाएँ। यहाँ भला क्या नुकसान होने वाला है! अपने काबू में आ गया है। पूरा ब्रह्मांड काबू में आ गया है। फिर क्या नुकसान होने वाला है? हमारी इच्छा भी नहीं है ऐसी सुगंधि लेने की!

प्रश्नकर्ता : उदासीनता और वीतरागता में क्या फर्क है?

दादाश्री : उनमें फर्क है। उदासीनता वीतरागता की जननी है। वीतरागता की माता है। माता होगी तभी बच्चा होगा न? अतः वीतरागता अंतिम दशा है और उदासीनता शुरुआत की दशा है। शुरुआत में उदासीनता आ जाती है, यानी राग और द्वेष दोनों की तरफ। उदासीनता का मतलब क्या है कि पक्षपात नहीं, किसी के भी प्रति पक्षपात नहीं। जहाँ द्वेष करना हो वहाँ भी पक्षपात नहीं, राग करना हो तो भी पक्षपात नहीं और फिर जब आगे बढ़ता है तब वीतरागता उत्पन्न होती है लेकिन जब तक उदासीनता है तब तक दया रहती है। और जहाँ दया है, वहाँ पूर्ण दशा नहीं है। अतः करुणा सब से बड़ी चीज़ है। कारुण्यता उत्पन्न हो जाएगी तो पूर्ण हो जाएगा!

ज्ञानी के कहे अनुसार चलेंगे न तो फुलस्टॉप आ जाएगा। कोई भी दखल नहीं!

प्रश्नकर्ता : आत्मा उदासीन भाव से रहा हुआ है और दूसरा,

आत्मा का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी है तो वह उदासीन भाव से किस प्रकार रह सकता है?

दादाश्री : उदासीन अर्थात् ऐसा कहने का भावार्थ यह है कि संसार में उसे कोई अपेक्षा नहीं है। जो मूल आत्मा है न, उसे संसार से कोई अपेक्षा नहीं है इसलिए उदासीन भाव से है। इन लोगों से यदि ऐसा कहेंगे कि वीतराग भाव से है तो समझ में नहीं आएगा लेकिन यदि उदासीन कहेंगे तो समझ में आ जाएगा। संसार की उसे पड़ी ही नहीं होती, उसे लेना-देना ही नहीं है। उसका खुद का स्वभाव अलग, और संसार का स्वभाव अलग है। संसार का स्वभाव *पुद्गल* स्वभाव है और खुद का स्व स्वभाव है।

शुद्ध चेतन तो उदासीन भाव से है। सिर्फ प्रकाश ही देता है। तुझे जिसमें उपयोग करना हो उसमें कर क्योंकि वह तो प्रकाश देने भी नहीं आता। जैसे कि यह सूर्य कहीं भी प्रकाश देने नहीं आता, उसका स्वभाव है और हम बेकार ही बिना बात के उपकार मानेंगे तो उसे बल्कि गुस्सा आ जाएगा। कहेगा कि, 'ये लोग कैसे बेकार हैं!' वह तो उसका स्वभाव है।

जहाँ राग-द्वेष, वहाँ यादें

पसंद एक भ्रांत अभिप्राय है। यादें पसंद के आधार पर रहती हैं लेकिन जिनमें राग-द्वेष होते हैं न, उसी में याद रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब अगर पसंद करेगा तभी राग-द्वेष कहलाएगा न? पसंद कर-करके ही सब याद रखता है न यह?

दादाश्री : पसंद तो ठीक है। जिनमें राग, राग अर्थात् पसंद आना। उसमें सभी कुछ आ गया। यदि एक ही शब्द में कहें तो सिर्फ पसंद ही नहीं, जिन पर राग है वह सबकुछ याद रहता है और द्वेष है, वह भी याद रहता है।

प्रश्नकर्ता : शुरू से आखिर तक सभी चीज़ों को पसंद कर-करके राग इकट्ठा किया है।

दादाश्री : ऐसा है न, राग में तो पसंद समा जाती है। पसंद में राग नहीं समाता।

अतः जिन पर राग और जिन पर द्वेष है, वे उसे याद आते ही रहते हैं। वीतराग को याद नहीं आता। लेकिन वह शब्द तो सिर्फ एक इस वाक्य के अधीन लिखा गया है। लेकिन वीतराग का मतलब यदि ऐसा निकालें कि याद नहीं आता तो याद तो सभी साधु-संन्यासियों को भी नहीं आता और सभी वहाँ हिमालय में पड़े रहते हैं तो उसका अर्थ उल्टा हो जाएगा। फिर वीतराग का अर्थ ही क्या है? जैसा है वैसा, राग-द्वेष रहित वीतराग! वीतरागों को तो भूलने-करने को कुछ रहता ही नहीं न! उन्हें तो जब राग ही नहीं है तो फिर याद ही नहीं आएगा। राग को भूलना ही कहाँ रहा? राग-द्वेष वाला भूलता नहीं है कभी भी।

प्रश्नकर्ता : याद आए तो वीतराग नहीं है।

दादाश्री : हाँ। यादें राग-द्वेष के अधीन हैं। वह अकेला शब्द नहीं, सिर्फ 'भूलना' शब्द ही नहीं, परंतु पूरी डिक्शनरी ही नहीं है वहाँ पर।

फर्क, स्नेह और राग में

प्रश्नकर्ता : क्या स्नेह का मतलब राग है?

दादाश्री : स्नेह अर्थात् चिपचिपाहट। आम के प्रति स्नेह होने लगे तो वह चिपक जाता है। मित्र के लिए स्नेह होने लगे कि चिपक जाता है। स्नेह अर्थात् चिपचिपाहट। स्नेह और राग में बहुत फर्क है।

प्रश्नकर्ता : स्नेह और राग में क्या फर्क है?

दादाश्री : स्नेह, वह चिपचिपापन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या राग से भी आगे है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। राग बहुत विषम है। स्नेह तो टूट भी सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे गाढ़ कहा है न?

दादाश्री : गाढ़ है फिर भी टूट जाता है। स्नेह अर्थात् सिर्फ चिपचिपापन। अन्य कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसमें राग नहीं होता?

दादाश्री : नहीं। जो चिपकता है वह चिपचिपाहट की वजह से। फिर अलग भी हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो यह आकर्षण जैसा है? आकर्षण जैसा?

दादाश्री : आकर्षण में राग उत्पन्न होता है। एक पत्ता उड़ता हुआ आया और आप पर चिपक गया, अब वह स्नेह से चिपका है। लेकिन गर्मी पड़ते ही अंदर का पानी सूख जाता है। उखड़कर अपने आप ही गिर जाता है। गीला है, इसलिए चिपक गया यहाँ पर लेकिन जब गर्मी पड़ती है, उस समय?

प्रश्नकर्ता : अलग हो जाता है।

दादाश्री : हमें उखाड़ना नहीं पड़ता। जबकि राग अलग चीज़ है। राग तो, जब तक वीतरागता न आ जाए तब तक राह पर नहीं आने देता। तुझे अब किस पर राग होता है?

प्रश्नकर्ता : मुझे किसी पर भी नहीं होता।

दादाश्री : हाँ, तो ठीक है! वीतराग कहा जाएगा। अभी वीतराग नहीं है, वीतद्वेष कहा जाएगा। द्वेष नहीं रहा।

[2.3]

वीतद्वेष

परिभाषा राग-द्वेष की

राग-द्वेष हो जाते हैं?

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष होते तो हैं ही न!

दादाश्री : तो राग-द्वेष बंद होने का कोई साधन तो होगा न?

प्रश्नकर्ता : सही समझ मिलनी चाहिए।

दादाश्री : द्वेष बंद हो जाए तो अच्छा है या फिर राग बंद हो जाए तो अच्छा?

प्रश्नकर्ता : द्वेष तो समझे, लेकिन राग का क्या अर्थ है? द्वेष अर्थात् ईर्ष्या, किसी के लिए बैर।

दादाश्री : ईर्ष्या, तिरस्कार, अभाव, नापसंदगी और उसके विरोधी शब्दों में राग आता है। राग अर्थात् पसंद, आकर्षण।

अब द्वेष से यह सारा संसार दुःखी है। राग से दुःखी नहीं है। राग से सुख ही उत्पन्न होता है लेकिन उसी सुख में द्वेष समाया रहता है। उसी में से द्वेष के धुएँ निकलते हैं, अतः भगवान ने फिर राग को भी छोड़ने को कहा है। पहले वीतद्वेष बन जा। भगवान पहले वीतद्वेष बने और फिर वीतराग बने।

जेल के प्रति राग होता है?

प्रश्नकर्ता : राग ही जन्मांतर बढ़ा देता है न?

दादाश्री : वह तो बढ़ा ही देता है न, राग तो!

प्रश्नकर्ता : राग भी आग है न?

दादाश्री : राग? राग आग नहीं है। यदि राग आग होता तो राग होता ही नहीं। इच्छा अग्नि है, राग आग नहीं है। जब राग होता है न तब तो बल्कि इंसान को अच्छा लगता है, ठंडक महसूस होती है।

प्रश्नकर्ता : द्वेष तो बेकार पटाखे जैसा है। फुस्स करके उड़ जाएगा। द्वेष ज़्यादा नुकसान नहीं पहुँचाता लेकिन यह जो राग है वह बहुत नुकसान पहुँचाता है। क्या यह बात सही है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। यह जगत् द्वेष से खड़ा है। बैर से और बैर में से राग उत्पन्न हुआ है। अतः खड़े रहने का मूल कारण बैर है। दूसरे शब्दों में कहें तो जगत् बैर से खड़ा है। वह द्वेष, बैर वगैरह एक ही तरह के हैं। उससे यह जगत् खड़ा है अतः निर्बैरी हो जा ताकि किसी जगह बैर न रहे! जब आत्मज्ञान प्राप्त होता है तो सब से पहले वीतद्वेष बन जाता है। उसके बाद वीतराग बनता है।

इस संसार में जो राग है, वह किस जैसा है? जैसे कि, जेल में बैठा हुआ इंसान जेल में जाते समय रोता है लेकिन जेल में जाने के बाद जेल को लीपता-पोतता है। लीपता है या नहीं लीपता, अगर वहाँ खड्डे वगैरह हों तो? उससे हमें लगेगा कि, 'ओहोहो! जेल पर राग है'। उसके बाद यदि हम उससे पूछें कि, 'तुझे जेल पर राग है?' तब वह कहता है, 'नहीं भाई, जेल पर कभी राग होता होगा? लेकिन यहाँ रात को सोएँ कैसे? इसलिए ऐसा कर रहे हैं'।

उसी तरह इस संसार पर भी राग नहीं है लेकिन क्या हो सकता है? लेकिन यह तो क्या होता है कि यहाँ फँस चुके हैं इसीलिए लीपना-पोतना पड़ता है, सभी कुछ करना पड़ता है। लीपना पड़ता है या नहीं लीपना पड़ता?

प्रश्नकर्ता : लीपना पड़ता है, दादा।

दादाश्री : बाहर वाले लोग ऐसा समझते हैं कि इसे जेल पर राग हो गया है। अरे भाई, कभी राग होता होगा जेल पर! मजबूरन करना पड़ रहा है सबकुछ। नहीं करना पड़ रहा?

मूलतः द्वेष ही भटकाता है

प्रश्नकर्ता : प्रेम और मोह भी द्वेष जितने ही जोखिम वाले हैं? दोनों में से ज़्यादा जोखिम वाला कौन है?

दादाश्री : प्रेम से ज़्यादा जोखिम द्वेष में है। प्रेम में जोखिम कम है क्योंकि द्वेष में से प्रेम जन्म लेता है। द्वेष बीज है। प्रेम का बीज प्रेम नहीं है। प्रेम का बीज द्वेष ही है।

आपको घर में सभी के साथ प्रेम हो लेकिन आपको द्वेष नहीं होता तो समझना कि फिर से बीज नहीं पड़ेगा और यदि द्वेष होगा तो बार-बार उस पर प्रेम आता रहेगा। इसके बावजूद भी इस ज्ञान के बाद वैसा नया करार नहीं होगा। नए करार के बारे में आप समझ लेना। बाकी, अगर इन सब में ज़्यादा गहराई में उतरोगे तो यह तो बहुत गहन साइन्स है और यह शोर्ट साइन्स भी है। सिर्फ नया करार, समझ गए सभी? नया करार, जो पिछले, पहले के पूर्व अभ्यास की वजह से धक्का लगने पर उत्पन्न होते हैं। खुद के शुद्धात्मा का भान रहना चाहिए! तो बहुत हो गया।

द्वेष ही जननी है राग की

सत्संग किसे कहते हैं? कुसंग में से निकलना ही सत्संग कहलाता है। हाँ, फिर चाहे कहीं भी बैठा हो न! यदि कुसंग में से निकल गया तो वह सत्संग है। और अगर मंदिर में बैठा है लेकिन कुसंग में से नहीं निकला है तो सत्संग नहीं कहलाएगा।

जहाँ कुसंग है, वहाँ पर क्या भगवान द्वेष करते हैं? तब तो फिर वहाँ पर भगवान द्वेष करते कि, 'यह तो कुसंग में से निकलता ही नहीं?' वह यदि द्वेष करने जैसी चीज़ होती तब तो महावीर भगवान कहते न

कि 'भाई, राग मत करना लेकिन इन लोगों के प्रति द्वेष तो करना?!' शराबी, व्यभिचारी लोगों के प्रति इन सब के प्रति द्वेष रखना, भगवान ऐसा कहते लेकिन उन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा?

प्रश्नकर्ता : उस चीज़ पर राग मत करना तो फिर द्वेष नहीं होगा।

दादाश्री : द्वेष को ही छोड़ना है। राग को छोड़ना ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : द्वेष छोड़ने से राग चला जाएगा?

दादाश्री : राग की तो चिंता ही मत करना। भगवान ने कहा है कि वीतद्वेष बन जा। उसके बाद अपने आप ही वीतराग बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लोग ऐसा कहते हैं कि जहाँ पर राग अधिक होता है वहीं पर अधिक द्वेष हो जाता है।

दादाश्री : नहीं। द्वेष है इसलिए राग उत्पन्न होता है उसे। यदि मुझे किसी पर द्वेष होगा तो राग उत्पन्न होगा। मुझे द्वेष नहीं होता है, फिर मुझे राग कैसे उत्पन्न होगा? अतः द्वेष में से राग उत्पन्न हुआ है। इसमें द्वेष कॉज़ेज़ हैं और राग परिणाम है। अतः ऐसा कहते हैं कि 'तू परिणाम की चिंता मत कर, कॉज़ेज़ की चिंता कर'। इतनी सूक्ष्म बात समझी नहीं जा सकती न? यह बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म बात है!

प्रश्नकर्ता : द्वेष कॉज़ है और राग परिणाम, ऐसा किस तरह से है?

दादाश्री : हाँ, द्वेष कॉज़ेज़ हैं और राग परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि राग व द्वेष साथ में ही रहते हैं। जहाँ पर राग हो, वहाँ पर द्वेष रहता ही है।

दादाश्री : नहीं! द्वेष होता है और द्वेष के रिऐक्शन में राग होता है। यदि ज़रा सा भी द्वेष न हो तो राग उत्पन्न ही नहीं होगा।

पहले द्वेष, सूक्ष्म में

द्वेष के आधार पर ही यह खड़ा है। इसका फाउन्डेशन द्वेष ही है।

अत: जब हम ज्ञान देते हैं तब द्वेष चला जाता है। उसके बाद चीज़ों की तरफ आकर्षण रहता है। वह भी व्यवहारिक आकर्षण। आकर्षण निश्चय से नहीं! लेकिन उसके बाद वीतराग हो सकते हैं। वीतद्वेष हो जाने के बहुत समय बाद वीतराग बन सकते हैं। पहले वीतद्वेष बन जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : द्वेष के बजाय राग को छोड़ना मुश्किल है।

दादाश्री : नहीं, राग को छोड़ना सब से आसान है। द्वेष जाना सब से मुश्किल है। पहले द्वेष नहीं जाता, इसीलिए यह राग नहीं जाता। राग तो बेचारा, जब द्वेष चला जाएगा न, तो राग भी चला जाएगा।

अब वेदांत मार्ग के सब से बड़े बुद्धिशाली, कबीर साहब! उन्होंने भी कहा है, 'भूख लगे तब कुछ नहीं सूझे'। ज्ञान-ध्यान सब रोटी में चला जाता है, 'कहत कबीर सुनो भई साधु, आग लगो ये पोठी में'।

जबकि वीतरागों ने 'आग लगो इस पोठी में' नहीं कहा। उन्होंने ज्ञान से पता लगाया इसका, ज्ञान से पृथक्करण किया और इनको ऐसा ही लगा कि, 'यह मेरी ही पोठी है। अत: उसे यहीं से जला दो न'। जबकि वीतरागों ने पृथक्करण किया कि मैं अलग और यह अलग, 'आहारी आहार करता है, मैं तो निराहारी हूँ'। तो वीतरागों ने फिर ऐसी खोज की। उसके बाद उन्होंने पोठी पर द्वेष नहीं किया जबकि वे द्वेष करते हैं न! 'आग लगो इस पोठी में', वह क्या कम द्वेष है? पोठी को जला दे! किसी ने अभी तक जलाया है? कहते ज़रूर है लेकिन जलाते हैं क्या?

तो इस दुनिया में पहला द्वेष किसमें से आता है कि अगर कोई इंसान यहाँ से जंगल में भाग गया, वहाँ पर फिर भूख लगे तो उस समय बेचैन हो जाता है और बेचैनी में द्वेष ही है, राग नहीं है। जब भूख लगे, उस समय यदि उसे सोना-वोना दिखाया जाए तो क्या उसे उस पर राग होगा? उसे द्वेष ही रहेगा। अत: इस संसार की शुरुआत द्वेष से हुई है। और द्वेष की शुरुआत होने से यह फाउन्डेशन खड़ा है।

और राग में पसंद खुद की

प्रश्नकर्ता : वीतराग किस तरह से हुआ जा सकता है?

दादाश्री : वीतराग अपने आप ही हो जाते हैं। वीतराग होने के लिए कुछ करना नहीं है। वीतद्वेष होना सब से मुश्किल काम है।

प्रश्नकर्ता : आपने उस दिन कहा था न कि द्वेष की वजह से ही राग है।

दादाश्री : हाँ, द्वेष में से ही सारा राग है। कड़वा खाने के बाद ज़रा यों ही दूसरा कुछ खाएँ तो उस चीज़ पर हमें राग हो जाता है! उसे खाने से कड़वाहट ज़रा कम हो जाती है न? और अगर यों ही खा लिया होता तो राग नहीं होता। अतः द्वेष में से ही राग उत्पन्न हुआ है। यानी पहले द्वेष जाता है और बाद में राग जाता है। राग अर्थात् पसंद की चीज़ है और द्वेष कुदरती है।

मान लो अगर कोई एक बड़ा राजा है, बहुत ही सुखी है। किसी पर राग-द्वेष नहीं करता, सभी के प्रति न्यायी है। ऐसे सच्चाई के व्रत वाला है कि 'मुझे किसी का कुछ भी नहीं लेना है'। झूठ नहीं बोलता। लेकिन अगर वह जंगल में जाए और रास्ता भटक जाए और तब उसे भूख लगे तो उस समय क्या उसे राग होगा? भूख लगने पर क्या होगा? दुःख होगा और वेदना होगी न? अब भूख लगने पर वह वहाँ क्या करेगा? किसी भी तरह, झूठ बोलकर या चोरी करके कुछ खा लेगा। खाएगा या नहीं खाएगा? और किसी गरीब के बेटे की जूठी रोटी पड़ी हो तो वह भी खा लेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : खा लेगा। क्योंकि उसकी भूख जागी है।

दादाश्री : क्योंकि उसे अंदर जो दुःख हो रहा है, वह द्वेष है। जब पेट में इतना डालता है तब जाकर द्वेष शांत होता है। झूठ बोलकर हम किसी का कुछ ले आएँ और अगर कोई वह छीन ले तो उस पर द्वेष होगा या राग?

प्रश्नकर्ता : द्वेष होगा।

दादाश्री : अत: इन सब का कारण द्वेष है। इन पाँच इन्द्रियों की बिगिनिंग का कारण द्वेष है और फिर राग कब होता है? भले ही वह चोरी करके लाए लेकिन एक तरफ रोटी हो और दूसरी तरफ पराठा हो तो तुरंत कहेगा, पराठा खाऊँगा! तो उस राग में पसंदगी है न? लेकिन मूलत: तो द्वेष है न? मूलत: द्वेष होता है, उसके बाद राग आता है। अत: राग तो एक तरह से अपने शौक की चीज़ है। राग तो सरप्लस हो जाने के बाद होता है लेकिन जो मुख्य ज़रूरतें हैं, उनके लिए तो द्वेष ही होता है। नेसेसिटी में कोई कमी आ जाए तो द्वेष होता है। अगर कोई वह रोटी ले ले तो उस समय उस पर उसे कितना द्वेष हो जाएगा? अत: राग निकल सकता है। राग से कोई परेशानी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लोग ऐसा कहते हैं, राग पर ही पूरा संसार खड़ा है।

दादाश्री : अपना अक्रम विज्ञान क्या कहता है कि द्वेष की नींव पर ही यह संसार खड़ा है। जिसकी वह नींव टूट जाएगी, उसका राग अपने आप ही चला जाएगा। वह राग, चाय का राग होता है न! और अगर उससे पहले जलेबी खिला दी जाए तो?

प्रश्नकर्ता : चाय फीकी लगेगी।

दादाश्री : चाय के प्रति राग कम हो जाएगा। जब यह ज्ञान देते हैं न, तब ज्ञान से जो सुख उत्पन्न होता है, उससे बाकी के सभी सुख फीके लगने लगते हैं। उससे राग खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह अनुभव सिद्ध चीज़ है।

दादाश्री : हाँ, अनुभव सिद्ध!

चार कषाय ही हैं द्वेष

जितना-जितना अच्छा लगता है वह सब राग कहलाता है और जो अच्छा नहीं लगता, वह द्वेष कहलाता है। क्या राग बहुत पसंद है?

आर्त और रौद्रध्यान? तो फिर? राग कैसे कह रहे हो? तो फिर जो द्वेष है वह पसंद है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं पसंद।

दादाश्री : राग और द्वेष में से गुनहगार कौन है, वह ढूँढ निकालो। गुनहगार नहीं मिलते हैं इसीलिए तो पूरा जगत् लटक गया है।

इसमें मसाले-वसाले डालकर पिलाया जाए, तब अगर मुझे राग हो जाए तो उसमें हर्ज नहीं है। अगर यह फिर से ज़रा याद आए तो भी हर्ज नहीं है लेकिन अगर कोई कड़वा दे और उसे पीते समय द्वेष हो जाए तो परेशानी है। यदि राग हो जाए और तुझे याद आए तो उसमें हर्ज नहीं है। फिर से यह रस पी जाएगा। तीसरी बार आएगा तो तीसरी बार पी जाएगा लेकिन इसका अंत है। जबकि द्वेष अनंत है। उसका अंत ही नहीं है जबकि यह अंत वाला है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में भी ऐसा कहा गया है कि 'ममता छोड़ो। ममता छोड़नी है'। ममता छोड़ने का मतलब पहले राग छोड़ने की बात आती है न?

दादाश्री : ममता की तो यहाँ पर बात ही नहीं है। अपने यहाँ ममता शब्द की बात ही नहीं है। वीतद्वेष क्या है? 'ममता खत्म होने के बाद द्वेष जाता है, नहीं तो नहीं जा सकता', यहाँ पर वह बात है ही नहीं। यह तो बाहर की बात हुई।

प्रश्नकर्ता : बाहर की ही बात है।

दादाश्री : लेकिन वह बात यहाँ पर काम नहीं आएगी न? अपने यहाँ पर तो वीतद्वेष बन जाते हैं। पहले वीतद्वेष बन चुके हैं न? वीतराग नहीं बनाया है। वीतराग नहीं बनाना है, वीतराग तो होते जाओगे। बीज निकाल दिया है मैंने, बीज खत्म हो गया।

अगर समझ में न आए तो यह ऐसी बात है कि बारह-बारह महीने तक लोगों को समझ में न आए। बारह महीने नहीं, लाख सालों तक भी समझ में न आए, ऐसी बात है।

प्रश्नकर्ता : दादा, अब दूसरी बात पूछता हूँ। आपने जो द्वेष कहा है, ये राग और द्वेष दो शब्द हैं। राग में लोभ और माया आते हैं और द्वेष में मान और क्रोध आते हैं तो...

दादाश्री : आप ये सब जो बातें कर रहे हैं, वे सभी बाहर की बातें हैं। उसका और इसका लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में जो लिखा है, उसकी बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : शास्त्र तो सही हैं, लेकिन वह बाहर की बात है। बाहर की बात अर्थात् स्थूल बातें, लौकिक बातें हैं जबकि यह बात अलौकिक है।

क्रोध-मान-माया-लोभ ही द्वेष हैं। वे चारों ही द्वेष हैं।

प्रश्नकर्ता : शास्त्र में दो को कहा गया है।

दादाश्री : उन्होंने तो दो को ही कहा है लेकिन आखिर में ये सब द्वेष ही हैं क्योंकि जो आत्मा को पीड़ित करते हैं, वे सभी कषाय कहलाते हैं। जब तक वे रहेंगे तब तक यह सब होता रहेगा। अपने यहाँ पर आपको वीतद्वेष बना दिया है। आपको इतना ही देख लेना है कि क्या ऐसा लगता है कि हम वीतद्वेष हो गए हैं?

प्रश्नकर्ता : लगता है।

दादाश्री : फिर वीतराग तो परिणाम है। अतः उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ेगा। कॉज़ेज़ निकाल दिए हैं न! मूल कॉज़ेज़ खत्म कर दिए।

अब बात इतनी सूक्ष्म है और ऐसी है कि कई सालों तक समझ में न आए! यह बात बुद्धि गम्य नहीं है, यह तो ज्ञान गम्य बात निकली है। देखो निकल गई न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह सही हकीकत है, हर एक का ऐसा अनुभव है कि अब द्वेष नहीं होता, कषायों पर...

दादाश्री : किसी को नाम मात्र को भी द्वेष नहीं होता। सिर्फ इतना है कि आम ज़रूर भाते हैं, यह सब अच्छा लगता है, मीठा लगता है सब। जब कड़वा हो न तो कड़वा ले ज़रूर लेते हैं लेकिन द्वेष नहीं होता। समभाव से *निकाल* कर देते हैं, हल ले आते हैं। अत: वीतद्वेष बना दिया, उसके बाद बचा वीतराग।

भूख का मूल कारण द्वेष

वीतराग को कोई कर्तापन नहीं होता। कुछ करना नहीं पड़ता अपने आप ही होता रहता है क्योंकि द्वेष अर्थात् इंसान राग से खाता है या द्वेष से खाता है? इंसान जब खाने जाता है तो वह राग से खाता है या द्वेष से?

प्रश्नकर्ता : राग से खाता है!

दादाश्री : ना, द्वेष से खाता है।

प्रश्नकर्ता : वह समझाइए दादा, वह ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : जब तक उसे भूख नहीं लगती न, तब तक बैठा रहता है बेचारा। जब भूख लगती है न, तब अंदर दु:ख होता है, दु:ख होने पर द्वेष करता है न! भूख लगती है, वही द्वेष का कारण है। प्यास लगती है, वह द्वेष का कारण है। उसे द्वेष होता है, अगर भूख ही नहीं लगती तो? विषय से संबंधित भूख नहीं लगे, देह से संबंधित भूख नहीं लगे, और कोई भूख नहीं लगे तो?

प्रश्नकर्ता : तो इंसान वीतराग हो जाएगा।

दादाश्री : वीतराग ही है न! यह तो भूख लगती है। कितने प्रकार की भूख लगती है उसे?

प्रश्नकर्ता : अनेक प्रकार की भूख है न!

दादाश्री : नहीं, यों ही! भूख नहीं लगे इसलिए आज घूमने नहीं जाना है, आज सोते रहना है। इसके बावजूद भी भूख लगे बगैर रहेगी क्या? छोड़ेगी? एक दिन या दो दिन?

प्रश्नकर्ता : लगेगी।

दादाश्री : फिर अंदर क्या होता है उसे?

प्रश्नकर्ता : रोष होता है।

दादाश्री : उससे दुःख होता है, वेदना होती है। जब वेदना होती है उसका मतलब कि द्वेष परिणाम उत्पन्न हुए। जब द्वेष परिणाम उत्पन्न होते हैं तो जो कोई आए उसे गालियाँ देता है। हाँ, भूख लगने पर गालियाँ देता है, उसे काट भी खाता है। अगर कोई खाना लेकर जा रहा हो और उसे नहीं दे तो काट खाता है। तो भूख में ऐसा, प्यास में ऐसा, विषय में ऐसा! विषय एक प्रकार की भूख है। अगर सिनेमा में नहीं जाने दो, उसे भूख लगी हो और नहीं जाने दो तब क्या होगा? द्वेष करेगा या राग?

प्रश्नकर्ता : द्वेष करेगा।

दादाश्री : तो आज द्वेष से ही सारा जगत् खड़ा है। राग को तो बेचारे को कोई परेशानी ही नहीं है। साथ में सात स्त्रियाँ लेकर घूम न यदि तुझे द्वेष नहीं होता है तो!

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा है कि जिसे बहुत भूख लगती है, उसे बहुत द्वेष होता है?

दादाश्री : हाँ, हाँ। कम भूख लगे तो कम द्वेष होता है। जिसने पिछले जन्म में ब्रह्मचर्य के भाव का पालन किया हो, वैसा भाव चार्ज किया हो तो, उसे इस जन्म में ब्रह्मचर्य का उदय आता है। उसका उदय आने के बाद उसे वह भूख नहीं लगती। यानी उसका उस तरफ का द्वेष चला गया। तो उस तरफ से वह वीतद्वेष हो गया। उसी प्रकार जिस-जिस चीज़ की भूख नहीं लगती, उसमें वीतद्वेष हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब तक शरीर है, तब तक भूख तो लगेगी ही।

दादाश्री : नहीं! लेकिन जिसने ब्रह्मचर्य का भाव किया हो उसकी

एक भूख तो उतनी कम हो सकती है, ऐसा है। बाकी सब प्रकार की भूख तो लगेंगी ही।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दूसरा जो हमें अनाज खाने की भूख है, वह भूख तो लगेगी ही तो फिर द्वेष तो जाएगा ही नहीं न कभी भी?

दादाश्री : अर्थात् द्वेष जाएगा ही नहीं इसीलिए हमने वीतराग विज्ञान देकर आपको वीतद्वेष बना दिया है।

प्रश्नकर्ता : भूख तो रोज़ लगती है फिर ऐसा कैसे कहा जा सकता है कि वीतद्वेष बन गए?

दादाश्री : वह तो अभी जब आप साइन्स को समझोगे तब उस दिन! अभी तो समझना बाकी है न? ये सभी समझकर बैठे हैं कि किसे भूख लगी है और किसे नहीं, वैसा सब जानते हैं। किसे भूख लगी है, आप सभी लोग वह समझकर बैठे हो न? जबकि वे (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) तो ऐसा ही समझते हैं कि 'मुझे भूख लगी है'।

यदि यह भूख नहीं लगती, प्यास नहीं लगती, तो ये साधु उपाश्रय से बाहर ही नहीं निकलते। राग तो बाद में पैदा हुआ है। राग अर्थात् यह अच्छा और यह बुरा। वह बाद का भाग है। मूल रूप से सबकुछ यहीं से उत्पन्न हुआ है। यदि उस जड़ को पकड़ लेंगे तो काम ही हो जाएगा न!

अतः आपको वीतद्वेष बना दिया है और मेरे साथ बैठ-बैठकर वीतराग बन जाना है। जितने समय तक बैठ पाओ, उतना समय। जिससे जितना लाभ लिया जा सके उतना और एकावतारी है, दो अवतारी, तीन अवतारी, पाँच अवतारी, बहुत हुआ तो पंद्रह अवतार होंगे लेकिन और कोई नुकसान तो नहीं होगा न! और उसका (ज्ञान का) सुख बरतता है न हमें!

सुख बरतता है तभी तो सब यहाँ पर आते हैं न, रोज़! यहाँ मुंबई में छः-छः, सात-सात घंटे कौन इतना समय बिगाड़ेगा? कोई चार घंटे,

कोई तीन घंटे, कोई दो घंटे, कोई-कोई सात-आठ घंटे। छः घंटे के लिए आने वाले लोग भी हैं न यहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अतः द्वेष तो... इस जीवन में जो कोई भी विषय है न, वे विषय दुःख देते हैं, उस कारण उसे द्वेष होता है। अतः द्वेष से प्रयत्न करके, कोई उसे बुझाने का प्रयत्न करता है। अच्छा-बुरा बाद में सीखा कि यह आम रत्नागिरी वाला है और यह वह वाला है। राग तो बहुत समय बाद सीखा। राग तो था ही नहीं। इस रत्नागिरी आम की ज़रूरत कब पड़ती है? यदि दूसरे आम ही मिलें और ये आम मिलते ही नहीं हों, तब?

इन इंसानों को जो हाजतें हैं न, वे सभी द्वेष वाली हैं। राग बाद में उत्पन्न हुआ है। फिर तो छाँटने लगा कि यह इससे अच्छा है, उससे अच्छा यह है, उससे अच्छा यह है, उसके बजाय यह अच्छा है, लेकिन जब भूख लगती है न, तब क्या वह अच्छा-बुरा कहता है?

वह सब है अशाता वेदनीय

हमें भूख लगती है, तो वह जो भूख होती है, उसे *अशाता* (दुःख-परिणाम) वेदनीय कहा जाता है। अब बाहर से कोई *अशाता* वेदनीय नहीं करता। *अशाता* वेदनीय अर्थात् हमें अंदर द्वेष होता रहता है, नापसंदगी होने लगती है और जो कोई बीच में आए उसे धमका देता है। अब *अशाता* वेदनीय कुदरती रूप से होती है, किसी ने की नहीं है। देह धारण करने का दंड है, अतः द्वेष उत्पन्न होता है उससे। प्यास वगैरह सब *अशाता* वेदनीय की वजह से लगती है। अतः जहाँ-जहाँ 'लगती है' शब्द आता है न, वह सब *अशाता* वेदनीय है। प्यास लगती है, भूख लगती है, नींद आती है, थकान लगती है, लगती है, लगती है अर्थात् जो सुलगती है वह सब *अशाता* वेदनीय है। फिर नींद भी लग जाती है न? ये सब *अशाता* वेदनीय हैं और इसीलिए द्वेष होता है और द्वेष में से फिर *अशाता* वेदनीय की वजह से खाने-पीने का ढूँढता है। फिर, जो भी मिलता है,

वही खा लेता है, उसे शांत करने के लिए। और उसके बाद जब पसंद करता है, वहाँ से राग होने की शुरुआत हुई। अतः राग तो, एक-एक चीज़ हमारी ही पसंद है कि यह या यह या यह। जबकि द्वेष तो अनिवार्य है। भाई, खाए बगैर तो चलेगा ही नहीं न! तो क्या सोए बगैर भी नहीं चलेगा! कोई हमें सोने से रोके तो उसके प्रति क्या होता है हमें? राग होता है या द्वेष होता है?

प्रश्नकर्ता : एकदम द्वेष होता है।

दादाश्री : जब भूख लगी हो और उसे कोई रोके तब क्या होता है? राग अर्थात् खुद के मन मुताबिक, वह खुद का स्वतंत्र भाग है। द्वेष में स्वतंत्र है ही नहीं। इस बारे में शास्त्र पढ़े या बारीकी से सोचे?

प्रश्नकर्ता : दादा, बारीकी से कैसे सोच पाएगा?

दादाश्री : शास्त्रों में पढ़ते हैं। जो शास्त्र लिखे गए हैं, उनमें तो सभी के लिए एक साथ दवाई रखी गई है। जिसे जो अनुकूल आए वह दवाई ले लेना। बेकार ही पत्नी को छोड़कर भाग मत जाना। जिसे कर्म का उदय आए, वही छोड़ना। कर्म का उदय नहीं हो तो फिर वैसा। (त्यागी) कर्म के उदय वाले को तो यदि यहाँ पर सांसारिक बनाने जाएँगे तो भाग जाएगा। तीसरे ही दिन भाग जाएगा।

द्वेष ही पहले, बाद में राग

यदि खुद की स्त्री पर ज़रा सा भी द्वेष नहीं रहे न, तो स्त्री के प्रति राग होगा ही नहीं, ऐसा नियम है। अतः मजबूरन स्त्री पर राग करता है बेचारा। यह तो ऐसा है कि द्वेष होता है, इसलिए वह द्वेष ही उसे धक्का मारकर राग में डाल देता है। यदि द्वेष नहीं हो रहा हो न तो स्त्री पर राग होगा ही नहीं। वह ज़रा सा सोचने के बाद समझ जाता कि यह राग करने जैसी चीज़ है ही नहीं। भरत राजा की तेरह सौ रानियाँ थीं लेकिन राग हुआ होगा पर द्वेष नहीं हुआ होगा उन्हें! वीतद्वेष हो चुके थे भरत राजा!

यह तो शादी करके एक स्त्री को लाया और अगर वह काली हो तब दूसरी किसी गोरी स्त्री पर उसे राग हो ही जाता है। अरे तेरी पत्नी है न! तब कहता है, 'लेकिन गोरी नहीं है न!' अगर गोरी स्त्रियाँ बिल्कुल होती ही नहीं तो राग होता क्या उसे?

प्रश्नकर्ता : नहीं होता।

दादाश्री : बस, मुख्य कारण द्वेष ही है। स्त्री की ज़रूरत है, ये इन्द्रियाँ ऐसी हैं कि जब तक ज्ञान नहीं हो जाए तो उसे स्त्री की, सभी चीज़ों की ज़रूरत रहती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान होने के बाद ज़रूरत नहीं रहती?

दादाश्री : ज्ञान होने के बाद में फिर ज़रूरत नहीं रहती। अतः सिर्फ स्त्री के प्रति होने वाला विषय-विकार रुक जाता है। बाकी सब, खाने-पीने की तो ज़रूरत पड़ती है अंत तक, देह जीवित है तब तक।

बच्चे पूर्व जन्म के द्वेष का परिणाम

यदि तुझे पत्नी व बच्चों के प्रति द्वेष नहीं होगा तो राग उत्पन्न ही नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार से? जो चीज़ पसंद हो, जिस पर राग हो, उसके प्रति द्वेष हो सकता है?

दादाश्री : द्वेष ही है, तभी राग होता है न! द्वेष के बिना राग नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा है कि पहले द्वेष होता है?

दादाश्री : द्वेष के बिना राग हो ही नहीं सकता। राग में से द्वेष और द्वेष में से राग। बच्चे को जब दवाई पिलाने लगें तब अगर वह यों फूँक मारकर हमारी आँखों में डाल दे तो?

प्रश्नकर्ता : तो द्वेष होता है।

दादाश्री : तब द्वेष होता है। अतः पहले अगर द्वेष चला जाए तो फिर राग चला जाएगा। अभी आपका द्वेष चला गया है। किसी पर द्वेष नहीं होता लेकिन राग तो रहेगा लेकिन वह *निकाली* राग है। यहाँ पर महात्माओं को तो *निकाली* द्वेष भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मुझे अभी तक यह ठीक से समझ में नहीं आया कि द्वेष में से राग होता है। बच्चे को देखकर सब से पहले तो राग ही होता है न हमें।

दादाश्री : जहाँ द्वेष हुआ हो वहीं पर राग होता है, नहीं तो राग हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : पूर्व जन्म के किसी कर्म के कारण द्वेष हुआ होगा?

दादाश्री : उसी के परिणाम स्वरूप यह राग होता है। उस पर बहुत ही द्वेष रहा होगा न तो इस बार बेटे के यहाँ बेटा बनकर गोदी में खेलने आता है और फिर हम उसे चूमते हैं। 'अरे भाई, यह तो पसंद नहीं था न, तो क्यों चूम रहा है?'

राग में से द्वेष, द्वेष में से राग

क्लेश का कारण द्वेष है। अतिशय राग हो जाए तब नापसंदगी हो जाती है। कुछ हद तक का परिचय राग में परिणामित होता है और 'रिज पोइन्ट' आने के बाद जब आगे बढ़ते हैं तो द्वेष में परिणामित होता है। जब द्वेष होता है, उसी समय राग के कारणों का सेवन होता है और इन सभी की जड़ में जो राग-द्वेष हैं, वे 'इफेक्ट' हैं और जो अज्ञान है, वह 'कॉज़' है!

प्रश्नकर्ता : एक जगह आप्तवाणी में पढ़ा है कि 'राग से द्वेष के बीज डलते हैं और द्वेष से राग के बीज डलते हैं', यह ज़रा समझाइए। ऐसा कैसे होता है?

दादाश्री : क्यों? नहीं तो क्या लगता है आपको?

प्रश्नकर्ता : द्वेष में से राग, बात समझ में आती है लेकिन राग में से द्वेष समझ में नहीं आ रहा।

दादाश्री : क्या समझ में आया 'द्वेष में से राग' में?

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा था कि मुझे इनका चेहरा भी नहीं देखना है और फिर वही पुत्र के रूप में पैदा होता है।

दादाश्री : तब चूमता रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसका अर्थ यही हुआ न कि द्वेष में से राग उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : दोनों आमने-सामने ही हैं। राग, द्वेष को उत्पन्न करता है और द्वेष, राग को उत्पन्न करता है। वीतरागों को ये स्पर्श नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : राग में से द्वेष कैसे उत्पन्न होता है? वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : आपको बहुत राग हो लेकिन फिर भी जब उसकी अति हो जाती है तब द्वेष होने लगता है।

प्रश्नकर्ता : 'अति होने से द्वेष होता है' यह एक सिद्धांत हुआ लेकिन उस सिद्धांत को उदाहरण देकर समझाइए न।

दादाश्री : रोज़ घर में कलह है, उसका कारण यही है। उसका कारण राग है। उसकी जब अति हो जाती है तब द्वेष होता है। राग करने के परिणाम स्वरूप हर रोज़ यह द्वेष होता है।

प्रश्नकर्ता : एक स्त्री को अपने पति के प्रति बहुत ही राग हो तो फिर उनके बीच तकरार होगी?

दादाश्री : हाँ, फिर यदि अगर वह कभी कहीं बाहर जाए और नहीं आ पाए तो चिढ़ती रहेगी। वीतराग को कुछ भी नहीं होता। राग वालों के बीच झगड़े होते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुत राग हो तो होते हैं, वह बात सही है।

दादाश्री : कम हो तब भी होता है यह तो।

प्रश्नकर्ता : अगर कम है तो थोड़ा बहुत होता है जबकि उसमें ज़्यादा होता है।

दादाश्री : लेकिन होता ज़रूर है। बच्चे पर बहुत राग था, इकलौता बेटा था, जब उसके पिता जी छ: महीने बाद मुंबई से आए तो बेटा पापा जी, पापा जी कहने लगा तो उन्होंने उसे एकदम गोद में उठा लिया। उठाकर उसे ऐसा दबाया कि बच्चा बहुत दब गया। तब उसने काट लिया। अतिरेक से बिगड़ जाता है सभी कुछ। उसकी हद सीख लेनी चाहिए। सही अनुपात में (बेलेन्स) करते-करते वीतराग होते जाएँगे। धीरे-धीरे अनुपात (लिमिट) में लाते-लाते वीतराग हो सकते हैं। बच्चा काट लेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, काट लेगा।

दादाश्री : वह सही था या बच्चा सही था?

प्रश्नकर्ता : बच्चे ने सही ही किया। हाँ, ठीक है।

दादाश्री : फिर भी ये बाप बार-बार दबाते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुत राग किया तो उसमें उस बच्चे को द्वेष हो गया।

दादाश्री : नहीं, बहुत राग हुआ इसलिए द्वेष हुआ। फिर जब उसने काट खाया तो पिता को द्वेष हो गया। बेटे को उतारकर मारा। तब भी वह बाप समझा नहीं। बेटे को ज़्यादा दबाया। वह तो ऐसा समझा कि मैंने प्रेम किया, फिर भी इसने काट खाया!

ऐसी है यह सारी दुनिया, अंधे लोग अंधेरे में चल रहे हैं लेकिन क्या हो सकता है? अत: मैंने जो चश्मे दिए हैं, उन्हें पहनकर चलना आराम से, मज़े से। चश्मे तो अच्छे हैं, ठोकर नहीं लगती न?

दुनिया को जो बातें कभी भी स्पष्ट नहीं हो सकती थीं, वैसा स्पष्टीकरण दिया है मैंने। छोटी से छोटी बात का।

अक्रम विज्ञान ने बनाया वीतद्वेष

सिर्फ 'वीतराग' ही कहा गया है। अपने यहाँ पर ज्ञान देते ही सब से पहले द्वेष चला जाता है, हर किसी का। कोई गालियाँ दे तो भी उसके साथ समभाव से *निकाल* करता है लेकिन द्वेष नहीं करता। क्या इनके साथ आपको ऐसा कुछ अनुभव हुआ है? पूरा-पूरा अनुभव हुआ है।

प्रश्नकर्ता : निरंतर अनुभव होता है।

दादाश्री : गालियाँ देते हैं तब भी! वर्ना गाली का तो क्या परिणाम आता है? वह गालियाँ दे तब क्या होता है? द्वेष होता है या राग?

प्रश्नकर्ता : द्वेष ही होता है। इस ज्ञान के बाद तो जहाँ पर द्वेष करने योग्य जगह हो वहाँ पर भी अब द्वेष नहीं होता।

दादाश्री : द्वेष करने योग्य व्यक्ति के घर पर छोड़ दिया जाए तब भी अगर द्वेष नहीं हो, तब समझना कि यह वीतराग बनने लायक हो गया!

द्वेष करने की जगह पर द्वेष होने लगे तो, वह तो मीनिंगलेस चीज़ है। आपको अब पहले जैसा द्वेष नहीं होता न किसी जगह पर?

प्रश्नकर्ता : एक जगह पर होता है।

दादाश्री : एक जगह में हर्ज नहीं। एक जगह हो तब तो वह मुझे सौंप देना। लेकिन बाकी सभी जगह पर, पूरी दुनिया में किसी भी जगह पर द्वेष नहीं होता न? एक जगह पर आपको जो होता है, वह तो आपकी दृष्टि की भूल है, समझने में भूल है। वास्तव में तो वहाँ पर भी नहीं होता और बाकी जगहों पर नहीं होता है न? अत: किसी भी जगह पर द्वेष नहीं होता है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कहीं पर भी नहीं।

दादाश्री : मोटर में आपके साथ चार लोग बैठे हुए हों और उनमें से एक भाई आपसे कहे कि, 'पाँच मिनट दर्शन करके आता हूँ', तो आप चार लोग बैठे-बैठे, 'यह गया', उसे गालियाँ देते हो? क्या करते हो आप?

प्रश्नकर्ता : वह तो जो संयोग आया, उसे देखना है। अतः उसमें द्वेष तो होगा ही नहीं न हमें।

दादाश्री : नहीं, लेकिन आप क्या करोगे? समभाव से *निकाल* करोगे? फिर उन पर द्वेष नहीं करोगे न? आधा-पौना घंटा हो जाए तब भी?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तब भी द्वेष नहीं होगा।

दादाश्री : वही! आपको वीतद्वेष बना दिया है।

अतः मैंने आपको कौन से ज्ञान पर रख दिया है? आपका द्वेष बिल्कुल निकल गया है। अर्थात् मैंने आपके राग को नहीं रोका है। मैंने आपसे कहा है, 'हाफूस के आम, रस-रोटी वगैरह सब खाना-पीना। कपड़े पहनना, सिनेमा देखने जाना!' क्यों कहा है? आपको उस पर बैर नहीं है इसलिए। मैंने आपका द्वेष बंद करवा दिया है इसलिए पूरे दिन आप संयम में रहते हो। इस द्वेष के कारण ही सारा असंयम है। पूरे दिन राग नहीं रह सकता इंसान को, द्वेष ही रहता है!

अतः ऐसा है न, यदि द्वेष का परिणाम कम हो जाए न, तो राग रहने में हर्ज नहीं है। अभी आपको वीतद्वेष बनाने के बाद छोड़ दिया है। फिर भी आपको कोई वीतराग नहीं कहेगा। फिर भी आपको कहाँ तक की प्राप्ति हो गई है? वीतद्वेष हो गए हो। आपके आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो गए हैं। ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान, द्वेष हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान द्वेष कहलाते हैं या राग कहलाते हैं? द्वेष हैं ये तो। जहाँ पर राग है, वहाँ पर क्या रौद्रध्यान हो सकता है? जब राग होता है उस समय रौद्रध्यान नहीं हो सकता। जहाँ द्वेष है, वहीं पर रौद्रध्यान होता है।

वीतद्वेष क्यों नहीं?

वीतद्वेष हो गए हो लेकिन वीतराग नहीं हुए हो न! उसके बाद यह राग जाएगा। अब यह राग किस तरह से जाएगा? ऐसा है न, कड़वा छोड़ देते हो और कड़वे पर आप द्वेष छोड़ देते हो लेकिन मीठा छोड़ने में आपको देर लगेगी और उसके प्रति जो राग है, उसे जाने में भी देर लगेगी। कड़वा छोड़ देना हर किसी को आता है और मीठा छोड़ना?

प्रश्नकर्ता : उसमें देर लगती है। ठीक है।

दादाश्री : अब इसीलिए ऐसा कहा है कि कड़वा छूट गया है। वही सब से बड़ा जोखिम था, द्वेष का।

प्रश्नकर्ता : अतः मूलतः द्वेष में से उत्पन्न हुआ है?

दादाश्री : मूलतः द्वेष में से ही उत्पन्न हुआ है यह सब और उससे भी आगे जाएँ तो बैर में से उत्पन्न हुआ है। अतः मैत्री हो जाएगी तब काम होगा, वर्ना जब तक बैर रहेगा, तब तक द्वेष बाँधेगा। चौबीस तीर्थंकरों की इतनी सी, यह एक ही बात अगर समझ जाए तो जगत् का कल्याण हो जाएगा। यही एक बात, चौबीस तीर्थंकरों की कि, 'वीतद्वेष बनो!'

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ी बात है।

दादाश्री : हाँ, बहुत गहरी बात है, कभी-कभी ही ऐसी बात निकल जाती है। वीतद्वेष और वीतराग! वीतद्वेष शब्द तो दुनिया ने सुना ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : और जब जाता है तब भी पहले द्वेष जाता है और उसके बाद राग जाता है।

दादाश्री : हाँ, पहले द्वेष जाता है। पहले द्वेष जाना ही चाहिए। अगर वह नहीं जाएगा तो फिर मोक्ष नहीं होगा। चाहे कितने ही राग खत्म करोगे तो भी कुछ बदलेगा नहीं।

'मैं चंदू हूँ' में राग, तो स्वरूप में द्वेष

'मैं चंदूलाल हूँ', वही आरोपित जगह पर राग है और बाकी सभी जगह पर द्वेष है यानी कि स्वरूप के प्रति द्वेष है, एक तरफ राग हो तो उसके दूसरी तरफ सामने वाले कोने पर द्वेष रहता ही है। हम स्वरूप का भान करवाते हैं, शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) दे देते हैं इसलिए उसी क्षण वे वीतद्वेष स्थिति में आ जाता है और जैसे-जैसे आगे बढ़ता है वैसे-वैसे वीतराग होता जाता है। वीतराग अर्थात् मूल जगह का, स्वरूप का ज्ञान-दर्शन।

बने वीतद्वेष ज्ञान मिलते ही

प्रश्नकर्ता : ये जो वीतराग हैं, उन्हें राग नहीं होता लेकिन आपके प्रति हमें राग है।

दादाश्री : मेरे प्रति राग रखने में हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए यहाँ आने का मन हो जाता है।

दादाश्री : मेरे प्रति तो राग रहेगा ही।

प्रश्नकर्ता : तो वीतराग का मतलब क्या है?

दादाश्री : वीतराग अर्थात् वास्तव में देखा जाए तो... ऐसा कहना चाहिए कि वीतराग-द्वेष! लेकिन वीतराग क्यों कहते हैं? तो वह इसलिए कि उन्हें जब आत्मा की जागृति होती है, सम्यक् दर्शन होता है, क्षायक सम्यक् दर्शन, उस समय वे वीतद्वेष तो हो ही जाते हैं। हम जब आपको ज्ञान देते हैं न, तब वीतद्वेष अर्थात् आपमें से द्वेष नाम की चीज़ निकल जाती है।

द्वेष चला जाता है। अत: क्रोध होने पर वह आपको अच्छा नहीं लगता। किसी के प्रति तिरस्कार होता है तो वह अच्छा नहीं लगता। वह सब, जिसे द्वेष कहा जाता है, जिसे तिरस्कार कहते हैं, वह नहीं होता। अत: वीतद्वेष तो हो चुके हो।

वीतद्वेष के बाद बचा डिस्चार्ज राग

प्रश्नकर्ता : 'राग हो तो बाद में द्वेष होता है। राग लोभ का पर्याय है और सब से अंत में जाता है इसीलिए ऐसा भी हो सकता है कि राग हो लेकिन द्वेष न रहे, लेकिन जहाँ पर राग नहीं है वहाँ पर द्वेष नहीं है। राग मुख्य है, उसका क्षय होने पर संपूर्ण आत्म स्वरूप अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है', यह समझाइए।

दादाश्री : द्वेष का स्वभाव कड़वा है इसलिए कड़वा भाव छूट जाता है और राग मीठा है इसलिए रह जाता है। जो कड़वा है वह अच्छा नहीं लगता लेकिन अब एक बार घुस गया है तो वह कर भी क्या सकता है? लेकिन जब ज्ञान मिलता है तब या फिर उसकी दृष्टि बदल जाए, आत्म दृष्टि हो जाए तब फिर द्वेष छूट जाता है। आत्म दृष्टि होने से द्वेष खत्म हो जाता है क्योंकि वह कड़वा है। यदि मीठा होता तो खत्म ही नहीं होने देता उसे! अत: राग अंत तक रहता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप जब यह ज्ञान देते हैं तब ये जो राग और द्वेष हैं, उनमें से द्वेष तो उसी क्षण खत्म हो जाता है। ऐसा कैसे होता है?

दादाश्री : वह द्वेष पहले ही खत्म हो जाता है क्योंकि पापों का नाश हो जाता है। उसके बाद सिर्फ राग बचता है। वह राग भी धीरे-धीरे कम होता जाता है और वह राग भी डिस्चार्ज भाव से है, चार्ज भाव से नहीं है। धीरे-धीरे-धीरे कम होता जाता है और अंत में वीतराग कहलाता है। जब राग भी चला जाता है तब वीतराग कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि राग डिस्चार्ज के रूप में ही है तो फिर द्वेष भी डिस्चार्ज के रूप में रहता है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, द्वेष तो चला ही जाता है। अगर द्वेष रहे तो नए कर्म बंधेंगे। जब तक द्वेष रहता है तब तक चिंता होती है। यहाँ तो एक भी चिंता नहीं होती। उसका क्या कारण है कि द्वेष खत्म हो जाता है। पहले ही दिन!

प्रश्नकर्ता : पहले दिन नहीं, उसी क्षण खत्म हो जाता है।

दादाश्री : अतः वह उसी क्षण जितेन्द्रिय जिन बन जाता है। सभी इन्द्रियों को जीत लिया है इसलिए उसी क्षण जितेन्द्रिय जिन बन जाता है अर्थात् वीतद्वेष बन जाता है। सभी इन्द्रियों को जीत लेता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन द्वेष तो डिस्चार्ज भाव से रहेगा या नहीं?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : नहीं रहेगा। यों अनुभव से ऐसा दिखाई देता है कि जिन्हें हम अपना दुश्मन समझते थे उनके प्रति दुश्मनी नहीं रहती।

दादाश्री : रहती ही नहीं। वीतद्वेष हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपना द्वेष तो चला जाता है लेकिन सामने वाले का द्वेष भी चला जाए, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करते रहना चाहिए। द्वेष में से राग उत्पन्न हुआ। दोनों के बीच कारण-कार्य का संबंध है। अतः द्वेष नहीं होता। इसलिए सभी कारण बंद हो गए, वीतद्वेष!

प्रश्नकर्ता : फिर दादा, राग तो रहता है। स्त्री है, बच्चे हैं, ऑफिस है, नौकरी-धंधा है तो फिर राग तो रहा न? क्या वह राग डिस्चार्ज कहलाएगा?

दादाश्री : वह राग डिस्चार्ज के रूप में है। वास्तव में चार्ज के रूप में राग कहाँ पर रहता है, जब तक यह भान रहे कि 'मैं चंदूभाई हूँ', तब वास्तव में राग है। लेकिन ऐसा भान हुआ कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो उस क्षण से वास्तविक राग नहीं रहता, डिस्चार्ज के रूप में रहता है।

जिसका अटैक गया वह भगवान बन गया

धर्म तो किसे कहते हैं? किसी भी संयोगों में राग-द्वेष न हो, उसी को धर्म कहते हैं। भले ही राग हो लेकिन द्वेष तो होना ही नहीं चाहिए। जबकि वे तो (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) फुफकारते हैं।

इतना ही देख लेना है कि अटैक नहीं होता न और जब अटैक होने लगे तब मुझसे कह देना कि मुझे अटैक करने के विचार आ रहे हैं। वे विचार भले ही आएँ लेकिन वह तेरा खुद का अटैक नहीं है न? तो कहता है, 'नहीं, नहीं है'। तो फिर कोई बात नहीं।

शास्त्र कहते हैं कि अगर तेरे भाव में अटैक नहीं है तो तू महावीर ही है। जब से मेरे अटैक बंद हो गए, तभी से मैं अपने आपको महावीर ही मानता था। बस इतना ही कि मैं कहता नहीं था। 'जो भगवान ने बताया है, यह वही चीज़ होगी', मेरे पास अन्य कोई चीज़ ढूँढने को रहा ही नहीं। इस दुनिया में ऐसा व्यक्ति ढूँढ निकालो जिसने अटैक करना बंद कर दिया हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। ज़रा सा यों 'मेरे को', 'हम को' या 'हम का' की वजह से यहाँ से छूट नहीं सकता। 'हम को' टल जाएगा न तो पूरी दुनिया ही टल जाएगी। ऐसा कोई उपदेशक नहीं कि जो अटैक बंद कर सका हो।

राग-द्वेष के भोगवटों का अनोखा हिसाब

प्रश्नकर्ता : जिस पर राग हो, वही फिर द्वेष से भुगतना पड़ता है और जिस पर द्वेष है, वही फिर राग से भुगतना पड़ता है। ज़रा इस सूत्र को समझाइए।

दादाश्री : राग कभी भी यों ही तो नहीं हो जाता। राग तो, जब कोई झटका वगैरह लगे तब होता है। किसी मित्र के साथ किसी बात पर अनबन हो जाए, बोलचाल बंद हो जाए तो छः-बारह महीनों तक अगर बोलना बंद रहे तो बहुत राग होने लगता है उसमें और जब वापस उससे बोलना शुरू करते हैं तब वे लोग गले लग जाते हैं। अब द्वेष से बोलना बंद किया था और अब द्वेष में से इतना राग हो गया कि अंत में गले लगकर मित्रता की तो इतनी अधिक एकता हो जाती है कि पूछो मत! इसी प्रकार यह सारी दुनिया चल रही है।

जहाँ आपका हिसाब है वहीं पर आकर्षण होता है। राग किसे कहते हैं कि हम खुश होकर आकर्षण पैदा करते हैं। और यह राग नहीं

है। इसका क्या कारण है? आपकी इच्छा नहीं है फिर भी आकर्षण होता है। ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है, होता है।

दादाश्री : तो वह राग नहीं कहलाएगा। राग में तो खुद की इच्छा की वजह से होता है और अब खुद की इच्छा नहीं है। हमने यह ज्ञान दिया उसके बाद से इन सभी की पत्नियाँ हैं, पर वह बगैर इच्छा के होना चाहिए। जितना आकर्षण है सिर्फ उतना ही!

द्वेष विकर्षण है और राग आकर्षण है। आकर्षण-विकर्षण होते ही रहते हैं, वह *पुद्गल* का स्वभाव है। आत्म स्वभाव वैसा नहीं है।

यह है संपूर्ण विज्ञान

जब से ज्ञानीपुरुष से मिले, तभी से वीतद्वेष बना दिया है। उसके बाद जैसे-जैसे फाइलों का *निकाल* होगा तो वीतराग होते जाओगे और जिसकी सर्वस्व फाइलों का *निकाल* हो गया वह वीतराग हो गया। ऐसे ज्ञानीपुरुष संपूर्ण वीतराग होते हैं। ज़रा एक-दो अंश की कमी रहती है, बाकी संपूर्ण वीतराग!

जैसे-जैसे वीतरागता बढ़ती जाती है, उतनी ही राग-द्वेष रहितता आती जाती है और उतना ही हमें मोक्ष समझ में आता जाता है। पूर्ण दशा उत्पन्न होती जाती है। संपूर्ण वीतरागता, उसी को भगवान कहते हैं।

अपना यह तरीका पूर्णतः वैज्ञानिक है! संपूर्ण विज्ञान है यह तो! पूरा ही विज्ञान है। सताइस सालों से मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ वह संपूर्ण विज्ञान है। एक-एक शब्द विज्ञान है। विज्ञान को सिद्धांत कहा जाता है।

[2.4]

प्रशस्त राग

जो कभी भी भूला न जा सके, वह प्रशस्त राग

पहले वीतद्वेष बन जाते हैं उसके बाद वीतराग बनते हैं। वीतद्वेष उत्पन्न होने के बाद सिर्फ राग बचता है। राग बाद में ही जाता है, ऐसा उसका स्वभाव है क्योंकि जब आखिर में *पुद्गल* में से जब राग निकल जाता है तो वह ज्ञानीपुरुष पर आ जाता है। लेकिन वह राग भी कैसा? प्रशस्त राग। जिन ज्ञानी ने ज्ञान दिया उन ज्ञानी पर राग या फिर उन्होंने शास्त्र बताए हों तो शास्त्रों पर राग! अतः आत्मा से संबंधित जो साधन हैं, उन पर जो राग रहता है, वह प्रशस्त राग है। और वह राग धीरे-धीरे कम होते-होते अंत में जब खत्म हो जाता है तब वीतराग बन जाता है। जो राग ज्ञानीपुरुष और बाकी सब पर आ जाता है, अंत में वह भी निकालना तो पड़ेगा ही न कभी न कभी?

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा नहीं है दादा कि जहाँ राग होता है वहाँ पर द्वेष होता ही है?

दादाश्री : वह अगर पौद्गलिक राग होगा तो द्वेष होगा। इसे प्रशस्त राग कहा जाता है, इसमें उसे द्वेष नहीं रहता। प्रशस्त राग, वह द्वेष वाला नहीं होता। यह राग अद्भुत राग है और यही राग मोक्ष दिलवाता है। प्रशस्त राग तो ज्ञानीपुरुष के प्रति होता है।

प्रश्नकर्ता : वह राग नहीं अपितु प्रेम है।

दादाश्री : वह प्रेम भी प्रशस्त राग कहलाता है। वह यदि हो गया तो काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग का शब्दार्थ क्या है? वह समझाइए।

दादाश्री : वह तो बहुत उच्च प्रकार का राग है। वह ऐसा राग कहलाता है जिससे बंधन नहीं होता। जिसके फलस्वरूप बंधन नहीं आता। बाकी सभी प्रकार के राग से बंधन होता है। यह राग मुक्ति दिलवाता है।

दादा कभी भी भुलाए न जा सकें, वही है प्रशस्त राग। दादा कभी भी भुलाए न जा सकें, ऐसा होता है किसी को? उँगली उठाओ, देखते हैं। एक-दो-तीन... सभी को होता है ऐसा? क्या बात है? ये कभी भी भुलाए नहीं जा सकते। दादा को नहीं भुलाया तो वह आत्मा को न भुलाने के बराबर है क्योंकि ज्ञानीपुरुष ही खुद का आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : आपके पास न आएँ तो लगता है कि कुछ कमी है।

दादाश्री : जब तक खुद के आत्मा का स्पष्ट अनुभव नहीं है तब तक ज्ञानीपुरुष ही खुद का आत्मा है और उनके पास रहा तो उसमें सबकुछ आ जाएगा। बहुत आसान बात है न! मुश्किल नहीं है।

ज्ञानी के लिए बावरापन

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को देखते रहने से मुक्ति मिलती है, इसका मतलब क्या है?

दादाश्री : जिन्हें देखते हैं, उसी रूप होते जाते हैं। निरीक्षण करते रहने से उसी रूप होते जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : दूसरों को सामान्य रूप से देखते हैं तो उनमें शुद्धात्मा भाव दिखाई देता है। आपके लिए वह विचार ही नहीं आता। मन आपके शरीर पर ही चिपक जाता है।

दादाश्री : ये देह सहित पूर्ण शुद्धात्मा कहे जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : हमें आपके प्रति अत्यंत भाव हो जाता है तब आपके लिए बावरापन हो जाता है तो ऐसा करने से जो मूल वस्तु प्राप्त करनी है, वह तो एक तरफ नहीं रह जाएगी?

दादाश्री : नहीं, नहीं। बावरापन नहीं है। बावरापन आपको, खुद को समझ में आता है। खुद आत्मा है, फिर क्या बावरापन समझ में नहीं आएगा?

प्रश्नकर्ता : गौतम स्वामी के साथ क्यों ऐसा हुआ था?

दादाश्री : वह हुआ था लेकिन उसकी वजह से ज्ञान में विलंब हो सकता है लेकिन ज्ञान चला नहीं जाएगा। ज्ञान में विलंब हो सकता है लेकिन वह प्रशस्त राग कहलाता है। प्रशस्त राग का फल क्या है? वीतरागता। यह जो सांसारिक राग है न, उसका फल राग-द्वेष है।

अत: वीतद्वेष होने के बाद कौन सा राग बचता है? प्रशस्त राग बचता है। जो राग मोक्ष का प्रत्यक्ष कारण है। उसमें सांसारिक राग का छींटा तक नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रशस्त राग आसानी से खत्म हो जाता है?

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। अगर प्रशस्त राग न जाए तो भी हर्ज नहीं है क्योंकि वह मोक्ष दिलवाकर ही दम लेता है। अत: इस बारे में कोई चिंता नहीं करनी है। प्रशस्त राग, जैसा गौतम स्वामी को महावीर भगवान के प्रति था। वह अगर अभी नहीं हो रहा है तो कुछ समय बाद अपने आप ही विलय हो जाएगा, विलय होता ही रहेगा।

प्रश्नकर्ता : उससे तो उनका मोक्ष रुक गया, गौतम स्वामी का।

दादाश्री : उसे क्या 'रुकना' कहा जाएगा? छ: या बारह साल बाद होगा, पंद्रह साल बाद होगा, अगले जन्म में हो जाएगा। इस प्रशस्त राग का डर नहीं है, सांसारिक राग का डर है। प्रशस्त राग चाहे कितना भी हो, उसके प्रति भय रखने जैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग की वजह से केवलज्ञान नहीं हो सकता न?

दादाश्री : हमें केवलज्ञान की क्या जल्दी है? कहना, 'तुझे आना हो तो आना'। ऐसा है न, हम ट्रेन में बैठ गए हैं न! केवलज्ञान तो सब

से अंतिम स्टेशन है। अपने आप ही आएगा। उसकी क्या जल्दी है? केवलज्ञान तो हाथ में आ ही गया समझो, ऐसा है। जब से स्पष्ट वेदन हुआ न तभी से वह केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान नहीं लेकिन ज्ञान तो रुक जाएगा न?

दादाश्री : नहीं। ज्ञान तो नहीं रुकेगा। ज्ञान तो बल्कि बढ़ेगा। ऐसा है न कि ऐसा किसे होता है? बाहर बहुत ही उलझन में पड़ा हुआ कोई इंसान हो और, उसे जब ऐसा हो जाए तब फिर वे सब उलझनें सुलझ जाती हैं और एक ही दृष्टि हो जाती है। हर एक को ऐसा नहीं होता। जो बाहर दुनिया में बहुत डूब चुका है, बाहर बहुत जगहों पर उसका चित्त चिपका हुआ हो न तो जब यहाँ पर चिपकता है तो बाहर सभी जगह से उखड़ जाता है। अहितकारी नहीं है यह। इसे प्रशस्त राग कहा गया है। ज़्यादातर यह राग तो उत्पन्न ही नहीं होता। अगर हो जाए तो उत्तम कार्य करता है।

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञानी पर प्रशस्त राग के अलावा पौद्गलिक राग भी उत्पन्न हो सकता है?

दादाश्री : पौद्गलिक राग तो हमेशा उखड़ ही जाता है। वह राग चिपकता है, *पुद्गल* से चिपकता है लेकिन फिर उखड़ जाता है, अंत में फिर प्रशस्त राग के रूप में ही रहता है। ऐसा हुआ है, पहले भी हुआ ही है न? यह कोई नई चीज़ नहीं है।

ऐसा होता है लेकिन अंत में बाकी सभी जगहों से छूट जाता है। बाकी सभी जगह जो झाड़ियाँ होती हैं न सारी, उन सब में से छूट जाता है और एक ही जगह पर आ जाता है। इसलिए इसे लोगों ने सब से अच्छा साधन माना है, प्रशस्त राग को। बाकी सब झाड़ियाँ वगैरह सबकुछ उखड़ जाता है।

प्रशस्त राग, वह स्टेपिंग है

प्रशस्त राग अर्थात् मोक्ष दिलवाने वाला राग। स्टेप्स चढ़ाता है यह

राग। द्वेष को यों ही उड़ा देता है, फर्स्ट स्टेप से ही। अर्थात् सभी का हम पर राग है तो सही लेकिन वह प्रशस्त राग कहलाता है, वह सांसारिक राग नहीं है। उसमें सांसारिक भाव नहीं है, भौतिक नहीं है।

प्रशस्त राग और प्रशस्त मोह

यह प्रशस्त राग तो निरंतर रखने योग्य है। प्रशस्त अर्थात् ऐसा राग जो अहितकारी नहीं है, हितकारी है। ऐसा राग जिसकी ज्ञानियों ने प्रशंसा की है और अप्रशस्त अर्थात् अहितकारी, संसार में भटकाने वाला।

प्रश्नकर्ता : राग और प्रशस्त राग में क्या फर्क है?

दादाश्री : प्रशस्त राग मोक्ष में ले जाने वाला राग है और यह सांसारिक राग संसार में डुबाने वाला राग है। जो राग भौतिक सुख के लिए होता है, वह राग कहलाता है और भौतिक छोड़ने के लिए जो राग किया जाता है, वह प्रशस्त राग है।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग और प्रशस्त मोह में क्या फर्क है?

दादाश्री : प्रशस्त राग जा सकता है, धुल जाता है। मोह धुलने में ज़रा देर लगती है। राग चिपकाई हुई चीज़ है और मोह चिपकी हुई चीज़ है। फिर यह तो छूट जाता है, इस राग के बाद चिपचिपाहट नहीं रहती। क्या प्रशस्त राग में चिपचिपाहट है कहीं पर? सांसारिक राग गाढ़ होता है जबकि प्रशस्त राग गाढ़ नहीं होता।

ज्ञानी की भक्ति, वह शुद्ध लोभ

प्रश्नकर्ता : दादा के प्रति भक्ति के भाव होते हैं, अत्यंत भक्ति भाव आता है तो उसे किसमें रखेंगे? क्रोध-मान-माया-लोभ में से किसमें रखेंगे?

दादाश्री : यह लोभ में जाएगा। सिर्फ लोभ में ही।

प्रश्नकर्ता : वह प्रशस्त राग नहीं है, दादा? वह क्रोध-मान-माया-लोभ में कैसे आएगा? प्रशस्त राग हुआ है न महात्माओं को।

दादाश्री : तो लोभ ही है न?

प्रश्नकर्ता : लोभ! ठीक है।

दादाश्री : कपट वाला लोभ नहीं है। असल में जो राग होता है उसमें कपट और लोभ दोनों साथ में हैं। यह प्रशस्त राग तो सिर्फ लोभ ही है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष का लोभ?

दादाश्री : लोभ।

प्रश्नकर्ता : इन महात्माओं को जगत् कल्याण की भावना होती रहती है, अंदर जो ऐसा रहता है वह क्या है?

दादाश्री : इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि जिसका खुद का कल्याण हो जाता है, उसी को ऐसा विचार आता है। वर्ना किसी को ऐसा विचार आया ही नहीं इस दुनिया में। औरों को तो ऐसा विचार आएगा ही कैसे? अरे, उसके घर में ही बेहद झंझट होती है! सिर्फ कृपालुदेव को आए थे ऐसे विचार, अपने साधु-संन्यासियों को भी नहीं। क्योंकि वे लोग अपने शिष्यों से ही परेशान हो चुके हैं। क्या करें?

प्रश्नकर्ता : यह जो जगत् कल्याण का भाव होता है, वह भी लोभ कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, वह भी लोभ है न। एक प्रकार का राग है न, प्रशस्त राग। जिसका खुद का कल्याण हो चुका है, वह ऐसा सब खोजता है। अब ये लड़के, सभी ब्रह्मचारी पूरे दिन यही करते हैं। ओहोहो... ऐसे लोग तो हैं ही नहीं। लोग आफरीन हो जाते हैं उन्हें देखकर क्योंकि ये वे हैं जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिए, जिन्हें कुछ भी लाभ नहीं उठाना!

प्रश्नकर्ता : दादा! तो अभी अगर इन महात्माओं को ऐसा लोभ है तो वह अच्छा है न? यह प्रशस्त राग वाला लोभ?

दादाश्री : यह लोभ करने से, बाकी सभी में से आपकी वृत्तियाँ उठ जाएँगी और वृत्तियाँ एक ही जगह पर चिपक जाएँगी। दादा पर

चिपक जाएँगी तो दादा अगले जन्म में काम आएँगे। उसमें क्या बिगड़ जाएगा! अतः वे वृत्तियाँ उठ जाएँगी, वृत्तियाँ दूसरी जगह पर बहुत नहीं जाएँगी। न जाएँ तो बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग होने पर दूसरी सभी वृत्तियाँ बिल्कुल टूट जाती हैं?

दादाश्री : टूट जाती हैं इसलिए हम कहते हैं न कि प्रशस्त राग करना भाई और सिर्फ वही एक राग बिल्कुल खुले तौर पर करना भाई! उसमें हर्ज नहीं है।

अगर ऐसे उपकारी पर प्रशस्त राग नहीं होगा तो कहाँ पर होगा? गौतम स्वामी को भगवान पर प्रशस्त राग क्यों था, क्योंकि भगवान महावीर का उपकार था। ज़बरदस्त उपकार था। उन्हें बुलाकर मोक्षमार्ग दिया था। गणधर पद दिया। फिर भगवान ने यह राग छुड़वाने के लिए उन्हें बाहर भेज दिया। वह उपकार था। फिर अंदर लगा कि यह इतना बड़ा राग अंदर घुस गया है। 'तू प्रमाद छोड़! छोड़!' फिर भगवान ने चमत्कार किया, बाहर भेज दिया और फिर उनका (महावीर भगवान का) निर्वाण हो गया। तब गौतम स्वामी को तुरंत ही ऐसा लगा कि "अरे! उन्हें अंदर धक्का लगा कि 'भगवान ने ऐसा किया!' उन्हें ऐसा लगा कि क्या भगवान ऐसा कार्य करें..." फिर जब लगा कि 'भगवान तो ऐसी भूल नहीं कर सकते'। यह तो, मुझसे भूल हो रही है। जाँच की तो पता चला कि 'ओहोहो! वे तो वीतराग थे और यह राग तो मुझे ही है इसलिए भगवान मेरे इस राग को निकालने के लिए कहकर गए हैं। फिर उन्हें केवलज्ञान हो गया, केवलज्ञान प्रकट हो गया। इसी वजह से रुका हुआ था।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारा यह प्रशस्त राग भी अंतिम घड़ी में चला जाएगा न? आखिर में चला जाएगा न?

दादाश्री : वहाँ पर छूट जाएगा। वहाँ पर सीमंधर स्वामी के दर्शन करते ही पूरा उखड़ जाएगा। यह तो ऐसा है कि अगर यहाँ पर इससे उच्च दर्शन करने को मिल जाएँ तो अभी भी उखड़ सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सीमंधर स्वामी के पास जाने के लिए तो हमें इस राग को चिपकाकर रखना पड़ेगा न?

दादाश्री : वह तो चिपका ही रहेगा। इसे उखाड़ने जाओगे तो भी नहीं उखड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : बाद में जब वहाँ सीमंधर स्वामी के पास जाएँगे तब भले ही उखड़ जाए।

दादाश्री : अपने आप उखड़ जाएगा। उससे आपको कोई लेना-देना नहीं है। बाहरी (राग) उखड़ जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर चिपकेगा तो फिर बाहरी उखड़ ही जाएगा।

दादाश्री : बाहरी चिपका रहेगा न तो फिर वापस एक जन्म लेने के लिए आना पड़ेगा। उसकी वजह से हम चूक जाएँगे!

भगवान ने भी प्रशंसा की है प्रशस्त राग की

प्रश्नकर्ता : अतः दादा पर जो राग हो जाता है तो वह राग तो ज़रूरी है।

दादाश्री : वह तो होगा ही न! वह राग तो काम का है। वह राग तो निरालंब होने तक काम का है। वह अवलंबन है, अंतिम और जब यहाँ पर यह राग होगा तब दूसरी जगह पर बंद हो जाएगा। एक ही जगह पर रह सकता है इंसान। यहाँ पर है तो वहाँ पर नहीं हो सकता, और वहाँ पर है तो यहाँ पर नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा ही होता है। ऐसा ही हुआ है अब तो। यहाँ पर राग हो गया है इसलिए बाकी का सारा राग खत्म ही हो गया है।

दादाश्री : इसलिए भगवान ने भी इस प्रशस्त राग की प्रशंसा की है क्योंकि इससे बाकी के सब राग खत्म हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन फिर भी व्यवहार में रहते हैं तो ऐसा लगता है कि कोई हमें खींच रहा है, खिंचना पड़ता है।

दादाश्री : खिंचने का कोई अर्थ नहीं है। वह *निकाली* चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन पहले राग था न वहाँ पर।

दादाश्री : खत्म हो गया। इसलिए अब आपको लगता है कि गले पड़ गया है। मान देते हैं तो भी भार जैसा लगता है।

प्रश्नकर्ता : हं... ऐसा ही लगता है।

दादाश्री : मान देते हैं तब भी अच्छा नहीं लगता अब तो। चंदूभाई को, 'चंदूभाई साहब, हमारे यहाँ पधारिए, पधारिए' तो भी आपको अंदर अच्छा नहीं लगता। कहते हैं, 'अरे, वापस यह क्या दखल? और पहले जो मीठा लगता था, वही अब अच्छा नहीं लगता'।

वीतराग के प्रति प्रस्थान

प्रश्नकर्ता : राग से क्या होता है?

दादाश्री : मूर्च्छा आ जाती है। मूर्च्छा, मूर्छित! राग का फल मूर्च्छा है और द्वेष का फल भय। जब ये दोनों चले जाएँगे तब वीतराग हो जाएगा। तब तक वीतराग नहीं हो सकता। अपने महात्मा वीतराग होने की तैयारी कर रहे हैं। कोई पूछे कि इनमें से कुछ हो चुके हैं? तो कहेंगे, 'हाँ हो चुके हैं। वीतद्वेष हो चुके हैं'।

अब वीतराग बनना है। दो था, उनमें से अब एक कम हो गया। तो कहते हैं, 'वीतद्वेष बन जाने के बाद राग कहाँ रहा?' तो कहते हैं 'ज्ञानी पर राग होता है। ज्ञानी पर, महात्माओं पर, तो इस संसार पर से राग उठ गया और यहाँ घुस गया लेकिन यह राग प्रशस्त राग कहलाता है'।

यह प्रशस्त राग वीतरागता का कारण है। सिर्फ यही एक राग ऐसा है जो वीतराग बनाता है। अपने इन सभी महात्माओं पर आपको राग है या नहीं है?

प्रश्नकर्ता : है।

दादाश्री : जो ज्ञानीपुरुष पर होता है, महात्माओं पर होता है, वह राग हितकारी है। उस प्रशस्त राग का फल क्या है? 'वीतराग'। इसी का फल आएगा। यों ही, बाकी कुछ नहीं करना है, इसी का फल। हमने बीज बोया है, मक्की का दाना बोया, पानी डाला, वह सब डाला फिर भुट्टा अपने आप लगता है या उसमें हमें बनाना पड़ता है?

ज्ञानी ही तेरा आत्मा

प्रशस्त राग अर्थात् सर्व दुःखों से मुक्त करवाने वाला राग। सर्व दुःखों का, सांसारिक दुःखों का अभाव करवाने वाला वह राग! आपका द्वेष छूट गया है लेकिन आपका राग नहीं छूटा है। वह राग जो सभी जगह चिपका हुआ है न, वह वहाँ से मुझ पर आ जाता है। वह राग दुःखदाई लगता है इसलिए कहता है, 'दादा पर जो राग है, वह?' वह तो प्रशस्त राग कहलाता है। जो राग प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है! अगर ज्ञानीपुरुष पर राग हो जाए तो अच्छा है न! फिर सारी झंझट छूट जाएगी!

और कृपालुदेव ने वापस इसका ताल बिठा दिया कि 'सत्पुरुष ही तेरा आत्मा है'। अर्थात् यह पानी भी वहीं पर जाता है! सभी तरह से ताल मिल जाते हैं!

ज्ञान मिलते ही दादा पर राग

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा है न कि गौतम स्वामी का केवलज्ञान प्रशस्त राग की वजह से ही रुक गया था!

दादाश्री : हाँ। और नहीं तो क्या? उस राग की वजह से रुक जाए तो हर्ज नहीं है। पाँच जन्मों तक उस राग की वजह से रुक जाए तो भी हर्ज नहीं है। इस राग जैसा और कोई राग है ही नहीं दुनिया में। फिर संसार के दूसरे सारे भूत नहीं घुसते न! और यह राग तो बहुत हितकारी है लेकिन वह राग (किसी को) होता ही नहीं है न! इसका होना मुश्किल है!! वह तो, यह अक्रम विज्ञान है, इसलिए पहले एकदम से ठंडक हो

जाती है इसलिए तुरंत ही दादा पर राग हो जाता है, नहीं तो राग होगा ही नहीं। उसको बिठा-बिठाकर चिपकाएँ तो भी नहीं चिपकेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके पास आने के बाद लगभग कई लोगों को ऐसा अनुभव होता है। अंदर शांति हो जाती है इसलिए फिर राग हो जाता है।

दादाश्री : शांति होने पर हमेशा राग हो ही जाता है। संसार में भी जो सारा राग हो जाता है न, वह शांति की वजह से ही होता है लेकिन वह शांति आसक्ति वाली शांति है। वह कुछ समय तक रहने के बाद फिर चली जाती है। तब फिर से झगड़ता है। जबकि यह जो राग है उसमें अन्य कुछ भी नहीं है न! यह तो आश्चर्य है इस काल का। यदि समझ जाए तो काम निकाल लेगा और अगर आड़ा चले तो उल्टा भी हो सकता है। किसी भी काल में प्रशस्त राग हुआ ही नहीं न! यदि हुआ होता तो आज यह दशा ही नहीं होती न!

प्रशस्त राग ही इस काल में मोक्ष

यह जो प्रशस्त राग है, वह वीतद्वेष कहलाता है लेकिन वीतराग नहीं कहलाता। वीतराग तो, जब यह प्रशस्त राग भी खत्म हो जाएगा उसके बाद में आएगा। प्रशस्त राग तो इस काल में बहुत हितकारी है। यह प्रशस्त राग रहे न तो समझना कि अपना मोक्ष हो गया क्योंकि यह सभी रागों को तोड़ देता है। बाहर के सभी मौज-मज़े, सभी रागों को तोड़ देता है यह राग। अत: यह जो प्रशस्त राग उत्पन्न हुआ है, इसे इस काल में मोक्ष कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग का कार्य क्या है?

दादाश्री : प्रशस्त राग दूसरी जगहों से, विनाशी चीज़ों पर से राग उठा देता है और जो अविनाशी तत्त्व प्रकट हुआ है उस पर अर्थात् ज्ञानीपुरुष पर राग होने से उसका जल्दी हल आ जाता है।

प्रशस्त राग होने के बाद, यह राग वापस उखड़ जाता है। यह राग होने के बाद वापस उखाड़ देना है। चूल्हा जलाकर, खाना बनाने के बाद बुझा देना है। खाना बन जाने के बाद बुझाना नहीं पड़ता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बुझाना पड़ता है।

दादाश्री : तो कहेंगे 'अगर बुझाना था तो जलाया क्यों?' प्रशस्त राग बैठाया है न, तो उसे उतारना पड़ा। आपका बैठा नहीं है। आपको बैठाना है। बैठ जाए तो फिर बाहर का राग बंद हो जाएगा, खत्म हो जाएगा फिर यह राग होने के बाद वापस इसमें से निकालना है, खींच लेना है। यह हल ला देगा।

परमार्थ राग से मिलते हैं ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा है न, मैंने पहले प्रश्न पूछा था कि 'अगले जन्म में भी ज्ञानी मिलेंगे?' आपने कहा था 'ज़रूर मिलेंगे'। लेकिन दादा तो ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी तो दस लाख सालों में एक बार आते हैं। तो फिर अगले जन्म में कहाँ से मिलेंगे ज्ञानी?

दादाश्री : जिस-जिसने हिसाब बाँध लिया है उन्हें तो मिलेंगे ही न! जिन्होंने उनके साथ हिसाब बाँध लिया है वे। जहाँ राग किया वह छोड़ेगा क्या? मैं मना करूँ फिर भी छूटेगा नहीं और आप मना करोगे तो भी नहीं छूटेगा। इसलिए मैं कहता हूँ न, इसके लिए परेशान मत होना। घबराना नहीं।

प्रश्नकर्ता : दादा! तो क्या हम लोग पहले मिले होंगे या नहीं?

दादाश्री : हाँ, परमार्थिक राग और सांसारिक राग, इन दोनों के संबंध की वजह से मिले हैं। सांसारिक राग तो रहता ही है, लेकिन परमार्थ के लिए किया गया राग भी राग ही कहलाता है और उस राग के आधार पर परमार्थ पूर्ण होता है। राग नहीं होगा तो? अगर वीतराग हो चुके हो तो मेरे साथ रहकर आपका कोई काम पूरा नहीं होगा। अतः अंत में यह परमार्थ राग कहलाता है। यह प्रज्ञा का राग है। कभी भी बंधन नहीं आने देता और मुक्ति दिलवाता है।

[2.5]

वीतरागता

राग में वीतराग

ज्ञानियों का समभाव जगत् ने देखा ही नहीं है इस दूषमकाल में, पाँचवें आरे में। समभाव और राग में वीतराग। यह तो, इन्हें तो... वीतरागता में वीतराग। अरे भाई, ऐसा नहीं हो सकता, अगर राग में वीतरागता रहे तो वह वास्तविक वीतरागता है। लेकिन आप तो राग के बिना वीतरागता करने लगे। अरे भाई, बीज तो है नहीं। फिर आधार किसका? किसी आधार की ज़रूरत पड़ेगी या नहीं पड़ेगी? तो कहते हैं, 'सभी राग छोड़ दो' लेकिन फिर वीतरागता किस तरह लाओगे? राग तो अगर ज्ञानी पर आ जाए तो, प्रशस्त राग, वही मोक्ष में ले जाएगा। जो आपका दीवाना राग था, अप्रशस्त राग था, ज्ञानी से मिलने की वजह से वह प्रशस्त हो गया। वही मोक्ष में ले जाएगा। मोक्ष में जाने के लिए प्रशस्त राग की ज़रूरत है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : ज़रूरत है, ज़रूरत है।

दादाश्री : वही मुख्य ज़रूरत है इसीलिए तो इन दादा पर तो सभी को ज़बरदस्त राग है। हाँ, भले ही रहे वह राग! उसमें हर्ज नहीं है। वह मोक्ष में ले जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा उसे, ज़बरदस्त की उपमा दी जा सकती है?

दादाश्री : कहा जा सकता है, कहा जा सकता है। इस काल में ऐसा कहना पड़ता है।

प्रशस्त राग की वजह से नहीं है वीतराग

इसीलिए तो ज्ञानी वीतराग कहलाते हैं। जहाँ बिल्कुल भी पौद्गलिक राग नहीं है, ऐसे वीतराग। पौद्गलिक राग-द्वेष नहीं रहे हैं। आप भी वीतराग कहलाओगे लेकिन अभी आपमें प्रशस्त राग है।

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान से प्रार्थना कीजिए कि इस जन्म में ज्ञानीपुरुष वीतराग न हो जाएँ। वे वीतराग हो जाएँगे तो किसी के हिस्से में नहीं आएँगे।

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है। होना संभव ही नहीं है! काल भी ऐसा है। वीतराग हो सकें, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इस काल में हुआ ही नहीं जा सकता?

दादाश्री : हुआ ही नहीं जा सकता। उसके लिए आपको सिफारिश नहीं करनी पड़ेगी।

प्रश्नकर्ता : तो फिर हमें चिंता करने की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : नहीं, चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। इस काल की हद ही ऐसी है कि संपूर्ण वीतराग नहीं हो सकते। हो ही नहीं सकते, संपूर्ण वीतराग।

समत्व की समालोचना

प्रश्नकर्ता : समत्व का अर्थ क्या है?

दादाश्री : वीतरागता! गालियाँ देने वाले पर द्वेष नहीं और मान देने वाले पर राग नहीं होता। कोई मान दे तो अच्छा लगता है। उसके लिए हम छूट देते हैं। उसे लाइक-डिसलाइक कहते हैं। और जो संपूर्ण वीतरागता है, वह अलग पद है। अब इसमें तो जब मान देते हैं तो अच्छा लगता है, राग नहीं होता। मान देने वाला जो होता है न, वह अच्छा लगता है। उसी को राग कहा जाता है। इसमें तो मान मिलने की अवस्था अच्छी लगती है।

प्रश्नकर्ता : पार्श्वनाथ भगवान की वीतरागता की बात है न कि धरणेन्द्र देव ने उनका रक्षण किया और कमठ ने उन पर उपसर्ग किए, तो भी भगवान की समदृष्टि अर्थात् दोनों पर एक सरीखा भाव। इस पर द्वेष नहीं और इस पर राग नहीं।

दादाश्री : कमठ पर जिन्हें बिल्कुल द्वेष नहीं और धरणेन्द्र पर जिन्हें राग नहीं, उपकारी के प्रति राग नहीं और जो भयंकर अपकारी है, उस पर किंचित्मात्र भी द्वेष नहीं।

लेकिन वीतरागों के पास उसका विवरण होता है कि यह इसके पुण्य कर्मों का उदय है अतः यह पुण्य कर्मों का उदय भोग रहा है। यह पाप कर्म का उदय है। यह पाप कर्म का उदय भुगत रहा है। वीतराग खुद वीतरागता में रहते हैं, जानते तो सभी कुछ हैं। वे ऐसे नहीं हैं कि उनके आसपास जो हो रहा है, उसे जानते न हों।

उदासीनता से शुरुआत

जो बदबू मारता है उस पर द्वेष होता है और जहाँ सुगंधि आती है उस पर राग होता है। ये जो दो दखल हुई हैं न, उसी से संसार खड़ा हो गया है। और उसमें इनमें से कुछ है ही नहीं। यह सारी सिर्फ संसार व्यवस्था है। यह पूरी समाज व्यवस्था है। अच्छा और बुरा, ऐसा और वैसा!

हर एक देखने की चीज़ को, ज्ञेय को देखते हैं वे। देखते हैं लेकिन राग-द्वेष नहीं होते। उसका कारण यह है कि ज्ञेय को ज्ञेय के रूप में ही देखते हैं। अच्छा और बुरा वहाँ पर है ही नहीं। अच्छा-बुरा वगैरह सब भ्रांति है।

हाँ, लोग गाय का गोबर हाथ में लेते हैं पर इंसान का नहीं लेते। यह भी गोबर ही है न! इसका क्या कारण है? तो वह यह है कि, उसे मन में लगता है कि, 'ओहोहो!' अर्थात् उसने खुद ने ही इन सब की कीमत लगाई है। खुद ने ही वैल्युएशन की है यह। कुदरत के घर में

ऐसा कुछ है ही नहीं। सुगंध हो या दुर्गंध हो, कुदरत के घर दोनों एक सरीखे हैं। वहाँ पर एक सरीखे ही हैं और यहाँ पर एक सरीखे नहीं हैं। वहाँ पर एक समान किस प्रकार से हैं? तो कहते हैं, सबकुछ ज्ञेय के रूप में है।

प्रश्नकर्ता : तो अगर ज्ञाता-दृष्टा हो जाएँ तो ज्ञेयों के प्रति आसानी से उदासीनता रहेगी?

दादाश्री : हाँ! वह तो स्वभाव से उदासीनता ही। उसका अन्य कोई गुण है ही नहीं! उदासीन ही है न! अहंकार सहित वीतरागता रहे तो वह है उदासीनता! उसे वीतरागता नहीं कहते क्योंकि अभी तक अहंकार का पॉइज़न है और यह बिना पॉइज़न का है इसलिए इसे वीतरागता कहते हैं।

अब क्रमिक मार्ग में इसे उदासीनता कहते हैं। अंतिम अवतार में वीतराग। जबकि यहाँ पर तो ज्ञान मिलते ही वीतराग। सिर्फ समझना ही है, करना कुछ भी नहीं है।

दादा देखें विशालता से और अनुभव करें ऐश्वर्य

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि सभी इन्द्रियाँ वीतराग ही हैं न?

दादाश्री : मतलब?

प्रश्नकर्ता : वीतराग नहीं, लेकिन उन्हें राग-द्वेष नहीं होते कोई। हमने आँखों से किसी चीज़ को देखा हो तो आँखों का गुण तो उन चीज़ों को दिखाने का ही है न?

दादाश्री : दिखाती हैं, बस। हम यहाँ पर एक दूरबीन में से देखें, तो वह दूरबीन बेचारी क्या करे? उस दूरबीन में से देखने वाले को राग है इसीलिए उस तरफ राग है। अर्थात् अगर आपमें अज्ञान है तो सभी कुछ उल्टा दिखाई देगा। इन्द्रिय बेचारी क्या करे? मुझे लोग कहते हैं

कि, 'दादा आपको दुनिया कैसी दिखाई देती है?', मैंने कहा, 'मुझे सूरज गिरा हुआ दिखाई देता है'। अरे पागल है क्या? कोई भान है? मुझे क्या तुझसे कुछ अलग तरह का दिखाई देता होगा? तुझे जो दिखाई देता है उसमें तुझे राग-द्वेष है और मुझे उसमें राग-द्वेष नहीं है। बस, इतना ही फर्क है। तुझे जो दिखाई देता है, वैसा ही मुझे दिखाई देता है।

और दूसरा, जो तुझे नहीं दिखाई देता, वैसा सब मुझे अनंत दिखाई देता है। वह मेरे ज्ञान की विशालता है और ऐश्वर्यपना है। लेकिन तुझे तेरे ऐश्वर्य के अनुसार दिखाई देता है। तेरी सीमा के अनुसार, कम्पाउन्ड के अनुसार। ऐश्वर्यपना अर्थात् कम्पाउन्ड। पूरा जगत् अपना कम्पाउन्ड बन जाए तो वह ऐश्वर्यपना है, पूर्ण!

वीतरागता कब और किस प्रकार से प्रकट होती है?

प्रश्नकर्ता : हम महात्माओं में संपूर्ण वीतरागता कब प्रकट होगी?

दादाश्री : एक से शुरू करके 100 तक लिखना शुरू करें तो क्या एकदम से 100 आ जाएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं आएगा।

दादाश्री : अर्थात् 20 लिखने के बाद फिर 21, 22, 23, 24... हमें यह देखना है कि आगे लिखा जा रहा है या नहीं। यानी वह तो पूर्ण हो जाएगा। वही पूर्ण कर रहा है। हमें पूर्ण करने की ज़रूरत नहीं है। वह स्पीड ही इसे पूर्ण करेगी।

सब से पहले यह देखना है कि राग-द्वेष कैसे कम हों। अब पल्टी खाई है उल्टेपने से सीधेपने में, अतः अब वीतरागता कैसे बढ़े, पूर्ण हो, उस तरफ दृष्टि गई। पहले राग-द्वेष कम करने की दृष्टि थी। पूरा जगत् राग-द्वेष कम करने के लिए ही झंझट करता है न! पूरे दिन कितना दुःख, कितनी चिंता, कितनी वरीज़! भयंकर त्रिविध ताप।

वीतरागता कैसी है आपमें? थोड़ी, ज़रा सी वीतरागता। एक अंश

भी वीतरागता हो तो उसे यह कहा जाएगा कि राग-द्वेष की सर्वांशता गई! एक अंश भी वीतरागता, अंदर राग-द्वेष के रस को सर्वांशरूप से खत्म कर देती है। उसमें राग-द्वेष दिखाई ज़रूर देते हैं, लेकिन अंदर रस (रुचि) नहीं रहता। उस वीतरागता को तो देखो।

प्रश्नकर्ता : आप जैसी वीतरागता महात्माओं में कब और कैसे उतरेगी?

दादाश्री : जैसे-जैसे मेरे टच में रहेंगे वैसे-वैसे। इसे रटकर नहीं सीखना है, देखकर सीखना है।

लोग आँखों के सामने देखते हैं। लोग, जीवमात्र आँखों में क्यों देखते हैं? तो कहते हैं, 'आँखों में सबकुछ पढ़ा जा सकता है। भाव! क्या भाव है, वह सारा ही पढ़ा जा सकता है'। अत: लोग समझ जाते हैं कि, 'इस भाई को घर में मत घुसने देना। इसकी आँखों के भाव अच्छे नहीं हैं'। इसी प्रकार ज्ञानी की आँखों में वीतरागता दिखाई देती है, किसी भी प्रकार का राग या द्वेष कुछ भी नहीं दिखाई देता। उनकी आँखों में साँप नहीं लोटते किसी प्रकार के। लक्ष्मी की भीख नहीं होती, ऐसा कुछ भी नहीं होता, सिर्फ वीतरागता होती है। देखते-देखते वह अपने में भी आ जाती है। और कुछ नहीं है इसमें।

यह तो मैं व्यापार की बात कर रहा हूँ कि एक बार मैंने एक व्यक्ति से कहा कि, 'इसमें करने का है क्या? इस न के बराबर चीज़ में तूने इतना टाइम बिगाड़ दिया'। तो कहने लगा, 'लेकिन मुझे किसी ने करके नहीं बताया। नहीं तो मैं जल्दी से कर लेता'। तब एक दिन मैंने करके बता दिया, तो दूसरे दिन उसने वह करके बता दिया। वर्ना दो महीनों से नहीं हो रहा था। तो उस काम की जो कला थी, वह दिखा दी। वह भी कला सीख गया और वह भी करने लगा।

अर्थात् इसमें यों थिअरेटिकल से कुछ नहीं बदलेगा। प्रैक्टिकली की ज़रूरत है। थिअरेटिकल तो सिर्फ जानने के लिए ही है। प्रैक्टिकली का मतलब क्या है? प्रैक्टिकल में तो ज्ञानीपुरुष को देखने से, उनके टच

में आने से सबकुछ प्राप्त हो जाता है। आसानी से प्राप्त हो जाता है। वह तो आपको मेरे उदय का अवसर देखने को नहीं मिला है। नहीं तो अगर मुझे कोई डाँटने वाला मिल जाए और आपको वह देखने को मिले, तब असल मज़ा आएगा!

वीतराग दृष्टि से वीतरागता

प्रश्नकर्ता : 'सबकुछ वीतराग दिखाई दे तो वह वीतराग हो जाएगा', तो अगर उसे सबकुछ वीतराग नहीं दिखाई देता तो इसका मतलब वह खुद अभी रागी-द्वेषी है?

दादाश्री : नहीं। वह रागी-द्वेषी नहीं है लेकिन वीतराग बनना है। लेकिन अभी तक उस स्थिति में आया नहीं है, वह दृष्टि आई नहीं है पूरी तरह से। पूरी दृष्टि नहीं खुली है।

प्रश्नकर्ता : तो उसकी कौन सी स्थिति कहलाएगी?

दादाश्री : वह कुछ समय बाद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो यह बात उन्हीं लोगों के लिए है न, जिनके पास यह ज्ञान है?

दादाश्री : हाँ। दूसरों के लिए नहीं।

प्रश्नकर्ता : दूसरों का कैसा होता है?

दादाश्री : दूसरों का तो यह चल ही रहा है! राग-द्वेष के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : उनके मिश्रचेतन को भी वीतराग कहा गया है।

दादाश्री : वह खुद पूरा ही वीतराग है। वीतराग है, ऐसा यदि समझ में आ जाए तो वह संपूर्ण वीतराग हो जाएगा, यहाँ इस दुनिया में।

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसा है कि हमें उसे वीतराग समझना है?

दादाश्री : हाँ, ऐसा यदि समझ में आ जाए तो वह संपूर्ण वीतराग बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा किस दृष्टि से समझ में आएगा?

दादाश्री : यह बात वैसी ही है लेकिन वह बात समझ में आनी चाहिए। यदि खुद संपूर्ण वीतराग हो जाएगा तो जगत् वीतराग दिखाई देगा। इस प्रकार दृष्टि परिवर्तन हो जाए तो काम ही हो जाएगा न!

500 गायें जा रही हों तो हमें वे सब एक जैसी ही लगती हैं न! वीतराग नहीं रहते क्या? एक सरीखी ही लगती हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, एक सरीखी ही लगती है।

दादाश्री : यह सारा झंझट तो हमें सिर्फ मनुष्यों के प्रति ही है न! और उसमें भी आप अमरीका वगैरह दूसरी सभी जगहों पर वीतराग ही हो न। यह सारी झंझट आपकी फाइलों तक ही है न। कहाँ-कहाँ झंझट है?

प्रश्नकर्ता : फाइलों के लिए ही।

दादाश्री : और फाइलें तो आपको हिसाब चुकाने के लिए ही मिली हैं और वे वीतराग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा कि, 'पूरा जगत् पूर्णतः निर्दोष है', वह...

दादाश्री : 'निर्दोष है', वह तो वीतराग रास्ता है लेकिन वीतरागता नहीं कहेंगे। वीतराग कहेंगे तो वह वीतरागों की विराधना कहलाएगी। वीतराग का अर्थ तो भगवान है। अतः निर्दोष कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने अभी जो कहा न कि इसमें रिकॉर्ड बोलती है, 'तुम चोर हो, चोर हो' तो दादा, ऐसा विचार आता है कि वास्तव में मैं क्या हूँ? ऐसा जानने की इच्छा होती है और अंदर उतरकर और ढूँढ निकालना है कि चोर है या नहीं, उसका पृथक्करण करने की इच्छा होती है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। चोर होगा तो भी हर्ज नहीं है या चोर नहीं है तो भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह वाक्य ऐसा हुआ न कि जगत् वीतराग दिखाई दे तो निबेड़ा आ जाएगा?

दादाश्री : जगत् वीतराग है ऐसा नहीं कह सकते। जगत् निर्दोष है, ऐसा कह सकते हैं। निर्दोष दिखाई देने लगता है यह जगत्।

प्रश्नकर्ता : यह सब जो दिखाई देता है, वे सब मिकेनिकल प्रक्रियाएँ हैं।

दादाश्री : वह समझने लगता है कि इसी को वीतराग कहते हैं न! ऐसा नहीं कहा है कि 'भाई ये टेपरिकॉर्डर बोल रहा है न!' सारी क्रियाएँ उसी जैसी हैं।

'जगत् निर्दोष है! भुगते उसी की भूल है!' यह सब क्या सूचित करता है? जगत् निर्दोष दिखाई दे तो ऐसा ही कहा जाएगा कि उसे वीतराग दिखाई दिया। वीतराग के सिवा अन्य कोई निर्दोष हो ही नहीं सकता। आपको समझ में आया क्या यह वाक्य?

प्रश्नकर्ता : हाँ। ठीक से समझ में आ रहा है।

'मैं' और 'मेरा' जाने पर वीतराग

दादाश्री : इस मिश्रचेतन में जो मैं पन है, मेरापन है उसे अगर निकाल दिया तो यह मिश्रचेतन वीतरागी हो जाएगा। मैं और मेरापन निकाल दिया तो वीतरागी बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह तो तभी हो सकता है न, जब यह ज्ञान हो?

दादाश्री : हाँ, लेकिन यों भी वीतरागी ही है लेकिन मैं और मेरेपन की वजह से ही राग-द्वेष हैं। यदि मैं और मेरापन का उपयोग नहीं करे, तब अगर यह ज्ञान नहीं होगा फिर भी वीतराग ही है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता है इसलिए एकाकार ही रहता है न, मैं पन-मेरापन...

दादाश्री : हाँ, फिर भी कहते हैं कि उपयोग न करे तो कुछ भी नहीं है। उपयोग करेंगे तो गॉन। मिश्रचेतन तो ऐसा ही है, वीतराग ही है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् सामने वाले के लिए वीतराग है। खुद के लिए यह कुछ अलग है? अतः सामने वाला व्यक्ति खुद के लिए वीतराग ही रहता है, ऐसा कहना चाहते हैं?

दादाश्री : नहीं! वह अपनी भी, पूरा वीतराग ही है। दखलंदाज़ी सिर्फ अहंकार और ममता दोनों की ही है। अगर ये दोनों नहीं होंगे तो कुछ है ही नहीं।

राग-द्वेष नहीं होंगे तो सहज रहेगा! प्रकृति सहज रूप से चलती रहेगी, बस।

प्रश्नकर्ता : इसमें ड्रामेटिक अहंकार और ममता भी हैं?

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। ड्रामेटिक अहंकार भी वीतराग कहलाता है। उसे नाटक की पिंगला बनने में राग भी नहीं है और द्वेष भी नहीं है। डिसाइडेड है इसलिए हो रहा है। वह राग-द्वेष नहीं है। इसीलिए जगत् निर्दोष माना जाता है न। मिश्रचेतन निर्दोष क्यों कहलाता है?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मिश्रचेतन में जो राग-द्वेष हैं, वे अगले जन्म का कारण हैं न? तो इस जन्म में तो वीतराग ही माना जा सकता है न?

दादाश्री : वह तो वीतराग ही है इसीलिए तो पूरे जगत् को निर्दोष देख सकता है।

प्रश्नकर्ता : खुद के अहंकार और ममता की दखल की वजह से वह रागी-द्वेषी हो जाए तो?

दादाश्री : वह अगर ऐसा हो जाता है तो उसे नुकसान है, किसी

और को क्या नुकसान? किसी और को क्या लेना-देना? जिसे होता है उसे नुकसान है, उसके लिए अगले जन्म का कारण है।

प्रश्नकर्ता : और उसके बावजूद भी अगर यह मशीनरी जो प्रवर्तना करती है, उसे वीतराग माना जाएगा?

दादाश्री : वीतराग ही है। ये आँखें भी वीतराग हैं, कान भी वीतराग हैं। कोई यदि गालियाँ दे तो कान विचलित नहीं होते, अंदर वाला विचलित होता है।

प्रश्नकर्ता : अंदर वाला मतलब कौन?

दादाश्री : अहंकार और ममता।

प्रश्नकर्ता : विचलता वीतरागता में नहीं आती? ऐसा है कि उस पर असर हो गया?

दादाश्री : विचलित चलेगी लेकिन वह सहज होनी चाहिए। विचलित भी चलेगी, मारा-मारी भी चलती रहे और वीतराग रहे। मारा-मारी भी कर सकता है, राग-द्वेष रहित। यदि यह ज्ञान है तो रह सकता है।

जलेबी वीतराग है, पॉइज़न भी वीतराग है, अमृत भी वीतराग है। सभी चीज़ें वीतराग हैं।

प्रश्नकर्ता : ये जो जीवित दिखाई देते हैं, वे सब?

दादाश्री : वे सब भी वीतराग हैं। इतना यदि समझ जाए तो काम हो जाएगा। यह समझकर इस व्यवहार में रहने वाले खुद तो वीतराग हो गए। इन सभी को वीतराग देखता है न! वीतराग का मतलब क्या है? हम क्या कहते हैं? वीतराग नहीं कहते, वीतराग कहना गुनाह है क्योंकि असल वीतराग के लिए इस वीतराग की वैल्यू नहीं है। अतः वीतराग नहीं कहते। हम क्या कहते हैं कि जीवमात्र, तमाम जीव निर्दोष ही हैं। वे दोषित दिखाई देते हैं, वही भ्रांति है। अतः उसे वीतराग नहीं

कह सकते। उससे वीतरागों की डिवेल्युएशन हो जाएगी। वीतराग नहीं कह सकते। वर्ना यदि ऐसा समझ जाएँ कि वीतराग हैं, तो हो चुका। बात ही खत्म!

यह टेपरिकॉर्ड अगर गालियाँ दे तो? रिकॉर्ड गालियाँ दे कि, 'चंदू तू चोर है, चंदू तू चोर है, चंदू तू चोर है' तो क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : रिकॉर्ड है इसलिए फिर हँसना आएगा।

दादाश्री : यह भी रिकॉर्ड ही है लेकिन तू मान बैठा है कि इसने कहा और कहने वाला भी मान बैठा है कि मैंने कहा। ऐसा है न, इन सब बातों का बहुत खुलासा करने जैसा नहीं है। अतिशय खुलासा करेंगे तो फिर वैराग्य आ जाएगा। क्या आ जाएगा?

प्रश्नकर्ता : वैराग्य लाने में बाकी क्या रखा है?

दादाश्री : कुछ भी बाकी नहीं रखा लेकिन फिर भी थोड़ा-बहुत बचा हो तो रहने देना है न!

आपको अभी रास्ते चलते अगर कोई कहे कि, 'आप नालायक हो, चोर हो, बदमाश हो', इस तरह से गालियाँ दे और आपको वीतरागता रहे तो जानना कि इस बारे में उस हद तक आप भगवान हो गए। जिस-जिस बारे में आप जीत गए, उस-उस बारे में आप भगवान बन गए। और यदि आपने जगत् को जीत लिया तो फिर पूर्ण भगवान बन गए। फिर किसी से भी मतभेद नहीं होगा।

मुक्त छोड़ दे तेरे शरीर को

सभी बातचीत वगैरह हों लेकिन राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। देह को मुक्त छोड़ दो जैसे हम लट्टू को घुमाते हैं और फिर वह अपने आप ही घूमता रहता है, खुला छोड़ दो। तब फिर राग-द्वेष नहीं होंगे न! 'मैं' और 'मेरा' चला जाएगा तो राग-द्वेष चले जाएँगे। 'मैं' और 'मेरा' के जाते ही वीतद्वेषी हो जाएगा। फिर वह जब समभाव से फाइलों का *निकाल* करेगा न, तब वह वीतराग हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : देह को मुक्त छोड़ देने का मतलब क्या है?

दादाश्री : इस लट्टू को फैंकने के बाद वह जैसे भी घूमे वह सही है। अब फिर से उस पर डोरी लपेटने की ज़रूरत नहीं है। फिर लट्टू वापस ऐसे घूमेगा। फिर उछलकर कूदेगा, फिर वापस एक जगह पर बैठ जाएगा, फिर ऐसे-ऐसे होगा। तब हम समझ जाएँगे कि अस्पताल की तरफ चला। अस्पताल से वापस आने पर सीधा हो जाता है। घात गई, ऐसा पता चलता है न?

प्रश्नकर्ता : फिर ज़रा उल्टा भी चलता है।

दादाश्री : हाँ, उल्टा भी चलता है। उसे कुछ कह नहीं सकते। लट्टू है!

प्रश्नकर्ता : किसी भी तरह राग-द्वेष रहित होना, वही वीतराग मार्ग है।

दादाश्री : किंचित्मात्र राग नहीं और किंचित्मात्र द्वेष भी नहीं। एकदम से नहीं हो लेकिन यदि ज्ञान मिलने के बाद ऐसी भावना करने से, यों करते-करते धीरे-धीरे ऐसा हो सकेगा, वर्ना नहीं हो सकेगा। लाख जन्मों में भी नहीं हो सकेगा।

यह *पुद्गल* क्या कहता है कि 'तू शुद्धात्मा बन गया है तो ऐसा मत मानना कि तू मुक्त हो गया। तूने मुझे बिगाड़ा था इसलिए अब तू हमें शुद्ध कर तो तू भी मुक्त और हम भी मुक्त'। तब पूछें, 'कैसे मुक्त करूँ?' तब वह कहता है, 'हम जो कुछ भी करें, उसे तू देख और कोई दखल मत करना। राग-द्वेष रहित देखता रह'।

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष रहित देखते रहना है?

दादाश्री : देखता रह, बस। तो हम मुक्त! राग-द्वेष से हम मैले हो चुके हैं, तेरे राग-द्वेष की वजह से! तेरी वीतरागता से हम मुक्त हो जाएँगे। परमाणु शुद्ध हो जाएँगे।

सम्यक् दर्शन और आत्मसाक्षात्कार

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन और आत्मसाक्षात्कार दोनों एक ही चीज़ हैं?

दादाश्री : हाँ एक ही। इनमें बिल्कुल भी फर्क नहीं है। सम्यक् दर्शन का मतलब साक्षात्कार ही है। जो भौतिक को देख रहे थे, उन्होंने इस अविनाशी को देखा। अभी तक भौतिक और विनाशी को देख रहे थे, उसी पर प्रेम था। इस पर प्रेम उत्पन्न हुआ तो अविनाशी को देखा। अविनाशी को देखा तो वीतराग हो गया।

प्रश्नकर्ता : यानी कि सम्यक् दर्शन और वीतराग दोनों के बीच में फर्क है?

दादाश्री : सम्यक् दर्शन वीतरागता की शुरुआत है, बिगिनिंग है। और फिर जितनी-जितनी वीतरागता उत्पन्न होती है, उतनी ही वह बढ़ती जाती है और संपूर्ण वीतरागता अंतिम पद है। संपूर्ण वीतरागता को केवलज्ञान कहा जाता है।

क्या प्रतिष्ठित आत्मा वीतराग बन सकता है?

प्रश्नकर्ता : तो जो जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है, उसका वर्तन, विचार और वाणी कैसे होते हैं?

दादाश्री : राग-द्वेष रहित होते हैं। वह गालियाँ दे तब भी राग-द्वेष नहीं होते। वह धौल लगाए तो भी राग-द्वेष नहीं होते। जबकि अज्ञानी अगर धौल नहीं लगाए तो भी उसे राग-द्वेष रहते हैं। अतः उनका वर्तन राग-द्वेष रहित होता है! भय रहित! निर्भयता होती है!

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा भी वीतराग बन सकता है?

दादाश्री : नहीं, वह पावर आत्मा है। वीतरागता के गुण आते हैं। वास्तव में वह वीतराग है नहीं। वीतरागता की पावर आ जाती है। महावीर भगवान में थी ही ना!

स्पष्ट परिभाषाएँ वीतरागता की

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर की वीतरागता अन्य वीतरागों की वीतरागता से किस प्रकार से भिन्न है?

दादाश्री : किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं है, वीतरागता में कोई अंतर नहीं है। वीतरागता रखने वाले में अंतर है।

प्रश्नकर्ता : वीतरागता मनोदशा है या आंतरिक स्थिति?

दादाश्री : वीतरागता मनोदशा भी नहीं है और आंतरिक स्थिति भी नहीं है, वह ज्ञान दशा है। उसकी खुद की ज्ञान दशा है यह। यह ज्ञान का परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : वीतरागता आत्मपुरुषार्थ द्वारा अचीव (सिद्ध) की हुई स्थिति है या कुदरती रचना का अंश है?

दादाश्री : वह आत्मपुरुषार्थ द्वारा प्राप्त की गई स्थिति है। कुदरती रचना का अंश नहीं है। कुदरती रचना से तो नींबू उगते हैं, अमरूद उगते हैं, अनार उगते हैं, वीतराग नहीं बनते। किसी जगह पर वीतरागता का पेड़ नहीं है कि उसका फल हर बार एक जैसा ही आएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कुदरती रचना में ऐसा कोई संयोग खड़ा हो और हम वीतराग हो जाएँगे या फिर पुरुषार्थ से ही हुआ जा सकता है?

दादाश्री : नहीं, कुदरती रचना का इससे कोई लेना-देना है ही नहीं। पुरुषार्थ के बिना वीतरागता नहीं आ सकती क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनों को अलग कर दिया है। इसके बाद आप जितना इन आज्ञाओं में रहने का पुरुषार्थ करोगे उतनी ही वीतरागता उत्पन्न होगी। प्रकृति और आत्मा के अलग हुए बिना तो आत्मपुरुषार्थ हो ही नहीं सकता। दूसरा, इस संसार के लोगों का जो पुरुषार्थ है, वह भ्रांत पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : वीतरागों के विज्ञान की प्राप्ति में संकल्प का कुछ योगदान है?

दादाश्री : शुरुआत तो, संकल्प की कुछ प्राप्ति हो तभी वीतराग रह पाएगा। तभी उस तरफ जाएगा न! इसलिए सब से पहले तो संकल्प की ज़रूरत है न! फिर उस दशा में पहुँचने के बाद संकल्प छूट जाएगा। यहाँ से स्टेशन जाना हो तो यहीं से क्या गाड़ी में बैठा जा सकता है? वहाँ के लिए रिक्षा करना पड़ेगा। रिक्षा का योगदान है न? यहाँ से मुंबई जाने में? तो कहते हैं, 'हाँ, लेकिन कहाँ तक?' स्टेशन तक, उसके बाद नहीं। उसी प्रकार से संकल्प का भी योगदान है!

किस आधार पर वे बने वीतराग?

प्रश्नकर्ता : जब रामचंद्र जी और भगवान महावीर थे, उस समय वे संपूर्ण वीतराग हो चुके थे? ज्ञान के आधार पर या पहले की गई किन्हीं क्रियाओं के आधार पर?

दादाश्री : ज्ञान के आधार पर।

प्रश्नकर्ता : दोनों? और क्या उनके *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) भी उसी जन्म में पूर्ण वीतराग हो चुके थे?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : रामचंद्र जी और महावीर भगवान।

दादाश्री : रामचंद्र जी उसी जन्म में मोक्ष में गए थे।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वास्तव में उनके *पुद्गल* के सभी राग-द्वेष चले गए थे?

दादाश्री : सभी चले गए थे।

प्रश्नकर्ता : ड्रामेटिक। सिर्फ उन्होंने सारा ड्रामा किया। रामायण का जो पूरा ड्रामा हुआ, क्या वह पूर्व कर्म की वजह से था?

दादाश्री : हाँ, ज्ञानी वशिष्ठ मुनि मिले थे।

प्रश्नकर्ता : उनसे ज्ञान लिया था?

दादाश्री : उसी जन्म में मोक्ष में गए क्योंकि वे तैयार जीव थे! सिर्फ ज्ञानी के स्पर्श की ज़रूरत थी, निमित्त की ज़रूरत थी।

वीतरागत्व प्राप्ति की राह

प्रश्नकर्ता : वीतराग दशा में रहने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : किसी के प्रति राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं करना, वही वीतरागता है। वैसा किया तो वीतराग दशा चूक गए। अगर वैसा हो गया तो जानना कि यह चूक गए। फिर से वापस साध, अगर चूक गए तो फिर से साध लेना। ऐसे करते-करते स्थिर हो जाएँगे। जिन्हें ऐसा करना है वह तो लाएगा ही न, निबेड़ा तो लाएगा न! छोटे बच्चे भी खड़े होते हैं और वापस गिर जाते हैं। धक्का गाड़ी को वापस धकेलता है। वापस गिर जाता है फिर से खड़ा होकर वापस गाड़ी को धकेलता है। ऐसे करते-करते चलने लग जाता है न! तब क्या राग-द्वेष होते हैं? क्रोध-मान-माया-लोभ? नहीं न! तो फिर वह वीतरागता ही है न। अब दूसरा कुछ ढूँढने को नहीं रहा। वही वीतरागता है। वीतरागता और कुछ नहीं है। यों तो इंसान कहता है, 'नहीं-नहीं मुझे कोई राग-द्वेष नहीं हैं'। बड़े आए राग-द्वेष नहीं हैं वाले! देखो तो सही! जब इस तरह स्पष्ट करते हैं, 'क्रोध-मान-माया-लोभ', तब कहते हैं, 'वे तो हैं'। तो भाई, तू समझता ही नहीं है न राग-द्वेष को!

क्रोध-मान-माया-लोभ का छोटा स्वरूप राग-द्वेष है, शॉर्ट स्वरूप। कषाय में ये चार ही योद्धा हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ और संक्षेप में उनका स्वरूप राग-द्वेष है। दुनिया इन कषायों से चल रही है। हिंदुस्तान की दुनिया कषायों से चल रही है। मज़दूर-वज़दूर सभी कषाय में जबकि फॉरेन वाले कषाय में नहीं हैं। विषय में रहते हैं।

या तो विषय में रहते हैं या फिर कषाय में रहते हैं या फिर अकषाय में अर्थात् भगवान पद में रहते हैं। अकषाय पद, वहाँ से तो भगवान पद माना जाता है लेकिन लोगों में कह नहीं सकते। कहने से लोग उल्टा बोलेंगे, 'ये बन बैठे हैं बड़े भगवान!' हमें मन में समझ जाना है कि

हम अंतिम स्टेशन पर आ गए हैं। किसी को कहने की ज़रूरत नहीं है। आप मुझे कह सकते हैं! किसी और को कहेंगे तो लोग क्या कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : मूर्ख कहेंगे।

दादाश्री : उन्हें कभी भी नहीं कह सकते। बाकी यह अकषाय पद तो भगवान पद है।

जो वीतराग और निर्भय हो जाए, वह भगवान

प्रश्नकर्ता : श्री कृष्ण को भगवान कहते हैं और फिर वापस यह भी कहते हैं कि आपके अंदर भगवान हैं तो दादा की दृष्टि से यथार्थ रूप से भगवान का अर्थ क्या समझना चाहिए?

दादाश्री : जब तक राग और द्वेष हैं तब तक जीवात्मा कहलाता है और वीतराग हो जाए तो भगवान। गाली देने पर जिन्हें द्वेष नहीं होता और फूल-माला चढ़ाने पर राग नहीं, वे कहलाते हैं भगवान! जो द्वंद्व से परे हो चुके हैं, वे कहलाते हैं भगवान! द्वंद्व क्या है, वह आप समझे या नहीं? आप किसे समझते हो? जहाँ एक हो वहाँ दूसरा होता ही है, अवश्य ही होता है। जहाँ नफा होता है, वहाँ नुकसान है ही। जो द्वंद्व से परे हो चुके हैं उन्हें दुःख भी नहीं है और सुख भी नहीं। गालियाँ देने पर दुःख नहीं, फूल-हार चढ़ाने पर सुख नहीं! वे वीतराग कहलाते हैं, निर्भय होते हैं।

आत्मा वीतराग है, उसे भगवान कहा जाता है और अंदर जो आत्मा है, वही परमात्मा कहलाता है। जो बाहर से भगवान हो चुके हैं, अंदर उनका आत्मा परमात्मा बन जाता है। अंदर परमात्मा स्टेज तक पहुँच जाने पर यह शरीर भी भगवान हो चुका होता है। कुछ समझ में आया मैं क्या कहना चाहता हूँ? पॉइन्ट ऑफ व्यू?

प्रश्नकर्ता : तो फिर ये जो कृष्ण भगवान कहलाते हैं...

दादाश्री : हाँ, ऐसा ही, ऐसा ही है। कोई भी बन सकता है। यह

किसी का लाइसेन्स नहीं है, महावीर भगवान का या कृष्ण भगवान का। जो वैसा बन सके, उसी के बाप का! जो वीतराग बन सके और निर्भय बन सके, वही भगवान!

प्रश्नकर्ता : अतः भगवान गुण है, वह कोई व्यक्ति नहीं है। भगवान विशेषण ही है?

दादाश्री : अंतिम कक्षा है इस *पुद्‌गल* की। इस *पुद्‌गल* की अंतिम कक्षा जब भगवान वाली होती है तब आत्मा की अंतिम कक्षा परमात्मा होती है। वे आत्मा को भगवान नहीं कहते। भगवान तो *पुद्‌गल* की अंतिम दशा है। अतः हम मना करते हैं कि हम भगवान नहीं हैं। यदि हम अपने आपको भगवान कहेंगे तो इसका मतलब अंदर आत्मा परमात्मा हो गया। और परमात्मा आत्मा खटपट नहीं करते। हम तो खटपट करते हैं कि 'चंदूभाई आना' खुद अपने आपके, व्यक्तिगत कारण से नहीं, आपके लिए। मैंने क्या तय किया है कि 'मैंने जो सुख पाया है, वही सुख दूसरे भी पाएँ'। यह तो मुझे गर्ज़ है कि ये लोग सुख पाएँ, मोक्ष में जाएँ, जबकि परमात्मा को गर्ज़ नहीं होती किसी भी तरह की।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा आपको जो यह गर्ज़ है, वह तो निष्काम करुणा है न?

दादाश्री : निष्काम करुणा है लेकिन वह करुणा भी गर्ज़ है न! इस पद के आने के बाद वह अंतिम पद आएगा। इस पद के आने के बाद जो अंतिम पद आएगा, वह ऐसा आएगा कि जगत् खुश हो जाएगा। वह तीर्थंकर पद है। लोगों के कल्याण के लिए ही जीते हैं वे। खुद के लिए नहीं जीते। कुछ समझ में आया मैं क्या कहना चाहता हूँ?

प्रश्नकर्ता : हाँ। दादा को जब ज्ञान हुआ था तब जगत् कल्याण करने के लिए किसने कहा था? कौन सी शक्ति ने कहा था?

दादाश्री : किसी ने नहीं कहा था। पहले से ही भावना थी कि यह जगत् ऐसा नहीं रहना चाहिए, कल्याण होना चाहिए। ऐसे कारण

(भावना की थी) छोड़े थे कि किसी को ऐसा ज्ञान हो और लोगों का कल्याण हो और फिर यह ज्ञान मुझे ही हो गया। मुझे पता नहीं था कि ऐसा ज्ञान हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी व्यवस्थित ने आपको पसंद किया।

दादाश्री : व्यवस्थित के नियम ने।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* को तो कोई इच्छा ही नहीं होती न कि 'मुझे सब भगवान कहें?'

दादाश्री : लेकिन *पुद्गल* की इच्छा नहीं होने के बावजूद भी *पुद्गल* उनके जैसा हो जाता है। एक्ज़ेक्ट, भगवान स्वरूप की ही परछाई बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : तभी छूटा जा सकता है न!

दादाश्री : हाँ।

वीतरागता, वह दशा है

प्रश्नकर्ता : वीतरागता और करुणा के बीच कोई संबंध है क्या?

दादाश्री : वीतरागता उत्पन्न होने के बाद में करुणा है। करुणा उत्पन्न होने के बाद में वीतरागता नहीं है अर्थात् पहले करुणा नहीं है। वीतरागता उसका कारण है।

प्रश्नकर्ता : करुणा वाले का व्यवहार कैसा होता है?

दादाश्री : उसके व्यवहार में उसे खुद के शरीर का मालिकीपना नहीं रहता, वाणी का मालिकीपना नहीं रहता और मन का मालिकीपना नहीं रहता, तब करुणा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : हम आपमें मूर्त रूप में करुणा देखते हैं। वीतरागता देखते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वे जिनमें देह के प्रति मालिकीपना चला जाएगा उनमें करुणा उत्पन्न हुए बगैर रहेगी ही नहीं। क्योंकि जब तक खुद की देह पर ज़रा सा भी मालिकीपना है, ज़्यादा नहीं तो ज़रा सा भी, तब तक करुणा उत्पन्न नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : वीतरागता में पसंद-नापसंद रहती है क्या?

दादाश्री : वीतरागता में अगर पसंद-नापसंद है तो वह वीतरागता की निचली स्थिति कही जाएगी। वह वीतरागता की शुरुआत कही जाएगी। अर्थात् वह वीतरागता का एन्ड नहीं है। शुरुआत में पसंद-नापसंद अर्थात् लाइक-डिसलाइक दोनों ही रहते हैं। वह राग-द्वेष नहीं है लेकिन लाइक और डिसलाइक है।

प्रश्नकर्ता : करुणा को आत्मा का मूल गुण कहा जा सकता है क्या?

दादाश्री : करुणा आत्मा का गुण है ही नहीं। करुणा तो इस बात का लक्षण है कि 'आत्मा प्राप्त हो चुका है, वे वीतराग हो चुके हैं'। लक्षण पर से हमें पता चलता है कि यह क्या चीज़ है। 'क्रोध' आत्मा का मूल गुण नहीं है, चेतन का और जड़ का भी मूल गुण नहीं है। वह व्यतिरेक गुण है और उसका प्रतिपक्षी गुण 'क्षमा' भी आत्मा का गुण नहीं है। क्षमा पर से आप जान सकते हैं कि यह वीतराग हो चुके हैं। क्षमा भी सहज क्षमा होनी चाहिए। 'हम आपको क्षमा करते हैं' ऐसा नहीं, और वह क्षमा भी माँगनी नहीं पड़ती, दे ही देते हैं। अर्थात् इतने गुण सहज रूप से होते हैं। सहज विनम्रता होती है, सहज क्षमा होती है, सहज सरलता होती है। सरलता लानी नहीं पड़ती फिर संसार में सहज संतोष होता है अर्थात् सारे सहज गुण उत्पन्न हो चुके होते हैं लेकिन वे आत्मा के गुण नहीं हैं। इन गुणों पर से हम नाप सकते हैं कि आत्मा यहाँ तक पहुँचा। आत्मा के गुण नहीं हैं। आत्मा के गुण तो वे हैं जो खुद के साथ वहाँ अंत तक जाते हैं, वे सभी गुण आत्मा के हैं। व्यवहार में, हमने जो बताए हैं, वे सभी उसके लक्षण हैं। हम किसी को

धौल लगाएँ और वह हमारे सामने हँसे तब हम जान जाएँगे कि इनमें सजह क्षमा है। तब हमें समझ में आएगा कि बात सही है।

प्रश्नकर्ता : करुणा की तरह वीतरागता भी लक्षण ही कहा जाएगा न?

दादाश्री : वीतरागता लक्षण कहा जाएगा, उसका गुण नहीं है। राग-द्वेष भी उसका गुण नहीं है और वीतरागता भी उसका गुण नहीं है। यह तो व्यवहार की वजह से लक्षण उत्पन्न हुए हैं क्योंकि वहाँ पर शब्द के रूप में कुछ है ही नहीं न! जब तक ये शब्द हैं, तब तक व्यवहार है। शब्द वाले गुण हैं ही नहीं वहाँ पर।

करुणा की पराकाष्ठा कहाँ

प्रश्नकर्ता : जो संपूर्ण वीतराग हैं, उन तीर्थंकरों की करुणा और जो खटपटिया वीतराग हैं, उन सजीवनमूर्ति दादा की करुणा में क्या अंतर है?

दादाश्री : यहाँ पर व्यक्तियों के लिए हो जाता है। जबकि तीर्थंकरों का सामान्य रूप से पूरा एक सरीखा होता है। यहाँ पर तो 'फलाने आए, वे आए', व्यक्तियों के लिए इस प्रकार से हो जाता है। जबकि उनका व्यक्तियों को लेकर नहीं होता, एक सरीखा होता है। समान! उनकी बेटी आए या अन्य कोई भी आए तो भी समान।

प्रश्नकर्ता : उसके परिणाम और इसके परिणाम में कोई अंतर है क्या?

दादाश्री : परिणाम तो एक ही प्रकार के होते हैं। परिणाम में अंतर नहीं होता लेकिन ऐसा दिखाई देता है, वर्तन में। परिणाम शुद्ध होते हैं लेकिन बाह्य व्यवहार ऐसा दिखाई देता है। व्यवहार तो, पहले जो प्रतीति थी, उसके आधार पर है इसीलिए ज़रा अंतर दिखाई देता है इसमें।

वीतरागों में तो बिल्कुल भी राग-द्वेष नहीं होते इसलिए वे कर ही नहीं सकते और हम में तो ज़रा सा यह चार डिग्री कम है इसीलिए

हम में कर सकने की शक्ति है। इतनी ही झंझट है। ये फुल काम करते हैं। उनमें कर सकने की शक्ति नहीं है जबकि इनमें शक्ति है, इतना ही अंतर है। क्योंकि यह चार डिग्री फेल हैं जबकि वहाँ पर पूर्णाहुति है। यानी कि ऐसी बारी कभी आती नहीं है।

हमारे तो अभी एक-दो जन्म बाकी हैं इसलिए खटपटिया हैं, खटपटिया वीतराग! हम तो कहते हैं, उन भाई को यहाँ लेकर आना, ऐसा करना, वैसा करना, ऐसा करना, वैसा करना। जबकि वीतरागों को तो कुछ भी नहीं। उनके दर्शन से ही अपना कल्याण हो जाता है। कैसा है कि वास्तविक दर्शन हो जाएँगे, वास्तव में दर्शन करना आना चाहिए। जैसा जिसको आएगा उतना ही उसे लाभ होगा। बस! वे वीतराग! लेकिन जिसने उनकी वीतरागता को पहचाना, वीतरागता उसी के बाप की! जितनी-जितनी पहचानी उतना ही उसे लाभ होगा। वे खुद इन बातों में हाथ नहीं डालते। सहज भाव से वाणी निकलती रहती है। बस! यानी कि वे खटपटिया नहीं हैं। हम खटपटिया हैं कि उन बहन को लेकर आना क्योंकि हम जानते हैं कि यह हमारा अंतिम अवतार नहीं है इसलिए हम यहाँ पर ऐसा सब कह सकते हैं। जबकि वे ऐसा कुछ भी नहीं कहते कि 'आपका कोई *ऊपरी* नहीं है या आपमें कोई दखलंदाज़ी नहीं कर सकता', ऐसा सब नहीं कहते क्योंकि जो मोक्ष में जाने वाले हैं, वे उनका दर्शन करके प्राप्ति कर लेते हैं। जो नहीं जाने वाले, उन्हें प्राप्ति नहीं होती। वीतराग! जिन्हें प्राप्ति होनी हो उसे हो, जिन्हें प्राप्ति नहीं होनी है उसे न हो। जबकि हमें इतना आग्रह रहता है। हम तो अभी भी खटपट करते हैं। हम खटपटिया वीतराग कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा! जो आपके पास आएँगे और समझेंगे, उनके मतभेद तो चले जाएँगे लेकिन जो नहीं आते उनके मतभेद तो रहेंगे न? तीर्थंकरों के समय में भी ऐसा ही होता होगा न?

दादाश्री : वह ठीक है लेकिन वे खटपट नहीं करते न? हम खटपट करते हैं न! हम तो इधर से बचा लेते हैं, उधर से यों बचा लेते हैं। जबकि तीर्थंकर तो सिर्फ कहते हैं, बस इतना ही। अगर ठीक न लगे तो वह चला

जाता है। हमारी तो खटपट, बैठा-बैठाकर बातें करते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : रातों को जागकर भी!

दादाश्री : हाँ, रात को जागकर भी। यह भाई 30 साल से आश्रम में जा रहे थे तो फिर मैंने समझाया कि 'तू जो कर रहा है वह गलत नहीं है लेकिन यदि आत्मा जानना हो तो वह इसमें नहीं है'। आत्मा कहाँ से लाएँगे लोग? लोगों के बस की बात ही नहीं है न यह।

जगत् का कल्याण होकर ही रहेगा

हम यह जो खटपट करते हैं वह, 'इधर आओ न आपको मोक्ष देंगे', इस भाई की फाइल के साथ झंझट हो जाती है तो वह खत्म कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : हम उसे ऐसे कहते हैं कि सत्संग में ही रहो।

दादाश्री : हाँ। हमें यह सारी खटपट इसीलिए करनी पड़ती है न? खुद को कुछ भी नहीं चाहिए, उसी को कहते हैं वीतराग! खटपट क्या है? तो वह यह है कि सामने वाले को मेरे जैसी कुछ (प्राप्ति) हो जाए, वही भावना।

महावीर भगवान खटपटिया वीतराग नहीं थे, जबकि मैं तुम्हें बुलाता हूँ कि 'आना, आपके सर्वस्व दुःख चले जाएँगे'। महावीर भगवान को ऐसा कुछ नहीं था। संपूर्ण वीतराग! कोई दखल ही नहीं न! दखल नहीं, खटपट नहीं। जिसे इस वर्ल्ड में कुछ भी नहीं चाहिए। वर्ल्ड में कोई भी चीज़ नहीं चाहिए। शुद्ध सोना दिया जाए फिर भी नहीं चाहिए। स्त्रियों का विचार तक मुझे नहीं आता। जो पुरुष बंधन मुक्त हो चुके हैं, उन्हें फिर क्या चाहिए? लेकिन सिर्फ यही एक चीज़ कि जगत् का कल्याण होना चाहिए और होगा ही और इस जगत् का नया ही रूप होगा। नया ही तरीका, नया ही रूप।

प्रश्नकर्ता : अगर इतनी अधिक आस्था होगी तभी यह काम हो सकेगा। इतना बड़ा आयोजन!

दादाश्री : मैंने तो देखकर कहा है। क्या होने वाला है, वह देखकर बताता हूँ कि 2005 में यह हिंदुस्तान वर्ल्ड का केन्द्र बन चुका होगा! ऐसा 1971 में पुस्तक में लिखा है इसलिए नहीं कहता हूँ कि इन्डिया मेरा देश है। जैसा है वैसा, वीतरागता से कह रहा हूँ। हमें ऐसा नहीं है कि 'यह मेरा है'। व्यवहार से कह सकते हैं, वास्तव में नहीं।

बीड़ा उठाया है हमने जगत् कल्याण का

खटपटिया का मतलब ये खटपट करने को रह गए हैं हम, इसलिए हम खटपटिया वीतराग कहलाते हैं। सिर्फ इतनी ही इच्छा है, अन्य कोई इच्छा नहीं है। 'किस तरह से लोगों को शांति प्राप्त हो?' इसीलिए यह बीड़ा उठाया है। रोज़ 11 घंटे यह सत्संग करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : आपकी यह इच्छा रही है, तो उससे फिर आपकी चार डिग्री पूर्ण नहीं होगी न? बंधनरूप है न यह इच्छा?

दादाश्री : नहीं, यह जो इच्छा रह गई है, वह तो डिस्चार्ज इच्छा है। चार्ज में ऐसा नहीं है। चार्ज बंद हो चुका है। अगर चार्ज बंद है तो परेशानी नहीं है।

जो 'दादा की ज़ंजीर' खींचेगा उसका काम हो जाएगा क्योंकि वीतराग कभी किसी काल में होते ही नहीं है न और इस काल में पूर्ण वीतराग नहीं हो सकते, लेकिन तमाम जीवों के लिए हम तो संपूर्ण वीतराग ही हैं। जीवमात्र के प्रति। सिर्फ हमारे कर्मों के प्रति ही हमें राग रहता है। सिर्फ कर्म खपाने जितना। थोड़ा राग रह गया है, वह भी जगत् कल्याण करने की खटपट के लिए, और वह नुकसानदेह नहीं है न? इसे भी राग ही कहते हैं। हमारी गर्ज़ थी इसीलिए वहाँ से उठकर यहाँ आए!

प्रश्नकर्ता : इसलिए आप कहते हैं कि हम खटपटिया वीतराग हैं!

दादाश्री : हाँ! तो और क्या कहेंगे? खटपटिया लेकिन वीतराग हैं। ऐसा खटपटिया ढूँढ लाओ न, जो वीतराग हो! एक भी दिन ऐसा

नहीं गया जब साढ़े ग्यारह से कम हुआ हो। इसलिए हमें भी कोई आश्चर्य नहीं होता न! और फिर रात को तीन या साढ़े तीन बजे उठते हैं। उसके बाद डेढ़ घंटे तक पद्मासन लगाकर बैठते हैं और फॉरेन वगैरह सभी जगह घूमते हैं। फिर हम कुछ देर बाद वापस सो जाते हैं। साढ़े पाँच, छः बजने पर आधे घंटे के लिए सो जाते हैं। शरीर पीड़ा नहीं देता, कुछ भी नहीं करता। ये पैर दबाने वाले कहते हैं कि हमें लाभ हो रहा है, तब मैं कहता हूँ कि 'दबाते रहो न! हमें कोई परेशानी नहीं है'। रोज़ दबाने से आदत पड़ जाती है लेकिन हमें आदत वगैरह कुछ नहीं पड़ती, कुछ भी नहीं। औरों को आदत पड़ जाती है। यह शरीर वैसा ही हो जाता है।

गुरुपूनम के दिन पूर्ण अद्वैतभाव में

प्रश्नकर्ता : आप सत्संग करते हैं और गुरुपूर्णिमा के दिन दर्शन देते हैं तो उन दोनों में अंतर है क्या?

दादाश्री : बहुत अंतर है। इसे तो ऐसा कहा जाएगा कि बाहर आ गए हैं। वह गुरुपूर्णिमा का दर्शन तो बहुत ही, ओहोहो! वह तो पूर्ण दर्शन कहलाता है। कोई एक बार भी दर्शन कर गया तो बहुत हो गया। उस दिन हम 'आओ चंदूभाई! आओ फलाने भाई!' उसमें नहीं पड़ते। पूर्ण भाव में रहते हैं और जबकि यहाँ पर, अन्य किसी दिन तो हम बुलाते हैं, पहचानते भी हैं। वहाँ पर तो हम पहचानते भी नहीं और बुलाते भी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में।

दादाश्री : उस समय अद्वैतभाव में रहते हैं और अभी द्वैत में रहना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : वीतरागता और साक्षीपने में क्या फर्क है?

दादाश्री : अहंकार (के माध्यम) से देखे और साक्षी रहे, वह साक्षीपन है और आत्मा (के माध्यम) से देखे तो ज्ञाता-दृष्टापन है।

वीतरागता! अतः साक्षीपन नहीं है लेकिन ज्ञातापन है। वीतरागता अर्थात् ज्ञायकपन, ज्ञायक!

फिर भी रहा फर्क चौदस और पूनम में

अतः दुनिया में जो कभी भी देखा न गया हो ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ है क्योंकि ऐसी जो जगह थी जहाँ पर प्रेम उत्पन्न होता है, वह संपूर्ण वीतराग थे। अतः वहाँ पर प्रेम दिखाई नहीं देता। हम कच्चे रह गए, अतः प्रेम रहा लेकिन संपूर्ण वीतरागता नहीं आई।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि 'हम प्रेमस्वरूप हो चुके हैं, लेकिन संपूर्ण वीतरागता उत्पन्न नहीं हुई'। इसे ज़रा समझना था।

दादाश्री : प्रेम का मतलब क्या है? किंचित्मात्र भी किसी की तरफ ज़रा सा भी भाव न बिगड़े, उसे कहते हैं प्रेम। अर्थात् संपूर्ण वीतरागता को ही प्रेम कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो प्रेम का स्थान कहाँ पर है? यहाँ पर कौन सी स्थिति में प्रेम कहलाएगा?

दादाश्री : प्रेम तो, जितना वीतराग होता है उतना ही प्रेम उत्पन्न होता है। संपूर्ण वीतराग को संपूर्ण प्रेम! अतः आप सभी वितद्वेष तो हो ही चुके हो, और अब जैसे-जैसे हर एक बात में वीतराग होते जाओगे, वैसे-वैसे प्रेम उत्पन्न होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो आपने जो अभी यह कहा कि 'हमारा, यह प्रेम कहलाता है लेकिन वीतरागता नहीं आई है', वह क्या है?

दादाश्री : वीतरागता अर्थात् यह हमारा प्रेम है, यह प्रेम यों दिखाई देता है जबकि वीतरागों का प्रेम दिखाई नहीं देता। लेकिन वास्तविक प्रेम तो उनका ही कहा जाएगा जबकि हमारा प्रेम लोगों को दिखाई देता है लेकिन यह वास्तविक प्रेम नहीं है। एक्ज़ेक्टली जिसे प्रेम कहा जाता है न, वह यह नहीं है। एक्ज़ेक्टली तो, जब संपूर्ण वीतरागता होगी, तभी वास्तविक प्रेम आएगा जबकि हमारी तो अभी चौदस है, पूनम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् पूनम वाले में इससे भी ज़्यादा प्रेम होता है?

दादाश्री : पूनम वाले का प्रेम ही वास्तविक प्रेम है! ये चौदस वाले में किसी जगह पर कमी रह जाती है। पूनम वाले का प्रेम ही वास्तविक प्रेम है।

प्रश्नकर्ता : संपूर्ण वीतरागता हो और प्रेम रहित हों, ऐसा तो हो ही नहीं सकता न?

दादाश्री : प्रेम के बिना तो हो ही नहीं सकते वे!

प्रश्नकर्ता : तो दादा! चौदस और पूनम में इतना फर्क आ जाता है? इतना भेद, ऐसा?

दादाश्री : बहुत अंतर है! यह तो हमें पूनम जैसा लगता है लेकिन बहुत अंतर है! हमारे हाथ में है ही क्या? जबकि उनके, तीर्थंकरों के हाथ में तो सभी कुछ है! हमारे हाथ में क्या है? फिर भी हमें पूनम जितना संतोष रहता है! हमारी शक्ति, खुद के लिए इतनी शक्ति काम करती है कि हमें लगता है कि जैसे पूनम हो चुकी है!

[3]

मैला करे वह भी पुद्गल, साफ करे वह भी पुद्गल

जहाँ शब्द व वाणी थम जाएँ, वहाँ खुद वीतराग

वीतराग अर्थात् शुद्ध। वीतराग वहाँ पर हैं जहाँ पर वाणी या शब्द नहीं हैं। जहाँ पर शब्द हैं, वहाँ पर वे नहीं होते। शब्द खत्म हो जाने के बाद सिर्फ 'खुद' ही बाकी रहता है। जहाँ पर शब्द हैं, वहाँ पर शब्द भी हैं और वह भी है।

प्रश्नकर्ता : फिर कहने वाला और जानने वाला दोनों एक हो जाते हैं?

दादाश्री : एक है?! एक हो गए हैं, तभी तो यह दशा हुई है!

प्रश्नकर्ता : तो क्या अलग हो जाते हैं?

दादाश्री : पूरी तरह से अलग हो जाते हैं। यों तो अलग हो गए हैं। जितने शुद्ध होते गए, उतने अलग हो गए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है। अतः फिर *पुद्गल* भी कहता है कि अब हम भी शुद्ध हो गए अर्थात् अब हम अलग हो गए!

दादाश्री : नहीं, नहीं। ये खुद शुद्ध हो गए तो वे *(पुद्गल)* शुद्ध हो ही जाएँगे। इनकी वजह से वे बिगड़ते हैं। यदि ये खुद कॉज़ नहीं डालेंगे तो *पुद्गल* तो शुद्ध ही है।

भूल पकड़ने वाला कौन?

तू आजकल क्यों पीछे रह गया है? कहाँ गलती हो रही है?

प्रश्नकर्ता : उसका संशोधन कर रहा हूँ, गलती पकड़ में नहीं आ रही।

दादाश्री : उससे तुझ पर क्यों असर हो जाता है? तो फिर पकड़ में आई क्या? जो पकड़ में आया वह भी *पुद्गल,* नहीं पकड़ में आया वह भी *पुद्गल* और पकड़ने वाला भी *पुद्गल।* 'तू' सिर्फ जानने वाला, इसमें तुझे क्या लेना-देना? तू तो पकड़ने लगा था न! ऐसा हुआ?

प्रश्नकर्ता : ऐसा ही हुआ है। चारों ओर से एकदम से फाइलें आ गईं इसलिए फिर फाइल नंबर वन का थोड़ा बहुत एनालिसिस किया। तो सफोकेशन और भी ज़्यादा बढ़ गया। फिर किस कारण से इसका ऐसा है, वह अभी भी समझ में नहीं आ रहा है।

दादाश्री : लेकिन तू आधार पकड़ने वाला क्यों बन जाता है? तू जान। तू तो पकड़ने वाला बना इसलिए बोझ बढ़ गया, इसलिए मुँह बिगड़ गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह उत्पन्न कहाँ से हुआ? वह देखने जाता हूँ।

दादाश्री : अरे, *पुद्गल* में से उत्पन्न हुआ, *पुद्गल* में से उत्पन्न होगा। जो था वही का वही सामान। कुछ नया सामान आने वाला है नहीं। इतना तो बता दिया है, फिर भी ऐसा क्यों कर रहा है?

प्रश्नकर्ता : अब से ऐसी भूल नहीं होगी।

दादाश्री : लेकिन चंदूभाई का क्या दोष? 'हम' उसमें घुस जाते हैं न! यह ढूँढने अंदर गया कि इसका मूल कारण क्या है? वह जानने की ज़रूरत है, हमें ढूँढने नहीं जाना है। उसके लिए तो डी.एस.पी. को भेज देना। डी.एस.पी. से कहना कि 'जाइए, जाँच कीजिए।' डी.एस.पी. की बजाय हम चले जाएँ तो क्या होगा? और पूरे दिन अंदर तनख्वाह डी.एस.पी. खाता रहता है, आइस्क्रीम खाता है, फँला खाता है। अब नहीं होगी न गलती?

प्रश्नकर्ता : नहीं होगी।

दादाश्री : राग-द्वेष होते हैं ?

प्रश्नकर्ता : अभाव होता है।

दादाश्री : किस पर ?

प्रश्नकर्ता : कार्यों पर। जो कार्य करते थे, उन पर अभाव होता है।

दादाश्री : ओ हो हो, उसका पछतावा रहता है न! पछतावे को अभाव नहीं कहते। पछतावा है, लेकिन चंदूभाई को रहता है या तुझे रहता है ?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई को रहता है।

दादाश्री : तो फिर तू क्यों अपने सिर ले रहा है ? यदि वह पछतावा नहीं करे तब हमें कहना चाहिए, कि 'पछतावा करो। ऐसा क्यों किया ? अतिक्रमण क्यों किया ? प्रतिक्रमण करो'।

कचरा कौन दिखाएगा ?

प्रश्नकर्ता : कई बार हम जानते हैं कि यह चीज़ नहीं करनी है। हम मना भी करते हैं कि 'चंदूभाई यह करने जैसा नहीं है'। फिर भी चंदूभाई करता है तो उसे क्या समझें ?

दादाश्री : वह तो उसने गंदा किया है, वह धो रहा है। हमने कोई गंदगी नहीं की है और करेंगे भी नहीं। जिसने की है उसने धो दिया। हमें कहना है, 'अब गंदा मत करना'। वे यह सब धो रहे हों तो हमें समझना है कि पहले किया होगा इसलिए धो रहे होंगे। अत: हमें देखते रहना है। बाद में फिर से कहना 'अब मत करना'।

इसलिए अब कचरा बुहारते रहना है। आगे का जो भी नया काम हो, हमें वह उसे दिखाते रहना है। काम का पता हमें ही चलेगा कि क्या काम करना बाकी है ? किसी जगह पर देखने जाएँ तब कहना कि आप

सब देख लो। अत: अगर हमने एक कचरा देखा तो कहना है कि इसे साफ कर दो! फिर दूसरा भी दिखा देना है कि 'भाई, यह नहीं हुआ है'। हम हैं बताने वाले। अर्थात् आत्मा नहीं बताता। यह तो, आत्मा की प्रज्ञा नाम की जो शक्ति है, वह बताती है।

पुद्‌गल करता रहेगा और हमें देखते रहना है। हमें बताते रहना है कि 'देखो यह रह गया है'। अत: हम अगर कह देंगे तो हम शुद्ध हो जाएँगे। फिर वह करेगा तो वह शुद्ध हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हम कहेंगे तो हम शुद्ध हो गए...

दादाश्री : शुद्ध हो गए लेकिन अगर वह करेगा तभी हम शुद्ध हो सकेंगे। वह शुद्ध हो जाएगा तो हम शुद्ध हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : इसमें 'हम' कौन है? हम अर्थात् किसे शुद्ध करने का कह रहे हैं आप?

दादाश्री : हम अर्थात् शुद्धात्मा को ही। एक तरफ आत्मा है और एक तरफ *पुद्‌गल*। प्रज्ञा खुद अहंकार से क्या कहती है? 'जितने आप शुद्ध हो गए, उतने ही आप आत्मा में आ गए।'

प्रश्नकर्ता : यानी अहंकार को करना है।

दादाश्री : अहंकार अर्थात् *पुद्‌गल* और आत्मा दोनों इकट्ठे हो गए हैं, वह! वह *पुद्‌गल* कर्ताभाव से मिला है और आत्मा ज्ञाताभाव से! अत: अगर खुद का ज्ञातापन रहेगा तो वह छूट जाएगा और *पुद्‌गल* का कर्तापन रहेगा तो वह छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दोनों ही छूट जाएँगे।

दादाश्री : अत: यह तो दीये जैसी बात है। दिखाने में क्या जाता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मैंने आपको कुछ दिखाया, तब आपका कर्तापन छूट

गया, अहंकार का। लेकिन फिर आगे-आगे दिखाने में हर्ज क्या है? कौन दिखाता है यह? प्रज्ञा दिखाती है यह सब।

जो पराक्रम करता है, वह भी पुद्गल

प्रश्नकर्ता : आप एक ऐसा उदाहरण देते थे कि रात के बारह बजे कोई आए और फिर भी अगर अपना भाव नहीं बिगड़े तो वह पुरुषार्थ है और अगर असर ही नहीं हो तो वह पराक्रम है।

दादाश्री : वह भाव हमें नहीं करना है। वह तो हमें देखना है कि उल्टा भाव नहीं हो, तो वह उल्टा भाव हम नहीं कर रहे हैं। जो भाव कर रहा है, वह अलग है। हमें तो देखना है। हम आपको उदाहरण देंगे, तभी आप समझ सकोगे न, वर्ना कैसे समझोगे?

उल्टा भाव करते हो तो जो करने वाला है, वह *पुद्गल* है और आप शुद्धात्मा हो। जो उल्टा भाव करता है, वह *पुद्गल* करता है और जो सीधा भाव करता है, वह भी *पुद्गल* करता है। लेकिन जो उल्टा या सुल्टा भाव करता है, उसे जो जानता है, वह शुद्धात्मा है। लेकिन उसके लिए भी हम आपसे ऐसा ही कहते हैं कि आपने उल्टा किया तब अगर वह सीधा करके आ जाए तो वह दोनों ही आपको देखने हैं! लेकिन उल्टा भाव नहीं होना चाहिए, ऐसा कहना चाहते हैं और अगर हो जाता है तो भी ज्ञाता-दृष्टा रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी एक चीज़ ठीक से समझ में नहीं आई। अच्छा या बुरा भाव दोनों ही *पुद्गल* करता है, तो पराक्रम कौन करता है?

दादाश्री : वह पराक्रम भी *पुद्गल* का है।

प्रश्नकर्ता : वह पराक्रम भी *पुद्गल* का ही है?

दादाश्री : नहीं तो फिर किसका है वह पराक्रम? पिछले जन्म में जो पुरुषार्थ किया था, जिसे अज्ञानता से हम पुरुषार्थ मानते थे, आज वह पराक्रम के रूप में आया है। अब हम ज्ञाता-दृष्टा बन गए हैं और

पुद्गल कर्ता है। उन दिनों कर्ता थे, अतः पराक्रम किया था। आज वह ज्ञाता-दृष्टा के रूप में आया है।

प्रश्नकर्ता : तो अब तो हम ज्ञान लिए महात्माओं के लिए पराक्रम या पुरुषार्थ जैसा कुछ रहा ही नहीं न? सिर्फ देखना ही है न?

दादाश्री : देखना ही बाकी रहा लेकिन पिछले जन्म में हमने नासमझी में जो पुरुषार्थ किया, आज हमें उसे देखते रहना है। अतः हमें चंदूभाई से कहना पड़ेगा न कि 'तू इतना करना'। आपको 'चंदूभाई' से कहना है कि 'ऐसा भाव करना'। आपको देखना है कि चंदूभाई वह कर रहे हैं या नहीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो ठीक है। तो इस प्रकार से मुक्त है।

दादाश्री : अब जो वेदना है वह चंदूभाई की है, और वह डिस्चार्ज के रूप में और डिस्चार्ज से तो कोई बच ही नहीं सकता न! भगवान महावीर को भी यहाँ कान में *बरु* (जंगली पौधे की नुकीली डंडी) ठोके गए थे, तो चेहरे पर छः-आठ महीने तक उसका असर रहा! तो चेहरे पर क्या रहता होगा भगवान को? व्यथित रहते थे।

प्रश्नकर्ता : दर्द होता था इसलिए व्यथित रहते थे न!

दादाश्री : तो क्या उससे कर्म चिपक गया? नहीं। और इसके बावजूद भी हल आ ही गया। निवारण ही हो गया उनके लिए। व्यथित होने से कहीं चिपक नहीं गया क्योंकि खुद व्यथित नहीं हुए थे, शरीर व्यथित था। इसी प्रकार आप खुद क्रोध-मान-माया व लोभ कषाय में नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* है।

दादाश्री : हाँ, *पुद्गल* का तो निबेड़ा आ जाता है। उसका *निकाल* होना ही चाहिए। उसे परेशान नहीं होना है, ऐसा रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ये जो कषाय हैं, वे *पुद्गल* के अधीन ही हैं न? *पुद्गल* का ही परिणाम हैं न?

दादाश्री : वह *पुद्गल* का ही एक भाग है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-दृष्टा रहे तो फिर प्रतिक्रमण करने की जो बात है, उसका तो कोई अर्थ ही नहीं है न?

दादाश्री : अर्थ ही नहीं है। ज्ञाता-दृष्टा रहना और प्रतिक्रमण?! यह तो अगर जब ज्ञाता-दृष्टा कच्चा रह जाए न...

प्रश्नकर्ता : तब प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह प्रतिक्रमण भी हमें खुद को नहीं करना है। यह अक्रम विज्ञान है न, इसलिए कषाय ज़रा भारी हैं। अब अगर चंदूभाई ने किसी को डाँटा और ऐसा डाँटा कि सामने वाले को दु:ख हो गया तो आपको चंदूभाई से कहना है, कि 'भाई आपने अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए अब प्रतिक्रमण करो'। हमें प्रतिक्रमण नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-दृष्टा में ज़रा उलझन रहती है। ज्ञाता-दृष्टा तो आत्मा का भाग है और प्रतिक्रमण *पुद्गल* को करना है?

दादाश्री : हाँ, *पुद्गल* का भाग है। अतिक्रमण *पुद्गल* का है और प्रतिक्रमण भी *पुद्गल* का है।

प्रश्नकर्ता : हाँ। इतना अगर समझ में आ जाए तो फिर बहुत उलझन नहीं रहती।

करता है पुद्गल, और मानता है 'मैंने किया'

दादाश्री : जिसने मैला किया वह भी *पुद्गल* है और जो साफ करता है वह भी *पुद्गल* ही है। यह जो मैला कर रहा था, वह *पुद्गल* कर रहा था तब भी आप कहते थे कि 'मैंने किया'। अब साफ करते समय भी *पुद्गल* ही करता है लेकिन फिर आप कहते हो कि 'मैंने किया' तो फिर से हिसाब में आ जाते हो। इसलिए साफ करने वाला और मैला करने वाला और गंदा करने वाला, ये सभी हम खुद नहीं हैं। गंदा करते समय 'मैं नहीं हूँ', ऐसा नहीं कहा था, इसीलिए तो ऐसा हुआ। अब साफ करते समय ऐसा कहेंगे कि 'मैं नहीं हूँ' तो छूट जाएँगे।

वास्तव में हमने मैला नहीं किया है फिर भी हमने मान लिया कि 'मैंने किया है' अत: अपनी जवाबदेही आ गई। अब अगर साफ करते समय, साफ करता है उस समय कहे, 'मैं नहीं कर रहा हूँ' तो जवाबदेही खत्म हो जाएगी।

जो मैला कर रहा है, वह तो *पुद्‌गल* है, और पूरा जगत् कहता है, 'मैं ही कर रहा हूँ'। गाय का दूध भी *पुद्‌गल* निकालता है और खुद कहता है, 'मैं दुह रहा हूँ'। गाय को कौन दुहता है? *पुद्‌गल*। और हम क्या कहते हैं? 'मैंने दुही।' और फिर जब उसके परिणाम स्वरूप साफ करने की बारी आती है तब? कहता है 'मैंने साफ किया'। उससे आती है जवाबदेही। वहाँ खुद ने भूल से जवाबदेही ले ली। पूरा जगत् जवाबदेही पर खड़ा है और हम जवाबदेही छोड़ रहे हैं।

जब *पुद्‌गल* ने मैला किया, उस समय हमने कहा कि 'मैंने मैला किया'। ज़रा सा भी अगर उसने ऊँचा उठाया तो 'मैंने ऊँचा उठाया'। *पुद्‌गल* ऊँचा उठाता है, नफा भी *पुद्‌गल* कमाता है, नुकसान भी *पुद्‌गल* उठाता है। उसके लिए कहता है कि 'मैंने किया' इसीलिए तो हम मुश्किल में पड़ गए हैं। जो कहता है, 'मैंने किया' वह अहंकार है और 'मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया', वह शुद्धात्मा है।

'मैंने किया' ऐसी उल्टी मान्यता ही मिथ्यात्व है और 'मैंने नहीं किया', वह सम्यक्त्व है। 'कर कौन रहा है', उसे समझ जाए तो हमेशा के लिए पहेली सुलझ जाए।

मैला करने वाला *पुद्‌गल* है, *पुद्‌गल* ने मैला किया है और अगर उसे साफ करने को कहेंगे तो फिर वह वापस खुद साफ करने में लग जाएगा। जब वह खुद साफ करने में लग जाता है तब ऐसा मानता है कि 'मैं कर रहा हूँ'।वहाँ पर फिर भूल हो जाती है। साफ करने वाला बन जाता है। मैला करने वाला मिट गया और अब साफ करने वाला बन गया। खुद वही का वही। लोग वहीं पर फँसे हुए हैं। उसी कारण सारा बोझ है!

श्रद्धा-दर्शन-अनुभव-वर्तन

यह तो आपने सुना है, बस इतना ही। थोड़े ही वह वर्तन (आचरण) में आ जाएगा? श्रद्धा बैठ गई है लेकिन वर्तन में नहीं आता न? आएगा ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : दादा, वर्तन में आए तब वह कैसा होता है?

दादाश्री : वह अलग तरह का होता है।

प्रश्नकर्ता : अब आज हमने सुना, श्रद्धा बैठी, अंदर फिट हो गया और ऐसा लगा कि हंड्रेड परसेन्ट यही बात करेक्ट है।

दादाश्री : ऐसा लगता ज़रूर है लेकिन वह वर्तन में नहीं आता। वह निरंतर ध्यान में नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : हाँ, निरंतर ध्यान में नहीं रहता।

दादाश्री : वह निरंतर वर्तन में रहेगा तो निरंतर ध्यान में रहेगा। जैसा वर्तन में होता है वैसा ध्यान में रहता है। अतः यह वर्तन में नहीं रहता न? धीरे-धीरे, बूँद-बूँद करके बढ़ता जाता है। लेकिन जानेगा तभी बूँद-बूँद करके बढ़ेगा, रास्ते को जानेगा तो। सभी उसी रास्ते पर जा रहे हैं, लेकिन अंत में वे मार खाते हैं। साफ करने जाते हैं, शुद्ध करने जाते हैं लेकिन आज जो कुछ भी करने जाते हैं, एक बार उसी रूप हो जाते हैं। इसे समझ रहे हो क्या?

प्रश्नकर्ता : आपने वह जो *ठपका* (उलाहना, डपटना) देने को कहा था न, तो मुझे दो दिनों तक अंदर *ठपके* का ही चलता रहा। पूरे दिन वही चलता रहा इसलिए फिर मुझे एक तरफ दूसरी तरह का सफोकेशन होने लगा कि यह तो उसी रूप हो रहे हैं। खुद *ठपका* देने वाला बन गया।

दादाश्री : ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा हो गया था।

दादाश्री : ऐसा हो जाता है, सभी को ऐसा ही हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो अंदर मुझे वह खटक रहा था कि यह कुछ तीसरा ही हो गया। उसका पता नहीं चल रहा था।

दादाश्री : जो *ठपका* देता है उसे मैं देखता हूँ कि यह ठीक से *ठपका* दे रहा है या नहीं।

प्रश्नकर्ता : तब यह सार समझ में आया कि यह जो *ठपका* देता है, भूल निकालता है, प्रतिक्रमण करता है, वे सब एक ही हैं।

दादाश्री : वही का वही है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा सिर्फ लाइट देती है कि यह...

दादाश्री : वह देखती है। बस इतना ही है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह अपना प्रकाश दिखाती है, बस।

दादाश्री : सभी लोग उस प्रकाश में नहीं आ सकते। अतः रोज़-रोज़, ज़रा-ज़रा सा आते जाते हैं, ज़रा-ज़रा सा करते-करते बढ़ता जाता है न! वह प्रकाश, वह सब उसकी श्रद्धा में है लेकिन जब उदय आता है, उसके बाद वह दर्शन खड़ा होता है। उसके बाद फिर उसे ज्ञान अनुभव में आता है। अनुभव में आने के बाद फिर वर्तन में आता है। अभी तो दर्शन में आ रहा है। कभी ज़रा सा अनुभव में आ जाता है। तब उतना ही वर्तन में आता है।

प्रश्नकर्ता : कुछ समय अर्थात् चौबीस घंटों में से कितने मिनट और कितने सेकन्ड, उनमें से कितने सेकन्ड तक यह दर्शन और जागृति रहती है? और आप कहते हैं कि निरंतर रखना है। यह तो बहुत ही कम रहता है तो वह तो कुछ भी नहीं है न!

दादाश्री : वह नहीं रह पाएगा लेकिन ऐसे करते-करते आगे बढ़ेगा। निरंतर इतना *लक्ष* रहे तो भी बहुत हो गया!

चेतनभाव वाला पुद्गल

हम खुद को जो शुद्धात्मा कहते हैं न, तो यह जो बाहर वाला भौतिक भाग है न, जिसे *पुद्गल* कहते हैं, तो यह *पुद्गल* क्या कहता है कि 'हमारा क्या? अब आप शुद्धात्मा बन गए, लेकिन मुक्त नहीं हो सकोगे। जब तक हमारा निबेड़ा नहीं आएगा तब तक आप मुक्त नहीं हो सकोगे'। वह क्या कहता है कि 'जब तक हमें हमारी मूल स्थिति में नहीं लाओगे, तब तक हम आपको छोड़ेंगे नहीं क्योंकि हमारी मूल स्थिति को आपने ही खराब किया है। अब आप ही हमें हमारी मूल स्थिति में लाकर रख दो!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो अंदर हम से कहता है कि यह चमड़ी है, खून है, हड्डियाँ है, माँस है, यह पंचभूत से बना हुआ है उसका और हमारा क्या? भाई उससे क्या काम है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। चंदूभाई जीवित है। आप शुद्धात्मा हो और चंदूभाई जीवित है। यह सिर्फ खून-माँस और मवाद का पुतला नहीं है, यह जीवित है। निबेड़ा लाना पड़ेगा इसका तो!

प्रश्नकर्ता : हम किसी का खराब नहीं करते, व्यवस्थित है उस अनुसार होता रहता है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। यह क्या कहता है कि 'आपने हमें खराब किया है, आपने हमें विकृत बनाया। हम, जो *पुद्गल* परमाणु शुद्ध थे, प्योर थे, शुद्ध थे, आपने हमें अशुद्ध बनाया, इम्प्योर बनाया, विकृत बनाया'। 'आपने' भाव किए तभी विकृत हुए न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, *पुद्गल* के लिए भला, जड़ के लिए स्वकृति क्या और विकृति क्या?

दादाश्री : अंदर पावर चेतन है न! आप अलग हो और यह चेतनभाव वाला *पुद्गल* अलग है। *पुद्गल* में पावर चेतन है, वास्तविक चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* को खराब किसने किया।

दादाश्री : 'आपने' खुद ने जो भाव किए, वही भावकर्म! इसी से *पुद्गल* बन गया। यदि भावकर्म नहीं हुए होते तो यह *पुद्गल* उत्पन्न ही नहीं होता। *पुद्गल* को कोई लेना-देना नहीं है। वह बेचारा तो वीतराग ही है। 'आप' भाव करते हो इसलिए तुरंत ही उसका परिणाम आ जाता है। अतः जो परमाणु अशुद्ध हो चुके हैं, उन परमाणुओं को शुद्धता से शुद्ध करना है। इसके अलावा कुछ भी नहीं।

जितने डिस्चार्ज बाकी हैं, उतने अशुद्ध रहे हैं। उन्हें भी अगर देख-देखकर जाने दोगे तो शुद्ध होकर चले जाएँगे।

परमाणु शुद्ध करने हैं लेकिन किस प्रकार से?

हम शुद्धात्मा तो हो गए, अब हमारे पास काम क्या बचा कि ये क्या कह रहे हैं? चंदूभाई क्या कह रहे हैं? *पुद्गल* कहता है कि 'भाई, हम तो शुद्ध ही थे, आप हमें इस रूप में लाए, इसलिए हमें शुद्ध कर दो। हम जैसे थे वैसा'।

प्रश्नकर्ता : तो *पुद्गल* को शुद्ध करना है वापस?

दादाश्री : हाँ, जितना समभाव से *निकाल* करोगे न, उतना *पुद्गल* शुद्ध होकर चला जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे हम सभी डिस्चार्ज का समभाव से *निकाल* करते जाएँगे, वैसे-वैसे सभी *पुद्गल* परमाणु पवित्र होते जाएँगे?

दादाश्री : बस, वे शुद्ध हो ही जाएँगे। पवित्र नहीं, शुद्ध! पवित्र हुए और अपवित्र हुए ऐसा नहीं, लेकिन प्योर, उनके मूल फोर्म में!

प्रश्नकर्ता : यह जो बिगड़े हुए परमाणुओं को शुद्ध करके देना पड़ता है, तो वह किस प्रकार से?

दादाश्री : कोई गालियाँ दे और हम समता रखें तब उस क्षण सभी परमाणु शुद्ध हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : फिर अगर समता नहीं रहे तो क्या वे परमाणु वापस अशुद्ध ही रहेंगे?

दादाश्री : यदि नहीं रखेगा तो उतने बिगड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : और फिर अगर प्रतिक्रमण कर लें तो?

दादाश्री : फिर भी बिगड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से धुल जाता है न?

दादाश्री : कचरा रह जाता है। समता जैसा शुद्ध नहीं हो पाता! जो-जो आए, उसे हमें शुद्ध करके निकालना है। एक साथ शुद्ध नहीं हो सकेगा। जितना आएगा, वैसे-वैसे! दिन उगने के बाद जितना आए उतना शुद्ध। पाँच आज्ञा से सब शुद्ध हो जाएगा। फाइलों का समभाव से *निकाल* करने से सब शुद्ध हो जाएगा। शुद्ध स्थिति में कब रखा जा सकता है कि जब डिस्चार्ज होते समय उन्हें 'देखकर' जाने देंगे तो शुद्ध हो जाएँगे। चार्ज करते समय राग-द्वेष किए थे इसलिए अशुद्ध हो गए और अगर डिस्चार्ज करते समय 'देखकर' अर्थात् वीतरागता से जाने दोगे तो शुद्ध हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन *पुद्गल* का क्या करना है? असल वस्तु तो आत्मा है!

दादाश्री : कुछ भी नहीं। आपका ज्ञायक स्वभाव मत छोड़ना। क्या हो रहा है उसे देखते रहो, ज्ञेय को। *पुद्गल* ज्ञेय है और आप ज्ञायक हो। मन में जो विचार आते हैं, वे सभी ज्ञेय हैं और आप ज्ञायक हो। वे विचार अच्छे हैं या बुरे, वह आपको नहीं देखना है। वे ज्ञेय हैं इसलिए आपको तो उन्हें देखना है। देखने से वे स्वच्छ होकर चले जाते हैं। उन्हें शुद्ध करने की ज़रूरत है। हम शुद्ध हो गए हैं लेकिन उन्हें शुद्ध करेंगे तभी हम मुक्त हो सकेंगे, बस! वे फाइलें हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने शुद्धात्मा बताया। अब उसके लिए अन्य कुछ तो रहा नहीं न।

दादाश्री : अपना खुद का नहीं रहा लेकिन यह पिछली गुनहगारी बाकी रही न!

प्रश्नकर्ता : उसे भोग लेंगे, उसमें हर्ज नहीं है। अगर उदय में ऐसा कुछ होगा तो भोग लेंगे।

दादाश्री : नहीं। सिर्फ भोग लेने से ही नहीं चलेगा। भोगना है, उसे तो आप भोग लोगे लेकिन फिर अगर उसका *निकाल* नहीं होगा, तो उसका निबेड़ा नहीं आएगा। तब वे क्या कहते हैं कि हर एक *पुद्गल* को 'देखकर' जाने दो कि आप ज्ञायक हो और वह *पुद्गल* ज्ञेय है। यदि आप ज्ञायक-ज्ञेय का संबंध रखोगे, तब वे ज्ञेय शुद्ध होकर चले जाएँगे। ज्ञेय अर्थात् *पुद्गल।* जो अस्वच्छ हैं, वे स्वच्छ होकर चले जाएँगे। अतः जितने-जितने स्वच्छ होकर चले गए, उतनी फाइलों का *निकाल* हो गया। शुद्ध करने से परमाणु विश्रसा हो जाते हैं। *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) रहता है, बंध नहीं होता। हालांकि विश्रसा तो जीवमात्र में हो ही रहा है लेकिन उनमें बंध डालकर विश्रसा हो रहा है, जबकि यहाँ पर बिना बंध पड़े संवरपूर्वक विश्रसा होता है।

साबुन भी खुद और कपड़ा भी खुद

प्रश्नकर्ता : उस समय वह ऐसा तो सोचेगा न कि अभी तक ऐसा ही मानकर चले थे कि यह जो *पुद्गल* है वही 'मैं हूँ', वह भी मेरी भूल है। 'भाई, अब मैं भूल सुधार रहा हूँ। और तेरे साथ ही संयोग हुआ है तो मेहरबानी करके अब तू संयोग छोड़ दे!' इसके अलावा और क्या है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। वह क्या छोड़ेगा? बेचारा पावर चेतन! किस प्रकार से कितना कर पाएगा? वह कैसे छोड़ सकेगा? हमारे देखने से वह छूट ही जाएगा। एक-एक धागा छूटता जाएगा। उसमें भी अगर ऐसे लाख धागे होंगे, तो वे लाख भी छूटते जाएँगे और फिर से नहीं बंधेंगे। हम मुक्त हो जाएँगे। धागा धागे के घर गया, हम अपने घर गए! उसमें फिर क्या बाकी रहा?

प्रश्नकर्ता : तो हमें जो यह सब बोलना है, वह अपने *पुद्‌गल* को शुद्ध करने के लिए ही बोलना है न?

दादाश्री : यह सब *पुद्‌गल* को शुद्ध करने के लिए ही है। हाँ, तब तक दशा पूर्ण नहीं होगी। दादा ने हमें शुद्ध बनाया है, अब इस *पुद्‌गल* का शुद्धिकरण बाकी है। उसका अशुद्ध होना बंद हो गया है। अब अभी अगर ऐसा शुद्धिकरण हो न, तो एक जन्म तक चले ऐसा है। आज्ञा में रहने से शुद्धिकरण होता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : यह पूरा साइन्स *पुद्‌गल* को शुद्ध करने के लिए ही है न? आज्ञारूपी जो ये पाँच वाक्य हैं या फिर यह जो सारा विज्ञान है, वह *पुद्‌गल* को शुद्ध करने के लिए ही है न? आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है।

दादाश्री : मूलतः तो हमें *पुद्‌गल* को भी शुद्ध करने की (यानी कर्तापन की क्रिया की) भी कोई ज़रूरत नहीं है। हमें, अपनी जो शुद्ध दशा (ज्ञाता-दृष्टा) है, उसमें अगर हम अशुद्धि (मैं कर्ता हूँ) नहीं मानेंगे तब *पुद्‌गल* तो शुद्ध हो ही जाएगा। *पुद्‌गल* तो अपने आप शुद्ध होता ही रहेगा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन अशुद्धि तो *पुद्‌गल* की ही है न?

दादाश्री : जगत् भला कभी *पुद्‌गल* को अशुद्धि मानता होगा? पूरा जगत् ऐसा मानता है कि अशुद्धि आत्मा की ही है। कहते हैं कि 'मेरा आत्मा ही पापी है'। *पुद्‌गल* की अशुद्धि को लोग समझते ही कहाँ हैं? उसे आप समझे? *पुद्‌गल* में यदि दखलंदाज़ी नहीं होगी न तो यह तो स्वच्छ होता ही रहेगा लेकिन यह दखलंदाज़ी करता है। दखल करता है और फिर गड़बड़ हो जाती है! दखलंदाज़ी कौन करता है? तो वे हैं अज्ञान मान्यताएँ!

प्रश्नकर्ता : आप *पुद्‌गल* से जो कह रहे हैं, मैं सुन रहा हूँ।

दादाश्री : अज्ञानता *पुद्‌गल* में थी। ये शब्द उन आवरणों को तोड़

देते हैं, शब्द भी *पुद्गल* हैं। मैला भी खुद करता है, साबुन भी खुद है और कपड़ा भी खुद है और अंत में खुद ही स्वच्छ हो जाता है।

दादा करते हैं सीधा खुलासा

ऐसा कहने वाले सिर्फ ये दादा ही मिले हैं दूसरा कोई नहीं मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : ये दादा के सीधे खुलासे हैं।

दादाश्री : लेकिन इसे समझने में बहुत देर लगेगी।

प्रश्नकर्ता : वह तो, अंतिम बात तो अलग ही है!

दादाश्री : ये शब्द तो वही के वही हैं, लेकिन यह अंतिम बात है! यह पद्धति और तरीका एक ही वाक्य में आ सकें ऐसा नहीं है। मैं समझ गया हूँ और एक्ज़ेक्ट उसी तरह से यह बता रहा हूँ। बैठे-बैठे देखकर और वह आपके समझने के लिए बता रहा हूँ। यह तो, मैं जो देख चुका हूँ, वही आपको बता रहा हूँ। अतः वह सब पोइन्ट्स को भली-भांति समझते हैं लेकिन अभी तो अंदर बहुत कुछ समझना बाकी है, काफी कुछ बाकी है।

ज्ञान की खान में से अनमोल रतन

कभी-कभी बात निकल जाती है, बहुत नोट करने योग्य बात होती है। यों लगती है एकदम सरल सीधी लेकिन यह बात नोट करने जैसी होती है। तब हम भी कहते हैं कि इस रत्न की खान में से यह बहुत कीमती रत्न निकला।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा! बहुत सुंदर बात कही। सारी उलझनें ही निकल गई। आजकल जो आपकी वाणी निकलती है न, वे बातें एकदम से जुदा रखने की ही बातें होती हैं और अंतिम साइन्स की बातें।

दादाश्री : हाँ, अंतिम।

प्रश्नकर्ता : अहंकार का स्थान, उत्पत्ति, किस प्रकार से अलग

रखना है, प्रज्ञा क्या करती है, अब दादा उससे भी आगे की स्पष्टता करते जा रहे हैं।

दादाश्री : समझ में आ गया है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा, आप बहुत साफ-साफ, स्पष्टता से समझा रहे हैं। दादा अगर अब भी नहीं समझेंगे तो हमारे जैसा मूर्ख इस जगत् में कोई भी नहीं कहलाएगा।

दादाश्री : नहीं। बाद में मिलेगा ही नहीं यह...

प्रश्नकर्ता : नहीं मिलेगा।

दादाश्री : इतने बड़े समुद्र में यह रत्न फिर से नहीं मिलेगा, अगर खो गया तो...

प्रश्नकर्ता : दादा, मुझे तो आज ऐसा लग रहा था कि हम कितने मूर्ख हैं! हमें हमारा स्वच्छ करने की बिल्कुल भी नहीं पड़ी है। दादा को ही रात-दिन हमारा यह सब स्वच्छ करने की पड़ी है।

दादाश्री : और नहीं तो क्या? हमारी इच्छा ऐसी है न कि हमारे लिए कुछ भी किया हो, उसने हमें चाय पिलाई हो, तो उसे भी लाभ हो।

[4]

ज्ञान-अज्ञान

मूलभूत भेद, ज्ञान-अज्ञान में

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और अज्ञान के बीच में बेसिक फर्क क्या है?

दादाश्री : अज्ञान भी ज्ञान है। अज्ञान कोई अन्य चीज़ नहीं है। ऐसा कुछ अँधेरा नहीं है। वह भी प्रकाश है लेकिन वह पराई चीज़ें दिखाने वाला प्रकाश है, विशेष प्रकाश है, विशेष उजाला है। बाहर की चीज़ों को बताने वाला प्रकाश है जबकि ज्ञान खुद को प्रकाशित करता है व औरों को भी प्रकाशित करता है। दोनों को ही प्रकाशित करता है। और अज्ञान तो, यह नहीं जानने देता कि, 'खुद कौन है?' ऐसा अनुभव नहीं होने देता और ज्ञान तो खुद को जानने देता है।

आपको जो ज्ञान है न, वह ज्ञान पौद्‌गलिक ज्ञान है। वह एक प्रकार का ज्ञान है लेकिन अज्ञान है। इसलिए वह सुख नहीं देता और स्वाभाविकता नहीं आ पाती।

इस जगत् का जो ज्ञान है, वह तो एक प्राकृतिक ज्ञान है, उसे अज्ञान कहा जाता है लेकिन फिर भी अज्ञान को भी ज्ञान कहा है भगवान ने। इस जगत् के लोगों में अज्ञान है, वह किसके सापेक्ष? तो आत्मा के ज्ञान के आधार पर यह अज्ञान है लेकिन दुनिया के लोगों के लिए तो वह ज्ञान ही कहलाएगा न! यह ज्ञान ही कहलाएगा न कि 'ये मेरे ससुर हैं!' नहीं कहलाएगा? कहलाएगा, लेकिन वह प्राकृतिक ज्ञान है, बुद्धिजन्य ज्ञान है, वह विशेष ज्ञान है और मोक्ष के लिए काम का नहीं है। उस अपेक्षा से उसे अज्ञान कहा गया है वर्ना लोगों को ऐसा नहीं कह सकते

न कि अज्ञान है! हम कोर्टों में ये सारे केस चलाते हैं तो फिर हम उसे अज्ञान नहीं कह सकते न! लेकिन मोक्ष हेतु से यह अज्ञान है। बुद्धि को भी अज्ञान में ही डाल दिया है।

आत्मा खुद ही ज्ञान स्वरूप है, अन्य कोई कल्पित चीज़ नहीं है वह। और ज्ञान कभी भी अज्ञान नहीं बन जाता, ज्ञान ज्ञान ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : आवरण आ जाता है।

दादाश्री : हाँ, आवरण आने से वह विशेष ज्ञान बन जाता है लेकिन वह ज्ञान ज्ञान ही है।

अतः जब मूल ज्ञान, शुद्ध ज्ञान होगा तभी मोक्ष है और शुद्ध ज्ञान ही आत्मा है, वही मोक्ष है, वही स्वाभाविक सुख है।

संसार का जो सारा ज्ञान है, वह विशेष ज्ञान है, आत्मा के मूल ज्ञान के आधार पर यह अज्ञान है लेकिन सांसारिक लोग इसे ज्ञान कहते हैं और फिर इसका भी अज्ञान, वह अलग चीज़ है। यह सांसारिक ज्ञान भी जिसे नहीं आता है, उसका भी फिर अज्ञान।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है। हम यह जो उदाहरण देते हैं न कि कढ़ी बनाना तो आता ही नहीं, इसका अज्ञान है उसे।

दादाश्री : उसे अज्ञान कहा गया है। मूल रूप से तो यह खुद ही अज्ञान है, लेकिन फिर उसे ज्ञान कहा गया है। देखो इन लोगों का पगड़ी पहनने का ठिकाना है? कैसे भी पगड़ी बाँध लेते हैं इसके बजाय इन लोगों से कहना चाहिए कि 'भाई अब पगड़ी नहीं पहननी है। हम चले अपने गाँव'।

जिसमें छाया न पड़े ऐसा उजाला

प्रश्नकर्ता : आपने जो कंडिशन रखी है न दादा, कि अज्ञान जाएगा तो ज्ञान हो जाएगा?

दादाश्री : हाँ, अज्ञान हटेगा तो ज्ञान होगा। अँधेरे की चाहे

जितनी भी स्लाइस की जाएँ तो क्या एक भी उजाले वाली निकलेगी?! वह तो अँधेरे वाली ही निकलेगी। लोग इस आशा से स्लाइस करते जाते हैं कि ज़रा सा कुछ उजाला निकलेगा, तो इसका कोई मीनिंग ही नहीं है न। अज्ञानता की आप चाहे जितनी भी स्लाइस करो, उसमें ज्ञान नहीं होगा।

और ज्ञान हमेशा सुख देता है, अज्ञान दु:ख देता है। इस प्रकार जब तक ज्ञान और अज्ञान दोनों एक साथ हैं, तब तक सांसारिक है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा हो सकता है कि अज्ञान न जाए लेकिन फिर भी ज्ञान हो जाए?

दादाश्री : ऐसा नहीं हो सकता। अँधेरा निकल नहीं पाता और उजाला हो नहीं पाता। ज्ञान उजाला है।

प्रश्नकर्ता : यों ही उदाहरण दे रहा हूँ। यहाँ बैठे हैं, यहाँ पर उजाला है, और सामने अँधेरा है। अर्थात् अँधेरा हो सकता है, अज्ञान हो सकता है। अज्ञान भले ही रहे लेकिन अगर ज्ञान हो जाए तो इस अज्ञान का कोई इफेक्ट नहीं रहेगा।

दादाश्री : ज्ञान उसी को कहते हैं कि जहाँ अँधेरा रह ही न सके। यह प्रकाश ऐसा है कि इसमें अगर आम रखा जाए तो आम की परछाई पड़ेगी, उसमें परछाई नहीं पड़ती। आत्मा का प्रकाश ऐसा है कि परछाई नहीं पड़ती किसी चीज़ की। अर्थात् इस प्रकाश में आप आकार बता सकते हो कि 'देखो वहाँ अँधेरा है'। जबकि आत्मा के प्रकाश में अँधेरा नहीं रह सकता, वह तो प्रकाश है, प्रकाश यानी प्रकाश।

ज्ञान कौन लेता है?

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह किसे होता है? जड़ को तो नहीं होता!

दादाश्री : जिसे अज्ञान है उसी को होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अज्ञान के साथ चैतन्यता है।

दादाश्री : नहीं। जिसे अज्ञान है उसे होता है। वह कहता है, 'मैं', अज्ञानी 'हूँ' तो 'उसे', ज्ञानी बना देते हैं!

प्रश्नकर्ता : ये ज्ञान किसे लेना होता है?

दादाश्री : जो भटक गया है न, उसे ज्ञान लेने की ज़रूरत है। कौन भटक गया है, वह ढूँढ निकालेंगे न तो पता चल जाएगा हमें। भुगत कौन रहा है? जो भटक गया है, वह। भुगतना अच्छा नहीं लगता इसलिए गुरु ढूँढता है कि 'भाई रास्ता बताओ न! मुझे स्टेशन जाना है। मुझे जहाँ जाना है, वहाँ जाने का रास्ता नहीं मिल रहा है'। मिल गया या नहीं मिला आपको? नहीं मिला?

प्रश्नकर्ता : वास्तव में क्या अज्ञानता होती है?

दादाश्री : वास्तव में अज्ञानता है ही नहीं। रियालिटी में रिलेटिव नहीं होता। यह क्यों पूछना पड़ा? वास्तविक तो उसी को कहते हैं कि जहाँ पर कहीं कोई भी घोटाला न हो।

प्रश्नकर्ता : तो फिर हम जो ये ज्ञान दे रहे हैं, वह किसे दे रहे हैं? किसलिए दे रहे हैं।

दादाश्री : हाँ, यह जो ज्ञान दे रहे हैं न, तो जो भटक गया है, उसे दे रहे हैं। 'भाई ऐसे नहीं, ऐसे चल।' वह उस स्टेशन पर पहुँचेगा तो फिर ज्ञान प्रकट हो जाएगा। वास्तविकता में आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कौन भटक गया है?

दादाश्री : वही, जो भुगतता है वही!

प्रश्नकर्ता : हम कहते हैं कि सब में आत्मा, परमात्मा हैं तो फिर क्या उसे ज्ञान प्राप्त करने या भटकने जैसा कुछ रहता है?

दादाश्री : नहीं, उसे कोई ज़रूरत ही नहीं है लेकिन अगर वह यह कहे कि 'मुझे अब किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है', हमेशा ऐसा

कहे, हमेशा ऐसा ही रहे तो कोई ज़रूरत नहीं है लेकिन वह तो फिर दूसरे ही दिन कहता है, 'मुझे चिंता हो रही है, मुझे क्रोध हो रहा है, मुझे लोभ हो रहा है'। अतः जो दुःखी है, उसे दुःख से मुक्त करवाने के लिए कर रहे हैं! बाकी 'आप' तो मुक्त ही हो लेकिन आपकी समझ में ऐसा घुस गया है कि आप दुःखी हो। भूत घूस गया है, सिर्फ भूत ही है, उस भूत को निकालना है।

हम रात को यहाँ पर सोए हुए हों और अगर दिन में भूत की बातें सुनी या पढ़ी हों और रात को अकेले सोए हुए हों, तब पास वाले रूम में अगर प्याला खड़के, चूहा खड़का दे, तो रात को साढ़े बारह बजे हमारे मन पर उसका असर हो जाता है कि 'भूत आया'। तब डर के मारे देखने भी नहीं जाते। पूरी रात वेदन करते रहते हैं और सुबह उठते ही जब पता लगाते हैं तो पता चलता है कि चूहे ने किया था।

अगर वह भूत छः घंटों के लिए इतना परेशान करता है तो यह जो अज्ञानता का भूत घुस गया है, वह अनंत जन्मों तक परेशान करता है। वर्ना आप तो मुक्त ही हो। आपको कोई बंधन है ही नहीं लेकिन आप पर वैसा असर होना चाहिए। वैसा अनुभव होना चाहिए।

और सभी संत पुरुष बताते हैं। क्या बताते हैं? 'कान पकड़ो!' 'अरे भाई, इससे तो दम निकल जाता है। मेरा हाथ दुःख रहा है न! यों पकड़वाओ न सीधा।' तो सीधा नहीं पकड़वाते क्योंकि उन्होंने खुद ने ही टेढ़ा पकड़ा हुआ है। मैंने तो सीधा पकड़ा हुआ है इसलिए सीधा पकड़वा देता हूँ। क्योंकि मैं देखकर बताता हूँ। दुनिया के सभी संत नीचे रहकर सोचकर बताते हैं जबकि मैं ऊपर रहकर बिना सोचे आँखें मीचकर बताता हूँ क्योंकि यह सब मैंने अनुभव किया है और ऊपर पहुँच चुका हूँ। ऊपर चढ़कर यह सब बता रहा हूँ जबकि लोग नीचे रहकर वर्णन करते हैं। उसी से मार खिलवाई है न सारी।

सही गाइड मिला होता तो यह दशा ही नहीं होती न! जप करवाए, तप करवाए, अरे भाई किसलिए यह सब खेत जुतवाए? खेत जोता उसके

लिए वापस दंड मिलता है। उसे देखने और जानने आना पड़ेगा न! वापस खाने जाना पड़ेगा और वापस बोने जाना पड़ेगा। निरी *उपाधि*, *उपाधि* और *उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख)। आधि-व्याधि-*उपाधि* से मुक्त ऐसा आत्मा, निरंतर समाधि स्वरूप है!

इसमें 'खुद' कौन है?

'खुद' खुद की अज्ञानता से बंधता है। 'खुद' खुद के ज्ञान से ही छूट जाएगा। आत्मा तो ज्ञान वाला ही है लेकिन अगर 'यह' ज्ञान वाला बन जाए तो दोनों अलग हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो आप 'इसे' ज्ञान वाला बनाते हैं?

दादाश्री : हाँ, तो और किसे? आत्मा तो आज भी ज्ञानी ही है न!

प्रश्नकर्ता : तो क्या आवरण चले जाते हैं?

दादाश्री : आवरण चले जाते हैं बस। ये जो आवरण हैं, वे चले जाते हैं, तो व्यक्त हो जाता है। जो अव्यक्त है वह व्यक्त हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो आप जब ज्ञान देते हैं तो ज्ञानी कौन बनता है?

दादाश्री : जो अज्ञानी है, वही ज्ञानी बनता है। आत्मा तो ज्ञानी ही है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानी कौन है?

दादाश्री : यह जो बंधा हुआ है और जो कहता है कि 'यह मैं हूँ और यह मेरा है, मुझे दुःख है', वह अज्ञानी है।

प्रश्नकर्ता : तो दूसरी भाषा में ऐसा कहा जाएगा न कि आप अशुद्ध चेतन को चेतन बनाते हैं?

दादाश्री : हाँ, अशुद्ध चेतन को शुद्ध बना देते हैं। जो अशुद्ध चेतन है, वह मूल चेतन नहीं है, वह पावर चेतन है। हम उसे शुद्ध बना देते हैं। वह जब संपूर्ण शुद्ध हो जाता है तो दोनों अलग हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा बोलने से यह जो पावर चेतन है उसका पावर बढ़ता जाता है?

दादाश्री : नहीं, जो उल्टा पावर था वह सीधा हो जाता है। अज्ञान पावर था इसलिए उल्टा कर रहा था, उसके बजाय वह सीधा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : उल्टा पावर किसे रहता है?

दादाश्री : वह अहंकार में है। जो अज्ञानी व्यक्ति होता है न, वह सबकुछ उल्टा ही करके आता है। और जब हम ज्ञान देते हैं उसके बाद फिर किसी ने उल्टा किया हो तो भी वह सीधा कर आता है क्योंकि उसकी समझ सीधी हो गई है।

अहंकार किस तरह खत्म करना है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा स्वभाव से केवलज्ञान स्वरूप होने के बावजूद भी वर्तमान में अज्ञानी के रूप में क्यों व्यवहार करता है?

दादाश्री : वह लोकसंज्ञा से व्यवहार करता है। यह नहीं जानने की वजह से कि सुख किसमें है, उसने भौतिक में, बाहरी चीज़ों में सुख मान लिया है इसलिए अज्ञान खड़ा हो गया। जब पता चलता है कि आत्मा में ही सुख है तो बाहर नहीं ढूँढता, तब ज्ञान उत्पन्न होता है। अतः फिर बाहर ढूँढना बंद कर देता है। खुद के स्वभाव में अपार सुख है जबकि बाहर तो सारा कल्पित है। हम कल्पना करें, तभी सुख आता है, वर्ना न भी आए।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान स्वरूप होने के बावजूद भी वह कहाँ पर भूल कर बैठा है?

दादाश्री : नहीं, उसने भूल नहीं की है। वह केवलज्ञान स्वरूप ही है। यह तो, विज्ञान से अहंकार खड़ा हो गया है। वह खुद तो अंदर ही है। अंदर तो खुद केवलज्ञान स्वरूप ही है। वह बिगड़ता भी नहीं

और सुधरता भी नहीं। उसमें कोई बदलाव नहीं आता। जैसे ये लोग सूर्यनारायण की उपस्थिति में काम करते हैं, उसी प्रकार अंदर यह सारा काम चल रहा है। यह सब आत्मा की उपस्थिति से चल रहा है। अब जब आपका सारा अहंकार विलय हो जाएगा, खत्म हो जाएगा तब फिर 'वही' मुक्त हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अहंकार को कैसे विलय करें?

दादाश्री : यहाँ मेरे पास आओगे तो दो घंटों में विलय कर दूँगा। बहुत सारे लोगों का अहंकार विलय कर दिया है।

अज्ञान का प्रेरक कौन?

प्रश्नकर्ता : यह संसार अज्ञान से खड़ा हो गया है तो अज्ञान का प्रेरणा बल कौन है?

दादाश्री : संयोग।

प्रश्नकर्ता : और ज्ञान का प्रेरणा बल कौन है?

दादाश्री : ज्ञान का कोई प्रेरणा बल है ही नहीं इस दुनिया में। सबकुछ संयोगों से ही होता है। संयोगों से ही अज्ञान उत्पन्न होता है। संयोगों से ज्ञान होता है। ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है यह।

जगत् का अधिष्ठान

प्रश्नकर्ता : क्या यह संसार अज्ञान से खड़ा हो गया है?

दादाश्री : हाँ, अज्ञान से। वह भी सिर्फ स्वरूप का अज्ञान। ज्ञान जब विशेष ज्ञान बन जाता है, उसी को अज्ञान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें पूछा गया है कि 'अधिष्ठान अर्थात् जिसमें से वस्तु उत्पन्न हुई, जिसमें वह स्थिर रही और जिसमें वह लय हो गई'। इस परिभाषा के अनुसार जगत् का अधिष्ठान समझाइए।

दादाश्री : यह सबकुछ किसमें से उत्पन्न हुआ है? अर्थात् विभाविक आत्मा, प्रतिष्ठित आत्मा में से उत्पन्न हुआ है और वापस उसी में लय हो जाता है और उसी में से वापस उत्पन्न होता है और उसी में लय हो जाता है। इससे मूल आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा की सिर्फ विभाविक दृष्टि उत्पन्न हो गई है। अत: बिलीफ बदल गई है। अन्य कुछ भी नहीं बदला है। ज्ञान भी नहीं बदला है और चारित्र भी नहीं बदला है। आत्मा का चारित्र एक क्षण भर के लिए भी नहीं बदलता। जब नर्क में जाता है तो वहाँ भी आत्मा अपने खुद के चारित्र में ही रहता है। और यह प्रतिष्ठित आत्मा खुद के नर्क के चारित्र में रहता है। प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् प्रतिष्ठा की हुई चीज़। 'हम' मूर्ति में प्रतिष्ठा करते हैं न? फिर वह प्रतिष्ठा फल देती है। एक्ज़ेक्टनेस है।

स्वरूप का अज्ञान है इसका मतलब स्वरूप में कुछ इधर-उधर नहीं हो गया है। तेरा 'मैं'पना बदल गया है। 'वह' चाहे किसी के भी धक्के से बदला या एनी वे बदला, लेकिन एक्ज़ेक्ट बदला है अत: जब वह 'मैं'पना अपनी मूल जगह पर आ जाएगा तो काम हो जाएगा। इसमें कुछ भी नहीं है। अस्तित्व तो है ही लेकिन तुझे वस्तुत्व का भान नहीं रहा। अत: अगर तेरा वह भान वापस आ जाए तो तू उसी रूप है। यदि आत्मा को फिर से सुधारना पड़ता तब तो किसी का भी नहीं हो पाता। जबकि लोग तो इसे ऐसा समझते हैं कि इसे सही कर दें। 'वे सब इसी दखल में पड़ गए हैं कि उसे स्थिर करेंगे तो उसकी चंचलता चली जाएगी।'

दोनों का आदि विज्ञान

प्रश्नकर्ता : अब यह जो ज्ञान या अज्ञान है, इन दोनों का आदि क्या है?

दादाश्री : दोनों का आदि विज्ञान है। मूल आत्मा, विज्ञानमय आत्मा। उसमें से यह ज्ञान और अज्ञान, धूप और छाँव, दोनों शुरू हो गए। उसे साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिलते गए इसलिए

क्रोध-मान-माया-लोभ खड़े हो गए। उनमें से क्रोध और मान से 'मैं' बना और लोभ और कपट से 'मेरा' बना।

प्रश्नकर्ता : ये जो व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो गए हैं, क्या इसलिए अज्ञान उत्पन्न हो गया?

दादाश्री : व्यतिरेक गुण ही अज्ञान हैं। अगर वे नहीं होते तो कुछ भी नहीं है। इन दोनों के मिलने से ही खड़ा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : विज्ञान में से ज्ञान और अज्ञान कैसे उत्पन्न हुए?

दादाश्री : यह विज्ञान अर्थात् आत्मा। ये छः वस्तुएँ इकट्ठी हो गई, इन छः में से एक आत्मा भी है, इन छः वस्तुओं का समसरण होता रहता है, निरंतर परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन में वे मिलते हैं, उसी से ये सारे व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो गए।

अतः इन छः वस्तुओं के मिलने से, व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो गए और व्यतिरेक गुणों से ही यह पूरा संसार बना है। छः वस्तुओं को अलग करने पर व्यतिरेक गुणों के खत्म होते ही यह सबकुछ खत्म हो जाएगा।

अहंकार की उत्पत्ति

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर यह अहंकार नहीं होता तो आत्मशोध किस तरह से हो पाती? सापेक्ष तो है ही न कुछ?

दादाश्री : वह होता या नहीं होता, यह तो अज्ञानता का स्वभाव है कि अज्ञानता के बिना अहंकार खड़ा ही नहीं रहता। जब तक अज्ञानता थी तब तक हमें भी अहंकार था।

प्रश्नकर्ता : अहंकार कहाँ से आया और किसे आया?

दादाश्री : 'कहाँ से आया और कब', ऐसा नहीं है। जो यह सब भुगत रहा है, वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार किसे हुआ?

दादाश्री : जिसे नासमझी है, उसे। अज्ञान को अहंकार हो गया।

प्रश्नकर्ता : किस चीज़ का अज्ञान?

दादाश्री : दो चीज़ें। अज्ञान और ज्ञान। ज्ञान अर्थात् आत्मा और अज्ञान अर्थात् अनात्मा। उसे अहंकार हो गया, अज्ञान को। अतः अहंकार आने की वजह से यह सब हो गया। उस कारण रात-दिन चिंता और परेशानी, संसार में अच्छा नहीं लगता तो भी पड़े रहना पड़ता है। कहाँ जाए लेकिन? कहाँ जा सकता है? वहीं के वहीं। इसलिए यहाँ पर खटिया पर सोते रहना पड़ता है न! नींद नहीं आए फिर भी।

प्रश्नकर्ता : अहंकार कहाँ से उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : अहंकार ही अज्ञान है न! अज्ञान और ज्ञान दो अलग चीज़ें हैं। मान लीजिए यहाँ पर अगर कोई बड़े सेठ आते हैं, वे सेठ बहुत अच्छी बातें करते हैं लेकिन कोई अगर उन्हें आधा रतल ब्रान्डी पिला दे तो फिर वे कैसी बातें करेंगे?

प्रश्नकर्ता : ब्रान्डी का संयोग हो जाने से बात बदल जाएगी।

दादाश्री : नहीं। ये संयोग मिले हैं न, इसलिए ऐसा सब हो गया। ज्ञान स्वरूप को संयोग मिल गया इसलिए भ्रांति उत्पन्न हो गई। जैसे कि वह सेठ ऐसा कहता है न, कि 'मैं तो विजयश्री जी महाराजा हूँ, ऐसा हूँ, वैसा हूँ', कहता है...

प्रश्नकर्ता : दादा! तो ज्ञान कहाँ से उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : ज्ञान तो उत्पन्न होता ही नहीं है न! ज्ञान तो परमानेन्ट वस्तु है। बाहर की वस्तुओं की वजह से अज्ञान उत्पन्न हो गया है। जैसे कि सेठ ने मदिरा पी ली न, संयोग से। अतः जब सारे संयोगों से छूट जाएगा तो पूरी तरह मुक्त हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : भाव किया तो वह अज्ञान का संयोग हो गया न उसे?

दादाश्री : भाव से कोई लेना-देना नहीं है। अज्ञान का संयोग

नहीं मिलता। दूसरे संयोग मिलते हैं। मदिरा पी ली न? अज्ञानता ही अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो मूल प्रकाश है, अनंत शक्ति वाला है तो उसमें यह अहंकार कहाँ से आ जाता है?

दादाश्री : उसमें कहाँ से आता है? अज्ञानता खुद ही अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : अगर आवरण आ जाए तो भी हर्ज क्या है? वह खुद तो जानता ही है न कि 'मैं प्रकाश हूँ'।

दादाश्री : उससे कुछ नहीं होगा। अहंकार को क्या लाभ है? जब तक अहंकार को मीठा नहीं लगता तब तक वह यह नहीं कहेगा कि 'यह शक्कर है' अतः अहंकार का निबेड़ा लाना है। आत्मा का निबेड़ा तो है ही।

ज्ञान, स्व-पर प्रकाशक

प्रश्नकर्ता : आपको आत्मा की अनुभूति हुई, आत्मा का ज्ञान हुआ। अब आप औरों को आत्मा का ज्ञान देते हैं क्योंकि दादा खुद आत्मज्ञानी हैं न! लोगों को आत्मा-अज्ञानी मानकर देते हैं या ज्ञानी मानकर?

दादाश्री : अज्ञानी मानकर।

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो व्यापक है, एकरूप है।

दादाश्री : नहीं! उस आत्मा को तो हम देखते हैं और अज्ञानी को भी देखते हैं। दोनों को अलग-अलग देखते हैं। जिसे क्रोध-मान-माया-लोभ और जलन है, वह अज्ञानी है और जिसे जलन नहीं है, वह ज्ञानी है।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब यह हुआ कि जागृति इस अज्ञान के ज्ञान को भी जानती है। अतः ज्ञानी उन दोनों का दृष्टा बनता है, अज्ञान के ज्ञान का और ज्ञान के ज्ञान का।

दादाश्री : दोनों का। ज्ञानी दोनों को जानता है। स्व-पर प्रकाशक। स्व अर्थात् ज्ञान को जानता है और पर अर्थात् अज्ञान को जानता है, खुद स्व-पर प्रकाशक है इसलिए इसमें कोई कमी नहीं रहती। और अज्ञानी सिर्फ पर को ही प्रकाशित करता है, वह स्व को प्रकाशित नहीं करता।

ज्ञान सहज है, सोचा हुआ नहीं

सोचने से, जो-जो कर्म सोचकर किए जाते हैं, उनसे अज्ञान उत्पन्न होता है और निर्विचार से ज्ञान उत्पन्न होता है। वह सहज होता है! सोचे हुए को ज्ञान नहीं कहते। विचार अर्थात् वह सारा मृत ज्ञान कहलाता है और यह जो सहज है, वह विज्ञान कहलाता है। वह चेतन होता है, कार्यकारी होता है और सोचा हुआ सारा ही अज्ञान कहलाता है, ज्ञान नहीं कहलाता और वह क्रियाकारी नहीं होता, परिणामित नहीं होता। फिर कहते हैं कि 'मैं जानता हूँ लेकिन हो नहीं पाता, मैं जानता हूँ लेकिन हो नहीं पाता'। अपने आप गाता रहता है। आपने ऐसा कुछ सुना है किसी व्यक्ति को ऐसा कहते हुए?

प्रश्नकर्ता : कई लोग ऐसा कहते हैं।

दादाश्री : सभी कहते हैं, यही कहते हैं। जाना हुआ अवश्य होना ही चाहिए और यदि नहीं होता है तो समझना कि इसने जाना ही नहीं। और सोचा हुआ ज्ञान, ज्ञान नहीं कहलाता। वह तो जड़ ज्ञान कहलाता है। जो जड़ विचारों में से उत्पन्न होता है, वह तो जड़ है। विचार ही जड़ हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान सहज रूप से आता है या सहज रूप से होता है, तो उसका क्या कारण है?

दादाश्री : उसने पहले पिछले जन्मों का जो सारा माल भरा हुआ है न, वह सब समझ-समझकर भरा है। वह सहज रूप से उत्पन्न होता है। समझकर और जानकर अंदर भरा है। सोचकर जाना हुआ काम में नहीं आता। अगर समझकर भरा हुआ हो तो काम आता है।

प्रश्नकर्ता : तो जो समझकर भरा हुआ हो वह सहज रूप से आ जाता है ?

दादाश्री : सहज रूप से आ जाए तभी वह विज्ञान कहलाएगा, नहीं तो वह विज्ञान कहलाएगा ही नहीं।

ज़रूरी है 'बंधन का ज्ञान' होना

अभी तक तो जानते नहीं हैं कि 'मैं बंधन में आ गया हूँ'। जब ऐसा जाने कि 'मैं बंधन में हूँ', तब समझना कि इस व्यक्ति में कुछ उच्च समझदारी है। जब से जानने लगता है कि 'बंधन में हूँ', तभी से वह मुक्ति की आराधना करने लगता है। नहीं तो करेगा ही नहीं न! यह न तो बंधन में आया है, न ही मुक्त हुआ है।

न तो इसमें कोई फायदा उठा सका, न ही मोक्षमार्ग में आ सका। न संसार अच्छा दिखाई दिया, संसार में बेहद आधि-व्याधि-*उपाधि* और न ही मोक्षमार्ग की बात हुई।

हिंदुस्तान में एक भी व्यक्ति, ज्ञान तो भले ही एक तरफ रहा लेकिन अगर अज्ञान भी जान सके तो, मैं उसके दर्शन करने को तैयार हूँ। अभी तक कोई अज्ञान को भी संपूर्ण रूप से नहीं जान सका है क्योंकि जो अज्ञान को संपूर्ण रूप से जान ले, वह उसके सामने वाले किनारे पर रहे ज्ञान को समझ जाएगा। जैसे अगर गेहूँ को पहचान ले तो कंकड़ों को समझ जाएगा और अगर कंकड़ को पहचान ले तो गेहूँ को पहचान जाएगा। दोनों को नहीं सीखना पड़ेगा, एक को ही सीखना पड़ेगा।

पौद्गलिक ज्ञान को अज्ञान कहा जाता है और आत्मज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। यदि *पुद्गल* का पूरा ज्ञान नहीं होगा तो आत्मा का ज्ञान नहीं हो पाएगा क्योंकि उसमें गलतफहमी हो जाती है। अत: दोनों को मिलावट रहित बनाने के लिए दोनों ज्ञान की ज़रूरत है। सिर्फ आत्मा ही मिलावट रहित नहीं बन सकता। यदि *पुद्गल* का ज्ञान नहीं होगा तो फिर थोड़ा-बहुत मिलावट वाला हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जिस वजह से हम इस संसार में आए हैं, क्या वही कारण हमें मोक्ष में नहीं ले जाएगा?

दादाश्री : नहीं! संसार में लाने वाला कारण अलग था। यह कारण अलग है। संसार में लाने वाला कारण अज्ञानता थी और ज्ञान से इस तरफ मोक्ष में जाते हैं। अज्ञान से संसार की तरफ चले थे, अब ज्ञान से दूसरी तरफ अर्थात् मोक्ष में जाएँगे। अतः अज्ञान से जितना चले थे, पलटकर वापस उतना ही चलना पड़ेगा। यदि उलटे नहीं चले होते तो वापस लौटना नहीं पड़ता। तो जिन-जिन गलियों में से होकर आए थे उन सभी गलियों में से होकर वापस लौटना पड़ेगा। अतः अज्ञान से जगत् उत्पन्न हुआ था, खुद के स्वरूप का अज्ञान। 'मैं कौन हूँ', वह भूल गया, उसका भान चला गया। अब उसे ऐसा भान करवाते हैं कि 'मैं कौन हूँ' तो फिर अलग होता जाता है।

माया का सही स्वरूप

प्रश्नकर्ता : माया क्या है?

दादाश्री : माया अर्थात् जो वस्तु जिस स्वरूप में है उस स्वरूप में नहीं दिखकर, अलग ही स्वरूप में दिखाई दे। हमें भुलावे में डाल दे। उसे एक शब्द में कहा जाएगा, माया अर्थात् निज स्वरूप की अज्ञानता। अज्ञान की वजह से ही यह सारी माया दिखाई देती है। स्वरूप का अज्ञान है इसलिए माया उत्पन्न हो गई है। स्वरूप का अज्ञान चला जाए तो माया चली जाएगी। बाकी, जो मूल स्वरूप में न दिखकर अन्य स्वरूप में दिखाई देता है, वह कहलाती है माया। यह *पुद्गल* मूल स्वरूप में ऐसा नहीं है। *पुद्गल* का मूल स्वरूप बहुत सुंदर और अच्छा है लेकिन *पुद्गल* तो अन्य ही स्वरूप में दिखाई देता है।

माया दर्शनीय नहीं है, वह भास्यमान परिणाम है। माया मतलब अज्ञानता, अन्य कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता की वजह से ही माया है न?

दादाश्री : अज्ञानता की वजह से ही माया है। अत: माया कोई चीज़ नहीं है, अज्ञानता ही मुख्य चीज़ है। उसका फाउन्डेशन अज्ञानता है। पूरे जगत् की फाउन्डेशन अज्ञानता ही है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार को अज्ञानता की फाउन्डेशन माना जा सकता है?

दादाश्री : नहीं, अहंकार नहीं, अज्ञानता ही फाउन्डेशन है। रूट कॉज़ अज्ञानता ही है। चाहे कितना भी अहंकार हो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन यदि अज्ञान गया तो सबकुछ गया।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा है कि माया दर्शनीय नहीं है लेकिन भास्यमान है। इसका क्या मतलब है?

दादाश्री : भास्यमान का मतलब यह कि सिर्फ आभास ही होता है, वह दर्शनीय नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दर्शनीय नहीं है इसका मतलब क्या है?

दादाश्री : वह दिखाई नहीं देती। ऐसा लगता है कि दिखाई दे रही है, आभास ही है सिर्फ!

प्रश्नकर्ता : यह जो सारा *पुद्गल* दिखाई देता है, क्या वह माया नहीं है?

दादाश्री : माया अलग चीज़ है। *पुद्गल* और माया का कोई लेना-देना नहीं है। माया तो एक प्रकार की मान्यता है। लोगों ने मान्यता रखी इसलिए वैसा आभास होता है कि यह भगवान की माया है। बाकी, भगवान की माया नहीं होती। यह तो सिर्फ अज्ञानता ही है! माया पर तो लोगों ने कितने-कितने विवरण लिखे हैं! बहुत-बहुत लिखा गया है। इस माया ने तो लोगों का तेल निकाल दिया है न! माया कितनी विषम है लेकिन उसका रूट कॉज़ क्या है? अज्ञानता। अज्ञानता चली जाए तो सबकुछ चला जाएगा!

मुख्य वस्तु स्वरूप की अज्ञानता अर्थात् माया ही है और अगर वह अज्ञानता चली जाएगी तो फिर जैसा है वैसा दिखाई देगा। बस, इस अज्ञानता से ही सबकुछ उल्टा दिखाई देता है।

यथार्थ स्वरूप अज्ञान का

प्रश्नकर्ता : अज्ञान का स्वरूप क्या है और वह कहाँ से आता है?

दादाश्री : संसार में आपका नाम 'चंदूभाई' रखा गया और फिर आपने मान भी लिया। 'चंदूभाई' नाम गलत नहीं है। 'चंदूभाई' तो पहचानने का साधन है लेकिन आपने उसे सही मान लिया, वह अज्ञान है। रोंग बिलीफ कहलाती है वह और फिर 'इस बेटे का फादर हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ, इसका फूफा हूँ, इसका दादा हूँ', बोलो! कितनी सारी रोंग बिलीफें बैठ गई हैं?

अब ये रोंग बिलीफें पूरा अज्ञान का ही स्वरूप है, हम रोंग बिलीफों में पड़े हुए हैं। हमें किस चीज़ की ज़रूरत है? रोंग बिलीफें दु:खदायी हो गई हैं, इसलिए हम खुद ढूँढ रहे हैं क्योंकि मूलत: अपना स्वभाव सुखिया है अत: वापस मूल स्वरूप में आने के बाद यह सुख महसूस होगा। ये रोंग बिलीफें अर्थात् टेढ़े चले हैं हम। अत: हम इन रोंग बिलीफों को फ्रेक्चर कर देते हैं और राइट बिलीफ बिठा देते हैं। राइट बिलीफ को सम्यक् दर्शन कहा जाता है और सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र से मोक्ष है। सम्यक् दर्शन अर्थात् यह जो टेढ़ा देखते हो, उसे हम सीधा दिखा देते हैं, दृष्टि बदल देते हैं। अज्ञान का स्वरूप आपको समझ में आ गया न अच्छी तरह से?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अब उसके सामने की तरफ ज्ञान का स्वरूप है। जिस प्रकार से उत्तर-दक्षिण आमने-सामने हैं उसी तरह अज्ञान के सामने यह ज्ञान का स्वरूप है।

आप चंदूभाई हो, ऐसा तो आप अपनी तरह से जानते हो न?

प्रश्नकर्ता : किसी ने कहा था।

दादाश्री : नहीं, लेकिन कहे हुए ज्ञान का क्या करना है? जाना हुआ ज्ञान होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन अगर कहा गया है तो वह सही ही कहा होगा न!

दादाश्री : उस पर विश्वास है, इसीलिए न! इस कहे हुए ज्ञान से जगत् चल रहा है और जाने हुए ज्ञान से मोक्ष में जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान अर्थात् जो सिर्फ जाना हुआ है, वही ज्ञान कहलाता है?

दादाश्री : बस, वास्तव में हम जो हैं, शुद्धात्मा हैं, वह जाना हुआ, अनुभव किया हुआ, वही ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : बाकी सबकुछ कहा हुआ ही है?

दादाश्री : कहा हुआ ज्ञान है। आपका नाम चंदूभाई है, ऐसा आपने कहाँ से जाना? इसकी पुष्टि कैसे हुई? तो कहते हैं कि 'बूआ ने रख दिया'। बस इतना ही जानता है वह, अतः यह कहा हुआ ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : और आत्मा का ज्ञान अनुभव किया हुआ है।

दादाश्री : जो अनुभव किया हुआ ज्ञान है वह मोक्ष में ले जाता है और ये कहा हुआ ज्ञान संसार में भटकाता है।

आधार देता है अज्ञान को...

मूलतः तो अनाथ है और फिर खुद ही उसे आधार देता है। आधारी बन जाता है और 'खुद' ही अज्ञान को आधार देता है। मैं ही चंदूलाल हूँ, मुझे नहीं पहचाना? अरे भाई, इसे क्यों आधार दे रहा है? यह तो अज्ञान है! उसी को आधार देता रहता है जबकि हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ तो अज्ञान निराधार हुआ कि खत्म।

यह जगत् आधार की वजह से खड़ा है। खुद ही आधार देता है। यदि आधार नहीं देगा तो यह जगत् गिर जाएगा।

इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद 'मैं'पना, 'मैं' में बैठ गया अतः अज्ञान निराधार हो गया, उसका आधार खिसक गया। अतः फिर अज्ञान चला जाता है। आधार की वजह से यह सब खड़ा है।

जो अज्ञान निराधार हुआ है, उसे हम आधार दे रहे थे कि मैं चंदूभाई हूँ, मैं शाह हूँ, मैं जैन हूँ, मैं फलाना हूँ, मैं फलाना हूँ। मैं सत्तर साल का, साठ साल का हूँ, पचास साल का हूँ, सारे साल भी खुद के ही हैं। वह आधार दे रहे थे। वह सारा आधार निराधार होकर गिर पड़ा, अपने आप ही। इस सारे अज्ञान और भ्रांति को हमने आधार देकर ही खड़ा रखा हुआ है। जब ज्ञान दिया तब मैंने कहा, 'आधार छोड़ दो'। अतः निराधार होकर गिर जाता है सबकुछ।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद तो फिर सिर्फ आत्मा का ही आधार रहता है न!

दादाश्री : नहीं। 'खुद' ही रहे फिर। हम किसी चीज़ को आधार देने वाले रहे ही नहीं। पहले तो आधार देने वाले थे न, इसलिए भ्रांति थी। अब आधार देने वाले चले गए, निराधार हो गया सबकुछ, गिर गया एकदम से! अतः अज्ञान निराधार हो गया तो अज्ञान चला गया। अतः बाकी बचा सिर्फ प्रकाश ही और वह भी फिर स्व-पर प्रकाश। जो आपको भी प्रकाशित करता है और चंदूभाई को क्या-क्या हुआ, उसे भी प्रकाशित करता है। पर वस्तु को प्रकाशित करता है खुद अपने आप को भी प्रकाशित करता है, ज्ञान प्रकाश! धन्य है न वीतराग विज्ञान को!

फर्क है भ्रांति और अज्ञानता में

प्रश्नकर्ता : भ्रांति और अज्ञानता में फर्क है क्या?

दादाश्री : बहुत फर्क है भ्रांति और अज्ञानता में।

प्रश्नकर्ता : भ्रांति किसे कहा गया है? अज्ञान किसे कहते हैं?

दादाश्री : जिसका जन्म अज्ञान में से हुआ है, वह भ्रांति है। अज्ञान में से बहुत चीज़ों का जन्म होता है, उनमें से एक डाली इस भ्रांति की भी फूटती है।

प्रश्नकर्ता : इसे ज़रा उदाहरण देकर समझाइए न!

दादाश्री : भ्रांति तो, जिसने यह ज्ञान लिया है न, उसे भ्रांति नहीं रहती लेकिन अगर वह भी इतनी सी ब्रान्डी पी ले तो भ्रांति हो जाएगी। नहीं होगी?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हो जाएगी।

दादाश्री : उस वजह से कहीं ऐसा नहीं कह सकते कि अज्ञान हो गया लेकिन क्या फिर ऐसा कहेगा कि 'मैं चंदूभाई हूँ'? फिर वह कहेगा, 'मैंने ही किया है यह। लो, जो हो सके वह कर लो'। कहेगा या नहीं कहेगा? वह भ्रांति कहलाती है। लोग कहेंगे कि 'इसे भ्रांति हो गई है'। अज्ञानता में से उत्पन्न होने वाली चीज़ है यह।

प्रश्नकर्ता : यह तो मैं भ्रांति और अज्ञानता के बीच फर्क पूछ रहा था।

दादाश्री : इसमें भ्रांति तो अज्ञानता का एक भाग है। उसमें से ज्ञान होते-होते तो बहुत देर लगती है। वह भ्रांति चली जाए तब भी ऐसा कहा जाएगा कि अज्ञान का कुछ भाग कम हो गया। तो अब भ्रांति चली गई इसका मतलब यह नहीं कि ज्ञान हो गया। आपको तो सिर्फ, ऐसी एक प्रतीति ही हुई है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। अब ज्ञान के लिए, जब दूसरे साधन मिलेंगे तब ज्ञान होगा। यह आपको सम्यक् दर्शन हुआ है। अब सम्यक् ज्ञान होने की शुरुआत हो गई है। यही मार्ग है। आपको ज़बरदस्ती लादा गया, एक वाक्य नहीं चलेगा। उसी को हिंसा कहते हैं न! किसी चीज़ को ज़बरदस्ती किसी पर लादना, वह तो हिंसा कही जाएगी।

मान्यताएँ सही हों या गलत, दोनों प्रकार की हो सकती हैं जबकि दर्शन सिर्फ सत्य ही होता है।

प्रश्नकर्ता : माने हुए ज्ञान और जाने हुए ज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : जाना हुआ ज्ञान अनुभव सहित होता है और माना हुआ अर्थात् शक्कर मीठी है, ऐसा तू मान लेता है लेकिन मीठी का मतलब क्या समझा? और जाना हुआ अर्थात् फिर से तुझे पूछना ही न पड़े। शक्कर मंगवाएँ अभी? अनुभव करना है? करके देख न, शक्कर का अनुभव कर लिया है? तो फिर हर्ज नहीं है। वह सिर्फ माना है उसका अनुभव नहीं किया? 'शक्कर मीठी है', ऐसा माना और चखने पर उसे जाना और अनुभव किया।

क्या आया हुआ ज्ञान चला जाएगा?

प्रश्नकर्ता : क्या समझ और ज्ञान आकर वापस चले जाते हैं?

दादाश्री : जो चला जाए उसे ज्ञान नहीं कहा जाएगा। समझ आने के बाद जा सकती है लेकिन ज्ञान नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता और गलतफहमी एक ही चीज़ है या अलग?

दादाश्री : गलतफहमी तो हो जाती है और बाद में समझ से निकल जाती है लेकिन अज्ञानता नहीं जाती। गलतफहमी की गाँठ तो पड़ने के बाद वापस खुल जाती है। हमारी वह गाँठ तो कोई निकाल देगा लेकिन अज्ञानता तो ज्ञानीपुरुष के बिना नहीं जा सकती।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान किस तरह से निकल सकता है?

दादाश्री : ज्ञानी के पास जाने से अज्ञान निकल जाता है। यदि हम ज्ञानी के पास जाएँ और हमारा अज्ञान नहीं निकले तो फिर वह ज्ञानी है ही नहीं। यह उसका प्रमाण है। इसलिए ऐसा कहा गया है न कि ज्ञान ज्ञानी से ही प्राप्त होना चाहिए!

प्रश्नकर्ता : इन सभी की जड़ अज्ञान है या मोह?

दादाश्री : अज्ञान में से ही मोह आता है। अज्ञान जितना कम होता जाता है न, उतना ही मोह कम हो गया, ऐसा कहा जाएगा। इसकी

जड़ अज्ञान है, घोर अँधेरा। और उसके बाद मोह वगैरह तो उसके विभाजन हैं।

आत्मज्ञान प्राप्ति हो जाए, तभी से मोह के अंश कम होते जाते हैं लेकिन आत्मज्ञान के कोई अंश नहीं होते। आत्मज्ञान सर्वांश है। मोह कम होता है तो उस मोह के अंश होते हैं।

ज्ञान का अंत है, अज्ञान का नहीं

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का कोई अंत है या उत्तरोत्तर उसका घेरा बढ़ता ही जाता है?

दादाश्री : ऐसा है न, अज्ञान का अंत नहीं है। यह अंत किसका नहीं है? अज्ञान का अंत आता ही नहीं है। उसका छोर ही नहीं है। ज्ञान तो अंत वाला ही होता है। फाइनल हो ही जाना चाहिए। वर्ना फाइनल होने के बाद तो, मैं ऐसा कहता हूँ कि मैंने फाइनल की परीक्षा दे दी है, उस फाइनल में फेल हुआ हूँ लेकिन परीक्षा तो दे ही दी है न फाइनल की? अतः फाइनल लिमिट है तो सही।

यदि उत्तरोत्तर उसका घेरा बढ़ता ही जाए तब तो फिर वह ज्ञान ही नहीं कहलाएगा। अज्ञान ही कहलाएगा। यह जो व्यवहार में चल रहा है न, वह अज्ञान है, ज्ञान कल्पित रूप में है। है अज्ञान लेकिन ज्ञान कौन से रूप में है? कल्पित। कितने ही कल्चर्ड हीरे के हार होते हैं न, यों कल्चर्ड मोती की माला होती है और उसे हम सच मान लें, उस जैसी चीज़ है।

ज्ञान तो अंत वाला है। उसका विस्तार बढ़ता नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर पूर्णता का मतलब क्या है?

दादाश्री : पूर्णता अर्थात् जिसका अंत आ जाए, वह पूर्ण ज्ञान कहलाता है और जिसका अंत ही नहीं आता, वह अज्ञान कहलाता है। हम चलते ही जाएँ लेकिन अगर मंज़िल तक न पहुँचें, तो वह कौन सा

रास्ता कहलाएगा? रास्ता गलत है न? तो अनंत जन्मों से यह जाना है, इससे भी हाइ लेवल का ज्ञान जाना था। यह तो बल्कि अभी लो लेवल (निम्न स्तर पर) में आ गए हैं, हाइ लेवल का आपने लाभ नहीं उठाया तो इस लो लेवल का क्या लाभ उठाओगे? एक बार राजा का दीवान बनता है और दूसरी बार आदिवासी बनता है। ऐसा है यह जगत्! आदिवासी में जब खराब सीज़न में चावल उगते हैं तो खुशी से झूम उठता है और दीवान को तो चाहे कितना ही सोना दें तब भी वह खुश नहीं होता लेकिन फिर है तो वही का वही जीव। वहाँ जाए तो वहाँ के संयोगों के अनुसार बन जाता है।

अज्ञान के आधार पर रुका है मोक्ष

प्रश्नकर्ता : अब क्या यह शरीर अनंत काल तक रहेगा?

दादाश्री : खुद के स्वरूप का अज्ञान है, इसीलिए यह शरीर है। अज्ञान चला जाएगा तो यह व्यवहार भी छूट जाएगा और शरीर भी छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह 'मैं' वास्तव में अज्ञानता से उत्पन्न हुआ है?

दादाश्री : यह सारा अज्ञानता से ही है। यह सारा अज्ञानता का ही परिणाम है। अंधेरे की वजह से ही लोग दुःख भुगत रहे हैं, वर्ना दुःख तो कहीं होता होगा? जहाँ पर उजाला है, प्रकाश है, वहाँ पर दुःख नहीं है। जहाँ अंधेरा है, वहीं पर दुःख है इसीलिए इस प्रकाश की ही बातें करते हैं। हम पूरे दिन किसकी बातें करते हैं? किस प्रकार से प्रकाश उत्पन्न हो, उसी की बातें चलती रहती हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अज्ञानता भी अनादिकाल से है?

दादाश्री : यह सब अनादिकाल से है, जब से हैं तभी से, यह सारा अज्ञान अनादिकाल से ही चला आया है लेकिन जब यह ज्ञान मिलता है तब इसका अंत आ जाता है।

जगत् के पास है, बुद्धिजन्य ज्ञान!

लोगों के पास ज्ञान शब्द है ही नहीं न! एक अक्षर भी ज्ञान नहीं है। पूरे जगत् में ज्ञान नहीं है। ज्ञान शब्द लाएँगे कहाँ से? इसलिए मुँह से कहते ज़रूर हैं कि, 'मुझे ज्ञान है, मुझे ज्ञान है' लेकिन वह यह नहीं समझता कि ज्ञान किसे कहते हैं? खुद कहते ज़रूर है, जगत् में बहुत से लोग कहते हैं, 'ज्ञान'।

प्रश्नकर्ता : आप जिसे ज्ञान कहते हैं, वह और जगत् जिसे ज्ञान कहता है, उसमें क्या भेद है?

दादाश्री : ऐसा है न, जगत् जिसे ज्ञान कहता है न, वह ज्ञान है ही नहीं।

वह समझाता हूँ आपको। पहले सुन लो न! वह ज्ञान क्यों नहीं है? इस जगत् में बुद्धि है। पूरा जगत् बुद्धि में ही है। ज्ञान में नहीं परंतु बुद्धि में। पूरे जगत् के तमाम सब्जेक्ट्स को जानता है लेकिन वह ज्ञान नहीं है। 'वह सब ज्ञान है', ऐसा नहीं कहा जाएगा, उसे बुद्धि कहेंगे। सिर्फ खुद का स्वरूप, 'मैं कौन हूँ', इतना ही जान ले तो उसे ज्ञान कहा जाएगा।

क्रिया वाला ज्ञान, है मात्र अज्ञान

अत: यह सारा भ्रांतिजन्य ज्ञान है। इसकी बजाय अगर कुछ नया ज्ञान जानना हो और जो वास्तविक, यथार्थ ज्ञान है, जो तीनों काल में वैसा ही रहता है, वह ज्ञान है जबकि यह भ्रांतिजन्य ज्ञान तो बदलता ही रहता है। कोई डिसिज़न नहीं आता और विरोधाभास लगता है, वह इन्द्रिय ज्ञान है। अतीन्द्रिय ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। जहाँ पर इन्द्रियों की ज़रूरत नहीं पड़ती। जहाँ पर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार काम नहीं करते, वहाँ पर अतीन्द्रिय ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : ज़रा समझना है कि यह जो क्रिया वाला ज्ञान है, वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : वह अज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : और वह अहम् से उत्पन्न होता है?

दादाश्री : हं। यह सब जो चल रहा है, वह ज्ञान, दुनिया में जो चल रहा है वह क्रिया वाला ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : और जो अपने अंदर की क्रियाएँ हैं, मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार की, उनका आधार भी अज्ञान ही है न?

दादाश्री : हं। वही क्रिया वाला ज्ञान है। 'मैं कर रहा हूँ', वह क्रिया है और उसका जो ज्ञान है, वह सारा ज्ञान भी अज्ञान है और वह क्रिया भी अज्ञान...

प्रश्नकर्ता : अहंकार वाला ज्ञान, वह एक प्रकार की जानकारी ही हुई न? तो जानकारी और ज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : सारी जानकारी विनाशी होती हैं और वे टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट हैं! ज्ञान अविनाशी होता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उसके पास जो ज्ञान है, वह ज्ञान उसके लिए तो क्रियाकारी ही है न! वह उसी अनुसार व्यवहार करता है, उसी अनुसार बोलता है, उसी अनुसार सोचता है।

दादाश्री : लेकिन उसके साथ अहंकार है न!

प्रश्नकर्ता : क्रियाकारी का अर्थ क्या बताया? इस चेतन ज्ञान को क्रियाकारी कहा...

दादाश्री : अहंकार है तभी उससे क्रिया हो सकेगी। क्रियाकारी है, लेकिन अगर अहंकार है तभी हो सकेगी, वर्ना नहीं हो सकेगी। जबकि ज्ञान तो अपने आप ही, खुद अपने आप ही क्रिया करता है। चेतन ज्ञान स्वयं क्रियाकारी है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। अगर अहंकार होगा तभी यह विशेष ज्ञान क्रियाकारी होगा।

दादाश्री : वर्ना नहीं। अत: इस विशेष ज्ञान में अहंकार की ज़रूरत है।

हमें यह ज्ञान जान लेना हैं कि 'मैं खुद कौन हूँ'। फिर वह ज्ञान अपने आप ही काम करता रहेगा। आपको कुछ भी नहीं करना है। ज्ञान ही काम करता रहेगा। हमें तो कुछ भी नहीं करना है। जान लेना है और समझ लेना है।

स्थिति तब की, जब सूरत स्टेशन पर ज्ञान हुआ था

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 1958 में आपको सूरत स्टेशन पर ज्ञान हुआ था। उससे पहले आपकी स्थिति क्या थी?

दादाश्री : अरे! अहंकारी, पागल स्थिति, बंधन वाला। उस बंधन दशा को मैंने देखा है। मुझे ऐसा ध्यान में है कि बंधन दशा ऐसी होती है और इस मुक्त दशा के भान को भी मैं जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : वह ज्ञान आपको किस प्रकार से हुआ?

दादाश्री : वह तो सभी साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स, सभी संयोग इकट्ठे हो गए थे। इकट्ठे होते हैं तब हो जाता है। वह किसी को ही होता है, वर्ना नहीं होता। वह चीज़ नहीं हो सकती। ऐसा हो जाएगा, ऐसा तो मैंने सोचा ही नहीं था।

प्रश्नकर्ता : जब आपको ज्ञान हुआ था, उस समय की स्थिति के बारे में कुछ बताएँगे हमें?

दादाश्री : स्थिति तो यही की यही। उसका कोई तरीका-वरीका नहीं होता। अरे... अंदर आवरण टूट जाते हैं। अंदर आवरण खुल जाते हैं। आप उलझन में पड़े हुए हों तब अंदर सूझ पड़ती है या नहीं पड़ती? आवरण टूटते हैं इसीलिए सूझ पड़ जाती है। उसी प्रकार जब ये आवरण टूट गए तो इन सब बातों का पता चल गया कि, 'यह जगत् कौन चलाता है, किस तरह चलता है, मैं कौन हूँ, ये कौन है'। तो जितना बताया जा सकता है, उतना ही बता रहा हूँ। बाकी सब तो अनुभव है, उसे जब

आप खुद देखोगे तब। बाकी तो वाणी है ही नहीं वहाँ पर, व्यक्त करने के लिए वाणी नहीं है अत: अभी तो 'मैं कौन हूँ' इतना जान लिया तो सभी कुछ हो गया। कम्प्लीट! फुल हो गया।

प्रश्नकर्ता : उसका अनुभव शुद्धात्मा को हुआ या *पुद्गल* को हुआ, किसे हुआ वह अनुभव?

दादाश्री : वह अनुभव, खुद ने खुद को ही जाना, अन्य कुछ नहीं। अन्य को 'मैं' मानता था, तो खुद अपने आप को ही जाना कि 'मैं यह हूँ, यह नहीं'। अलग हो गया।

आत्मा : स्वाधीन-पराधीन

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह बताइए कि आत्मा स्वाधीन है या पराधीन?

दादाश्री : स्वाधीन भी है और पराधीन भी है। अज्ञान के आधार पर पराधीन है और ज्ञान के आधार पर स्वाधीन है। पुरुष पुरुषार्थ सहित है वर्ना तब तक पुरुषार्थ नामक कोई चीज़ है ही नहीं। वह भ्रांत पुरुषार्थ है, वह भी एविडेन्स के आधार पर। नैमित्तिक के आधार पर है। अत: ज्ञान प्राप्ति के बाद जो पुरुषार्थ करते हैं, वह पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ है। उसके बाद आत्मा स्वाधीन है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान हो जाए और आत्मा स्वाधीन ही है तो फिर आत्मा को कुछ करने का रहता ही नहीं। अगर अज्ञान है और पराधीन है तो पराधीन कुछ कर नहीं सकता, तो आत्मा को क्या करना है, वह समझ में ही नहीं आता।

दादाश्री : ज्ञान हो जाने के बाद आत्मा पुरुषार्थ ही करता है।

प्रश्नकर्ता : पुरुषार्थ के बिना ज्ञान नहीं हो सकता न? गिनती सीखने के लिए भी पुरुषार्थ करना पड़ता है और आप कहते हैं कि ज्ञान के बाद ही पुरुषार्थ हो सकता है तो वह किस प्रकार से?

दादाश्री : ज्ञान के बाद ही पुरुषार्थ हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : उसे पहले पुरुषार्थ की ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : परसत्ता में पुरुषार्थ हो ही नहीं सकता न। जो निरंतर परसत्ता में ही जी रहा है, उस बेचारे के लिए क्या पुरुषार्थ? कहना हो तो भी उसे भ्रांति का पुरुषार्थ कहना पड़ेगा कि 'भाई, तू किस आधार पर आगे बढ़ रहा है? वह तो नैमित्तिक पुरुषार्थ है, भ्रांत पुरुषार्थ है'।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान में जिसे पुरुषार्थ माना है, वह नैमित्तिक पुरुषार्थ है?

दादाश्री : वह भी पुरुषार्थ नहीं है। अज्ञान में तो उसका उसे भान ही नहीं है। शायद ही कोई व्यक्ति समझता होगा कि इसे पुरुषार्थ कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : यदि अज्ञान दशा में पुरुषार्थ नहीं है तो आत्मा को किसके बल पर ज्ञान होता है? अज्ञान में से ज्ञान में आता है?

दादाश्री : पुण्य के बल पर। पुण्यानुबंधी पुण्य से ज्ञानीपुरुष मिलते हैं और ज्ञानी की कृपा से ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ज्ञान होने के बाद ही पुरुषार्थ हो सकता है, पहले हो ही नहीं सकता। उससे पहले भ्रांति ही रहती है। पुरुष हो जाने के बाद ही पुरुषार्थ हो सकता है। प्रकृति और पुरुष दोनों अलग हो जाते हैं। ज्ञान होने के बाद पुरुषार्थ शुरू होता है और तब तक प्रकृति और पुरुष दोनों एकाकार हैं। जब तक तन्मयाकार है तब तक भ्रांति है।

'खुद' क्या है?

प्रश्नकर्ता : सिनेमा देखने जाना हो तो जल्दी से चले जाते हैं लेकिन यहाँ सत्संग में आना हो तो जल्दी नहीं आ पाते।

दादाश्री : उसका क्या कारण है?

प्रश्नकर्ता : क्या वैसा ही निर्माण हुआ होगा?

दादाश्री : सिनेमा में मन सहयोग देता है इसलिए फिर वह स्लिप हो जाता है। वह नीचे अधोगति में जाता है। वह अच्छा लगता है। हेल्प नहीं करता न, यों ही स्लिप होता जाता है। चढ़ने में मेहनत, ध्येयपूर्वक जाने में मेहनत करनी पड़ती है जबकि यहाँ नीचे जाने में स्लिप होता जाता है। उतरना नहीं पड़ता। स्लिप ही हो जाता है अपने आप ही स्लिप हो जाता है। आपको कभी स्लिप नहीं किया होगा न, किया है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता है न कि संयोगाधीन न आ पाएँ!

दादाश्री : लेकिन वे संयोग किसके अधीन हैं? आप तो कहकर छूट गए कि संयोगों के अधीन नहीं आ पाए। बात भी सही है, सौ प्रतिशत सही है लेकिन संयोग किसके अधीन है?

प्रश्नकर्ता : अपने कर्मों के अधीन हैं।

दादाश्री : तो कर्म किसके अधीन है?

प्रश्नकर्ता : आप समझाइए, मुझे पता नहीं चलता।

दादाश्री : ऐसा है न, हम अभी जो हैं न, तो वस्तुतः हम वास्तव में क्या हैं? हम यह नाम रूपी नहीं हैं। हम व्यवहार रूपी नहीं हैं। तो वास्तव में हम क्या हैं? जितना अपना ज्ञान और जितना अपना अज्ञान है, उतना ही, वही हम हैं। जैसा ज्ञान होता है उसी अनुसार संयोग मिलते हैं। अज्ञान होता है तो उसके अनुसार संयोग मिलते हैं। ज्ञान-अज्ञान के अनुसार संयोग मिलते हैं।

प्रश्नकर्ता : और उस ज्ञान-अज्ञान के अनुसार कर्म बंधते हैं?

दादाश्री : हाँ। उस अनुसार कर्म बंधते हैं और उसी हिसाब से ये सभी संयोग मिलते हैं। उच्च व्यक्ति उच्च प्रकार के कर्म बाँधता है, क्योंकि उसका ज्ञान उच्च प्रकार का है। हलका व्यक्ति निम्न प्रकार के कर्म बाँधता है। यानी कि वह ज्ञान और अज्ञान के हिसाब से बाँधता है। तो क्या वह उसके हाथ में है? नहीं! वह, वह खुद ही है। वह खुद यह नाम नहीं है, वह खुद अहंकार नहीं है। वह खुद 'यह' है।

प्रश्नकर्ता : 'वह खुद यह है' इसका मतलब क्या है दादा?

दादाश्री : ज्ञान या अज्ञान, वह खुद वही है। वही उसका उपादान है लेकिन वह समझ में नहीं आता इसलिए उसके प्रतिनिधि अर्थात् अहंकार को हम स्वीकार करते हैं। यह बहुत गहरी बात है। संत भी नहीं जानते। क्रमिक मार्ग के ज्ञानी भी नहीं जानते।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ऐसा नहीं है कि ज़रा जल्दी से समझ में आ जाए।

दादाश्री : समझ में नहीं आ सकता।

प्रश्नकर्ता : अभी तक हम यही कहते हैं कि अहंकार ही यह सब करता है।

दादाश्री : यह तो, ये सज्जन आए इसलिए बात निकली वर्ना निकलती ही नहीं न ऐसी गहन बात। बात तो मैंने बता दी। बात समझने जैसी है, गहन है।

अत: ज्ञान और अज्ञान की वजह से ये कर्म बंधते हैं। उपादान या अहंकार, जो कहो वह यही है। वह खुद ही लेकिन यों वास्तव में अहंकार इससे अलग है। अहंकार अलग दिखाई देता है जबकि यह तो ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश और अंधकार! उसी आधार पर वह यह सब करता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ। लेकिन अगर ज्ञान हो, अज्ञान हो और अहंकार नहीं हो तो फिर क्या होगा? तो कर्म बंधन होगा ही नहीं न?

दादाश्री : अहंकार रहता ही है। जहाँ पर ज्ञान और अज्ञान दोनों एक साथ हों, वहाँ पर अहंकार रहता ही है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान है, इसलिए अहंकार है?

दादाश्री : रहता ही है। जब अज्ञान चला जाएगा, तब अहंकार

चला जाएगा। तब तक ज्ञान और अज्ञान साथ में ही रहेंगे। उसे क्षयोपक्षम कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान मिलने के बाद जो पुरुष बनता है, तो कौन सा भाग पुरुष कहलाता है?

दादाश्री : ज्ञान ही पुरुष है। उसमें फिर भाग कैसा? अज्ञान ही प्रकृति है। ज्ञान-अज्ञान का मिश्रित स्वरूप ही प्रकृति है। ज्ञान ही पुरुष है, वही परमात्मा है। ज्ञान ही आत्मा है। जो ज्ञान विज्ञान स्वरूपी हो, वह आत्मा है, वही परमात्मा है।

ज्ञान अर्थात् प्रकाश, समझ नहीं!

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञान अर्थात् प्रकाश, वह समझ नहीं' है, यह समझाइए।

दादाश्री : ज्ञान से हम किसी को प्रकाश देते हैं तो उसे समझ में आता है कि यह बात इस तरह से करनी है। ज्ञान का प्रकाश नहीं हो तो समझ में ही नहीं आएगा न! समझ अलग चीज़ है और ज्ञान अलग चीज़ है। हम जब ज्ञान बताते हैं तब उसकी समझ में आता है कि 'स्टेशन इस तरफ है वगैरह, वगैरह। इस रास्ते से इस रास्ते पर, इस रास्ते पर', ऐसा उसकी समझ में आ जाता है। तब कहता है, 'हाँ, ठीक है। हाँ, मुझे पता चल गया'। अतः समझ अलग चीज़ है जबकि ज्ञान, वह प्रकाश है और समझ अर्थात् उस प्रकाश से हमें फल प्राप्त होता है और फिर फल से कार्य होता है।

यहाँ से स्टेशन जाने का 'ज्ञान' वह आपको समझ देता है। ज्ञान बताता है पहले पूरा नकशा बनाकर दे देता है, तब फिर आपकी समझ में आ जाता है। फिर आप कहते हो कि, 'मुझे समझ में आ गया'। जब कोई ज्ञान बताता है तब आप क्या कहते हो?

प्रश्नकर्ता : समझ में आ गया।

दादाश्री : 'मुझे समझ में आ गया!' यह समझना अलग चीज़

है, और ज्ञान अलग चीज़ है। जो समझ में आता है, वह फिर आचरण में आता है। अगर समझ नहीं हो तो चाहे कितना भी ज्ञान प्रकाश बताएँ फिर भी आचरण में नहीं आएगा।

अज्ञान किस प्रकार से पुद्गल है?

प्रश्नकर्ता : 'अज्ञान *पुद्गल* है, ज्ञान *पुद्गल* नहीं है', ऐसा कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : मन, *पुद्गल* है और अज्ञान दशा के कुतूहल का परिणाम है। मन अज्ञान परिणाम की गाँठ है जबकि ज्ञान परिणाम की गाँठें नहीं होतीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञान परिणाम में मन का क्या होता है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं। ज्ञान परिणाम सूर्य किरण जैसा होता है। वह ज्ञेय रूपी परिणाम दिखाता है। ज्ञेय को ज्ञान ज्ञेयाकार स्वरूप दिखाता है, बस इतना ही। राग-द्वेष हों तभी मन उत्पन्न होता है और तभी वह अज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आप ज्ञान किसे कहते हैं? अज्ञान तो समझ में आया। अज्ञान राग-द्वेष का परिणाम है। और ज्ञान?

दादाश्री : वीतरागता। कहीं भी न चिपके तो गाँठ नहीं बनती।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह ज्ञान, क्या वह चेतन है?

दादाश्री : ज्ञान चेतन है। अज्ञान चेतन तो है लेकिन मिश्रचेतन है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञान की अच्छी गाँठें क्यों नहीं बनती?

दादाश्री : ज्ञान की कभी गाँठें बनती होंगी? ज्ञान को तो प्रकाश कहते हैं। प्रकाश में गाँठें होती ही नहीं हैं न? जब उसमें *पुद्गल* मिलता है, तब गाँठ बनती है।

प्रश्नकर्ता : अब समझ में आया। जब *पुद्गल* अज्ञान परिणाम में एकाकार होता है, तभी गाँठें बनती हैं।

दादाश्री : वह एकाकार होता है तभी न! लेकिन अज्ञान परिणाम *पुद्गल* सहित ही होता है। ऐसा नहीं है कि उसमें एकाकार होता है। अज्ञान परिणाम है ही *पुद्गल* की वजह से। अगर *पुद्गल* नहीं होता तो ज्ञान परिणाम होता। समझ में नहीं बैठा (आया) फिर? खड़ा हो गया?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं, बैठ गया न!

दादाश्री : हाँ कहने से वापस बैठ जाएगा। वर्ना अगर बैठा हुआ होगा तो भी वापस खड़ा हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जब तक वह ठीक से नहीं बैठे तभी तक खड़ा होगा न?

दादाश्री : खड़ा हो जाएगा, हाँ। उसे बिठा देना है। बैठाने पर ही पूरा होगा। पूरे हिंदुस्तान में किसी को नहीं बैठता। यह समझ अलग प्रकार की है। आपको पहुँच जाती है यह! आपको बैठ जाती है। देखो न, आश्चर्य है न! नहीं तो नहीं बैठ सकती।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञान परिणाम के स्पंदन तो हैं ही न!

दादाश्री : नहीं। उसके स्पंदन नहीं होते। ये सारे स्पंदन तो अज्ञान में ही हैं। ज्ञान परिणाम तो, जैसे सूर्यनारायण का यह जो प्रकाश आता है न, उसमें स्पंदन नहीं होते। वह तो स्वाभाविकता है। अज्ञान दशा में स्पंदन होते हैं। स्पंदन अर्थात् लहरें उठना। कई बार बड़ी उठती हैं और कभी छोटी उठती हैं।

इस ज्ञान प्रकाश में गाँठें-वाँठें नहीं होतीं इसीलिए निर्ग्रंथ कहा है। निर्ग्रंथ मुनि कहा गया है। गाँठ वाला तो हमेशा फूटता रहता है। पानी मिलने पर फूटती हैं गाँठें। अतः क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सभी गाँठें कहलाती हैं। अभी अगर लक्ष्मी दिख जाए तो लोभ की गाँठें फूटेंगी एकदम से। हम विवाह समारोह में जाएँ तो मान की गाँठ फूटती है जबकि ज्ञान में गाँठें नहीं होतीं इसलिए किसी भी जगह पर नहीं फूटतीं।

अज्ञान ही बड़ा आवरण

प्रश्नकर्ता : अज्ञान के अलावा अन्य कौन से आवरण होते हैं?

दादाश्री : अज्ञान तो बहुत बड़ा आवरण है। पूरा जगत् उसी में फँसा हुआ है और भगवान भी उसी में फँस गए थे। अज्ञान आवरण क्या कोई छोटा-मोटा आवरण है?

हाँ, लेकिन इतने शास्त्र पढ़ने के बावजूद भी ज़रा सा भी नहीं हटता। ऐसा जो अज्ञान आवरण है उसकी तो बात ही कितनी बड़ी? उसकी बाउन्ड्री कितनी बड़ी?! कुछ और क्यों ढूँढ रहे हो?

अन्य कोई आवरण है ही नहीं लेकिन इतना अज्ञान है फिर भी नाभिप्रदेश ज़रा सा खुला है। जितना खुला है उतना ही जीवन व्यवहार चलता है। वर्ना घोर अज्ञानता है। सारा आवरण ही है यह तो, अज्ञान ही है। उसके चाहे जितने टुकड़े करो तो भी वह अज्ञान ही है।

ज्ञानी ही समझा सकते हैं ज्ञान

प्रश्नकर्ता : ज्ञानीपुरुष को जो ज्ञान होता है, वह समझाया नहीं जा सकता?

दादाश्री : उसे समझाना आसान नहीं है। ज्ञान तो इन्हें भी हुआ है लेकिन वह समझाया नहीं जा सकता। सिर्फ हम ही समझा सकते हैं, या फिर ये नीरू बहन थोड़ा-बहुत समझा सकती हैं! जिन्हें अधिक परिचय हो, वे थोड़ा-बहुत समझा सकते हैं। ये भाई ज़रा सा, बहुत ही कम समझा सकते हैं लेकिन समझा सकते हैं! परिचय में आए है न! अतः हमारे साथ अधिक परिचय रखना चाहिए तो सभी कुछ समझा सकोगे!

ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन...

प्रश्नकर्ता : ज्ञान प्राप्ति का साधन क्या है?

दादाश्री : यहाँ पर कैन्डल हो तो हमें उजाला दिखाई देता है।

अगर कैन्डल ही नहीं होगी तो उजाला दिखाई ही नहीं देगा न! अतः जहाँ पर उजाला दिखाई देता है, वे ज्ञानी हैं।

प्रश्नकर्ता : अच्छा। कई बार ऐसा प्रश्न होता है कि क्या ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु की ज़रूरत है?

दादाश्री : गुरु की ही ज़रूरत है। गुरु के बिना तो इस दुनिया में चल ही नहीं सकता। आप स्कूल में पढ़ने गए तभी से गुरु। यहाँ से स्टेशन जाना हो तो भी गुरु ढूँढना पड़ता है। पूछना नहीं पड़ता? जहाँ-जहाँ पूछना पड़ता है, वही गुरु।

प्रश्नकर्ता : तो क्या इंसान स्वयं प्राप्त नहीं कर सकता?

दादाश्री : नहीं। स्वयं कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। इस दुनिया में किसी को ऐसा हुआ ही नहीं है और जो स्वयं सिद्ध हो चुके हैं, स्वयं बुद्ध, वे पिछले जन्मों में पूछ-पूछकर आए हैं अतः यह पूरा जगत् पूछ-पूछकर ही चल रहा है।

प्रश्नकर्ता : आप जो ज्ञान देते हैं, उससे तीर्थंकरों जैसा केवलज्ञान हो जाता है?

दादाश्री : सभी तीर्थंकरों का ज्ञान एक ही प्रकार का है। उसमें कोई अंतर नहीं है। भाषा में अंतर हो सकता है लेकिन ज्ञान एक ही प्रकार का है। अभी भी ज्ञान वही का वही है लेकिन भाषा में अंतर है, अनादिकाल से *पुद्गल* के प्रकाश और ज्ञान प्रकाश में फर्क रहता ही है। सभी ज्ञानियों का ज्ञान प्रकाश एक ही प्रकार का प्रकाश है और इस *पुद्गल* का प्रकाश, सभी लाइटों का प्रकाश एक ही प्रकार का। वे दोनों प्रकाश अलग-अलग स्वभाव के हैं।

उजाले में अंतर नहीं है। अतः ज्ञान तो वही का वही है। भगवान महावीर ऐसा नहीं कह सकते कि, 'यह मेरा ज्ञान है'। जो परंपरा से चला आया है, वह ज्ञान है। प्रकाश वही का वही है। लोग हम से पूछते हैं कि, '(यह ज्ञान) आपका मौलिक है?' तब मैंने कहा कि 'भाई नहीं!

तुझे ऐसा लगता है कि मौलिक है लेकिन यह ज्ञान तो पहले से चला आया है। शायद भाषा वगैरह मौलिक हो सकती है, ज्ञान तो जो पहले था वही है। कोई उत्पन्न कर ही नहीं सकता क्योंकि खुद ही ज्ञान है, उसे उत्पन्न कैसे कर सकता है और जो उत्पन्न होता है, उसका विनाश हो जाता है। जो ज्ञान... यह बुद्धिजन्य ज्ञान उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है।

अत: ज्ञान के प्रकाश दो प्रकार के नहीं हो सकते। ज्ञान का प्रकाश एक ही प्रकार का होता है। यानी अगर कोई कहता है कि मुझसे ज्ञान में आधा ही रहा जाता है और आधा नहीं रहा जाता तो वह ज्ञान है ही नहीं। उसे कहते हैं अज्ञान। ज्ञान अर्थात् ज्ञान। हमेशा के लिए उजाला।

ज्ञान किसे कहते हैं? हर प्रकार से वह टेली होना (मेल खाना) चाहिए। विरोधाभास उत्पन्न नहीं होना चाहिए। जहाँ से बोले वहाँ से। 50 साल बाद भी वह वाक्य टेली होना चाहिए और ज्ञान ही फल देता है। ज्ञान फल सहित ही होता है, प्रकाश है वह तो!

शुद्ध ज्ञान वही परमात्मा

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञान परमात्मा का गुण है?

दादाश्री : ज्ञान ही परमात्मा है लेकिन यह ज्ञान नहीं। जो आप जानते हो न, यह दुनिया जो जानती है न, वह ज्ञान नहीं। यह दुनिया जो जानती है वह तो भौतिक ज्ञान है। शुद्ध ज्ञान ही परमात्मा है। शुद्ध ज्ञान अर्थात् जैसा है वैसा ही दिखा देता है। यथार्थ दिखाता है। यानी क्या है कि सभी अविनाशी चीज़ों को दिखाता है। विनाशी को विनाशी जानता है और अविनाशी को अविनाशी जानता है। यथार्थ दिखाता है और शुद्ध ही दिखाता है।

जो ज्ञान है न, वही आत्मा है लेकिन वह सच्चा ज्ञान, सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान भ्रांति ज्ञान है। 'ये मेरे ससुर, ये मेरे मामा और ये मेरे चाचा', वह सारा भ्रांति ज्ञान है। वह आत्मा नहीं है। वास्तविक ज्ञान ही आत्मा है।

शुद्ध ज्ञान भगवान है और अशुद्ध ज्ञान, उल्टा-सीधा ज्ञान शैतान है। शैतान से फ्रेन्डशिप करना ठीक लगे तो वह करना और भगवान से फ्रेन्डशिप करना ठीक लगे तो उनसे करना। यह जो शैतान शब्द रखा है, वह सिर्फ समझने के लिए ही है!

शुभाशुभ ज्ञान

ज्ञान ही आत्मा है। जहाँ अशुद्ध ज्ञान है, वहाँ पर अशुद्ध आत्मा है। यदि शुभ ज्ञान है तो शुभ आत्मा है और शुद्ध ज्ञान हो तो दरअसल (वास्तविक) आत्मा है लेकिन वह सब आत्मा ही है। ज्ञान मात्र आत्मा ही है।

फॉरेन वाले कहते हैं कि आप कहते हैं 'वीतराग भगवान हैं लेकिन वीतराग को किसने देखा है? वह कैसे पॉसिबल (संभव) हो सकता है?' उन लोगों को समझ में नहीं आता है तब हम कहते हैं कि 'अपनी भाषा में समझ। आपको जो यह ज्ञान और समझ है, उसकी कीमत है या नहीं?' तब कहते हैं, 'हाँ उसकी कीमत तो है'। तब हम पूछें कि अफ्रीकनों की तुलना में आपका ज्ञान और समझ ज़्यादा है या कम? तब क्या कहते हैं? ऐसा कहते हैं कि ज़्यादा है। अब वह समझ कैसी है? अशुद्ध समझ है और अशुद्ध ज्ञान है, उनकी समझ अशुद्ध ही है इसलिए बेमतलब ही मार देते हैं। अगर सामने कोई जानवर मिल जाए तो उसे काटकर खत्म कर देते हैं! माँस वगैरह खाने के लिए नहीं। आफ्रीकनों की समझ भी अशुद्ध है और ज्ञान भी अशुद्ध है। जिनका ज्ञान उनसे बेहतर हो, लोग उनकी तारीफ करते हैं न? हाँ। इसके अलावा सभी फॉरेनर्स का ज्ञान भी अशुभ है। अर्थात् माँसाहार, बकरे काटते हैं न। वे कहते हैं, 'काटने ही चाहिए और अगर नहीं काटेंगे तो माँस कैसे खाएँगे?' वह कौन सा ज्ञान कहलाता है? अशुभ ज्ञान कहलाता है। अशुद्ध नहीं कहलाता क्योंकि उसमें उनका हेतु खाने का है। इतना तो उसे समझ में आता है न कि यह अशुभ ज्ञान है। अशुभ क्यों है कि किसी जीव को मारकर, दु:ख और त्रास देकर उसे मज़े से खाएँ तो वह अशुभ कहलाएगा। जब वे मुर्गे को मारते हैं न,

तब वह शोर मचाकर रख देता है। आपने सुना नहीं कभी मुर्गे को काटते समय?

फिर बाद में शुभ ज्ञान आता है। शुभ समझ और शुभ ज्ञान आता है। फॉरेन वाले कहते हैं कि 'किसी को मारना मत, किसी को दु:ख नहीं देना है और कोई हमें दु:ख न दे'। वह शुभाशुभ ज्ञान कहलाता है। यदि कोई मुझे दु:ख देगा तो मैं भी दूँगा लेकिन अगर कोई दु:ख नहीं देगा तो नहीं दूँगा। यह शुभाशुभ ज्ञान कहलाता है। हमारे सभी धर्म शुभाशुभ में पड़े हुए हैं। ज्ञान और समझ शुभाशुभ वाली है। अगर सिर्फ शुभ ज्ञान ही होगा तो कोई उसे दु:ख दे तब भी वह दु:ख नहीं देगा और जो किसी को दु:ख न दे, ऐसे शुभ ज्ञान और शुभ समझ वाला सुपर ह्यूमन कहलाता है। मनुष्य में से देवलोक में जाता है। वह शुभ समझ कहलाती है, शुभ ज्ञान। और उससे भी आगे हैं शुद्ध ज्ञान। शुद्ध ज्ञान वाले को किस तरह से पहचाना जा सकता है? अगर शुद्ध ज्ञान वाले की कोई जेब काट ले तब भी उसे वह निर्दोष दिखाई देता है। तो अगर फॉरेन वाले को समझाएँ कि 'आपको निर्दोष दिखाई देता है' तब कहेंगे, 'नहीं। निर्दोष कैसे देखाई देगा? वह खुले तौर पर जेब काट रहा है न!' तब अगर हम बताएँ कि 'हमारे यहाँ वीतराग किसे कहा जाता है? 'जिसे सामने वाला निर्दोष दिखाई देता है उसे हम वीतराग कहते हैं।' तो वह समझ जाएगा या नहीं कि वीतराग क्या है?

प्रश्नकर्ता : समझ जाएगा।

दादाश्री : इसी प्रकार क्रमपूर्वक समझाते हैं। मार-ठोककर समझाने जाएँगे तो उसे प्राप्ति नहीं होगी। जिसे राग-द्वेष नहीं हैं, वह वीतराग। वह तो नहीं समझता न? राग भी नहीं और द्वेष भी नहीं। वह कहता है कि 'अटैचमेन्ट तो होता है। ऐसा कैसे हो सकता है?' लेकिन जब उसे समझाएँ कि 'यह ज्ञान तो जेब कतरे को भी निर्दोष दिखाता है, ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है'। यह ज्ञान डेवेलप होते-होते अंतिम ज्ञान, वही परमात्मा है और जो भी मानो वह यही है। शुद्धात्मा कहो या परमात्मा कहो। जगत् निर्दोष दिखाई दिया। जिसे दोषित भी निर्दोष दिखाई दें और

निर्दोष भी निर्दोष दिखाई दें, उसी को परमात्मा कहते हैं। उसे शुद्ध ज्ञान कहते हैं, शुद्ध दर्शन कहते हैं।

अंतिम समझ क्या है कि इस जगत् में कोई दोषित है ही नहीं। जगत् पूरा निर्दोष ही है।

ज्ञान ही आत्मा है, वही परमात्मा है। हर एक के पास जो ज्ञान है, वही आत्मा है। शुद्ध ज्ञान परमात्मा है और इन मनुष्यों में भी जो उनका ज्ञान है, वही आत्मा है, और आत्मा अर्थात् सेल्फ, खुद।

नया ज्ञान ग्रहण करता है या सिर्फ आवरण टूटते हैं?

जब तक अज्ञान दशा है तब तक वह मूढ़ात्मा कहलाता है। समझने के लिए हमने मूढ़ात्मा के दो विभाग किए है, विषय आत्मा और कषाय आत्मा।

फिर जब वस्तुत्व का भान होता है, तब शुद्धात्मा बनता है। वह अंतरात्मा कहलाता है और फिर अपने आप ही परमात्मा बनता जाता है, पूर्णत्व होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : आपने ये जो तीन प्रकार के आत्मा बताए, वैसा आत्मा होने के लिए कुछ करना पड़ता है या जन्म से ही उस अनुसार होता है? यह किस प्रकार से होता है?

दादाश्री : नहीं, वह तो जन्म से ही जितना पूर्व जन्म का ज्ञान लेकर आया है, वह सारा इस ज्ञान से बदलता जाता है। जैसे-जैसे उसे ज्ञान के सभी संयोग मिलते जाते हैं वैसे-वैसे यह बदलता जाता है। विषयों में से फिर कषायी होता जाता है। कषायों में से वापस कषाय हल्के होते जाते हैं। एकदम से तो मुक्त नहीं होता लेकिन कषाय हल्के होते जाते हैं, हल्के होते-होते-होते फिर वह कषाय मुक्त शुद्धात्मा बन जाता है।

पिछले जन्म में जितना कुछ करके आए हैं, अब वापस हमें फिर से नई प्राप्ति करनी पड़ेगी। भ्रांति में होने के बावजूद वह ज्ञान उसे हेल्प

करता है। उसे वह जो ज्ञान है, वह चेतन ज्ञान नहीं है, शुष्क ज्ञान है। अत: करना पड़ता है। उसे ज्ञान के अनुसार बनना पड़ता है। वह अगर हुआ तो हुआ, वर्ना यदि एडजस्ट नहीं हुआ तो ज्ञान में तो रहा कि ऐसा करना चाहिए लेकिन क्योंकि भूमिका तैयार नहीं है इसलिए ऐसा हो नहीं पाता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन व्यवहार में ऐसा होता है न कि पूरे संसार काल में नया ज्ञान ग्रहण करता जाता है?

दादाश्री : नहीं! इतना ही है कि वह निरावृत्त होता जाता है। जो ज्ञान है वही वापस निरावृत्त होता है। नया नहीं आता। जो आवरण है वह खुलता जाता है। नया ज्ञान होगा ही कहाँ से? तूने ऐसा क्यों पूछा?

प्रश्नकर्ता : यह तो व्यवहार में ऐसा दिखाई देता है कि वह डॉक्टरी का ज्ञान सीख रहा है, फिर और कोई नया ज्ञान सीख रहा है।

दादाश्री : वह तो, आवरण खुलते हैं। यानी कि वह जहाँ प्रयत्न करता है, वहाँ के आवरण खुलते हैं। डॉक्टरी की पढ़ाई करता है तो डॉक्टर बनता है, इंजीनियरिंग की पढ़ाई करता है तो इंजीनियर बनता है।

रियल ज्ञान - रिलेटिव ज्ञान

साइन्टिस्टों को समझ में आएगा क्योंकि ये सभी बातें ऐसी हैं कि जिनसे उन्हें मदद मिलेगी। वे उलझते हैं कि अरे यह हमें ऐसा-ऐसा पता चला है लेकिन लोग ऐसा क्यों मानते हैं? उसे जो पता चला है, उन सब में उसे हेल्प हो जाएगी क्योंकि रिलेटिव और रियल 99 प्रतिशत तक एक सरीखे ही हैं, 99 पोइन्ट तक।

कॉज़ वाला जो इफेक्ट है, जिस इफेक्ट में से कॉज़ उत्पन्न होते हैं, उसका फोटो खिंचता है लेकिन जिस इफेक्ट में से कॉज़ उत्पन्न नहीं होते, उसका फोटो ही नहीं खिंच सकता। अत: 99 प्रतिशत तक कॉज़ वाला इफेक्ट रहता है, 100वें प्रतिशत में कॉज़ वाला इफेक्ट नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार से?

दादाश्री : हमारे ये सारे इफेक्ट कॉज़ रहित हैं न! तब तक फोटो खिंच सकता है। अत: तब तक पैरेलल पैरेलल चलता है यह, रिलेटिव और रियल दोनों। फोटो खिंच सकता है, इसलिए उस रिलेटिव की फोटो का लाभ मिलता है न, और यह एक्ज़ेक्ट का लाभ मिलता है न, रियल का। उतना ज्ञान पैरेलल चलता रहता है। अत: सबकुछ मिलता-जुलता है। उन्हें जो जानना है वह सबकुछ मिलता-जुलता है 99 डिग्री, 99 पोइन्ट तक। अंतिम वाला उन्हें समझ में नहीं आ सकता। जिसका फोटो नहीं खिंच सकता।

प्रश्नकर्ता : यह ठीक से समझ में नहीं आया। फिर से समझाइए कि रियल और रिलटिव, दोनों 99.99 तक एक सरीखे लगते हैं।

दादाश्री : यह रिलेटिव ज्ञान है लेकिन साथ-साथ चलता है। पैरेलल। जैसे दो पटरियाँ सभी जगह पर साथ-साथ रहती हैं न! लेकिन वह फोटोग्राफी के रूप में होता है और यह एक्ज़ेक्ट रूप में है। अंतिम 100 वें अंश का फोटो नहीं खिंच सकता। वहाँ पर उतना फोटोग्राफी के रूप में नहीं है।

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव और रियल ज्ञान तो अलग ही हैं न?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान अलग हैं। यह रियल एक्ज़ेक्ट रूप से है और वह रिलेटिव फोटो के रूप में है। फर्क तो बहुत ज़्यादा है लेकिन एक्ज़ेक्ट उसके जैसा ही है पूरा। डिज़ाइन-विज़ाइन सब मिलती-जुलती होती हैं। वह क्रियाकारी नहीं है और यह क्रियाकारी है।

आवरण खिसकने से प्रकट होता है आत्मज्ञान

आत्मा का ज्ञान तो संपूर्ण ही है लेकिन आत्मा तो ज्ञानी ही है न! *पुद्‌गल* का आवरण जितना हटता है, उतना ही ज्ञान प्रकट होता है, बस। यानी *पुद्‌गल* का ज्ञान वहाँ आकर रूक जाता है। तो इतनी डिग्री तक पहुँचा है यह।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान *पुद्‌गल* का है या आत्मा का है?

दादाश्री : ज्ञान भी *पुद्गल* का ही है। आत्मा सर्वस्व ज्ञानी है लेकिन जितना *पुद्गल* आवरण हटता है, यहाँ पर उतनी डिग्री तक, उतना ही *पुद्गल* ज्ञान प्रकट हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आवरण हटने से चेतन का ज्ञान प्रकट हुआ न?

दादाश्री : हाँ प्रकट हुआ। फिर भी आत्मा में तो पूरा-पूरा ज्ञान है ही। जिसमें प्रकट हुआ उसका ज्ञान। ज्ञान तो आत्मा का है लेकिन यह प्रकट किसमें हुआ है कि 'इतनी डिग्री प्रकट हुई हैं'। ज्ञान, *पुद्गल* का ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : वह *पुद्गल* का कहलाता है?

दादाश्री : वह *पुद्गल* का है। आत्मा का ज्ञान तो पूर्ण ही है लेकिन अंत में जब *पुद्गल* का ज्ञान पूर्ण होगा तब मोक्ष में जाएगा। क्योंकि उसे उसके बराबर का कर देना है। भावना कर-करके उस रूप ही बनाना है। *पुद्गल* को भगवान बनाना है। जब 'खुद' 'उसके' जैसा हो जाएगा तो मुक्त हो जाएगा। फिर पूर्णाहुति हो जाएगी। धीरे-धीरे भावना कर-करके इस *पुद्गल* को भगवान बनाना है। ज्ञानी बन गए लेकिन अभी कुछ बाकी बचा है, कच्चा है। अब ज्ञानी, वे आत्मा नहीं कहलाते, *पुद्गल* कहलाते हैं। दरअसल (वास्तविक) आत्मा तो पूर्णतः सर्वज्ञ है। अतः यह जो *पुद्गल* है, वह व्यवहार आत्मा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो इसे ऐसा कहा जाएगा कि ज्ञान व्यवहार आत्मा को हुआ है?

दादाश्री : जो *पुद्गल* है, उसे व्यवहार आत्मा कहते हैं तो व्यवहार आत्मा का खुद का ज्ञान कितना है? कि इतना हुआ है। लेकिन जब पूर्णाहुति होगी तब दोनों का छूट कारा हो जाएगा। जब तक दोनों पूर्ण नहीं हो जाते तब तक छूट कारा नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : जो व्यवहार आत्मा है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार से हुई?

दादाश्री : उसकी उत्पत्ति है ही नहीं न! वह तो है ही पहले से। अनादिकाल से है ही। उसका अंत आएगा। उसे जब ज्ञानीपुरूष मिल जाएँगे तब अंत आएगा।

प्रश्नकर्ता : यह जो व्यवहार आत्मा को भी भगवान बनाना है, *पुद्गल* को भी भगवान बनाना है तो वह किस तरह से बनाना है?

दादाश्री : यह बना रहे हैं, उसी तरह से। ज्ञानी के पास बैठोगे तो फिर आप भी उतने ही ज्ञानी बन जाओगे। मैं सर्वज्ञ के पास रहूँ तो सर्वज्ञ बन जाऊँगा। आप मेरे साथ रहोगे तो मेरे जैसे बन जाओगे, ऐसे करते-करते सब होते-होते हो रहा है।

अंत में जब खुद के स्वरूप को जानेगा, तब कभी न कभी स्वरूपमय बन जाएगा। पहले श्रद्धा में आता है। फिर धीरे-धीरे ज्ञान में आता है और फिर वर्तन में आता है। वर्तन में आया कि पूर्ण हो गया। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप पूर्ण हो जाएगा।

शुद्ध ज्ञान रखता है मिलावट रहित

शुद्ध ज्ञान से मोक्ष है। सद् ज्ञान से सुख और विपरीत ज्ञान से दुःख है। ज्ञान खुद ही मुक्ति है। जो ज्ञान अनात्मा के साथ एकाकार नहीं होने देता, *पुद्गल* में एकाकार नहीं होने देता, वह ज्ञान ही आत्मा है। आत्मा ढूँढना हो तो यही है। जो ज्ञान परभाव में एकाकार नहीं होने देता, पर-रमणता में एकाकार नहीं होने देता, वही ज्ञान है और वही आत्मा है। होम डिपार्टमेन्ट में रखता है, फॉरेन में घुसने ही नहीं देता।

तो भगवान कैसे होंगे? तब मैंने कहा, 'भगवान शुद्ध ही हैं। शुद्ध ज्ञान के अलावा भगवान अन्य कोई चीज़ नहीं है'। लेकिन शुद्ध ज्ञान किसे कहेंगे? कौन से थर्मामीटर के हिसाब से वह शुद्ध ज्ञान कहलाएगा? जिस ज्ञान से राग-द्वेष और भय नहीं होते, वह ज्ञान शुद्ध ज्ञान है और शुद्ध ज्ञान ही परमात्मा है। ज्योति स्वरूप शुद्ध ज्ञान, जो परम ज्योति स्वरूप हैं, वही परमात्मा हैं। परमात्मा कोई स्थूल चीज़ नहीं है, ज्ञान स्वरूप से हैं। एब्सल्यूट ज्ञान मात्र हैं। एब्सल्यूट इसीलिए

कहते हैं कि उनमें अन्य किसी चीज़ की मिलावट नहीं है और मिल भी नहीं सकती।

सनातन ज्ञान खुद ही आत्मा है। आत्मा ही ज्ञान है। सारा ज्ञान आत्मा ही है, एक ही है। वही परमात्मा है। अन्य किसी परमात्मा को ढूँढने की ज़रूरत नहीं है। परमात्मा आपके अंदर ही बैठे हुए हैं। आत्मा बैठा हुआ है और देहधारी भी बैठे हैं। मूर्त भी बैठा हुआ है और अमूर्त भी बैठा हुआ है।

शुद्ध ज्ञान ही आत्मा

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैसे हो सकता है कि ज्ञान ही आत्मा है? ज़रा समझाइए।

दादाश्री : वह खुद ही आत्मा है। अब लोगों को यह समझ में नहीं आ सकता न! लेकिन लोग तो क्या समझते हैं कि आत्मा नाम की कोई चीज़ होगी! वह 'वस्तु' है ज़रूर लेकिन लोग ऐसी चीज़ ढूँढते हैं जो उनकी खुद की दृष्टि में आ सके। उसके बारे में सही बात कौन बताएगा? यह तो सिर्फ ज्ञानी ही बता सकते हैं, अन्य कोई इसको समझ ही नहीं सकता न! कृष्ण ही ज्ञान हैं और ज्ञान ही कृष्ण है। ये दादा भगवान ज्ञान हैं और ज्ञान ही दादा भगवान है। ज्ञान ही महावीर है और महावीर ही ज्ञान हैं लेकिन ये लोग जिसे ज्ञान कहते हैं, यह वह वाला ज्ञान नहीं है, यह विज्ञान कहलाता है। ये लोग कहते हैं, उसे भी अगर ज्ञान कहेंगे न, तब तो फिर उसके साथ तुलना करते रहेंगे। अतः जो एब्सल्यूट ज्ञान है उसे केवलज्ञान कहते हैं, वही आत्मा है। केवलज्ञान का अर्थ एब्सल्यूट ज्ञान है और वह खुद एब्सल्यूट ही है। केवलज्ञान ही आत्मा है।

ज्ञान के प्रकार

दो प्रकार के ज्ञान हैं। एक मायावी ज्ञान और एक आत्मा का ज्ञान। यह मायावी ज्ञान किसने सिखाया?

प्रश्नकर्ता : वह तो अनादि से चला आया है न, उसमें किसी को क्या सिखाना?

दादाश्री : जब वास्तविक ज्ञान होगा तब भगवान दिखाई देंगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह बात तो स्पष्ट ही है न!

दादाश्री : उसी से मोक्ष होगा। वास्तविक ज्ञान चेतन होता है और मायावी ज्ञान चेतन नहीं होता। आप जानोगे लेकिन कुछ होगा नहीं। क्रिया कुछ नहीं हो पाएगी, बस इतना ही है कि जानते हैं। जबकि चेतन ज्ञान जान लेने के बाद अपने आप ही होता रहता है। वास्तविक ज्ञान किसे कहते हैं? जिसे जान लेने के बाद वैसा हो ही जाता है, अपने आप ही होता जाता है। हमें करना नहीं पड़ता। हम रास्ते पर जा रहे हों, इधर-उधर देखकर चल रहे हों और अचानक नीचे साँप देखें तो उस क्षण क्या क्रिया होती है? वह अचानक कूद जाता है। देखा भी अचानक और कूदता भी अचानक है। ज्ञान का फल है यह। उसका सही ज्ञान नहीं होता तो नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, ज्ञान कितने प्रकार के हैं?

दादाश्री : ज्ञान के बहुत प्रकार हैं ही नहीं। एक अज्ञान ज्ञान है, जो ज्ञान-अज्ञान के रूप में है और दूसरा विज्ञान-ज्ञान है। बस, दो ही प्रकार हैं।

प्रश्नकर्ता : इन दोनों के बारे में समझाइए।

दादाश्री : जो जानने के बावजूद भी जीवंत नहीं है, जो ज्ञान जीवंत नहीं है, वह अज्ञान ज्ञान कहलाता है। वह कार्यकारी नहीं होता, ज्ञान खुद कार्यकारी नहीं होता, हमें करना पड़ता है। जितना जानते हैं, वह हमें करना पड़ता है। जो ज्ञान खुद ही क्रियाकारी होता है, वह विज्ञान कहलाता है और वह चेतन ज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : एक उदाहरण दीजिए न दादा।

दादाश्री : यों कोई संतपुरुष कहें कि, 'चोरी नहीं करनी चाहिए, ऐसा नहीं करना है, ऐसा नहीं करना है'। वे कहते हैं लेकिन उसके बाद वह ज्ञान काम नहीं करता। वह तो हमें करना पड़ता है। चोरी बंद करनी पड़ती है हमें। और जब तक बंद नहीं की जाए तब तक वह चोरी बंद नहीं होती। क्या वह ज्ञान चोरी बंद कर सकता है? उस ज्ञान को जानने से क्या चोरी बंद हो जाएगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : जबकि इसे तो जानने से ही परिवर्तन आ जाता है। क्या हो जाता है? विज्ञान, चेतन ज्ञान। रात-दिन सावधान करता रहता है और बंधने ही नहीं देता। कभी भी जब बंधन आता है, तो उसी समय वहाँ उसे घुमा देता है और कभी भी बंधने ही नहीं देता, बंधन में आने ही नहीं देता। बंधन में आने लगे तो उसे छुड़वाता है। जबकि वह तो ज्ञान ही नहीं है। यह जो पुस्तकों में लिखा है, वह तो किताबी ज्ञान, स्थूल ज्ञान है। वह अज्ञान है लेकिन यदि उस अज्ञान को भी मज़बूत कर लेगा तो ज्ञान का अधिकारी बन जाएगा लेकिन अज्ञान को भी कहाँ मज़बूत किया है?

हिंदुस्तान में ये जो ज्ञानी हैं न, वे अज्ञान के ज्ञानी कहलाते हैं जो कि शास्त्रों को जानते हैं। अरे भाई, रख न एक तरफ! उसे जानकर तुझमें क्या बदलाव आया? बदलाव आए तो वह सही है। लोहे में से सोना बन जाए तो सही है, वर्ना जैसा है वैसे का वैसा!

प्रश्नकर्ता : ऐसा कह सकते हैं कि ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान और विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान?

दादाश्री : नहीं। विज्ञान अर्थात् एब्सल्यूट ज्ञान। आत्मज्ञान होने तक का जो ज्ञान है, वह ज्ञान कहलाता है। आत्मज्ञान का स्पर्श होने तक ज्ञान कहलाता है और बाद में आगे जाकर उसे विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान एब्सल्यूट है। अत: ज्ञान को करना पड़ता है और विज्ञान से अपने आप ही क्रिया होती रहती है।

ज्ञान-विज्ञान के परिणाम

मैं आत्मा को पूर्ण रूप से जानता हूँ। सर्वांश रूप से, एक-एक अंश को जानता हूँ और इस (माइक) का ज्ञान नहीं आता। इसे क्या कहेंगे? तो क्या यह (माइक का) ज्ञान आत्मज्ञान में नहीं समाता?

प्रश्नकर्ता : यह माइक्रोफोन तो जड़ है, अनात्म है।

दादाश्री : यह सब्जेक्टिव ज्ञान है और सारा सब्जेक्टिव ज्ञान, ओब्जेक्टिव होता है। आत्मा के लिए ओब्जेक्टिव। यह सब्जेक्टिव ज्ञान कहलाता है। वह जिस सब्जेक्ट में गहरा उतरा हो, उसे वह जानता है। अहंकारी ज्ञान और बुद्धि विलास। उसमें गहरे उतर जाए तो भी बुद्धि तो सभी में हैं लेकिन अगर इसमें गहरे उतर जाए तो, अगर इन्कम टैक्स एक्सपर्ट हो तो इन्कम टैक्स के हल ला देता है।

वर्ना भगवान तो विज्ञान स्वरूप हैं। भगवान अर्थात् विज्ञान स्वरूप।

प्रश्नकर्ता : 'भगवान विज्ञान स्वरूपी हैं, ज्ञान स्वरूपी नहीं हैं', इसका मतलब?

दादाश्री : हाँ ज्ञान स्वरूप नहीं हैं। ज्ञान उसे कहते हैं कि उस ज्ञान में जैसा बताया गया है, आप उस अनुसार करो तो वैसा होता है और विज्ञान में आपको करना नहीं पड़ता। वह अपने आप ही काम करता रहता है। हमने यह जो ज्ञान दिया है न, विज्ञान, वह तो अंदर अपने आप ही काम करता रहता है। यह आपको उल्टा घुमाता है कि 'अरे, ऐसा नहीं'।

विज्ञान अर्थात् दरअसल आत्मा ही और ज्ञान का मतलब आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का मतलब आत्मा नहीं है? तो आत्मा को ज्ञान का पिंड कहा जाता है न दादा?

दादाश्री : हाँ ज्ञान का पिंड कहते हैं, वह ठीक है लेकिन वह उस भाषा में सही है लेकिन जब तक यह ज्ञान, विज्ञान नहीं बन जाता

तब तक आत्मा कहलाएगा ही नहीं। लेकिन फिर भी उसे शब्दों में तो ऐसा ही कहा गया है कि ज्ञान ही आत्मा है। अंत में तो ज्ञान ही आत्मा है लेकिन कौन सा ज्ञान? विज्ञान ज्ञान।

ज्ञान दो प्रकार के हैं। जिसे हम जानते हैं लेकिन उसके बावजूद भी कुछ होता नहीं है। फल नहीं आता। पपीता नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी।

दादाश्री : वह पूरा पेड़ होता है। रोज़ पानी पिलाने पर भी फूल आते हैं लेकिन फल नहीं आते। अतः यह ज्ञान, शुष्कज्ञान कहलाता है और जो ज्ञान फल देता है, वह विज्ञान कहलाता है। अतः अपना यह विज्ञान है इसलिए तुरंत ही अंदर काम करता है और चेतावनी देता है। अन्य कोई ज्ञान ऐसा नहीं है जो अंदर चेतावनी दे।

वास्तव में तो ज्ञान ही आत्मा है लेकिन अगर इसे विज्ञान नहीं कहेंगे तो सभी लोग कहेंगे, 'हमारा ज्ञान है न! तो क्या हमारा आत्मा नहीं है?' 'नहीं! वह नहीं है'। आत्मा तो अंदर कार्यकारी होना चाहिए। उसका फल तो आना चाहिए या नहीं आना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : फल आना चाहिए।

दादाश्री : अफीम खाई जाए तो वह अफीम तुरंत ही फल देगी या नहीं? खाने के थोड़ी देर बाद अफीम झोंके खिलाएगी या नहीं? और अगर इतनी सी शराब पी ले तो?

प्रश्नकर्ता : उससे भी झोंके आते हैं।

दादाश्री : उससे भी झोंके आते हैं। नहीं? उनका ज्ञान उस प्रकार से फल नहीं देता न! कितने ही समय से शास्त्र पढ़-पढ़कर उसी जगह पर। आगे भी नहीं और पीछे भी नहीं, वही के वही राग-द्वेष। जिससे राग-द्वेष कम हों, उसे ज्ञान कहते हैं। आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो जाएँ उसे ज्ञान कहते हैं और जब तक आर्तध्यान-रौद्रध्यान हैं तब तक उसे ज्ञान कैसे कहेंगे?

अत: हमने उसे विज्ञान कहा। इस काल में वास्तव में विज्ञान ही है लेकिन इसे ज्ञान कहा जा सकता है। लेकिन इस 'ज्ञान' का दुरुपयोग करते हैं इसलिए हमने 'विज्ञान' कहा है। लोग इसे विज्ञान किस प्रकार कहेंगे फिर? ज्ञान में तो हमने भी शास्त्र पढ़े हैं लेकिन शास्त्र पढ़ने वाला ज्ञान नहीं चलेगा। आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। शक्कर मीठी है, वह शब्दों से तो सभी जानते हैं लेकिन अगर पूछा जाए कि 'मीठी का मतलब क्या है?' तब क्या कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं। वह तो अनुभव की बात है।

दादाश्री : हाँ, वह तो जब मैं जीभ पर रख देता हूँ तब। तो हम तो जिसे जीभ पर रखते हैं, उसे मीठा कहते हैं और वे लोग शब्द को मीठा कहते हैं। उससे कुछ बदलेगा?

ज़रूरत है विज्ञान स्वरूप आत्मा की

ज्ञान कितने प्रकार के हैं? दो प्रकार के ज्ञान हैं। ज्ञान के बिना तो कोई जीव जी ही नहीं सकता। उनमें से एक ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष है और दूसरा अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष। पूरी दुनिया इन्द्रिय प्रत्यक्ष में ही डूबी हुई है। साधु-संन्यासी-आचार्य सभी इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान में हैं।

प्रश्नकर्ता : इन दोनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : ज्ञान स्वरूप आत्मा हमें कोई चेतावनी नहीं देता। जबकि विज्ञान स्वरूप आत्मा तो हमें चेतावनी देता है। आपको कौन सा चाहिए?

प्रश्नकर्ता : जो चेतावनी देता है वह आत्मा चाहिए।

दादाश्री : तो वैसा आत्मा हम देते हैं।

ज्ञान का मतलब क्या है? ज्ञान अर्थात् यह अच्छा और यह खराब, सत् और असत् का विवेक करवाता है जबकि यह तो विज्ञान है अत: मुक्ति दिलवाता है।

केवलज्ञान स्वरूप में, वही लक्ष

प्रश्नकर्ता : तो फिर भेदज्ञान को सर्वस्व ज्ञान कह सकते हैं?

दादाश्री : भेदज्ञान ही सर्वस्व ज्ञान है और वही केवलज्ञान का द्वार है।

अतः बिल्कुल शुद्ध ज्ञान ही परमात्मा है, अन्य कुछ भी नहीं है। देहधारी रूप में, परमात्मा का ऐसा शरीर नहीं होता, वे निर्देही हैं। शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं, केवलज्ञान स्वरूप हैं, वे अन्य किसी स्वरूप में हैं ही नहीं। ज्ञानीपुरूष के पास बैठने से खुद को वह केवलज्ञान स्वरूप समझ में आता है। क्योंकि ज्ञानीपुरूष का आशय केवलज्ञान स्वरूप में रहने का ही है लेकिन इस काल के हिसाब से अखंडरूप से केवलज्ञान स्वरूप में नहीं रहा जा सकता। फिर भी उनका आशय कैसा रहता है कि निरंतर केवलज्ञान स्वरूप में रहना है क्योंकि वे 'खुद' 'केवलज्ञान स्वरूप' को जानते हैं। इस काल का इतना ज़बरदस्त इफेक्ट है कि केवलज्ञान स्वरूप में नहीं रहा जा सकता। जैसे कि अगर दो इंच के पाइप में ज़ोर से पानी आ रहा हो तो उस पर उँगली रखने जाएँ तो खिसक जाती है और आधे इंच के पाइप में से पानी आ रहा हो तो उँगली नहीं खिसकती। यों इस काल का इतना अधिक ज़ोर है कि ज्ञानीपुरूष को भी समतुला में नहीं रहने देता!

न हारे कभी वीतराग किसी चीज़ से

आत्मा जब खुद के स्व-गुण को जानता है, स्व-स्वरूप को जानता है, स्व-ज्ञान को जानता है, तब अनइफेक्टिव हो जाता है।

चाहे कैसे भी रूप लेकर आए हुए हों, तरह-तरह के शब्दों से, अपने मन को समझकर बोलते रहें तब भी जो नहीं डिगता, उसे कहते हैं ज्ञान। ऐसे-ऐसे लोग आकर थक जाते हैं फिर भी अपना ज्ञान नहीं डिगता। वह जो ज्ञान है, वही परमात्मा है और जो डिग जाए, वह परमात्मा नहीं है, ज्ञान नहीं है।

ज्ञान तो असीम है लेकिन वीतरागों ने जिस ज्ञान को जीता, उससे आगे कोई ज्ञान है ही नहीं। जो किसी भी जगह पर न हारे, वे वीतराग कहलाते हैं। शायद कभी देह हार जाए, मन हार जाए, वाणी हार जाए लेकिन खुद नहीं हारते। वीतराग कैसे!

शुद्ध ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि किसी को टच ही नहीं करता, निर्लेप रहता है! अज्ञान के साथ भी ज्ञान निर्लेप रहता है। ज्ञान क्रिया में भी एकाकार नहीं होता, निर्लेप ही रहता है! किसी को स्पर्श नहीं करता, बाधक नहीं है, वही आत्मा कहलाता है। अंधकार को भी बाधक नहीं है, अज्ञान के अंधकार को भी बाधक नहीं है वह। अज्ञान उसके लिए बाधक है। वह खुद किसी के लिए बाधक नहीं है, वह परमात्मा है। दीये जैसी बात है न!

महात्माओं के लिए 'स्वरूप ज्ञान' में रहने की चाबी

ज्ञान ही सुख है, ज्ञान ही आत्मा है, ज्ञान ही केवलज्ञान है, ज्ञान ही मोक्ष है। अतः ज्ञान में रहना है। ज्ञान में कब रह पाएँगे? चंदूभाई को पहचान लेंगे तो ज्ञान में रह पाएँगे। हम चंदूभाई को पूर्ण रूप से पहचान लें कि, फलानी जगह पर ज़रा टेढ़े हैं, फलानी जगह पर सीधे हैं, पूरा अच्छी तरह से पहचान लें। भगवान ने इतना ही कहा है कि ज्ञेय को जानो। प्रथम ज्ञेय कौन सा है? तो वह है पड़ोसी। स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं, उन्हें जानो। वे ज्ञेय है और आप ज्ञाता हो।

जो अज्ञान में न घुसने दे, वही ज्ञान कहलाता है। चंदूभाई वकालत करते हुए किसी से बात कर रहे हों तो उसमें वास्तव में तो वह अज्ञान ही है क्योंकि वह नियम के अनुसार नहीं है न! अनियम और नियम, दोनों ही अज्ञान हैं लेकिन 'आप' उसमें चले नहीं जाते, 'आप' देखते रहते हो।

अंदर से अज्ञान खड़ा होते ही ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि यह चूरण खा लूँ? तब वह ज्ञान हाज़िर हो जाता है, 'अरे, इससे तो मर जाएगा'। वह ज्ञान हाज़िर हो जाएगा तो फिर रुक जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह जो ज्ञान हाज़िर होता है, वह प्रज्ञा का भाग है?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा का!

प्रश्नकर्ता : आपने ज्ञान दिया तो अज्ञान का आवरण तो चला गया तो अब कौन से आवरण बचे हैं?

दादाश्री : मूल आवरण चला गया। अब दूसरे आवरण बचे हैं। रूट कॉज़ चला गया। अब पहले ऊपर के पत्ते सूखेंगे, डालियाँ सूखेंगी, उसके बाद तना सूखेगा। रूट कॉज़ निकाल दिया है, काट दिया है फिर भी हरा-भरा तो दिखाई देगा न ऊपर से! कुछ दिनों तक!

केवलज्ञान हो जाएगा तो पूर्ण हो जाएगा, सभी आवरण चले जाएँगे। वह निरावृत ज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', क्या यह ज्ञान है?

दादाश्री : नहीं। वह ज्ञान तो विज्ञान कहलाता है। ज्ञान तो इन शब्दों में लिखा रहता है। जो करना पड़ता है उसे ज्ञान कहते हैं। और जो करना नहीं पड़ता, अपने आप सहज रूप से होता रहता है, वह विज्ञान है।

यह न तो मुमुक्षुओं का ज्ञान है, न ही जिज्ञासुओं का ज्ञान, यह तो ज्ञानियों का ज्ञान है। अब आप खुद ही ज्ञानी बन जाते हो, जब से यह ज्ञान मिला, तभी से आप ज्ञानी बन गए। अतः आप ज्ञानी कहलाते ज़रूर हो लेकिन अगर कोई पूछे कि 'लो, इस बारे में बताओ', तो फिर जवाब देना नहीं आएगा, क्योंकि एक्सपिरियन्स करते हुए नहीं आए हो। यह ज्ञान आपको रास्ते चलते प्राप्त हो गया है।

डिस्चार्ज मान के सामने ज्ञान जागृति

प्रश्नकर्ता : दादा, ज्ञान लेने के बाद अब मुझे ऐसा नहीं लगता कि पिछले एक-दो सालों में किसी पर राग-द्वेष हुआ हो। वास्तव में तो लगभग होता ही नहीं है लेकिन यह जो मान परिणाम खड़ा होता है न, वह यों इतनी आसानी से नहीं जाता।

दादाश्री : उसे जाने नहीं देना है, उसे देखना है, वह डिस्चार्ज है और अभी अगर डिस्चार्ज में जो राग-द्वेष हैं तो वह अज्ञान का परिणाम है। 'आपको' अगर उसमें राग-द्वेष नहीं होते हैं तो वह आत्मा प्राप्ति का परिणाम है। अब वह तो डिस्चार्ज है, वह निकलता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : यों तो अच्छा लगता है।

दादाश्री : आपको कहना है, 'बहुत रौब मार रहे हो? अच्छे मज़े हैं आपको तो! कोई हर्ज नहीं लेकिन अब ज़रा वापस राह पर आ जाओ'। उसमें हर्ज नहीं है, वह डिस्चार्ज परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन ज़रा अड़चन... इससे रियलाइज़ेशन में थोड़ा अब्स्ट्रक्शन नहीं हो जाएगा?

दादाश्री : नहीं! रियलाइज़ तो सब हो ही चुका है लेकिन इसे आचरण में आने में देर लगेगी। राग-द्वेष चले गए हैं, इसलिए ऐसा कहा जाएगा कि आत्मा प्राप्त हो गया। सौ प्रतिशत ऐसा कह सकते हैं कि आत्मा प्राप्त हो गया है। सौ प्रतिशत आत्मा रूप हो चुके हो आप। यह सारा जो कचरा माल भरा हुआ है, जैसे-जैसे वह निकलता जाएगा, वैसे-वैसे परिणाम आता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा जब मान खड़ा होता है तब हमें अच्छा तो नहीं लगता। लगता है कि गलत ही है। वहाँ पर हमें क्या जागृति रखनी चाहिए या फिर सिर्फ उसे देखते ही रहना है?

दादाश्री : नहीं-नहीं। वह जो मान खड़ा होता है उसे देखना है। वही ज्ञान कहलाता है। देखने वाला ज्ञान कहलाता है और जो खड़ा होता है, वह अज्ञान है। ज्ञान अज्ञान को देखता है। फिर चाहे एक अंश मान हो या पचास अंश मान हो लेकिन जो अज्ञान को देखे, वह ज्ञानी। वह अज्ञान है, ऐसा आपको पता चलता है न?

प्रश्नकर्ता : यह मान वाला अज्ञान कहलाएगा?

दादाश्री : वह मान वाला अज्ञान है, ऐसा आपको पता चलता है न? आप उस अज्ञान को देखते हो इसलिए आप ज्ञानी हो, वर्ना अज्ञानी को तो अज्ञान का पता नहीं चल सकता न! उसमें कुछ गलत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जितनी आसानी से राग-द्वेष निकल गए हैं उतनी आसानी से यह नहीं निकल रहा है झट से!

दादाश्री : राग-द्वेष निकल नहीं गए हैं, आपने नहीं निकाले हैं वह तो आत्मा प्राप्त होने की निशानी है।

सभी ज्ञानियों का पुरुषार्थ एक सरीखा

'कोई अगर गालियाँ दे रहा है तो किसे दे रहा है', वह मुझे पता है। उसका मुझ पर असर नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : अगर फूल-माला पहनाए, सम्मान करे तब भी ऐसा ही रहता है?

दादाश्री : नहीं, उस समय चेहरे पर हँसी आ जाती है, उसे भी हम जानते हैं। चेहरे पर स्मित आ जाता है, अंदर *लागणियाँ* (लगाव, भावुकता वाला प्रेम) उमड़ती हैं, उसे भी हम जानते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि हम पर कोई असर ही नहीं होता, तो वह जो असर नहीं होता तो क्या वह इसलिए है कि संपूर्ण रूप से जुदापन रहता है या इसलिए कि अंदर ऐसी प्रक्रिया होती है?

दादाश्री : प्रक्रिया-व्रक्रिया कुछ भी नहीं। पहले क्या होता था कि ज्ञाता और ज्ञेय एक ही हो जाते थे और अब अलग रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को फूल-माला पहनाने पर उनके चेहरे पर स्मित आ जाता है, उसे भी खुद जानते हैं।

दादाश्री : मुस्कुराते हैं, इतना ही नहीं लेकिन *लागणियाँ* वगैरह भी सारी अज्ञानी जैसी ही दिखाई देती हैं और उनको भी वे खुद देखते और जानते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये *लागणियाँ* भी पूर्वकर्म का उदय मानी जाएँगी?

दादाश्री : हाँ, पूर्वकर्म का उदय मानी जाएँगी। आज का ज्ञान यह देखता है कि पहले के ज्ञान का क्या असर हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर जो कि संपूर्ण वीतराग हैं, क्या उन्हें भी ऐसा ही रहता है?

दादाश्री : सभी को ऐसा एक सरीखा ही रहता है न!

प्रश्नकर्ता : बाहर सभी *लागणियाँ* रहती हैं?

दादाश्री : हाँ, सभी *लागणियाँ* रहती हैं। हँसते हैं, खूब हँसते हैं। रोने की जगह पर रोते भी हैं। अगर किसी की माँ मर जाए तो वह पाँच मिनट के लिए रोएगा या नहीं रोएगा? और रोने का मतलब यह नहीं कि उनका ज्ञान चला गया। या फिर अगर बहुत वेदना होने लगे, किसी का हाथ काट दिया जाए तो आँखों में पानी भर आए तो उससे कहीं ज्ञान चला नहीं गया।

आज का ज्ञान अलग, तो कषाय नहीं

प्रश्नकर्ता : टोटल सेपरेशन हो जाए, इसका मतलब क्रोध-मान-माया-लोभ संपूर्ण रूप से चले गए?

दादाश्री : वे तो, जब से प्रतीति होती है, तभी से खत्म हो जाते हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी प्रतीति होते ही खत्म हो जाते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ कब कहा जाता है? उदय का ज्ञान और आज का ज्ञान एक हो जाएँ, तब उसे क्रोध-मान-माया-लोभ कहते हैं। यदि आज का ज्ञान अलग रहता है तो उसे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं कहा जाएगा। दोनों का संयोग हो जाए तभी क्रोध कहलाता है, वर्ना क्रोध नहीं कहलाएगा। उसकी डेफिनेशन है। अंदर से चंदूभाई क्रोध करते हैं और आप कहते हो कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। अत: अभिप्राय बिल्कुल अलग है। अर्थात् यह हिंसकभाव और यह अहिंसकभाव। दोनों के बीच का तन्मयाकार वाला भाव खत्म हो गया। क्रोध-मान-माया-लोभ में, इन चारों में जो हिंसकभाव होते हैं, वे खत्म हो जाते हैं। उसे खुद को आज हिंसकभाव नहीं है, इसलिए वह क्रोध नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जब टोटल सेपरेशन हो जाता है तब प्रज्ञा का उदय होता है और तब जो लौकिक बुद्धि है, वह चली जाती है?

दादाश्री : अलग हो जाने पर बुद्धि खत्म हो जाती है और प्रज्ञा का

अनुभव तो शुरुआत से ही हो जाता है। संपूर्ण रूप से अलग न हो जाए तब भी उसे प्रतीति बैठ जाती है और एक तरफ प्रज्ञा शुरू हो जाती है।

अज्ञान से परिग्रह, परिग्रह से उलझन, ज्ञान से सुलझता है

हर एक उलझन के हल के पीछे एक ज्ञान रहा हुआ है। यह दुनिया उलझनों का ही स्टॉक है। एक ही ज्ञान से सभी उलझनें नहीं सुलझतीं। ज्ञान के बिना तो उलझनें सुलझ ही नहीं सकतीं न!

प्रश्नकर्ता : वह तो, जब सुलझता है तब लेकिन उलझते समय क्या होता है?

दादाश्री : वे उलझनें अज्ञान से होती हैं वर्ना होंगी ही नहीं न! और उलझनें ज्ञान से सुलझ जाती हैं। जब उलझनें सुलझती हैं तो फिर समाधान हो जाता है और मन मुक्त हो जाता है। मन उलझनों में से मुक्त होता जाता है।

अज्ञान से परिग्रह बढ़ते जाते हैं और परिग्रह से उलझनें बढ़ती जाती है और ज्ञान से फिर उलझनें सुलझ जाती हैं और फिर परिग्रह छूट जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या परिग्रह ज्ञान और अज्ञान पर आधारित हैं?

दादाश्री : हं। ज्ञान, अज्ञान और परिग्रह। अज्ञान से परिग्रह उत्पन्न होते हैं और जैसे-जैसे ज्ञान से उलझनें सुलझती जाती हैं वैसे-वैसे परिग्रह कम होते जाते हैं।

गतज्ञान के आधार पर पराक्रम

आपको अभी ज्ञान मिला है। अगले जन्म में पराक्रम उत्पन्न होगा। यह जो दादा का पराक्रम है, वह गतज्ञान का पराक्रम है। आपको जो यह ज्ञान मिला है, उसका पराक्रम अगले जन्म में आएगा। तब तक पराक्रम उत्पन्न नहीं होगा। तब तक वह परिणामित नहीं होगा। जब परिणामित होगा तब वह फल देगा।

प्रश्नकर्ता : अत: आपमें अभी जो पराक्रम उत्पन्न हुआ है, वह गतज्ञान के आधार पर है?

दादाश्री : हाँ, यह पराक्रम गतज्ञान के आधार पर ही है। पराक्रम कब कहलाता है कि जब शब्द पाताल में से निकलें। यहाँ पर अगर आप मेरे कहे हुए शब्द बोलोगे तो वह नहीं चलेगा। पाताल के शब्द, अंदर से शास्त्र बोल रहे हों, उसे पराक्रम कहा जाएगा, गतज्ञान पराक्रम!

[5.1]

ज्ञान-दर्शन

परिभाषा रत्नत्रय की

प्रश्नकर्ता : ज्ञान, दर्शन और चारित्र के बारे में समझाइए।

दादाश्री : व्यवहार ज्ञान-दर्शन के बारे में जानना है या परमार्थ?

प्रश्नकर्ता : परमार्थ।

दादाश्री : परमार्थ! परमार्थ ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। सीधे ही आत्मा प्राप्ति, बीच में अन्य कोई दखल नहीं। आत्मा प्राप्ति का ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। वह चाहे पुस्तकों से प्राप्त हुआ हो या सुनने से प्राप्त हुआ हो या श्रुतज्ञान से प्राप्त हुआ हो। उस ज्ञान प्राप्ति के बाद उसे दर्शन अर्थात् प्रतीति बैठती है। ऐसी प्रतीति कि इस ज्ञान में जो कहा गया है, वैसा ही है। उसी को दर्शन कहते हैं। और ऐसी प्रतीति बैठ जाए तो फिर वह चारित्र में आता है। जब तक प्रतीति नहीं बैठती तब तक चारित्र में नहीं आता। प्रतीति को सम्यक् दर्शन कहा गया है और इस संसार की जो प्रतीति बैठी है, वह मिथ्यादर्शन है, वह विनाशी है। उसमें सुख है ही नहीं, माना हुआ सुख है। सच्चा सुख एक क्षणभर के लिए भी किसी भी जगह पर नहीं हो सकता। जो भी सुख है, वह कल्पित सुख है और फिर वह अंत वाला है। जबकि आत्म सुख निर्विकल्प है और परमानेन्ट है, सनातन है। अतः एक बार सुने तो, उस ज्ञान को सुनने के बाद प्रतीति बैठ जाए तो चारित्र में आ जाता है और मोक्ष हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह जो वाक्य है न '*सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्याणि*

मोक्षमार्ग'। क्या ऐसा नहीं है कि जब दर्शन और ज्ञान दोनों संपूर्ण अवस्था में हों, उसी को मोक्षमार्ग कहा जाता है?

दादाश्री : नहीं-नहीं। ऐसा नहीं है। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीनों मोक्षमार्ग हैं। इसलिए कहते हैं कि बाकी सारा बंधन मार्ग है। यदि इसमें आ गए, इसमें से एक भी पद में आ गए, तभी से मोक्षमार्ग की शुरुआत हो जाती है। बाकी सभी मिथ्या मार्ग हैं, वह सारा संसार मार्ग है और यह सम्यक् मार्ग है, यही मोक्षमार्ग है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र!

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन की परिभाषा बताइए।

दादाश्री : सम्यक् दर्शन अर्थात् भ्रांत दर्शन का अभाव हो जाता है। 'भौतिक चीज़ों में सुख नहीं है', उसे ऐसा भान हो जाता है, ऐसी श्रद्धा बैठ जाती है। ऐसी प्रतीति बैठना कि ''सनातन सुख 'आत्मा' में है'', उसी को सम्यक् दर्शन कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : और सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के बारे में कुछ बताइए।

दादाश्री : अब, जब सम्यक् दर्शन हो जाए तो, उसके बाद दूसरे अनुभव होते जाते हैं। जैसे-जैसे अनुभव होते हैं, वैसे-वैसे सम्यक् ज्ञान के अंश बढ़ते जाते हैं। सम्यक् दर्शन से जो अनुभव होते हैं, वैसे-वैसे सम्यक् ज्ञान के अंश बढ़ते जाते हैं। अर्थात् सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान की दशा बढ़ने पर सम्यक् चारित्र की शुरुआत होती है। राग-द्वेष रहित चारित्र ही सम्यक् चारित्र कहलाता है।

मोक्ष तो खुद का स्वभाव ही है! जब ज्ञान, दर्शन व चारित्र सम्यक् हो जाएँ तो, उसी को मोक्ष कहते हैं। ये ज्ञान-दर्शन-चारित्र मिथ्या हैं, उसके बजाय यदि सम्यक् हो जाएँ तो मोक्ष ही है।

प्रश्नकर्ता : संसार में भी मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्र होते हैं न?

दादाश्री : इस संसार में ज्ञान-दर्शन-चारित्र सभी कुछ हैं तो सही और तप भी है लेकिन वह मिथ्या है जबकि यह सम्यक् है। मिथ्या अर्थात् विनाशी सुख के हेतु से और यह सनातन सुख के हेतु से है।

भगवान ने दर्शन तो उसे कहा है कि दृष्टि बदल जाए तो दर्शन है वर्ना दर्शन नहीं है, अदर्शन है। जिस ज्ञान से दृष्टि बदल जाए वही ज्ञान, ज्ञान है और जिस ज्ञान से दृष्टि नहीं बदले वह अज्ञान है। अत: अदर्शन है, अज्ञान है। यह दर्शन है, ज्ञान है। जहाँ पर दर्शन व ज्ञान हैं, भगवान ने उसे चारित्र कहा है और जहाँ पर अदर्शन और अज्ञान हैं, उसे कुचारित्र कहा है।

ज्ञान पर जो आवरण हैं, वह अज्ञान है और दर्शन पर जो आवरण हैं, वह अदर्शन है। अज्ञान और अदर्शन का परिणाम क्या आता है? 'कषाय'। और ज्ञान व दर्शन का फल क्या है? 'समाधि'।

आत्मा का दर्शन, अनुभव और ज्ञान

प्रश्नकर्ता : प्रतीति का मतलब क्या है?

दादाश्री : कोई कहे कि यह मेरी स्त्री है। तब कोई पूछे 'नहीं अभी तक समझ में नहीं आया'। तब कहता है, 'पत्नी है'। उसके शब्द तो हैं ही। उसे स्त्री शब्द से समझ में नहीं आया तो पत्नी कहता है तब समझ में आएगा न? तो प्रतीति अर्थात् दर्शन।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा श्रद्धा में रहे तो वह प्रतीति कहलाएगी न?

दादाश्री : श्रद्धा उसे कहते हैं जो हट जाती है, विश्वास उठ जाता है। बैठी हुई श्रद्धा उठ जाती है, प्रतीति नहीं उठती।

प्रश्नकर्ता : तो यह दर्शन कहलाएगा?

दादाश्री : हाँ, दर्शन कहलाएगा। जो उठेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : दर्शन का मतलब क्या है?

दादाश्री : दर्शन अर्थात् जो समझ में फिट हो गया है।

प्रश्नकर्ता : अगर इस प्रतीति को दर्शन कहेंगे तो *लक्ष* किसमें समाएगा?

दादाश्री : अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति। प्रतीति का समावेश दर्शन में होता है। *लक्ष* का जागृति में। *लक्ष* अर्थात् जागृति। और जो प्रतीति हुई है वह अनुभव में आ जाए तो, उसी को 'ज्ञान होना' कहते हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह दर्शन है, और जब उसका अनुभव होता है तो वह ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : हम 'आत्मा का ज्ञान' कहते हैं और फिर 'आत्मा का अनुभव' कहते हैं, तो आत्मा के अनुभव और आत्मा के ज्ञान में क्या अंतर है?

दादाश्री : आत्मा का ज्ञान संपूर्ण कहलाता है और अंश-अंश करके अनुभव कहलाता है। अंश ज्ञान को अनुभव कहा गया है और सर्वांश ज्ञान को ज्ञान कहा गया है। एक-एक अंश बढ़ते-बढ़ते संपूर्ण अनुभव हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : और अभी जिन्हें आप ज्ञान देते हैं, उन लोगों को आत्मा का ज्ञान होता है या आत्मा का अनुभव भी होता है?

दादाश्री : सभी को अनुभव ही होता है। यदि अनुभव नहीं है तो फिर आत्मा ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : क्या जागृति अनुभव का ही भाग है?

दादाश्री : जागृति रहती ही है।

प्रश्नकर्ता : वही अनुभव है न?

दादाश्री : नहीं। जागृति तो ऐसी चीज़ है कि जिससे हमें ये सारे दूसरे अनुभव होते हैं। एक तरफ लिखें कि पहले जो चंदूभाई थे, वे कैसे थे और दूसरा अभी के चंदूभाई कैसे हैं? वह किस वजह से है? तो वह

इसलिए कि यह जो ज्ञान मिला है, इसके प्रताप से, जागृति के प्रताप से। यह आत्मा की तरफ की दिशा जग गई है। राइट दिशा में और इस रोंग दिशा में थे, वह पूरा ही चेन्ज हो जाता है। 100 परसेन्ट चेन्ज लगता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, चेन्ज हो जाता है, ठीक है। लेकिन चेन्ज कब होता है, जागृति आने के बाद ही चेन्ज होता है न?!

दादाश्री : यह ज्ञान देने के बाद उसे जागृति आ ही जाती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान देने के बाद जागृति आ जाती है। उससे धीरे-धीरे उसके पूरे जीवन में परिवर्तन आता जाता है।

दादाश्री : हाँ, परिवर्तन आता जाता है। फिर खुद के दोष दिखाई देने लगते हैं। इस दुनिया में किसी को भी खुद के दोष नहीं दिखाई देते। सामने वाले के दोष निकालने हों तो सभी निकाल लेते हैं। यहाँ पर खुद के दोष दिखाई देते हैं, खुद का सबकुछ दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : फिर जब कुछ खराब या गलत, अच्छा या बुरा, उसका पता चलता है तो वह अनुभव कहलाता है न?

दादाश्री : नहीं, अनुभव नहीं। बाकी खुद को सब खबर रहती है, पता चलता है, वही आत्मा है लेकिन अभी भी वह आत्मा दर्शनात्मा कहलाता है। बाद में धीरे-धीरे, जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे वह ज्ञानात्मा बनता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है, दादा वह अनुभव तो हुआ है कि जब गुस्सा आने वाला हो तो तुरंत ही पता चल जाता है। यह जागृति आ जाती है।

दादाश्री : हाँ, तुरंत ही आ जाती है। इस जगत् में यदि ज्ञान नहीं होता न तो उसे खुद की भूल कभी दिखाई ही नहीं देती, अंधा ही रहता। जबकि ज्ञान वाले को सारी भूलें दिखाई देती हैं। बहुत सारी भूलें दिखाई देती हैं। ओहोहो... रोज़ की सौ-सौ भूलें दिखाई देती हैं!

आत्मा का अनुभव : तप और चारित्र

प्रश्नकर्ता : अब यह जो अनुभव है, क्या उसे चारित्र कहा जाएगा?

दादाश्री : नहीं, चारित्र नहीं, अनुभव का मतलब है... अनुभव उसे कहते हैं कि जो 'प्रतीति' पक्की हुई है कि यह सही है, जैसे-जैसे वह अनुभव पक्का होता जाएगा वैसे-वैसे ज्ञान तैयार होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा कब कहा जाएगा कि चारित्र में आ गया?

दादाश्री : वह तो जब ज्ञान और दर्शन का फल आएगा तब चारित्र कहलाएगा। जितने प्रमाण (मात्रा) में अनुभव, उतने ही प्रमाण में वीतरागता और उतना ही चारित्र कहा जाएगा। तप के बिना चारित्र नहीं है। जितना तप करोगे, उतना ही चारित्र उत्पन्न होगा। तप को देखना और जानना, वही चारित्र है।

प्रश्नकर्ता : तो अभी दर्शन में आने के बाद उसे समझ में आ गया और उसे ज्ञान में यह पक्का हो गया कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो...

दादाश्री : उसे अनुभव होना कहते हैं। जितना अनुभव होता है, उतना ही उसे अंश ज्ञान होता है, इस प्रकार फिर सर्वांश ज्ञान होता है और दर्शन तो सर्वांश ही दिया हुआ है। केवलदर्शन दिया है लेकिन जितना ज्ञान होता है उतना ही चारित्र में बर्तता है। तो जैसे-जैसे ज्ञान में आता जाएगा वैसे-वैसे फिर चारित्र बढ़ता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसा कह सकते हैं कि अनुभव के समय अंश ज्ञान परिणामित हुआ?

दादाश्री : जितना अनुभव हुआ, उतना ही ज्ञान में आया, ऐसा कहा जाएगा। अनुभव में नहीं आया तो उसे ज्ञान नहीं कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : तो जितना अनुभव में आएगा उतने अंशों तक चारित्र में आएगा ही न?

दादाश्री : फिर चारित्र में आएगा। यहाँ पर जब ज्ञान देते हैं, तभी

से दर्शन तो है ही। अब जैसे-जैसे अनुभव होता जाएगा, वही ज्ञान है। फिर रोज़ सत्संग में बैठते हो न तो ज्ञानी दशा के सभी पर्याय पूर्ण हो जाएँगे। अनुभव और दर्शन दोनों का गुणा होने पर चारित्र में आता है। दर्शन प्रकट होने के बाद जैसे-जैसे ज्ञान परिणामित होगा, वैसे-वैसे चारित्र उत्पन्न होगा अर्थात् जब ज्ञान और दर्शन का फल आएगा वैसे-वैसे अब भीतर चारित्र आता जाएगा। जितना तप करोगे उतना ही चारित्र उत्पन्न होगा! जब-जब चारित्र उत्पन्न होता है इसका मतलब तप पूर्ण हो चुका है। तप का मौका आए और तप न हो पाए तो वह चारित्र को बाहर रख देगा, खत्म कर देगा। तप होना वह भाग चारित्र में जाता है। जितनी-जितनी बातों में तप हुआ, उसी को चारित्र कहते हैं। तप पूर्ण होने के बाद ही चारित्र आता है।

क्रमिक मार्ग में ज्ञान के अनुसार, ज्ञान के अनुभव से प्रतीति प्राप्त होती है। हमारे लिए इस अक्रम मार्ग में प्रतीति के अनुसार जितना अनुभव होता है, उतना ही ज्ञान प्रकट होता है। जो प्रतीति हुई है, उसका अनुभव में आना, उसी को ज्ञान होना कहते हैं।

दर्शन किसका कहलाता है?

प्रश्नकर्ता : यह जो दर्शन में आता है, वह दर्शन प्रज्ञा का गुण है या बुद्धि का? दर्शन किसका कहलाएगा?

दादाश्री : वह तो ऐसी चीज़ है जो प्रज्ञा को भी दिखाती है। प्रज्ञा को भी दिखाने वाली चीज़ है। दर्शन अर्थात् यह प्रतीति कि हम आत्मा हैं। पहले उसकी प्रतीति बैठनी चाहिए और प्रतीति बैठने के बाद वह प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता : वह प्रतीति किसे, प्रज्ञा को होती है?

दादाश्री : प्रतीति अहंकार को होती है कि 'मैं वास्तव में यह नहीं हूँ, यह हूँ'। अहंकार को जो प्रतीति थी कि 'मैं चंदूभाई हूँ', तो वह प्रतीति वहाँ से उठकर यहाँ पर बैठ गई, उसी को दर्शन कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या वह प्रतीति प्रज्ञा की वजह से है? वह प्रतीति प्रज्ञा करवाती है?

दादाश्री : नहीं। प्रज्ञा नहीं करवाती। मैं यह जो ज्ञान देता हूँ, वह करवाता है और दादा भगवान की कृपा करवाती है। मैं ज्ञान देता हूँ और दादा भगवान की कृपा से ऐसा लगता है कि 'वास्तव में ऐसा ही है। आज तक का सब गलत था, आज तक की सभी मान्यताएँ गलत हैं'। जो रोंग बिलीफ थी वह राइट बिलीफ बन गई, बस। बीच में बुद्धि की दखलंदाज़ी है ही नहीं।

सत् में समा जाते हैं ये तीनों ही

प्रश्नकर्ता : क्या बिलीफ से सत्य मिलता है?

दादाश्री : यह दुनिया भी रोंग बिलीफ है। रोंग बिलीफ से यह संसार खड़ा हो गया है और राइट बिलीफ से 'वह' मोक्ष मिलता है। बिलीफ के अलावा कुछ भी नहीं है। बिलीफ से कुछ ज़्यादा नहीं बिगड़ा है। सिर्फ इतना सा बिलीफ वाला भाग ही सड़ गया है। ज्ञान नहीं सड़ा है। यदि ज्ञान सड़ गया होता तब तो फिर खत्म ही हो जाता। सिर्फ बिलीफ ही सड़ी है तो उस बिलीफ, रोंग बिलीफ को खत्म कर दें और राइट बिलीफ बिठा दें तो वापस आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो राइट बिलीफ और सत्य के बीच में कितना अंतर है?

दादाश्री : राइट बिलीफ और सत्य? नहीं। वह जो सत् है न, वह राइट बिलीफ, राइट ज्ञान और राइट चारित्र, ये तीनों 'सत्' में समा जाते हैं। सत् इनमें नहीं समाता। सत् इनमें से किसी भी चीज़ में नहीं समा सकता।

प्रश्नकर्ता : फिर से समझाइए।

दादाश्री : राइट बिलीफ, राइट ज्ञान और राइट चारित्र, ये तीनों ही 'सत्' शब्द में समा जाते हैं लेकिन 'सत्' इनमें से एक में भी नहीं

समा सकता। राइट बिलीफ या किसी में भी नहीं समा सकता। 'सत्' इतना बड़ा है कि ये तीनों 'सत्' में समा जाएँगे लेकिन 'सत्' इनमें से किसी में भी नहीं समा सकता।

प्रश्नकर्ता : हमारे ज्ञान लेने के बाद इन तीनों में से कुछ भी प्राप्त होना बाकी नहीं रहता न हमारे लिए?

दादाश्री : अपना ज्ञान है ही ऐसा न कि तीनों को स्पर्श करता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् तीनों अंशों से जागृत हो जाता है लेकिन फिर सर्वांश तो धीरे-धीरे जैसे-जैसे आज्ञा पालन करेगा वैसे-वैसे यह होता जाएगा।

कोई आपसे पूछे कि आप भगवान हैं या भगवान के भक्त? तब ये चंदूभाई किसी से क्या कहेंगे, क्या जवाब देंगे?

प्रश्नकर्ता : व्यवहार से भक्त कहना पड़ेगा।

दादाश्री : नहीं, लेकिन अगर आपसे ऐसा कहें कि भगवान हो, तो?

प्रश्नकर्ता : 'भगवान हूँ', ऐसा कहा जाएगा।

दादाश्री : लेकिन किस प्रकार से?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इसलिए।

दादाश्री : नहीं, लेकिन क्या पूरे भगवान हो?

प्रश्नकर्ता : नर-नारायण। चंदूभाई नर और मैं नारायण।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। बिलीफ में, श्रद्धा से 'मैं भगवान हूँ' मुझे श्रद्धा बैठ गई है। मैं बन नहीं गया हूँ, अभी तक श्रद्धा ही बैठी है। अभी तो जब हो जाएगा तब बताऊँगा। कहना, 'उसके बाद आना। आप जो माँगोगे वह दूँगा'। लेकिन तब अगर कोई कहे, 'तू भक्त नहीं है?' तब फिर क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : भगवान और भक्त अलग हैं।

दादाश्री : 'भक्त हूँ', ऐसा कहा जाएगा लेकिन व्यवहार से। निश्चय से अर्थात् वास्तव में 'मैं भगवान हूँ', ऐसी मुझे श्रद्धा बैठ गई है। 'मैं भगवान हूँ' ऐसी श्रद्धा बैठ जाने के बाद छूट कारा हो जाएगा। दर्शन का अर्थ यही है कि 'मैं भगवान हूँ' ऐसी श्रद्धा बैठ गई। उसे दर्शन कहते हैं और ज्ञान अर्थात् तेरे अनुभव में ऐसा है कि 'मैं भगवान हूँ'। दर्शन श्रद्धा में है और ज्ञान अनुभव में है।

'कौन हूँ' ऐसा कहेगा ही न! मैं श्रद्धा से भगवान हूँ, वह श्रद्धा है लेकिन, निश्चय से। वह सब निश्चय कहलाता है और व्यवहार से जो हो वह, 'मैं चंदूभाई हूँ, इनका फॉलोअर हूँ, वकील हूँ' व्यवहार से ऐसा सब कहना है।

जो खुद को जाने, वह खुदा। लेकिन श्रद्धा से खुदा है, खुदा बन नहीं गया है। अभी ज्ञान में खुदा नहीं है, यदि ज्ञान में खुदा बन जाओगे तभी वह पूछने आएगा। आपको उससे कहना पड़ेगा कि 'भाई, ज्ञान से खुदा नहीं बना हूँ। ज्ञान से तो दादा खुदा हैं। वहाँ पर जाओ। मैं श्रद्धा से खुदा हूँ'। जो खुद को जाने वह खुदा। दूसरा खुदा कहाँ से ले आया? देखो न, खुदा और शिव के नाम से लड़ाइयाँ चल ही रही हैं न बाहर?

निज प्रकृति के ज्ञाता-दृष्टा, वही चारित्र

अब अगर कोई पूछे, 'इस ज्ञान के बाद भी चंदूभाई का वर्तन ऐसा क्यों है?' तब मैं कहूँगा कि 'भाई, इनके वर्तन की तरफ मत देखना क्योंकि इनकी बिलीफ अलग है और इनका वर्तन अलग है'। बिलीफ कुछ ओर ही प्रकार की है।

आपका वर्तन अलग है और बिलीफ में अलग है, ऐसा आपको अनुभव हुआ है न? क्योंकि यह जो वर्तन है वह पहले की बिलीफ के आधार पर है और आज आपको नई बिलीफ मिली है अत: इसका जो वर्तन आएगा वह कुछ अलग ही प्रकार का आएगा। पहले बिलीफ में आता है उसके बाद वर्तन में आता है।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन होने के बाद में फिर बिलीफ किस प्रकार से कही जा सकती है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। वह तो हम 'बिलीफ' शब्द कहकर परिचय करवाते हैं उसे। उसे सम्यक् दर्शन कहते हैं। लेकिन इन अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को 'बिलीफ' कहकर समझाते हैं। वर्ना बिलीफ तो व्यवहारिक चीज़ है, वह कोई मुख्य चीज़ नहीं है। सम्यक् दर्शन मुख्य चीज़ है लेकिन हम अंगुली निर्देश करने के लिए बिलीफ शब्द का उपयोग करते हैं। उसे पहचानने के लिए कुछ तो कहना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : कहना चाहिए। इन्डिकेटर।

दादाश्री : इन्डिकेटर।

प्रश्नकर्ता : राइट बिलीफ ही सम्यक् दर्शन है न?

दादाश्री : हाँ! आत्मा की प्रतीति बैठना, वही सम्यक् दर्शन है या आत्मा के अलावा कुछ और है? तो कहते हैं, '*पुद्गल*'। ऐसी प्रतीति बैठना, वह सब सम्यक् दर्शन है।

प्रश्नकर्ता : अतः यह जो बिलीफ है न, क्या वह सामान्य मान्यता का शब्द है?

दादाश्री : दर्शन तो बिलीफ से भी बहुत आगे की चीज़ है। अभी आपको अंदर चेतावनी देता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : चेतावनी देता है।

दादाश्री : हाँ, तो वह खुद, अनुभव हो जाने के बाद चेतावनी देता है। अब, उसे ज्ञान कहते हैं। और चारित्र कब कहा जाएगा? जब बाहर की दखलंदाज़ी न रहे तब चारित्र रहता है। नौकरी वगैरह कुछ ऐसा सब, कपड़े नहीं पहनने होते, बाकी कोई झंझट नहीं रहती। चारित्र अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा, बस। लेकिन वह किसके ज्ञाता-दृष्टा? 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं' आप उसके ज्ञाता-दृष्टा। खुद की प्रकृति के ज्ञाता-दृष्टा रहना, उसे कहते हैं चारित्र।

समझ, अनुभव-लक्ष-प्रतीति की

हाँ चारित्र अर्थात् ज्ञान-दर्शन का उपयोग रहा। जिसे ज्ञाता-दृष्टा का उपयोग रहा, उसी को चारित्र कहते हैं। यह व्यवहार चारित्र अलग है और यह चारित्र अलग है। आप लोग काफी कुछ ज्ञाता-दृष्टा पद में रहते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उस समय आप चारित्र में रहते हो।

अब, ज्ञान जब प्रवर्तित होता है तब कहा जाएगा कि पच गया। अर्थात् ज्ञान का उपयोग रहता ही है। जब चारित्र में आ जाए तब कहा जाएगा कि पच गया। पहले चारित्र नहीं है। ज्ञान में है, चारित्र में नहीं आया। अत: यह जो ज्ञान है वह 360 डिग्री का है। मैं जो देता हूँ, वह भी 360 डिग्री वाला है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पूरी तरह से चारित्र में नहीं आया है?

दादाश्री : मेरा भी पूरी तरह से चारित्र में नहीं आया है।

प्रश्नकर्ता : अनुभव में पूरी तरह से आ गया है?

दादाश्री : अनुभव में सब आ गया है।

और आपको इससे क्या लाभ होता है कि पहले आपको पूर्ण रूप से प्रतीति बैठ जाती है और फिर थोड़े बहुत अनुभव की शुरुआत हो जाती है। प्रतीति तो उसी क्षण बैठ जाती है। जब ज्ञानविधि में बोल रहे थे... उस समय प्रतीति बैठती जाती है और पाप भस्मीभूत होते जाते हैं। पहले पाप भस्मीभूत हो जाते हैं, उसके बाद प्रतीति बैठती है। बहुत सारे कार्य होते रहते हैं अंदर। उन दो घंटों में तो अंदर इतने सारे कार्य हो जाते हैं कि बेहद कार्य होते रहते हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह वस्तु समझ में नहीं आती कि यह 'प्रतीति बैठ गई है'।

दादाश्री : नहीं, समझ में नहीं आएगा। समझना आसान नहीं है न! खुद को पता चलता है कि 'भाई, यह कुछ बैठ (सेट हो) गया है'। अगर अपने पास कोई हीरा हो तो हमें उसकी प्रतीति नहीं होती इसलिए हम सभी जगह जाँच करवाकर आते हैं। जाँच करवाने के बाद उस हीरे को बहुत सस्ते में किसी जगह पर बेच देते हैं। हमें कहते हैं कि दो अरब का है लेकिन हमें ऐसा लगता है कि 'अरे भाई 100, 200, 500 जो आए वह ले लो न!' वह इसलिए, क्योंकि प्रतीति नहीं बैठी है और यदि प्रतीति बैठ जाए तो फिर उसे दुःख हो या खाने को न हो, फिर भी नहीं बेचेगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसकी कीमत पता चलने के बाद नहीं बेचेगा।

दादाश्री : वही है प्रतीति बैठना!

प्रश्नकर्ता : प्रतीति बैठ जाती है फिर। अब इसमें यह किस प्रकार से है?

दादाश्री : और वह प्रतीति उठ गई।

प्रश्नकर्ता : कौन सी प्रतीति?

दादाश्री : 'मैं चंदूभाई हूँ, ऐसा हूँ, वैसा हूँ', वह जो सारी रोंग बिलीफें थीं, वे सब उठ गई। 'इसका फादर हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ, इसका फूफा हूँ', वह सारी प्रतीति उठ गई और यह प्रतीति बैठी। उसे क्षायिक दर्शन कहते हैं। क्षायिक दर्शन अर्थात् उसमें समझने की सभी चीज़ें आ गई। फिर भी अभी आपको क्यों समझना है? समझने वाली चीज़ आ गई है लेकिन आप पूरी तरह से समझे नहीं हो इसलिए आपको बार-बार पूछते रहना है।

प्रश्नकर्ता : पूछते रहने से समझ में आ जाएगा?

दादाश्री : यानी मूलतः वह समझ की लाइन सारी पूरी हो जाती है और उसके बाद में अनुभव के अंश बर्तते हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद कबूल करता है कि पहले, जैसी खुद की मानसिकता थी उसमें और अभी में बहुत फर्क आ गया है। परिणाम की बात कबूल होती है।

दादाश्री : हमेशा ही किसी भी चीज़ में चेन्ज कब आता है? जब उसकी वह प्रतीति उठ जाए और नई प्रतीति बैठ जाए तभी चेन्ज होता है, वर्ना चेन्ज नहीं होगा। यह रास्ता गलत है, फिर भी रोज़ उसी पर जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : उनका घरेलू नौकर ठीक से काम नहीं करे तो कई बार गुस्सा हो जाते थे। पहले अपसेट हो जाते थे लेकिन अब ज्ञान के बाद अपसेट नहीं होते, बहुत गुस्सा नहीं होते।

दादाश्री : अर्थात् सभी बहुत उच्च परिणाम आए हैं। हमें परिणाम से काम है न! हमें शब्दों की मारा-मारी नहीं है। हमें परिणाम मिलता है या नहीं? अगर उसका परिणाम नहीं आता तो फिर मुझे ध्यान रखना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : कई बार व्यवहार और निश्चय की जो बात है, लोग उसे ठीक से समझ नहीं पाते। व्यवहार की बात निश्चय में ले जाते हैं और निश्चय की बात व्यवहार में ले जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है। अनादिकाल से लोगों को आदत नहीं है न इसलिए अगर इस प्रकार से आगे ले जाएँ फिर भी वापस दूसरे रास्ते पर चले जाते हैं। इसका परिणाम अच्छा आएगा। मैं इतना ही देखता हूँ कि परिणाम आ रहा है या नहीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, परिणाम आया है।

दादाश्री : यह विज्ञान खुद ही परिणाम लानेवाला है। यह आपको करना नहीं है। आप यदि दखल नहीं करोगे तो आपको मोक्ष में ले जाएगा।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रत्नत्रयी कहलाते हैं। क्या मनुष्य को मुक्ति दिलवाने के लिए ये ज़रूरी हैं?

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'यह फाइल है', ऐसी प्रतीति बैठ जाए तो उसे सम्यक् दर्शन कहते हैं। उसके बाद, यह फाइल ही है और फाइल को आप जानते हो कि 'इस फाइल में क्या-क्या है। इसमें क्या-क्या है', अगर वह सब जानते हो तो उसे ज्ञान कहेंगे। और ज्ञाता-दृष्टा रहना, वह है चारित्र।

प्रश्नकर्ता : नई डेफिनेशन है, नई परिभाषा है। बहुत पसंद आई। बहुत सुंदर प्रकार से समझाया।

क्या कमी है महात्माओं में?

प्रश्नकर्ता : उदाहरण के तौर पर आपको आत्मा का जो दर्शन हुआ है तो वह आत्मा के गुणों के रूप में दर्शन में आया है न! लेकिन दूसरों को वैसा दर्शन में नहीं आ सकता?

दादाश्री : नहीं। सम्यक् दर्शन ही आत्मा का गुण है। आप सभी को हो चुका है न सम्यक् दर्शन!

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है लेकिन हमारे पास यह जो आत्मा का गुण है, उसका हम कोई अन्य उपयोग तो नहीं कर सकते न?

दादाश्री : क्यों? करते हो न?

प्रश्नकर्ता : नहीं जिस तरह से आपके द्वारा उसका उपयोग होता है...

दादाश्री : उससे थोड़ा कम होगा।

प्रश्नकर्ता : यों समझ में तो सभी बातें आ जाती हैं लेकिन आपको जो अनुभव होता है, आपको जो अनुभव में आता है...

दादाश्री : वह दर्शन तो आपका पूर्ण हो चुका है एकदम। सिर्फ ज्ञान में अधूरा है। दर्शन तो पूर्ण हो चुका है इसलिए आपकी दृष्टि बदल गई है, पूरी ही। दर्शन अर्थात् दृष्टि। जो दृष्टि संसार सम्मुख थी वह दृष्टि पूरी ही बदल गई है और सिर्फ आत्म सम्मुख हो गई है अतः पूरी

ही बदल गई है। आत्म सम्मुख के अनुभव होने चाहिए। अभी भी वे जिस प्रकार के होने चाहिए, उस प्रकार से हो नहीं पाते।

अतः दर्शन तो पूर्ण है और यह क्षायिक दर्शन है, यानी कि पूर्ण पद का दर्शन है। सिर्फ ज्ञान में अंतर है। ज्ञान में अंतर होने की वजह से चारित्र में अंतर है। ज्ञान में अंतर का मतलब क्या है? अभी किसी व्यक्ति का अपमान हो जाए और फिर वह दुःखी हो जाए तो हम कहते हैं कि 'अरे तू तो आत्मा है, अब इतना दुःखी क्यों हो रहा है!' यों तो न्याय करने में पक्का लेकिन खुद का अपमान होने पर खिन्न हो जाता है। उसका कारण यह है कि अभी तक ज्ञान अनुभव में नहीं आया है। एक बार ऐसा होता है और फिर जब नॉर्मल होने (ठिकाने पर आने) के बाद अनुभव में आ जाए, तब फिर अगर उसके बाद देखें तो दूसरी बार अनुभव में आ चुका होता है। वह अनुभव में आना चाहिए, उसी को ज्ञान कहते हैं। जिसकी प्रतीति बैठ गई है, उस चीज़ को जाने अर्थात् अनुभव में आए तब वह ज्ञान कहलाता है। जिस बात की प्रतीति बैठ चुकी है, जब वह अनुभव में आती है तब वह ज्ञान कहलाता है।

यों अनुभव से प्रकट होता है ज्ञान

हमें यह पूरा ही संसार दर्शन में आ चुका है लेकिन जब अनुभव में आएगा, तब वह ज्ञान केवलज्ञान कहलाएगा। वर्ना यदि अनुभव में नहीं आया तो केवलज्ञान कैसे कहेंगे? केवलदर्शन में रहेगा।

प्रश्नकर्ता : अतः जब वह जागृति अनुभव में आती है तब वह ज्ञान स्वरूप ही हो जाती है?

दादाश्री : नहीं, वह ऐसा नहीं है। जागृति तो यही की यही रहती है लेकिन बाद में जब अनुभव पूर्ण हो जाता है तब केवलज्ञान ही। जागृति एकदम बढ़ जाती है। केवल (पूर्ण) हो जाती है। यानी मुख्यतः इसमें जो देखना है तो दर्शन ही देखना है। ज्ञान नहीं देखना है, ज्ञेय नहीं देखने हैं।

प्रश्नकर्ता : तो मुख्य चीज़ दर्शन है।

दादाश्री : हाँ, मुख्य चीज़ दर्शन है।

प्रश्नकर्ता : और उसके आधार पर एक बार पूरा ही दर्शन में आ जाएगा।

दादाश्री : हाँ! फिर जब तक अनुभव का 'प्रमाण' (कन्फर्मेशन) नहीं होगा तब तक ज्ञान का 'प्रमाण' नहीं होगा। देखा हुआ, जो प्रतीति में बैठ चुका है, जब तक वह अनुभव में नहीं आता, तब तक वह दर्शन में रहता है और जब अनुभव में आ जाता है तब वह ज्ञान हो जाता है।

अब अपना जो है वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। क्रमिक में यह ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। अतः उनका जो ज्ञान है, वह शास्त्रों के आधार पर है। शास्त्रों में से या कहीं पर सुना हो, वह सब मतिज्ञान के रूप में परिणामित होता है और उनके लिए मतिज्ञान ही ज्ञान है। वह मतिज्ञान जब अनुभव में आता है तब दर्शन, प्रतीति स्थापित करता है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे तो वह अनुभव हो गया इसलिए तो वह प्रतीति हुई।

दादाश्री : हाँ, यहाँ पर पहले प्रतीति दी जाती है। वर्ना प्रतीति तो, ज्ञान का अनुभव होने के बाद ही प्रतीति होती है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् प्राप्त संयोगों में इस दर्शन का उपयोग किया जा सकता है उससे जो अनुभव प्राप्त होगा, वही ज्ञान के रूप में परिणामित होता है न?

दादाश्री : हाँ, जितने अनुभव होंगे, उतने। उसके बाद वह ज्ञेय बन जाएगा। अनुभव किसे कहते हैं कि जो बाद में बदले नहीं।

प्रश्नकर्ता : तब वह दर्शन पक्का हो जाता है?

दादाश्री : दर्शन के अनुसार ही यदि कभी अनुभव हो जाएँ तो फिर अन्य संयोगों से भी वह अनुभव बदलेंगे नहीं।

प्रश्नकर्ता : अब वह उसे दर्शन में तो आ गया है लेकिन उसे अनुभव किसके आधार पर होता है?

दादाश्री : वह तो, हमारी जो भी अवस्था उत्पन्न हो, उन अवस्थाओं को हम पार करें तो हमें अनुभव हो जाएगा। अब अगर तेरी जेब कट जाए तो, तेरे दर्शन में है, प्रतीति में है कि जब 'जेब कटी तो इससे हमें कोई लेना-देना नहीं है, सामने वाला गुनहगार है ही नहीं, मैं ही गुनहगार हूँ' लेकिन उस क्षण अनुभव के बिना ऐसा रहना मुश्किल है। फिर तुझे ऐसा हो...

प्रश्नकर्ता : एक बार कट जाए अर्थात् इस तरह से जेब कटनी ही चाहिए एक बार?

दादाश्री : नहीं। कटने के बाद असर नहीं होना चाहिए और ज्ञान हाज़िर रहना चाहिए। पहले अनुभव हो चुका हो तो वह अब काम करेगा। वर्ना अभी अगर दूसरी बार भी वह अनुभव नहीं हुआ होगा तो अभी भी अंदर दु:खी हो जाएगा और फिर ठिकाने पर आएगा लेकिन वह अनुभवपूर्वक नहीं कहा जाएगा। अनुभव तो, जेब कटते ही लगे कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। फिर तो वह अनुभव जाएगा ही नहीं इसीलिए तो ऐसी घटनाएँ आपके लिए हितकारी हैं न! ऐसे सभी मौके जो आते हैं, वे आपको अनुभव करवाने के लिए आते हैं। यों ही नहीं आते। कोई धौल लगा जाए तो यों ही लगा दी, क्या मुफ्त में लगा गया? अनुभव देकर जाता है। कोई धौल लगाए तो अनुभव देगा। तुझे लगाए तब ध्यान रखना।

लेकिन बाहर किसी से ऐसा कह मत देना कि 'मुझे ऐसा अनुभव करना है'। वर्ना यह जगत् तो ऐसा है न कि मिथ्याचारी है। उन्हें जोखिम उठाते देर नहीं लगेगी न! 'जो होगा देखा जाएगा' कहेंगे।

जितना अनुभव होगा उतना ही चारित्र शुरू हो जाएगा। अनुभव प्रमाण (कन्फर्मेशन) के बिना चारित्र उत्पन्न नहीं होता, प्रकट नहीं होता। और तब, उस समय अंदर प्रतीति के अनुसार तप करना पड़ता है। जेब कट जाए, तब उस प्रतीति के अनुसार स्थिर रहने के लिए तप की ज़रूरत पड़ती है। वह है ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप। यदि तप रहे तो अनुभव प्रकट होता जाता है।

क्रमिक में ज्ञान-दर्शन-ज्ञान-चारित्र

प्रश्नकर्ता : क्रमिक में पहले 'ज्ञान' बोलते हैं, उसके बाद 'दर्शन'। ऐसा क्यों?

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में पहले ज्ञान है और उसके बाद दर्शन और उसके बाद चारित्र। जबकि अपने अक्रम विज्ञान में पहले दर्शन उसके बाद ज्ञान और उसके बाद चारित्र है। यहाँ पर पहले उसे दर्शन हो जाता है। फिर जैसे-जैसे अनुभव होते जाते हैं, जितने अनुभव के अंश इकट्ठे होते हैं वैसे-वैसे स्पष्ट वेदन होता जाता है। आत्मा का स्पष्ट वेदन होता जाता है। जैसे-जैसे अनुभव होते जाते हैं वैसे-वैसे स्पष्ट विज्ञान होता जाता है। उसके बाद 'अनंता ज्ञेयों को जानने में परिणामित अनंती अवस्थाओं में मैं संपूर्ण शुद्ध हूँ, सर्वांग शुद्ध हूँ'। हर एक ज्ञेय में, उसे जानने में परिणामित हुई अवस्था में होने के बावजूद भी खुद पर ज़रा सा भी दाग़ नहीं पड़ता। सबकुछ देखता व जानता है फिर भी।

प्रश्नकर्ता : तो क्या क्रमिक मार्ग में हर किसी को सतही (सुपरफ्लुअस) ज्ञान ही होता है?

दादाश्री : हाँ। सतही ज्ञान ही। पहले व्यवहार सतही होता है और फिर अपने आप ही कुदरती रूप से ही जोइन्ट हो जाता है। वर्ना फिर भी कोई ज्ञानीपुरुष की ज़रूरत तो है ही। ये ज्ञान-दर्शन-चारित्र व्यवहार से हैं। निश्चय से दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह दर्शन-ज्ञान निश्चय से है लेकिन दादा, क्रमिक में उन लोगों को कभी तो निश्चय से ऐसा रहता होगा न दादा?

दादाश्री : हाँ, इस ज्ञान में से... इस शास्त्रज्ञान को पढ़ते, पढ़ते, पढ़ते शब्दज्ञान पर आ जाते हैं और आत्मा शब्द पर उसे श्रद्धा हो जाती है। और उसे ऐसा लगता है कि 'हाँ, वास्तव में आत्मा ऐसा ही है, जैसा ये सब लोग कह रहे हैं। ये जो शब्द कह रहे हैं, वैसा ही है। यह अन्य कुछ नहीं है। वह प्रतीति बैठ जाती है लेकिन फिर बहुत धीरे, धीरे, धीरे। ग्रेज्युअली काम होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, फिर उसे ज्ञान हो जाने के बाद अंत में दर्शन तो फिर उसे ऑटोमैटिक हो जाता है।

दादाश्री : ऑटोमैटिक नहीं, दर्शन होने में ही देर लगती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर पहले दर्शन और उसके बाद ज्ञान।

दादाश्री : नहीं। उस ज्ञान में से दर्शन उत्पन्न होता है। उसे ऐसा लगता है कि 'यह कुछ है'। वहाँ पर वह रुक जाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है लेकिन जो हो चुका है, एक बार जाना कि यह जान लिया, देखा नहीं लेकिन जाना है, फिर ऑटोमैटिकली देखना आ ही जाएगा न? जितना जाना है।

दादाश्री : वहाँ पर जो कुछ भी 'जाना' है न, वह सतही है, सुपरफ्लुअस है, और हमारे यहाँ जो 'जाना', वह अनुभव है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, लेकिन उन लोगों में जब सुपरफ्लुअस नहीं रहता और एक्ज़ेक्ट हो जाता है, तब की स्थिति क्या होती है? कभी न कभी तो एक्ज़ेक्टनेस में आते ही होंगे न वे लोग? तब क्या रहता है?

दादाश्री : आते हैं न।

प्रश्नकर्ता : तब ज्ञान और फिर दर्शन वह किस प्रकार से हो सकता है?

दादाश्री : वहाँ पर फिर वापस जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहते हैं न, वह व्यवहार से है। फिर आगे जाकर वही व्यवहार दर्शन और ज्ञान और चारित्र बन जाता है। नहीं तो चार शब्द बोलने पड़ेंगे। व्यवहार होगा तो ज्ञान, दर्शन, ज्ञान और चारित्र।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान, दर्शन, ज्ञान और चारित्र।

दादाश्री : हाँ! उस ज्ञान (क्रमिक) का आधार लिया हो तो चार शब्द हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ठीक है। पहले ज्ञान अर्थात् जो शास्त्र से हुआ है, उसके बाद उसमें से दर्शन उपजा, उसके बाद...

दादाश्री : उसके बाद अनुभव का ज्ञान, फिर चारित्र।

प्रश्नकर्ता : तो यह ठीक समझ में आया। अब सही है। समझ में आया। आज तक दादा ने कभी ऐसा समझाया नहीं था। पहली बार मुझे ऐसी समझ मिली।

दादाश्री : लेकिन पूछता कौन है, कोई पूछेगा तो बात निकलेगी। कितनी सारी चीज़ें हैं। आप पूछो तो माल निकले!

क्रमिक में रिलेटिव में से रियल

प्रश्नकर्ता : 'दर्शन से जो ज्ञान होता है, वह रियल है और ज्ञान के बाद में जो दर्शन होता है, वह रिलेटिव है', ज़रा यह समझाइए न।

दादाश्री : ये पुस्तक और शास्त्र पढ़कर, यह सब पढ़कर उस ज्ञान से उसे जो दर्शन होता है, वह सारा रिलेटिव ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : सभी तीर्थंकर उस रिलेटिव में से ही रियल में गए थे न?

दादाश्री : हाँ, रिलेटिव में से। लेकिन उसमें तो सबकुछ निकालते-निकालते, अहंकार शुद्ध करना पड़ता है। अहंकार शुद्ध करने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है? अहंकार में से क्रोध-मान-माया-लोभ का एक-एक परमाणु अलग करना पड़ता है, निकालना पड़ता है और अहंकार शुद्ध करना पड़ता है। जिसमें राग-द्वेष नहीं हों, वैसा अहंकार यानी जब वीतराग अहंकार उत्पन्न करते हैं, अंतिम प्रकार का, तब शुद्धात्मा मिलता है, और तब आत्म साक्षात्कार होता है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न कि सिर्फ अपना यह मार्ग ही रियल मार्ग है बाकी सब रिलेटिव हैं। अब वे रिलेटिव किस आधार पर हैं? किस वजह से रिलेटिव हैं?

दादाश्री : पुस्तकों से जो ज्ञान मिलता है, वह ज्ञान रिलेटिव ज्ञान है। उससे चाहे कितना भी दर्शन में आ जाए तो भी रिलेटिव ज्ञान है। आत्मा का, शब्दों में से जो भी ज्ञान मिलता है, वह सारा रिलेटिव है, और जब निःशब्द ज्ञान होता है, वह रियल है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा तीर्थंकरों ने गणधरों को जो ज्ञान दिया था, तो क्या वे लोग भी रिलेटिव में से रियल में गए?

दादाश्री : हाँ, सभी रिलेटिव में से रियल में गए। वह सारा रिलेटिव में से अंत तक त्याग करते-करते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रत्यक्ष तीर्थंकर की उपस्थिति थी न?

दादाश्री : उपस्थिति हो फिर भी यों रिलेटिव ज्ञान कहलाता है। जहाँ पर कुछ भी त्याग करना हो, वह सारा रिलेटिव मार्ग है, रियल मार्ग नहीं है। रियल मार्ग में त्याग नहीं करना होता। वहाँ पर तो अहंकार रहता है। अहंकार के बिना नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : अब इस हिंदुस्तान में जितने धर्म हैं, उन सभी को आपने रिलेटिव कह दिया।

दादाश्री : सभी रिलेटिव! क्रमिक में, पुस्तकों में से जाना या गुरुओं से जाना। अपने यहाँ तो मैं आपको ज्ञान दे देता हूँ। उससे रियल दर्शन उत्पन्न हो जाता है और अपने यहाँ वह शास्त्रज्ञान नहीं है। वह वाला ज्ञान हमने लिया ही नहीं है। उसे तो कूट-कूटकर, और कितना कूटें? दो मन कूटने पर एक पाव वस्तु निकलती है।

अक्रम में स्वयं क्रियाकारी ज्ञान

प्रश्नकर्ता : क्रमिक में पहले ज्ञान होता है और उसके बाद दर्शन में आता है। उसका उदाहरण दीजिए न।

दादाश्री : वह ज्ञान कैसा है कि ऐसा करोगे तो पाप लगेगा, ऐसा करोगे तो पुण्य मिलेगा। वह ज्ञान ऐसा है। जड़ ज्ञान है, चेतन ज्ञान नहीं

है। चेतन ज्ञान कौन सा कहलाता है? अपना ज्ञान चेतन ज्ञान है जिसके समझ में आने के बाद ज्ञान हो जाता है। जबकि उस (क्रमिक ज्ञान) से पहले समझ में आता है। भान होता है कि यह कुछ है। भान होता है कि कुछ है। वह ज्ञान भान होने के लिए है। फिर भी लोगों को भान नहीं होता है न! देखो न, लाखों सालों से भटक ही रहे हैं न लोग! और 'मैं चंदूभाई, चंदूभाई' बोलकर भटक ही रहे हैं न! 'मैं चंदूभाई हूँ, इस स्त्री का पति हूँ और इसका मामा हूँ और इसका चाचा हूँ!'

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई बनने का अभ्यास पूर्ण होने से पहले तो फिर उपदेशक बन जाते हैं।

दादाश्री : जहाँ देखो वहाँ पर यही का यही अभ्यास, परेशानी मोल लेनी है न!

अतः जगत् में ज्ञान-दर्शन और चारित्र है। अपना तो अक्रम है, अतः दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, इसीलिए अपना ज्ञान क्रियाकारी है। ज्ञान अपने आप काम करता ही रहता है, आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता, अंदर ज्ञान ही करता रहता है। जबकि क्रमिक ज्ञान में खुद को कर्तापन रहता है, 'यह करना है लेकिन हो नहीं पा रहा है'। और फिर 'नहीं हो पा रहा, नहीं हो पा रहा' गाता रहता है।

ज्ञान अर्थात् जो ज्ञान शब्दों से समझना होता है, उसे ज्ञान कहते हैं वे लोग और उसमें से यदि अंदर सूझ पड़े तो वह दर्शन कहलाता है। अपने यहाँ तो पहले सूझ, फिर दर्शन और उसके बाद ज्ञान और चारित्र। अतः इस जगत् में कहीं पर भी क्रियाकारी ज्ञान नहीं है। क्रियाकारी ज्ञान सिर्फ अपने यहीं पर है कि 'ये चंदूभाई हैं', वे सो रहे हों फिर भी उनके अंदर ज्ञानक्रिया काम करती रहती है। आपमें ज्ञान काम करता रहता है न! 'यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ये चंदूभाई अलग हैं, यहाँ गलती हुई, चंदूभाई ने भूल की।' यों सारी ज्ञानक्रिया काम करती रहती हैं। ज्ञान ही काम करता रहता है।

इसीलिए कहते थे न कि 'ज्ञान काम करता ही रहता है'। दादा

यह क्या आश्चर्य है? आपने क्या रख दिया है? मैंने कहा, 'नहीं! इसका स्वभाव ही ऐसा है'। यह क्रियाकारी ज्ञान है। यह जब तक आपको मोक्ष में नहीं ले जाएगा तब तक छोड़ेगा नहीं। यह ज्ञान ही ऐसा है कि मोक्ष में ले जाएगा।

गुह्य, गुह्यतर और गुह्यतम ज्ञान

प्रश्नकर्ता : गुह्य ज्ञान, गुह्यतर ज्ञान और गुह्यतम ज्ञान किसे कहेंगे?

दादाश्री : जिस ज्ञान से हमें प्रतीति हो जाए कि 'नहीं, यह हंड्रेड परसेन्ट सही लग रहा है', वह सही हो नहीं गया है लेकिन सही लग रहा है। जिस ज्ञान से हंड्रेड परसेन्ट प्रतीति हो जाए, वह गुह्य ज्ञान कहलाता है। प्रतीति हो जाए कि वास्तव में 'मैं आत्मा ही हूँ, दादाजी जैसा कह रहे हैं, वैसा ही हूँ', वह गुह्य ज्ञान कहलाता है।

और गुह्यतर ज्ञान यानी कि, अब गुह्य ज्ञान अर्थात् क्या? वह दर्शन के रूप में है और यह गुह्यतर ज्ञान, वह अनुभव है। जो दर्शन हुआ है, उसका अनुभव है, और गुह्यतम, वह चारित्र है, संपूर्ण चारित्र। यानी कि 'स्व' में ही रहता है, 'पर' में जाता ही नहीं। 'स्व' में रहकर 'पर' का निरीक्षण करता रहता है। 'पर' का दृष्टा रहता है। जब तक गुह्य और गुह्यतर ज्ञान है तब तक दोनों का मिक्स्चर चलता रहेगा। कभी यों फिसल पड़ता है, यों फिसल पड़ता है। उसमें फिसलना-विसलना नहीं होता, गुह्यतम ज्ञान में। मेरी समझ के अनुसार उसका अर्थ यह है। औरों को जो समझ में आता है वह बुद्धि का भेद है, वह अलग बात है। मुझमें तो यह बुद्धि रहित ज्ञान!

प्रश्नकर्ता : आपने तो अध्यात्म की बात कही लेकिन शाब्दिक अर्थ निकालेंगे तो थोड़ा अलग तरह का होगा।

दादाश्री : मेरा कहना है कि गुह्य ज्ञान जैसा कुछ होता ही नहीं है। किसी न किसी प्रकार से ओपन हो ही चुका होता है। गुह्य ज्ञान किसे कहेंगे कि जो ज्ञान जगत् के ज्ञान से बाहर ही है।

प्रश्नकर्ता : कोई भी चीज़ गुह्य हो तब... उसका रिज़ल्ट आता है लेकिन उसका कारण पता नहीं चलता तब गुह्य कहा जाता है।

दादाश्री : नहीं नहीं! ऐसा नहीं है। कारण वाला सारा ज्ञान सांसारिक ज्ञान है, भौतिक ज्ञान है। जिनके पीछे कोई कारण होता है। कारण का पता नहीं चलता इसलिए उसे ज्ञान का पता नहीं चलता। हाँ, लेकिन गुह्यतम अर्थात् क्या कहना चाहते हैं, गुह्यतम यानी जो ज्ञान जगत् के *लक्ष* से बाहर ही है। इसमें भौतिक का प्रश्न ही नहीं है। यह सारा ज्ञान भौतिक ही है और जो है वह पपीता जैसा है। (नर) पपीता का पेड़ फल नहीं देता, वह शुष्क ज्ञान है और यह जो गुह्य ज्ञान है, वह शुष्क नहीं है। जीवंत है, सजीव है। बाकी के जो कारण और कार्य के ज्ञान हैं, वे सब निर्जीव हैं। यह सजीव है। भीतर आपको सचेत करता है न, यों मेरे साथ बैठने के बाद? पहला गुह्य ज्ञान, जो मैंने पहले दिन दिया था, फिर धीरे-धीरे भीतर गुह्यतर उत्पन्न होने लगा और जितना गुह्यतर हो गया, उसमें आपका चारित्र बर्तता है, वह गुह्यतम है। आगे का जितना नहीं हुआ है, उतना बाकी है। उसके बाद इस चारित्र की पूर्णाहुति होगी।

[5.2]

चारित्र

वीतरागों का यथार्थ व्यवहार चारित्र

प्रश्नकर्ता : जीवन में जो सदा बर्ते, उस चीज़ को हम चारित्र कहते हैं न! इसमें आत्मज्ञान की बात यानी आत्मा का ज्ञान हमेशा बर्ते तो उसे 'चारित्र में आया' कहा जाएगा?

दादाश्री : चारित्र दो प्रकार के। एक, यह व्यवहार चारित्र। बहुत उच्च कोटि के व्यक्ति का व्यवहार चारित्र उच्च प्रकार का होता है। व्यवहार चारित्र क्या होता है? जो चारित्र पूरा ही तीर्थंकरों की आज्ञानुसार होता है, वह व्यवहार चारित्र कहलाता है। वह पूरा चारित्र देह का है लेकिन इससे कहीं ज्ञान नहीं हुआ है। और दूसरा, आत्मा का चारित्र। आत्मा का चारित्र है, देखना-जानना और परमानंद। ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी, बस! राग-द्वेष नहीं। और वह व्यवहार चारित्र अर्थात् तीर्थंकरों की आज्ञा में रहना, पूर्णत: आज्ञा में रहना।

बाहर जिस चारित्र का पालन करते हैं, उसे चारित्र नहीं कहा जाएगा। उसे व्यवहार चारित्र नहीं कहेंगे। व्यवहार चारित्र कब कहा जाएगा? वीतराग मार्ग में हो, तभी। ये तो गच्छ-मत में पड़े हैं। गच्छ-मत यानी अन्य लोग जिस तरह से चारित्र का पालन करते हैं, वे सभी त्यागी कहलाएँगे, लेकिन उसे चारित्र नहीं कहा जाएगा। व्यवहार चारित्र कब कहा जाएगा? जो वीतराग मार्ग में है, वह किसी धर्म को पराया नहीं मानता लेकिन फिर भी वीतराग धर्म को खुद का ध्येय मानता है। कौन सा ध्येय रखता है? वीतराग धर्म। वीतरागों को मान्य रखता है और अन्य किसी को अमान्य नहीं करता। किसी के भी प्रति द्वेष नहीं

हो, तब वह व्यवहार चारित्र कहा जाएगा। किसी धर्म के प्रति द्वेष नहीं रहता।

भगवान ने जिसे व्यवहार चारित्र कहा है, वह तो बहुत ऊँची चीज़ है। व्यवहार चारित्र तो वीतरागों के मत को जानता है कि वीतरागों का अभिप्राय क्या है! खुद का अभिप्राय क्या है, वह तो अलग चीज़ है लेकिन वीतरागों के अभिप्रायों को मान्य करके सारा काम करे, वह व्यवहार चारित्र। खुद से जितना हो पाए उतना, लेकिन वीतरागों के अभिप्राय पर कायम रहते हुए उसी अनुसार चलता रहता है कि 'वीतराग के अभिप्राय इस अनुसार हैं'। फिर खुद से जितना हो पाए उतना, लेकिन वह व्यवहार चारित्र कहलाता है।

और जिनका आत्मा प्रकट हो गया है न, उनमें सारी शक्तियाँ उत्पन्न हो गई। सारे ज्ञानी, पाँच लाख ज्ञानी हों फिर भी उनका एक ही मत रहता है और तीन अज्ञानी हों तो उनमें सौ तरह के भेद पड़ जाते हैं। ये सारे मतभेद अज्ञानियों में होते हैं और ज्ञानियों में मतभेद नहीं होते। हमारे यहाँ पर आपको सभी में किसी प्रकार का मतभेद जैसा लगता है? ज्ञान भले ही कम-ज़्यादा होगा, ज्ञान तो एक ही प्रकार का दिया है न, लेकिन पात्र के अनुसार परिणामित होता है। कम-ज़्यादा है, फिर भी क्या हिसाब में किसी प्रकार से कोई मतभेद है? कोई खींचा-तानी, ऐसा-वैसा कुछ है? तो इसे चारित्र कहते हैं, व्यवहार चारित्र। निश्चय चारित्र में तो मेहनत ही नहीं होती। किसी भी प्रकार की मेहनत ही नहीं होती। सारी मेहनत व्यवहार चारित्र में है। शरीर सयाना हो जाए, वह व्यवहार चारित्र और आत्मा सयाना हो जाए, वह कहलाता है निश्चय चारित्र। आत्मा सयाना हो जाए इसका मतलब ज्ञाता-दृष्टा, परमानंद में ही रहता है। अन्य किसी झंझट में नहीं पड़ता। जो 'निश्चय चारित्र' में आ गए, वे तो भगवान बन गए! 'केवलज्ञान' के बिना 'निश्चय चारित्र' पूर्ण दशा तक नहीं पहुँच सकता।

भेद, व्यवहार और निश्चय चारित्र का

प्रश्नकर्ता : 'बिना चारित्र के मोक्ष नहीं है और बिना मोक्ष के निर्वाण नहीं है।'

दादाश्री : चारित्र अर्थात्, आपकी समझ में क्या आया है, वह आप अपनी भाषा में बताइए। जो भी आपको समझ में आया हो।

प्रश्नकर्ता : चारित्र अर्थात् अच्छी तरह से वर्तन करना, जिसे हम स्ट्रेट फॉरवर्ड कहते हैं। जो टेढ़ा-मेढ़ा या क्रुकेड नहीं हो, वह चारित्रवान कहलाता है। ईमानदार होता है, ऑनेस्ट होता है, मॉरल होता है।

दादाश्री : ऐसे सीधे लोग तो बहुत मिलेंगे। उसे चारित्र कैसे कहेंगे? यह तो उस चारित्र के बारे में कहा गया है जो मोक्ष का कारण है। वह चारित्र तो, कोई इंसान सीधा हो और कोई उसकी वाह-वाह करे, कोई उसे पैसे उधार दे, बस! उसका और कोई कारण नहीं है। फिर भी कई लोग (उसके लिए) उल्टा बोलते हैं।

चारित्र के दो प्रकार हैं। एक निश्चय चारित्र और दूसरा व्यवहार चारित्र। व्यवहार चारित्र यानी किसी भी विषय पर वृत्ति नहीं हो। पाँचों ही विषयों के प्रति वृत्ति नहीं। पाँचों विषयों में वृत्तियाँ न रहें, वह व्यवहार चारित्र। अब ऐसा कहाँ मिलेगा? त्यागियों में ऐसा खास तौर पर देखने मिलता है। कहीं-कहीं पर मिल आता है। क्योंकि विवाहितों से ज़्यादा त्यागियों में देखने को मिलता है। कोई तो मिल ही जाता है। अभी तो त्यागियों में भी ऐसे (लोग) नहीं मिलते क्योंकि ये सभी तो चटोरे हैं। आँखें देखती ही रहती है। अतः ऐसा होना चाहिए कि वृत्तियाँ पाँचों इन्द्रियों में न जाएँ। उसे व्यवहार चारित्र कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : वह जो कहते हैं न कि मनुष्य में चारित्रबल होना चाहिए। वह कौन सा चारित्रबल?

दादाश्री : एक तो व्यवहार में बाहर का, और दूसरा, आंतरिक होता है। बाहर व्यवहार में ईमानदारी और नैतिकता। न्यायी और ईमानदार होता है और आंतरिक रूप से हक़ के विषय में पत्नी के प्रति सिन्सियर रहता है, अन्य कुछ भी नहीं होता। उसे चारित्र कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा समझते हैं कि चारित्र का मतलब ब्रह्मचर्य है।

दादाश्री : वह व्यवहार चारित्र है। उस व्यवहार से किसी को

ज़रा सा भी दु:ख नहीं हो, ऐसा वर्तन होता है। दु:ख देने वाले को भी दु:ख नहीं हो, ऐसा वर्तन व्यवहार चारित्र कहलाता है। और विषय बंद हो जाना चाहिए। व्यवहार चारित्र में मुख्य दो चीज़ें कौन सी हैं? एक विषय बंद। कौन सा विषय? तो कहते हैं, स्त्री चारित्र विषय। और दूसरा क्या? लक्ष्मी से संबंधित। जहाँ लक्ष्मी हो वहाँ पर चारित्र हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : 'जहाँ लक्ष्मी हो, वहाँ चारित्र नहीं हो सकता', वह कैसे?

दादाश्री : वहाँ चारित्र कहलाएगा ही नहीं न! लक्ष्मी आई यानी लक्ष्मी से तो पूरा व्यवहार करना होता है। हम लक्ष्मी नहीं लेते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उससे दुर्व्यवहार भी होता है और सद्व्यवहार भी होता है न!

दादाश्री : नहीं, वह तो सद् करने से ही दुर्व्यवहार शुरू हो जाता है। सद् भी नहीं और असद् भी नहीं, ऐसा व्यवहार ही नहीं। मैंने पच्चीस सालों से किसी भी प्रकार का पैसों का व्यवहार किया ही नहीं है न! झंझट ही नहीं न! मेरी जेब में कभी चार आने भी नहीं होते। नीरू बहन ही सारी व्यवस्था करती हैं।

और सच्चा चारित्र तो किसे कहेंगे कि खाते-पीते हुए भी ज्ञाता-दृष्टा रहे। वही सच्चा चारित्र है। आत्मा निज स्वभाव में, ज्ञाता-दृष्टा में आ जाए, वह सच्चा चारित्र। उस चारित्र के बिना मोक्ष नहीं है। 'आत्मा' ज्ञाता-दृष्टा है। 'आप' ज्ञाता-दृष्टा पद में रहो, वही चारित्र है और वही मोक्ष का कारण है। मोक्ष अर्थात् सर्व दु:खों से मुक्ति का कारण और ऐसा मोक्ष हुए बगैर निर्वाण नहीं हो सकता। निर्वाण अर्थात् आत्यंतिक मुक्ति।

चारित्र की यथार्थ परिभाषा

प्रश्नकर्ता : निश्चय चारित्र के बारे में एक वाक्य में बताइए न?

दादाश्री : होम डिपार्टमेन्ट में रहना, उसी को कहते हैं निश्चय चारित्र। फॉरेन में नहीं आना उसी को कहते हैं चारित्र।

प्रश्नकर्ता : आत्मा में जो स्थिरता है, वही चारित्र है?

दादाश्री : स्थिरता तो आत्मा का गुण है लेकिन चारित्र क्या है? यह जो सब चल रहा है, उसे देखना और जानना, उसे कहते हैं चारित्र। यानी देखना और जानना ही, और परमानंद में रहना, उसी को चारित्र कहते हैं। वह अंतिम चारित्र कहलाता है। देखना और जानना, ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी - ये तीनों उसमें खुद में ही हैं।

आत्मा में स्थिरता को चारित्र कहा गया है लेकिन वह क्रमिक मार्ग का चारित्र है। अपना चारित्र तो ज्ञाता-दृष्टा में रहना, वही चारित्र है। स्थिरता तो आ ही चुकी है न! *लक्ष* बैठ चुका है तो स्थिरता तो आ ही चुकी है न! जितना ज्ञाता-दृष्टा रहा उतना ही चारित्र कहा जाएगा। कोई गालियाँ दें और उसे देखता व जानता रहे। मन में खराब विचार आएँ और उन्हें देखता और जानता रहे। असर न हो, एकाकार नहीं हो, देखता और जानता रहे, वही चारित्र है। जबकि क्रमिक मार्ग में आत्मा में स्थिर होना, वही चारित्र है। वह चारित्र, अंश चारित्र कहलाता है। धीरे-धीरे जब सर्वांश हो जाता है उसके बाद ज्ञाता-दृष्टा बनता है। तब तक उनका ज्ञाता-दृष्टा (पद) नहीं आता। स्थिरता रहती है। वास्तविक चारित्र अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा भाव। ज्ञाता जब ज्ञाता भाव में आता है तो वह आत्मचारित्र कहलाता है।

क्रमिक में व्यवहार चारित्र से निश्चय चारित्र में

प्रश्नकर्ता : निश्चय चारित्र के लिए व्यवहार चारित्र का होना बहुत महत्वपूर्ण है न? अभी वह कोई स्टेप है क्या? वह होगा तभी...

दादाश्री : यह जो ज्ञान मिला है न, वह अक्रम विज्ञान है, अतः व्यवहार चारित्र की हमें यहाँ पर ज़रूरत नहीं है। वर्ना क्रमिक ज्ञान में व्यवहार चारित्र हो तभी निश्चय चारित्र प्राप्त हो सकता है। व्यवहार चारित्र करते-करते तो यह कितने ही जन्मों तक भटक जाता है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें उसकी ज़रूरत नहीं है न! हमारे लिए ऐसा नहीं है न कि व्यवहार चारित्र की प्राप्ति के बाद ही मोक्ष में जा सकें?

दादाश्री : नहीं यह अक्रम विज्ञान है इसलिए ज़रूरत नहीं है। वर्ना हालत खराब हो जाएगी। इन दो विषयों की वृत्तियाँ बंद करना, वह क्या कोई आसान बात है। ये लोग क्रमिक में मार खा-खाकर मर गए फिर भी कोई ठिकाना नहीं पड़ता है न! और यह तो विज्ञान है, अक्रम विज्ञान है। खोज है एक प्रकार की। ज्ञान वही का वही है लेकिन खोज हाइ लेवल की है! अपने यहाँ पर ब्रह्मचर्य चारित्र का पालन करने वाले कितने होंगे? सौ-दो सौ लोग होंगे! उनमें से भी दो-पाँच लोग हमारे पास से ब्रह्मचर्यव्रत ले गए हैं, वह भी साल दो साल के लिए।

अब यह क्रमिक मार्ग क्या कहता है कि जहाँ पर चारित्र नहीं है, वहाँ पर कुछ है ही नहीं जबकि अपना यह विज्ञान तो कहता है कि उससे कोई लेना-देना नहीं है। यदि तुझे आता (विज्ञान पता) है तो इसका कुछ भी असर नहीं होगा। दोनों अपने-अपने स्वभाव में बरतते हैं।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई अलग और मैं अलग?

दादाश्री : हाँ, वे अलग-अलग ही बरतते हैं। ऐसा ही है लेकिन अक्रम को क्रमिक मार्ग में नहीं डाल सकते क्योंकि क्रमिक मार्ग हमेशा के लिए है जबकि यह मार्ग कुछ समय के लिए ही है।

मिथ्या ज्ञान-मिथ्या दर्शन-मिथ्या चारित्र

प्रश्नकर्ता : ज्ञान, दर्शन और चारित्र का यथार्थ रूप से परिणामित होना, इससे आप क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : इन लोगों में अज्ञान परिणामित हुआ है इसीलिए कहते हैं न कि 'तू क्या समझता है? अभी तुझे धौल लगाऊँगा'। वह कहलाएगा अज्ञान का परिणमन। तो जब चंदूभाई धौल लगा रहे हों तो खुद को

अच्छा नहीं लगता, यह ज्ञान परिणामित हुआ। जब चंदूभाई उल्टा करें, तब आपको अच्छा लगता है? क्योंकि यह ज्ञान परिणामित हुआ जबकि धौल लगाने में अज्ञान परिणामित होता है। वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये सभी परिणामित होते हैं। अज्ञान में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप परिणामित होते हैं। धौल लगाई, वह चारित्र कहलाता है। मारने का भाव हुआ, वह ज्ञान कहलाता है, मारने की जो श्रद्धा है, वह दर्शन कहलाती है और मारना, वह चारित्र कहलाता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र वह वाला (अज्ञान)। उसी प्रकार यह (ज्ञान) भी ज्ञान दर्शन और चारित्र है।

लोग कहेंगे, आप उनके क्या लगते हो? तो भाई हम उनके ससुर हैं लेकिन इसमें तो ऐसा है कि कोई धमकाए तो डर जाता है। क्यों? 'ससुर हूँ', ऐसा उसके वर्तन में रहता है, इसलिए डर जाता है। दर्शन में, ज्ञान में और वर्तन में वही सब है। तीनों एक ही हो गए हैं। मिथ्या ज्ञान, मिथ्यादर्शन व मिथ्या चारित्र, इनके चले जाने (खत्म होने) पर सम्यक् दर्शन उत्पन्न होता है।

इसीलिए भगवान ने कहा है न कि सम्यक् दर्शन मुख्य कारण है। उसके बाद मोक्ष होगा क्या? तो चारित्र का क्या? तब कहते हैं, 'उसका सम्यक् दर्शन ही चारित्र लाएगा। तू अपनी तरफ से सम्यक् दर्शन कर ले'। सम्यक् दर्शन ही चारित्र को बुलाकर लाएगा। जैसे कि मिथ्यादर्शन, चारित्र को बुला लाता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ। मिथ्या चारित्र को बुला लाता है।

दादाश्री : कोई न हो, तब छोटा बच्चा भी पेन्ट की जेब में से पैसे निकाल लेता है क्योंकि उसे मिथ्यादर्शन हो गया है। यानी वह प्रतीति ही उससे निकलवा लेती है। और किस प्रकार से निकालना, यह सब भी वह जानता है।

प्रश्नकर्ता : अत: मुख्यत: महत्व प्रतीति का है?

दादाश्री : प्रतीति की ही कीमत है सारी।

प्रश्नकर्ता : इसलिए कहा जाता है न कि सम्यक् दर्शन की कीमत ही ज़्यादा है, ज्ञान की तो नहीं है न?

दादाश्री : ज्ञान की और चारित्र की भी ज़रूरत नहीं है। सम्यक् दर्शन कहता है कि मैं तुझे ठेठ तक पहुँचा देता हूँ। हं!

पहले दर्शन में आता है। दर्शन अर्थात् प्रतीति में आता है कि यह करेक्ट है और नियम हमेशा ऐसा है कि जहाँ पर प्रतीति होती है वहीं पर ज्ञान और चारित्र को जाना पड़ता है। अतः अपने यहाँ आपको क्या करना है? ज्ञानीपुरुष सिर्फ प्रतीति ही करवा देते हैं तो बहुत हो गया! उसके बाद आपका ज्ञान व चारित्र उसी तरफ जाने का प्रयत्न करेगा। आपको उन्हें मोड़ना नहीं पड़ेगा। बिलीफ जहाँ पर गई, वहाँ उसके पीछे सबकुछ आ जाता है। यह बिलीफ तो बाहर बैठी हुई है, रोंग बिलीफ बैठी हुई है। यह सब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है।

निश्चय चारित्र जगत् ने देखा ही नहीं है

चारित्र तो मुख्य चीज़ है लेकिन चारित्र का मिलना बहुत मुश्किल है न! इस वर्ल्ड में क्या कोई ऐसा इंसान होगा, जिसमें थोड़ा सा भी चारित्र हो? क्या कोई ऐसा इंसान होगा जिसमें एक प्रतिशत भी चारित्र हो? शास्त्रकारों ने जिसे चारित्र कहा है न, वह चारित्र है ही नहीं। यह चारित्र तो, ज़रा सी भ्रांति दूर हुई उस कारण से है। वास्तविक चारित्र तो देखा ही नहीं है, सुना ही नहीं है। इस ज्ञान प्राप्ति के बाद आप वास्तविक चारित्र के एक अंश में बैठ चुके हो न और उसी का यह स्वाद आ रहा है आपको। वास्तविक चारित्र का अंश चखा। अंश का भी अंश। अब धीरे-धीरे और भी बढ़ता जाएगा। चारित्र जगत् ने देखा नहीं है, सुना नहीं है। क्या यह किसी शास्त्र में लिखा गया है? लेकिन शब्दों में है। लेकिन शब्द स्थूल हैं और वाणी भी स्थूल है। उनमें चारित्र नहीं होता। चारित्र चीज़ ही अलग है न! एक सेकन्ड भी जिन्हें चारित्र बर्ते वे भगवान कहलाते हैं। लोग तो किसे चारित्र कहते हैं? ब्रह्मचर्य और आदि-आदि को चारित्र कहते हैं। वह तो उनकी अपनी भाषा का

चारित्र है। हर किसी का अपनी-अपनी भाषा का, भ्रांत भाषा का चारित्र। भ्रांति वाले भी इसे चारित्र कहते हैं। तो फिर ज्ञानी की भाषा का चारित्र क्या है? भ्रांति वाले का चारित्र कोई चारित्र-वारित्र नहीं है, फिर भी इस रूम में, यहाँ के लिए यह बात कर रहा हूँ, बाहर नहीं कर सकते। बाहर तो उनके चारित्र को चारित्र कहना पड़ेगा। उन्हें उसी का मुख्य आधार है। बाहर तो आगे की बात है ही नहीं न। भ्रांति की ही बात है न! अर्थात् 'अहिंसा का पालन करो, सत्य बोलो, चोरी मत करो, अब्रह्मचर्य मत करो, परिग्रह मत रखो', वह सब चारित्र। बाहर तो मुझे ऐसा ही कहना पड़ेगा। आपको यहाँ की भाषा का जानना है या बाहर की भाषा का?

प्रश्नकर्ता : बाहर की दुनिया में ही जी रहे हैं इसलिए बाहर का भी जानना पड़ेगा और अंदर का भी जानना पड़ेगा। दोनों ही।

दादाश्री : हाँ, तो बाहर का ऐसा है और अंदर का ऐसा है। बाहर जो चारित्र है, वह भ्रांति का चारित्र है। भ्रांति में से बाहर निकलने के प्रयत्न हैं। 'बहुत दिनों तक प्रयत्न किए लेकिन मिल नहीं रहा था न! और कहते हैं कि दादा आपके पास से एक घंटे में सबकुछ मिल गया। चारित्र भी मिल गया।'

वीतरागों का चारित्र है अरूपी

जो आँखों से दिखाई देता है, उस चारित्र को भगवान चारित्र कहते ही नहीं हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्र, ऐसी चीज़ें हैं जो आँखों से नहीं दिखाई देतीं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है वह चीज़। यानी वह चारित्र तो और ही तरह का होता है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र, वे रूपी नहीं हैं, अरूपी हैं। लोग रूपी को ढूँढ रहे हैं। जो प्रत्यक्ष दिखाई दे, ऐसा ढूँढ रहे हैं। वह रूपी नहीं है। रूपी और अरूपी में बहुत अंतर है। भगवान, वीतरागों का बताया हुआ रूपी नहीं है, अरूपी है और लोगों का बताया हुआ रूपी है। लेकिन जिन्हें मोक्ष में जाना है उन्हें वीतरागों का कहा हुआ मान्य रखना पड़ेगा। मोक्ष के लिए वीतारगों के सिवा अन्य किसी की भी बात मान्य नहीं हो

सकती। अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों ही अरूपी होने चाहिए। उस दृष्टि से तो, हम ये जो कपड़े पहनते हैं न, तो हमारे चारित्र को भी वे लोग चारित्र नहीं कहेंगे लेकिन उससे हमें आपत्ति नहीं है। दुःचारित्र कहेंगे तो भी हमें आपत्ति नहीं है। हमें तो, हमारा अरूपी ज्ञान-दर्शन-चारित्र हमारे पास है। यह सारा रूपी फॉरेन की बात है। और इन फॉरेन (व्यवहार) की बातों में हम बहुत हाथ नहीं डालते, सुपरफ्लुअस रहते हैं। ये सारा फॉरेन के बारे में है, रूपी पूरा ही फॉरेन है।

कीमत है निश्चय चारित्र की

प्रश्नकर्ता : चारित्र किसे कहेंगे? निश्चय को चारित्र कहेंगे? चारित्र क्या है? समझाइए।

दादाश्री : चारित्र तो, व्यवहार चारित्र तो ये सभी जो हैं, वह। लेकिन वास्तव में इसे भी चारित्र नहीं कहा जाएगा। व्यवहार चारित्र शास्त्र के अधीन होना चाहिए। शास्त्रों के कहे अनुसार होना चाहिए। इसे चारित्र कह ही नहीं सकते न! व्रत-नियम वगैरह व्यवहार चारित्र में समा जाता है लेकिन त्याग नहीं। त्याग चारित्र में नहीं आता। उसे देह का चारित्र कहा जाएगा। जबकि आत्मा का चारित्र तो बस, ज्ञाता-दृष्टा रहना है। चंदूभाई का अपमान हुआ तब आप ज्ञाता-दृष्टा में रहो और चंदूभाई से कहो कि 'हम है आपके साथ'।

प्रश्नकर्ता : अभी आपने कहा कि ज्ञान से चारित्र बदल सकता है, दर्शन से चारित्र नहीं बदल सकता।

दादाश्री : दर्शन से ज्ञान में आता है। दर्शन अर्थात् क्या कि कोई भी वस्तु सही है, उसकी प्रतीति हो जाए तो उसी को दर्शन कहते हैं। यदि प्रतीति नहीं हुई है तो उसे दर्शन नहीं कहेंगे। यह बात सही है तो वह तो ये अज्ञानी लोग भी कहेंगे कि भाई यह बात सही है लेकिन उसे प्रतीति नहीं हुई है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से चारित्र बदलता है, तो वह कौन सा चारित्र बदलता है?

दादाश्री : यह जो मूलत: आत्मा का चारित्र है, वह मूल चारित्र उत्पन्न होता है, यथार्थ चारित्र। तब तक उलझनों में ही पड़ा रहता है। न इसमें होता है न उसमें होता है और उलझनों में ही पड़ा रहता है।

अज्ञानी लोगों के घर में मटकी फूट जाए तो उनका ज्ञान भी नहीं बदलता। ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं उस समय लेकिन वह अहंकारी ज्ञाता-दृष्टा है। वहाँ कषाय नहीं करता है। क्यों नहीं करता? क्योंकि उसे लगता है कि 'इसकी क्या कीमत है!' यह जो मटकी फूट गई, उसकी! उसकी कीमत नहीं है इसलिए उसे राग-द्वेष नहीं होते। अत: उसका चारित्र नहीं बदलता। वह इसलिए कि वह मूल रूप से तो उसे प्रतीति बैठ गई थी कि यह कम कीमत की है और एक दो बार पहले फूट चुकी हो तो फिर अनुभव हो जाता है। इसलिए जब फिर से फूट जाए तो उसमें अंदर कुछ परिवर्तन नहीं होता। फिर भी उस क्षण उसका चारित्र उच्च प्रकार का कहा जाएगा। यदि बाहर भी कषाय नहीं हों तो उसे चारित्र कहेंगे।

जबकि इसमें तो कषाय की बात ही कहाँ रही? इसमें तो ज्ञाता-दृष्टा रहा, वही चारित्र है। उसका खुद का बेटा उस तरफ एक मन दूध गिराता रहता है और खुद ज्ञाता-दृष्टा रहता है, वह चारित्र है। इमोशनल नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञाता-दृष्टा का मुख्य परिणाम यह है कि इमोशनल नहीं होता।

दादाश्री : जो बुद्धि रहित है, वही ज्ञाता-दृष्टा रह सकता है। बुद्धि इमोशनल किए बगैर नहीं रहती। बुद्धि खत्म हो जाने के बाद ही वह पद उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : मान लीजिए कि हमारे साथ दिन में सौ बार ऐसी घटनाएँ होती हों तो उनमें उदाहरण के तौर पर पचास साठ घटनाओं में तो बुद्धि खड़ी नहीं होती और कुछ में बुद्धि खड़ी हो जाती है, तो महात्माओं में वह किस आधार पर खड़ी होती है और कौन से आधार पर नहीं होती?

दादाश्री : वह तो ऐसा है कि अगर कोई कम कीमत की चीज़ हो न, कम कीमत की मटकी हो, तो बुद्धि क्यों खड़ी होगी? उसने कीमत मानी है...

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर बुद्धि खड़ी होती है।

दादाश्री : यानी अपने ज्ञान से जब इन सभी चीज़ों की कीमत खत्म हो जाती है, इन सांसारिक चीज़ों की कीमत खत्म हो जाती है, तब उसे इनका कोई अर्थ नहीं लगता। समझ में आए ऐसी बात है न यह?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी! हाँ। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ-जहाँ खुद ने सांसारिक भाव से वैल्यू मानी, कीमत मानी है, वहाँ पर बुद्धि खड़ी होगी ही।

दादाश्री : कीमत मानी है इसलिए बुद्धि खड़ी होती है कि 'यह नुकसान हो रहा है, नुकसान हो रहा है'। अरे भाई, बुद्धि का स्वभाव है, नफा-नुकसान दिखाना। उसका स्वभाव क्या है? यहाँ नुकसान हो रहा है और यहाँ फायदा हो रहा है। नफा-नुकसान दिखाती है। जो प्रॉफिट एन्ड लॉस दिखाए, वह बुद्धि कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : हम महात्माओं को आत्मा की प्रतीति बैठ गई है तो अज्ञानियों में और हम में इस प्रतीति बैठने की वजह से अनुभव में क्या फर्क पड़ता है? अज्ञानी को भी पता तो है कि आत्मा है।

दादाश्री : बहुत फर्क पड़ता है, पूरा ही चेन्ज हो जाता है। अज्ञानी इंसान भगवान की तरह बातें तो बहुत बड़ी-बड़ी करता है, आत्मा है उसमें, सभी में है लेकिन जब कोई ग्राहक बनकर दुकान पर आता है न, तो उससे कुछ ज़्यादा ले ही लेता है। उसे लगता है कि किस तरह से इसके साथ छल करूँ और निरंतर आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों होते ही रहते हैं। जबकि अपने यहाँ वह सब बंद हो जाता है। वहाँ पर हमेशा ही चिंता रहती है, पूरे दिन जलता ही रहता है। वहाँ पर *अजंपा* (बेचैनी,

अशांति, घबराहट), चिंता, भय व कलह मन में होते ही रहते हैं, जबकि यहाँ पर वह सब बंद हो जाता है। बहुत-बहुत फर्क पड़ जाता है। महात्माओं में रौद्रध्यान और आर्तध्यान बंद हो गए हैं, उसे भगवान ने मोक्ष कहा है, यहाँ संसार में रहते हुए भी।

अभी अगर आप पूछो कि 'साहब मेरे यहाँ दस प्याले गिर गए फिर भी मेरे घर में सभी लोगों ने एकदम समता रखी थी', तो वे भगवान कहलाएँगे! वर्ना *कढ़ापा-अजंपा* (अशांति, कुढ़न, क्लेश, आक्रोश) हुए बगैर रहता ही नहीं, फिर चाहे वह कुछ भी हो! उन्हें *कढ़ापा-अजंपा* होता ही है। अब उसमें अगर कोई बुद्धिशाली हो और उसे पहले यह अनुभव हो चुका हो कि 'इसकी कीमत नहीं है', तो उसे नहीं होगा वर्ना बाकी तो अगर साधु महाराज का इतना सा लोटा टूट जाए तो भी तुरंत *कढ़ापा-अजंपा* हो जाता है। अब उन्हें कहाँ खरीदने जाना है! लेकिन स्वभाव छोड़ता नहीं है न! अपने यहाँ पर आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो चुके हैं, बहुत ज़्यादा बदलाव है, यदि नापने जाएँ तो इतना अधिक परिवर्तन आ गया है न!

ज्ञाता-दृष्टा, वह वास्तविक चारित्र

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों अलग-अलग होने के बावजूद भी किसी को एक ही साथ होते हैं न?

दादाश्री : नहीं! एक साथ नहीं होते। दर्शन और ज्ञान स्टेपिंग में होते हैं। चारित्र अलग चीज़ है। लोग जिसे चारित्र कहते हैं न, वह अलग है।

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र, इनमें क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह कषाय का निवारण हो जाता है, उसे सम्यक् चारित्र कहा जाता है और दरअसल (वास्तविक) चारित्र अर्थात् देखना और जानना। फिर भी, अगर यह चारित्र होगा तभी अंदर दरअसल चारित्र आएगा। लोगों को दरअसल दिखाई नहीं देता लेकिन यह सम्यक् चारित्र

तो दिखाई देता है न? अत: अंदर ज्ञाता-दृष्टा रहने को दरअसल चारित्र कहा जाता है। ज्ञाता-दृष्टा में रहना, वही चारित्र है।

और अब, अगर किसी को आत्मज्ञान हो गया हो और वे अंदर चारित्र में रह सकें तो भगवान ने उस पर आपत्ति नहीं उठाई है। इतना ही देखना है कि अंदर ज्ञाता-दृष्टा में रहता है या नहीं। बाहर के भाग को जैसा बनना हो वैसा बने।

जो चारित्र मोह को देखता है, वह है सम्यक् चारित्र

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह दर्शन है। वह दर्शन खुद की श्रद्धा में है। वे दोनों एकाकार न हों अर्थात् इसमें एकाकार नहीं हो तो उसी को चारित्र कहते हैं और एकाकार नहीं होने देने में जो कष्ट होता है, उस समय जो तप करना पड़ता है, वही तप कहलाता है।

इस देह में क्रोध, हर्ष व शोक सभी कुछ भरा हुआ है लेकिन अगर आत्मा उनमें तन्मयाकार न हो और *पुद्गल* के हर एक संयोग को पर परिणाम जाने तो उसे सम्यक् चारित्र कहा जाएगा!

दर्शन शुद्धि के बाद बाहर के संयोग आने पर अगर उनमें तन्मयाकार हो जाए तो वह चारित्र मोह है। जो ज्ञान चारित्र मोहनीय को देखता है, वह सम्यक् चारित्र है और आपको सम्यक् चारित्र में रख दिया है। बोलो! अब आपको क्या होगा फिर? सम्यक् दर्शन तो नहीं है लेकिन सम्यक् चारित्र तक रख दिया है आपको। जो ज्ञान, चारित्र मोहनीय को देखता है अर्थात् जब चंदूभाई चिढ़ जाएँ, जब चंदूभाई किसी से बहस करें और उसे आप देखते हो कि चंदूभाई बहस कर रहे हैं। चंदूभाई जो कुछ भी करते हैं, वह चारित्र मोहनीय कहलाता है और आप उसे देखते हो तो वह सम्यक् चारित्र है। ऐसी स्थिति में रख दिया है। लेकिन अगर समझ में आए तो वह कह सकेगा न!

लोग चारित्र मोहनीय को नहीं देख सकते। लोगों में चारित्र मोहनीय है ही नहीं। इस दुनिया के साधु-संन्यासियों में भी चारित्र मोहनीय नहीं

है। चारित्र मोहनीय सिर्फ अपने महात्माओं में ही है। बाकी किसी भी जगह पर चारित्र मोहनीय नहीं है। वहाँ पर तो मिथ्यात्व मोहनीय होता है।

जिनमें चारित्र मोहनीय उत्पन्न हो जाता है न, उनके लिए तो ऐसा कहा जाएगा कि मोक्ष में जाने की तैयारी हो गई।

चारित्र मोहनीय हटने से प्रकट होता है पूर्णत्व

प्रश्नकर्ता : परमार्थ समकित का मतलब क्या है?

दादाश्री : परमार्थ समकित! आपको हमेशा यह *लक्ष* (जागृति) में रहता है न कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'? वह परमार्थ समकित है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वह चारित्र की भूमिका में आता है?

दादाश्री : हाँ, वह चारित्र की भूमिका में आता है लेकिन वह पूर्ण चारित्र नहीं है। जब तक चारित्र मोहनीय नहीं चला जाता तब तक पूर्ण चारित्र नहीं कहा जा सकता।

प्रश्नकर्ता : मोहनीय के साथ भी चारित्र की भूमिका तो है न? उस तरफ का उसका *लक्ष* तो है ना?

दादाश्री : हाँ! जब *लक्ष* आता है न, तब चारित्र की भूमिका कहलाती है और यह जो है, वह प्रतीति की भूमिका कहलाती है लेकिन अगर इतना हो जाए न, तो भी बहुत कहा जाएगा।

कृपालुदेव ने कहा है कि *'जेम आवी प्रतीति जीवनी रे'* (जैसे ही आई प्रतीति जीव की रे) फिर जैसे ही 'मैं शुद्धात्मा हूँ' इस शब्द से उसे समझ में आता है कि यह सब 'मैं नहीं हूँ', वैसे ही फिर क्या होता है? *'जाणे सर्व थी भिन्न असंग'* (सब से भिन्न और असंग है, ऐसा जानता है।) वह खुद असंग ही है।

प्रश्नकर्ता : असंग हो जाए, भिन्न हो जाए तो क्या वह पूर्ण चारित्र है?

दादाश्री : नहीं। उसे असंग और भिन्न दोनों की प्रतीति होती है।

फिर धीरे-धीरे चारित्र की भूमिका तैयार होती है लेकिन वह कब तैयार होगी? जैसे-जैसे चारित्र मोहनीय कम होता जाएगा न, वैसे-वैसे होती जाएगी। जैसे-जैसे चारित्र मोहनीय घटता जाएगा तो दूसरी तरफ शुद्ध चारित्र बढ़ता जाएगा।

सम्यक् दर्शन की ज़रूरत है नींव में ही

अब दर्शन, ज्ञान और चारित्र। इनमें से, दर्शन तो अपना बदल गया है। ज्ञान भी उसी प्रकार का शुरू हो गया है।

जो चारित्र में गुथ गया है न, वह गुथा हुआ, खुल जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : पुराना?

दादाश्री : हाँ वही न। यह जो पिछले जन्म में मिथ्यात्व दर्शन था न, उससे मिथ्यात्व ज्ञान में परिणामित हो गया और क्योंकि परिणामित हो गया है इसलिए फिर मिथ्यात्व चारित्र उत्पन्न हो गया।

मुख्य कारण क्या है? तो वह यह है कि, यदि दर्शन ऐसा मिथ्यात्व नहीं होता, सम्यक् दर्शन होता तो सम्यक् ज्ञान में परिणामित होता और सम्यक् चारित्र की प्राप्ति हो जाती लेकिन यह दर्शन मिथ्यात्व था। अब वह मिथ्यात्व दर्शन खत्म हो गया है। अब सम्यक् दर्शन उत्पन्न हुआ है कि 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ'। चंदूभाई तो इस व्यवहार के लिए है, वह पिछली गुनहगारी है लेकिन वह पहले का जो यह सब चारित्र में गुथ गया है, वे सारे हिसाब चुकाने पड़ेंगे। फिर मन में ऐसा लगता है कि 'अरे यह जाता क्यों नहीं है?' लेकिन यह जाएगा किस तरह से? बहुत मज़बूत गुथा हुआ है। मन, वचन, काया की आदतें और उनके स्वभाव, वे स्वभाव मज़बूत हैं न! कितनी सारी फाइलों के कम होने के बाद। इसमें से तो उलीचना ही पड़ेगा संसार सागर।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि ये दर्शन में भी नहीं आए हैं।

दर्शन में आ गया होता तो ज्ञान में आ जाता और चारित्र में आ जाता। आप दर्शन किसे कहना चाहते हैं?

दादाश्री : यह हम जो बताते हैं न, उसे समझते रहो। वह समझ, दर्शन कहलाती है और हम जो समझाते रहते हैं, वह जब दर्शन में आ जाता है, तो उससे आपको प्रतीति बैठती है। और प्रतीति बैठती है तो आगे चलता (बढ़ता) है।

समझ शब्द का अर्थ ही है, दर्शन। दर्शन का अर्थ है समझ। इसीलिए हम कहते हैं न, कि 'समझते रहो'। यह बात समझ ली आपने? अब आपको समझ में आता है न कि मुझसे भूल हो गई है और भूल हो गई है इसीलिए भूल को खत्म करते हो!

प्रश्नकर्ता : संयम और चारित्र में कोई अंतर है?

दादाश्री : संयम परिणाम ही चारित्र है लेकिन वह क्षायिक चारित्र नहीं है। जब संयम परिणाम बंद हो जाते हैं तब क्षायिक चारित्र आता है। संयम परिणाम चारित्र है लेकिन क्षायिक नहीं है, क्षयोपक्षम है।

प्रश्नकर्ता : क्षयोपक्षम। तो यों कम-ज़्यादा होता रहता है।

दादाश्री : वास्तविक चारित्र को तो सम्यक् चारित्र कहा जाता है। संयम परिणाम ही चारित्र है लेकिन जब वह क्षायिक चारित्र हो जाएगा तब भगवान जैसा चारित्र उत्पन्न होगा।

प्रश्नकर्ता : स-राग चारित्र।

दादाश्री : स-राग चारित्र तो बहुत उच्च चीज़ है। स-राग चारित्र तो बहुत बड़ी चीज़ है। ज्ञानी स-राग चारित्र में रहते हैं। ज्ञानी स-राग चारित्र में और जब संपूर्ण ज्ञानी हो जाएँ, उसके बाद वीतराग चारित्र। वह तो बहुत ही उच्च दशा है। स-राग चारित्र तो संयमी कहलाता है!

देखे-जाने, लेकिन राग-द्वेष नहीं हों, उसी को कहते हैं वीतराग चारित्र!

परम उपकारी पर किंचित्मात्र राग नहीं और परम उपसर्ग करने वाले पर किंचित्मात्र द्वेष नहीं, ऐसे वीतराग चारित्र को जानना है।

वह है विपरीत ज्ञान...

प्रश्नकर्ता : आत्मा का जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र है, उसमें अलग-अलग विभाग नहीं हैं?

दादाश्री : नहीं। आत्मा का तो वहाँ पर (तीनों) एक ही है। आत्मा का तो, वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, इन सब का सम्मिलित स्वरूप ही आत्मा है। लेकिन ये अलग-अलग हैं इसीलिए सभी रास्ते पार करते-करते आता है न! तो पहले उसे दर्शन समझ में आता है उसके बाद ज्ञान को समझता है और फिर चारित्र। अतः सभी को अलग-अलग समझता है। लेकिन मूल रूप से तीनों एक ही हैं। लेकिन समझने के लिए विस्तार से ये सब बातें की गई हैं ताकि सामने वाले को समझ में आ जाए कि दर्शन क्या है वगैरह वगैरह... क्योंकि खुद ज्ञाता-दृष्टा रहता है। खुद ही ज्ञाता-दृष्टा है, अर्थात् ज्ञान और दर्शन खुद ही है। और परमानंद उसका चारित्र है।

प्रश्नकर्ता : वह उसका परिणाम है?

दादाश्री : वह परिणाम है लेकिन वही चारित्र है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान, दर्शन और चारित्र में शुरुआत दर्शन से होती है?

दादाश्री : वह तो संसार की अपेक्षा से है। बाकी वहाँ पर इनमें कुछ अलग-अलग है ही नहीं। यह तो संसार में पड़ा हुआ है इसलिए। उसका दुःख है। वह जो दर्शन उल्टा है उसे सीधा कर देना पड़ेगा। दर्शन सीधा कर देंगे तब जो ज्ञान उल्टा है, वह ज्ञान सीधा हो जाएगा और फिर जो चारित्र उल्टा है, वह चारित्र सीधा हो जाएगा। संसार में ये जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र हैं, वे सभी चारित्र कहलाते ज़रूर हैं लेकिन वे उल्टे ज्ञान, दर्शन और चारित्र हैं। सीधे ज्ञान, दर्शन और चारित्र नहीं हैं वे। उल्टे अर्थात् विपरीत और सीधे अर्थात् सम्यक्।

नहीं करना है विकास आत्मगुणों का

प्रश्नकर्ता : जो आत्मा के गुणों का विकास करे वही ज्ञान है और बाकी का सब अज्ञान कहलाएगा न?

दादाश्री : आत्मा के गुणों का विकास करना ही नहीं है। वह खुद विकसित ही है। आत्मा तो परमात्मा ही है। हम क्या उसके गुणों का विकास करेंगे!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये आत्मा के गुण हैं तो उनका विकास करेंगे तभी परमात्मा पद की प्राप्ति होगी न!

दादाश्री : उसका विकास नहीं, वह तो संपूर्ण है। अनंत ज्ञानमय है। उसका विकास करना ही नहीं है। ऐसा तो क्रमिक मार्ग में सिखाते हैं। ये ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये तो व्यवहार हैं, वास्तविक चीज़ है ही नहीं। इस व्यवहार पर से निश्चय में जाना है। व्यवहार से अगर कुछ समकित हो जाए तो फिर उसे आगे के निश्चय की लिंक मिलेगी। जब तक समकित नहीं हो जाता तब तक निश्चय की लिंक नहीं मिल सकती।

व्यवहार चारित्र

प्रश्नकर्ता : अब ज्ञान, दर्शन और चारित्र एक व्यवहार में और एक निश्चय में दोनों अलग-अलग हैं। निश्चय में रियल है और व्यवहार में रिलेटिव है। व्यवहार में तो साधु, आचार्यों सभी का व्यवहार चारित्र कहलाता है। वे यदि भगवान के कहे अनुसार चलेंगे तो, वर्ना व्यवहार में भी चारित्र नहीं कहा जाएगा।

अब, व्यवहार में चारित्र का मतलब क्या है? लोगों को दुःख नहीं देना, अहिंसा धर्म का पालन करना, जिस धर्म में अहिंसा का उपदेश लिखा हुआ हो, वह व्यवहारिक ज्ञान कहलाएगा। अहिंसा कम हो तो कम ज्ञान, अधिक हो तो अधिक ज्ञान। जितनी उसमें अहिंसा हो। हर एक धर्म में अहिंसा की कुछ न कुछ बात तो रहती है। क्रिश्चियन धर्म में भी इंसानों को मारकर खाने के लिए मना किया गया है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी वे लोग माँस बहुत खाते हैं।

दादाश्री : नहीं। लेकिन इंसान-इंसान को तो नहीं खाता इसलिए कुछ तो धर्म है वहाँ पर। वे लोग जानवरों को खाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का मतलब समझ है ना?

दादाश्री : ज्ञान अर्थात् हिताहित का भान होना, हिताहित का ज्ञान जानना, खुद का हित किसमें है और अहित किसमें है, इतना जान लिया तो वह ज्ञान है। पहले वह पुस्तकों में पढ़ता है कि मनुष्यों का माँस खाना भयंकर राक्षसी वृत्ति कहलाती है। ऐसा है, वैसा है। कोई अपने बच्चों को खा जाए तो क्या होगा? इसलिए तब फिर उसे उस पढ़ी हुई चीज़ पर श्रद्धा बैठ जाती है, वह दर्शन कहलाता है और जो पढ़ा हुआ है, श्रद्धा में आया हुआ जब अनुभव में आता है तब वह ज्ञान कहलाता है और जब वर्तन में आता है तब चारित्र कहलाता है। वह व्यवहार ज्ञान, दर्शन और चारित्र।

ज्ञान अर्थात् अनुभव। दर्शन अर्थात् वह ज्ञान जो अनुभव रहित है, अनडिसाइडेड। पढ़ा कि तुरंत ही हमें श्रद्धा बैठ जाती है, हमें ऐसा लगता है कि बात सही है। जब तक खुद के आत्मा की समझ नहीं है, तब तक अहिंसा की समझ होनी चाहिए। तब तक अहिंसा को धर्म कहा गया है, व्यवहार धर्म को। अहिंसा का (ज्ञान) जितना-जितना निरावृत, उतना ही वह धर्म उच्च है। धर्म सभी सही हैं लेकिन एक समान नहीं है। जितने परिमाण में अहिंसा का पालन करते हैं उतने ही परिमाण में उसका धर्म है। वह सारा व्यवहार का ज्ञान, दर्शन और चारित्र है जबकि निश्चय का तो, आत्मा जानने के बाद आत्मा पर श्रद्धा बैठती है। ज्ञानीपुरुष के पास आकर जब वास्तविक आत्मा पर श्रद्धा बैठती है तब वह सम्यक् दर्शन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद की सीढ़ी सम्यक् ज्ञान है?

दादाश्री : जब अपने अनुभव में आ जाए तब ऐसा कहा जाएगा कि सम्यक् ज्ञान हो गया और चारित्र में आने के बाद सम्यक् चारित्र।

अत: मोक्ष में जाते हुए दो प्रकार के ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप हैं। एक व्यवहार ज्ञान, व्यवहार दर्शन, व्यवहार चारित्र और व्यवहार तप। व्यवहार अर्थात् वह जो बाहर के लोगों को एक्सेप्ट हो जाए वही ज्ञान। बाह्य ज्ञान है लेकिन मोक्ष में जाने के रास्ते का ज्ञान है। बाह्य दर्शन, दर्शन अर्थात् श्रद्धा और चारित्र अर्थात् मोक्ष में जाते हुए अशुभ को छोड़ता है और शुभ चारित्र हो जाता है। उसके बाद में शुद्ध चारित्र आता है। पहले शुभ चारित्र आता है। अब वह शुभ चारित्र वाला साधु कहलाता है। शुभ चारित्र की परिभाषा क्या है? 'जहाँ क्रोध आने लगे वहाँ पर क्रोध न करे तो शुभ चारित्र कहलाता है।' शुभ चारित्र से संसार मार्ग सुधरता है, संसार शुभ हो जाता है। जबकि मोक्ष तो शुद्ध चारित्र से ही होता है! शुभ चारित्र में मान-कीर्ति की वासना नहीं होती और दूसरा, अगर हम अपमान करें तो भी समान रहता है। चिढ़ नहीं जाता और अगर चिढ़ जाए तो वह साधु है ही नहीं। सांसारिक लोग चिढ़ जाते हैं, साधु भी चिढ़ जाते हैं तो फिर डिफरेन्स क्या रहा? कोई परिभाषा तो होगी न या बिना परिभाषा का है यह? सोने की परिभाषा है और पीतल की परिभाषा नहीं है? वर्ना पीतल सोने के भाव बिकता न?

ऐसा करो, अच्छा करो, फलाना करो, प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, ऐसा तूफान यहाँ पर नहीं हैं। यहाँ करना कुछ भी नहीं है, यहाँ तो जानना है और समझना है। समझने से समकित होता है और जानने से ज्ञान होता है। और जिसने जान लिया और समझ लिया तो उससे सम्यक् चारित्र होगा।

महात्माओं का चारित्र

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है न कि *'उदय थाय चारित्रनो, वीतरागपद वास'*। (चारित्र का उदय होने पर वीतराग पद में वास रहता है)

दुनिया ने चारित्र देखा ही नहीं है, सुना ही नहीं है। लोग लौकिक चारित्र को चारित्र कहते हैं। कपड़े बदलने को चारित्र कहते हैं। शास्त्र मौखिक हो जाएँ तो, उसे भी चारित्र कहते हैं। क्या ये लोग जौहरी हैं?!

प्रश्नकर्ता : यह जो कहा है *'उदय थाय चारित्रनो'* तो वह कौन सा चारित्र है?

दादाश्री : मूल चारित्र, आत्मचारित्र। क्रमिक मार्ग में जो लिखा गया है, वह सम्यक् चारित्र है जबकि यह तो मूल चारित्र में है। ज्ञायक स्वभाव अर्थात् मूल चारित्र। चारित्र अर्थात् आत्मचारित्र की तरफ जाते हुए सभी चारित्र, यानी कि स्टेप बाइ स्टेप चारित्र। संसार में से वापस मुड़कर और आत्मा की तरफ के चारित्र उत्पन्न हों, तभी से वह चारित्र माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : रिवर्स गति।

दादाश्री : हाँ, रिवर्स और तभी से वह चारित्र कहलाता है। लेकिन लौकिक चारित्र कब तक चारित्र कहलाता है? जब तक खुद इस देह को ऐसा मानता है कि 'मैं आत्मा हूँ', तब तक देहाध्यास गया नहीं है। तब तक वह लौकिक चारित्र है। और देहाध्यास खत्म होने के बाद अलौकिक चारित्र उत्पन्न होता है। तो हमने जिन्हें ज्ञान दिया है उन सभी में अलौकिक चारित्र उत्पन्न हुआ ही है लेकिन उन्हें खुद को समझ में नहीं आता कि हमारे अंदर अलौकिक चारित्र बरत रहा है। उसका कारण यह है कि एक ही घंटे में निबेड़ा हो गया न। फिर जब हम से बार-बार विस्तारपूर्वक पूछेंगे तब समझ में आएगा। विस्तारपूर्वक, इन डिटेल में जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अपने महात्माओं में तो चारित्र का उदय हो गया है न?

दादाश्री : हाँ, हो चुका है। इसीलिए न। इसीलिए श्रीमद् राजचंद्र का यह वाक्य पूर्ण हो गया न! लेकिन चारित्र का वह उदय हमेशा के लिए नहीं रहता। *'उदय थाय चारित्रनो वीतरागपद वास।'* लेकिन फिर *'केवल निज स्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान।'* (हमेशा निज स्वभाव का ही अखंड ज्ञान बरतता है) *'कहीए केवलज्ञान ते देह छतां निर्वाण'* (जिसे केवलज्ञान कहते हैं, वह देह सहित निर्वाण है) अक्रम है न! इसलिए आत्मा का चारित्र रहता है।

प्रश्नकर्ता : इसके लक्षण क्या हैं?

दादाश्री : ऐसा है न, उसका वह चारित्र बहुत ही कम परिमाण में होता है। वह इन आखों से देखने-जानने के बराबर नहीं है। बुद्धि से देखने-जानने को जानना नहीं कहते। जहाँ आँख का उपयोग नहीं है, मन का उपयोग नहीं है, बुद्धि का उपयोग नहीं है, और उसके बाद भी उसे देखे और जाने, वह चारित्र है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अंदर की परिणति?

दादाश्री : हाँ, वह उसका चारित्र है, आत्मा का।

तब उदय होता है चारित्र का

प्रश्नकर्ता : हमें चारित्र का उदय किस तरह से करना चाहिए? कॉमन लेंग्वेज में हम अध्यात्म के चारित्र को चारित्र कहते हैं न, इस बात को ज़रा गहराई से समझाइए न।

दादाश्री : चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उसे देखते रहना। ज्ञाता-दृष्टा, वही चारित्र कहलाता है। चंदूभाई का मन क्या कर रहा है? बुद्धि क्या कर रही है? उसे देखते रहना ही चारित्र कहलाता है। वह चारित्र का उदय होना कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : उसका पुरुषार्थ करना अपने हाथ में है?

दादाश्री : हाँ। क्योंकि पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ अपने हाथ में है। आत्मा हो जाने के बाद अपने हाथ में पुरुषार्थ है। किसी जगह पर, संसार में किसी दूसरी चीज़ में उपयोग चला जाए तो हमें वह खराब लगता है कि 'भाई वापस वहाँ चला गया? क्यों गया? आत्मा में रहो', ऐसा होता है।

प्रश्नकर्ता : लौकिक भाषा में जिसे कहते हैं न कि 'खराब चारित्र को' भी देखते रहें तो वह आध्यात्मिक चारित्र है?

दादाश्री : बस। वही आध्यात्मिक चारित्र है! वह जो चारित्र है,

वही चारित्र है। यह चारित्र नहीं, देह का चारित्र नहीं है। आत्मा का चारित्र अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद में रहना, वह आत्मा का चारित्र है। जानना, देखना और स्थिर होना, वह चारित्र कहलाता है।

जागृति से दर्शन बढ़ता है और स्थिरता से चारित्र प्रकट होता है। ज्ञान, दर्शन तो वह है जो मैंने दिया है और 'देखना-जानना' व चारित्र में स्थिर होना। हमने कहा है कि यह सब जो पूरे दिन होता रहता है, उसे देखो, जानो और स्थिर रहो। देखते ही रहो, क्या हो रहा है उसे देखते ही रहो। नुकसान हो रहा हो तो भी देखते रहो, और फायदा हो रहा हो तो भी देखते रहो। बेटा मर जाए तो भी देखते रहो, बेटे का जन्म हो तो भी देखते रहो। उसमें कोई हर्ज नहीं है। सिर्फ देखते रहना है। राग, द्वेष नहीं। क्रिया वही की वही रहेगी। भगवान ने क्या कहा है, बाहर की क्रिया, देह की क्रिया वैसी ही रहती है, अज्ञानी जैसी ही रहती है लेकिन यदि राग-द्वेष नहीं हैं तो ऐसा कहा जाएगा कि उसने वीतराग धर्म प्राप्त कर लिया। वह चारित्र कहलाएगा। राग-द्वेष रहित होना, उसी को चारित्र कहते हैं। हमें किसी भी जगह पर राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते। चाहे व्यापार में कैसा भी नुकसान हो जाए, आपकी वजह से हो जाए, तब भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : वह तो अपने कर्म का उदय है न?

दादाश्री : 'व्यवस्थित' ही है न! उसे हमें 'व्यवस्थित' ही कहना है।

चारित्र के लक्षण

प्रश्नकर्ता : चारित्र कब कहेंगे?

दादाश्री : जब बिल्कुल भी असर न हो तब वह चारित्र कहा जाएगा। दर्शन अर्थात् प्रतीति। ज्ञान की प्रतीति बैठ चुकी है, वह बात सौ प्रतिशत है। ज्ञान तो जैसे-जैसे अनुभव में आता है न, वैसे-वैसे लगता है कि यह तो निर्दोष है और हमने इसे दोषित मान लिया, वह हमारी भूल है। अतः यों जो कुछ ज्ञान में आ गया वह थिअरम में आ गया।

अत: प्रतीति को भगवान महावीर ने थ्योरी कहा है। कहते हैं कि थ्योरी जान ली और थिअरम में नहीं आया। दर्शन अर्थात् थ्योरी ऑफ एब्सल्यूटिज़्म और ज्ञान अर्थात् थिअरम। थिअरम में थोड़ा बहुत आ गया है लेकिन अभी थिअरम के जितने मार्क्स मिलने चाहिए उतने ही आपको मिलेंगे लेकिन बोनस नहीं मिलेगा आपको। और जिन पर बिल्कुल भी असर नहीं होता उसे बोनस मार्क्स देते हैं। अब चारित्र बढ़ा है।

चारित्र को पहचानेंगे कैसे? पता कैसे चलेगा कि अंदर चारित्र बरत रहा है? उसके बाह्य लक्षण क्या हैं? तो वह है वीतरागता। महात्मा भी कहते हैं न कि हम में वीतरागता है लेकिन अंदर पसंद और नापसंदगी रहती है। वे राग-द्वेष के मौसी के बेटे हैं।

प्रश्नकर्ता : सही है दादा, लेकिन यदि राग-द्वेष चले गए हैं तो मौसी के बेटों को बहुत धमकाना नहीं है। यानी मन में राग-द्वेष जैसा कुछ रहता है...

दादाश्री : लेकिन मौसी के बेटे चढ़ बैठे थे! कहते हैं, 'हमारे भाई की गद्दी पर हैं'। वे सब कहते भी हैं, 'सगी मौसी के बेटे लगते हैं'।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् पसंद और नापसंद चले जाएँगे, पसंद और नापसंद को जानेगा और जाएँगे...

दादाश्री : जाएँगे कहेंगे तो उस पर द्वेष हो जाएगा। जाएँ या आएँ, हमें वह देखने की ज़रूरत नहीं हैं। हम खुद अपनी प्रगति करते जाएँगे तो वे अपने आप ही चले जाएँगे। निकल जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : निकल जाएँगे। जाएँगे ऐसा कहेंगे..

दादाश्री : तो वह द्वेष कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : हम अपनी प्रगति करते जाएँगे तो वे अपने आप ही चले जाएँगे।

दादाश्री : वही वीतरागों का रास्ता है।

तब माना जाएगा कि सम्यक् चारित्र बर्ता

प्रश्नकर्ता : हमने कोई ऐसी चीज़ देखी, जिस पर हमारा ध्यान नहीं जाना चाहिए, वहाँ पर अपना ध्यान चला जाए, तो उस समय भले ही ध्यान चला गया लेकिन उसे हमने अलग देखा, और उसे वापस मोड़ सके और उसकी वजह से कोई कार्य न हो पाए तो अब वह किसका चारित्र है, कैसा चारित्र है?

दादाश्री : वही सच्चा आत्मचारित्र है। वही चारित्र कहलाता है। भगवान ने इसी को तो सम्यक् चारित्र कहा है।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् चारित्र भाव स्वरूप से है, द्रव्य तो नहीं है न?

दादाश्री : हाँ। वह भाव स्वरूप अर्थात् हम ज्ञाता-दृष्टा और वह ज्ञेय हो जाए तो वह सम्यक् चारित्र। उतना आपका सम्यक् चारित्र में जमा होगा और उस समय मान लो कि यह ज्ञान दिया हो लेकिन सम्यक् चारित्र न भी रहे क्योंकि एविडेन्स हैं न पिछले। एविडेन्स हैं इसलिए मिथ्या चारित्र हो गया तो आप यदि उसके जानकार रहो तो मिथ्या चारित्र का जोखिम ज़्यादा नहीं आएगा। यदि अतिशय तन्मयाकार हो जाओ, मूर्च्छित भी हो जाओ तो गलत कहलाएगा। अपना ज्ञान ऐसे मूर्च्छित भाव करवाने वाला नहीं है। इसलिए ज्ञाता-दृष्टा रहना है। यह तो ऐसा है कि ज्ञाता-दृष्टा रहता है फिर भी ज्ञेय में ज्ञेयाकार कर देता है। उस समय सम्यक् दर्शन है लेकिन सम्यक् चारित्र नहीं है। अर्थात् यह कि पूरा पलटा नहीं है। चारित्र कब जमा होगा? जब यहाँ पर वर्तन में आएगा तब जमा होगा।

परख चारित्र बल की

प्रश्नकर्ता : ऐसा कब कहा जाएगा कि चारित्र बलवान है? उसका टेस्ट क्या है?

दादाश्री : किसी के साथ टकराव न हो। किसी जगह पर अपना

मन टकराए नहीं तो कहा जाएगा कि चारित्र बलवान है। मन नहीं टकराए, बुद्धि नहीं टकराए, चित्त नहीं टकराए और अहंकार भी नहीं टकराए, शरीर नहीं टकराए, एडजस्ट एवरीव्हेर।

प्रश्नकर्ता : मन नहीं टकराए, बुद्धि नहीं टकराए, वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : किसी के साथ दखल नहीं हो। टकराव नहीं हो। हम से किसी को चिढ़ न मचे, किसी को दुःख न हो, किसी को त्रास न पहुँचे तो इसका मतलब यह है कि वह एवरीव्हेर एडजस्ट हो चुका होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : टकराने के बाद प्रतिक्रमण कर ले तो चारित्र ही कहलाएगा न?

दादाश्री : नहीं। वह तो चारित्र में जाने की निशानी है।

प्रश्नकर्ता : चारित्रवान और शीलवान में क्या अंतर है?

दादाश्री : शीलवान पूर्ण चारित्र वाला होता है। चारित्रवान अर्थात् अंश शीलवान और शीलवान अर्थात् सर्वांश शीलवान। अतः यह ज्ञान है इसलिए आपमें चारित्र आएगा, वर्ना चारित्र तो हो ही नहीं सकता न? ध्यान और तप उलझनें ही खड़ी करते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : चारित्र और संयम में क्या अंतर है दादा?

दादाश्री : चारित्र और संयम में तो बहुत अंतर है!

चारित्र का मतलब है कि किसी को भी किंचित्मात्र भी दुःख न हो, टकराव न हो, जबकि संयम तो? असंयम को रोकना, उसे संयम कहते हैं। वह तो यों व्यवहार में संयमी व्यक्ति कहलाएगा।

लेकिन अब इस ज्ञान के बाद संयम आने लगा है। चारित्र से लेना-देना नहीं है। चारित्रवान को देखकर लोग खुश हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मचर्य का एक्ज़ेक्ट आराधन किया जाए तो फिर पूर्ण चारित्रवान हो जाएगा न?

दादाश्री : क्यों नहीं होगा? जिसे ज्ञान दिया है, वह हो जाएगा। दूसरों को नहीं होगा। दूसरा कुछ-कुछ प्रोग्रेस करेगा। ज्ञान वाला तो पूर्ण चारित्र! शीलवान पसंद हैं न?

प्रश्नकर्ता : शीलवान पसंद हैं। हम चूक जाते हैं। मुझसे भी टकराव हो जाता है।

दादाश्री : हम जो कुछ भी कहते हैं न, वह तो सार है कि जिस क्षेत्र में जाना है उस क्षेत्र की बात है। तीर्थंकर शीलवान कहलाते हैं और शीलवान बनना है, फिर जितना हो पाया उतना ठीक है और बाकी की जो कमी है उसे जानना चाहिए कि कितनी कमी है!

तब आएगा निश्चय में

'निश्चयथी व्यवहारथी रे, ज्ञानादिक स्वरूप रे।'

-श्रीमद् राजचंद्र

(निश्चय और व्यवहार से ज्ञान आदि स्वरूप रे।)

निश्चय से तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी है और व्यवहार से क्या है? वही का वही। वह भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी है। यह व्यवहार इन्द्रियगम्य है, इन्द्रियज्ञान है। इन्द्रिय ज्ञान, दर्शन व चारित्र व्यवहार है और निश्चय वाला जो है वह अतिन्द्रिय ज्ञान-दर्शन व चारित्र है लेकिन निश्चय और व्यवहार से ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी है।

ये चंदूभाई नाटक का अवतार हैं। आप 'चंदूभाई' नामक नाटक करने आए हो और अंदर से आप ऐसा जानते हो कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। भर्तृहरि का नाटक करने आए हो और वास्तव में अंदर ऐसा जानते हो कि 'लक्ष्मीचंद हूँ'। वह अपने लक्ष्मीचंद को भूलता नहीं है, आप अपने शुद्धात्मा को नहीं भूलते। यह जो इस दुनिया का नाटक है, वह निश्चय

का नाटक है अत: नाटक में नाटकीय रहना चाहिए। सबकुछ बस यों ही, शोर-शराबा, सारी धाँधली करनी है। अंदर कोई परिणाम नहीं बदलने चाहिए। वर्ना रो-रोकर भुगतोगे जबकि आपको हँसकर भुगतना है। इतना ही कहते हैं न! भुगतने में अंतर है न!

निज स्वभाव का अखंड ज्ञान

'केवळ निज स्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान।' (सिर्फ निज स्वभाव का ही अखंड ज्ञान बरतता है।) निज स्वभाव का अर्थात् 'निरंतर ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का। उसके अलावा अन्य कुछ भी नहीं रहता, उसे केवलज्ञान कहते हैं', ऐसा कृपालुदेव ने कहा है। अभी वह पद हम से ज़रा दूर है। हमें ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में आना है। वह चारित्र कहलाता है। अभी तो हमें दादा ने दर्शन दिया था, अखंड दर्शन। उसमें जितना अनुभव में आने लगा उतना ज्ञान हुआ और फिर उसमें से चारित्र उत्पन्न होगा। अब आंशिक चारित्र बरतेगा।

जितना अखंड ज्ञान-दर्शन इकट्ठा होगा उतना ही चारित्र उत्पन्न हो जाएगा। अब उसे वह अनुभव किसमें से होता है? उस चारित्र मोह को देखने से अर्थात् वह यह सब देखता है कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं।

दादा का चारित्र

प्रश्नकर्ता : अब क्या इस चारित्र शब्द में ज्ञान और दर्शन आ जाते हैं?

दादाश्री : ज्ञान-दर्शन दोनों ही आ जाते हैं।

ऐसा है न कि यह जो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र कहा गया है, तो इस क्रमिक मार्ग में सम्यक् ज्ञान है, सम्यक् दर्शन है और सम्यक् चारित्र है। यह अक्रम मार्ग है अत: केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलचारित्र है। अत: आपको केवलदर्शन प्राप्त हुआ है यहाँ पर! केवलज्ञान और केवलचारित्र प्राप्त नहीं हुआ है।

क्रमिक मार्ग में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र, वे बाह्य हैं। अंदर का भाग तो अंदर का ही है लेकिन वह सारा शब्दों में है, यथार्थ नहीं है। बहुत हुआ तो छठवें गुणस्थानक तक पहुँचता है और सातवाँ शायद ही कभी दिखाई देता है। बस, सातवें गुणस्थानक पर कभी एकाध घंटे के लिए जा सकता है। वैसा हुआ नहीं है इस काल में अभी तक। तो यह उसका वर्णन है। अपने अक्रम मार्ग में तो केवलदर्शन, केवलज्ञान और केवलचारित्र हैं। उसमें केवलदर्शन में पहुँच गए हैं। केवलज्ञान में पहुँच पाएँ, ऐसा है नहीं। अतः अब हमें अपने जो सारे पिछले नुकसान हैं न, वे सारी कमियाँ पूरी कर देनी हैं क्योंकि दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति की है। अतः हमें यहाँ पर पूछ-पूछकर अपना सारा बैंक बेलेन्स है न और सारा ओवर ड्राफ्ट है, वे सब चुका देने हैं। सप्लाई कर देने हैं। वरीज़ नहीं रही न अब। जब तक अहंकार है, तभी तक सारी परेशानी है। अहंकार चला गया तो सबकुछ चला गया।

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे दादा के चारित्र के दर्शन होते हैं, नज़दीक से देखने मिलता है, तब ऐसा ही होता है कि हम में भी ऐसा चारित्र प्रकट हो।

दादाश्री : वह तो हो जाएगा, आपको चिंता भी नहीं करनी पड़ेगी। देखना आना चाहिए बस। इसमें प्रयत्न करने वाला रहा ही कहाँ फिर? प्रयत्न करने वाला तो खुद अकर्ता बन चुका है। अकर्ता प्रयत्न किस प्रकार से करेगा?

प्रश्नकर्ता : प्रयत्न नहीं रहे तब सहज प्राप्त हो जाता है।

दादाश्री : प्रयत्न हो जाते हैं, वह भी सहज है क्योंकि वह भोक्तापद का अहंकार है, कर्तापद का अहंकार नहीं है। वह भोक्तापद का अहंकार प्रयाण करता है तो वह भी सहज ही है। वह प्रयत्न नहीं कहलाता लेकिन वह तो हमें कहना पड़ता हैं, शब्द पहुँचता ही नहीं है वहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : 'दादाजी का चारित्र देखना आ जाएगा और प्रकट हो

जाएगा' वह क्या है? संपूर्ण चारित्र प्रकट हो चुका है दादाश्री में। फिर भी ऐसी कौन सी भूल है कि हम देख नहीं पाते।

दादाश्री : तो फिर उसने चारित्र को समझा ही नहीं है! चारित्र का बाह्य लक्षण क्या है? वह है वीतरागता, राग-द्वेष नहीं होते। अंदर चारित्र है या नहीं अगर वह पता लगाना हो तो बाह्य लक्षणों को देखना पड़ेगा। कोई गालियाँ दे तब भी उस पर द्वेष नहीं और फूलमाला चढ़ाए तो उस पर राग नहीं। तो फिर यह तय हो गया कि अंदर चारित्र बरत रहा है।

आत्मज्ञानी पुरुष का चारित्र देखोगे तो बहुत हो गया। यह नए ही प्रकार का चारित्र है। उस चारित्र को ही देखते रहना है। यहाँ पर सीखना करना कुछ भी नहीं है। देखते रहो। देखो और जानो, देखो और जानो।

इस सम्यक् चारित्र के बाद केवलचारित्र उत्पन्न होगा। जहाँ केवलचारित्र है वहाँ पर ऐसा सब नहीं करना होता। स्व और पर इकट्ठे न हो जाएँ, इसलिए पकड़कर रखना पड़ता है। केवलचारित्र में ऐसा नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : अपने आप ही सहज हो जाता है।

दादाश्री : सहज रहे, वह चारित्र तो अलग ही प्रकार का होता है लेकिन जब तक पर में जाने से रोकना पड़ता है, तब तक वह सम्यक् चारित्र कहलाता है। दोनों को एक नहीं होने देना, वह सम्यक् चारित्र है। जबकि वह तो केवलज्ञानमय चारित्र है, वह तो बहुत उच्च वस्तु है।

दोनों को एक होने दिया जाए तो वह मिथ्या चारित्र कहलाएगा। एक नहीं होने देना, सम्यक् चारित्र है और केवलज्ञानी में केवलचारित्र बरतता है। उन्हें एकाकार नहीं होने देने के लिए यों रोकना नहीं पड़ता।

समझ, अस्तित्व और चारित्र की

प्रश्नकर्ता : अस्तित्व और चारित्र, ये दो चीज़ें हैं। लोग सभी

उदाहरण चारित्र में से लेते हैं, अस्तित्व की बात तो अलग ही रहती है, तो उन दोनों में भेद किस प्रकार से करना चाहिए?

दादाश्री : वह चारित्र, केवलज्ञान का चारित्र नहीं है। पिछले जन्म का चारित्र है। गत जन्म का चारित्र है। यह जो चारित्र दिखाई देता है, वह इस जन्म का परिणाम नहीं है। अतः वह पूर्ण नहीं है। चारित्र पूर्ण नहीं है। उनका अस्तित्व पूर्ण है। वस्तुत्व से पूर्ण है और पूर्णत्व रूप से पूर्ण है। महावीर भगवान, यह जो आँखों से दिखाई देता है न, उस चारित्र को चारित्र नहीं कहते। ज्ञान-दर्शन-चारित्र वगैरह ऐसी चीज़ें नहीं है कि आँखों से दिखाई दें। वह चीज़ इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है। अतः वह चारित्र तो अलग ही है और यह जो चारित्र था वह तो पिछले जन्म का परिणाम था। सभी के जो चारित्र दिखाई देते हैं, वे पिछले जन्म के परिणाम हैं और अस्तित्व दूसरी जगह पर है। अस्तित्व में शायद फुल स्टेशन पर भी हो, अस्तित्व में 100 पर हो और चारित्र 98 पर होता है। अस्तित्व इस जन्म का है और चारित्र पिछले जन्म का।

मोक्ष का मार्ग एक ही

प्रश्नकर्ता : क्या मोक्ष प्राप्ति के मार्ग अलग-अलग हैं?

दादाश्री : प्राप्ति का मार्ग तो एक ही होता है, विचार श्रेणी अलग-अलग होती है। प्रकृति अलग-अलग है इसलिए अलग-अलग विचार श्रेणी पर से वहाँ पर ले जाते हैं लेकिन प्रकाश के रूप में ज्ञान तो वही का वही है। प्रकाश में अंतर नहीं है। प्रकाश तो, अनंत चौबीसियाँ बीत गईं और जैसा प्रकाश था वही का वही चला आ रहा है। प्रकाश में कोई अंतर नहीं है। अगर प्रकाश में अंतर है तो अज्ञान है। वही का वही प्रकाश होना चाहिए। ज्ञान-दर्शन व चारित्र वही के वही होने चाहिए। क्रमिक मार्ग में ज्ञान, दर्शन और चारित्र है और अक्रम में दर्शन, ज्ञान और चारित्र है लेकिन प्रकाश वही का वही है। केवलज्ञान का प्रकाश वही का वही है। अंत में परिणाम क्या आएगा? केवलज्ञान। परिणाम वही का वही आएगा। इस अक्रम का तरीका पुण्यशाली लोगों को प्राप्त होगा, यह तरीका आसान है!

यथाख्यात चारित्र

प्रश्नकर्ता : क्या यथाख्यात चारित्र शुक्लध्यान है?

दादाश्री : जब शुक्ल ध्यान उत्पन्न होता है तब इस तरफ यथाख्यात चारित्र उत्पन्न हो जाता है। शुक्ल ध्यान उसे कहते हैं कि खुद अपना ही ध्यान, अन्य कोई चीज़ उसमें नहीं आए। स्वाभाविक ध्यान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : यथाख्यात चारित्र ही केवलज्ञान है?

दादाश्री : नहीं। यथाख्यात चारित्र पूर्ण होने के बाद केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यथाख्यात चारित्र में तो आत्मा का पूरा *लक्ष* (जागृति) बैठ जाता है कि वह क्या है! उसके बाद केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : यथाख्यात चारित्र का मतलब क्या है?

दादाश्री : जैसा है वैसा चारित्र।

प्रश्नकर्ता : यह सम्यक् चारित्र से भी उच्च प्रकार का चारित्र कहलाता है?

दादाश्री : बहुत उच्च कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : केवलचारित्र?

दादाश्री : उससे आगे का जो चारित्र है, वह केवलचारित्र कहलाता है। यह जब पूर्ण हो जाता है तब केवलचारित्र कहलाता है।

वीतराग चारित्र में ही, फिर उसकी रमणता उसी में रहा करती है। वह है भगवान महावीर का चारित्र। आत्म रमणता, निज रमणता, स्वभाव रमणता।

प्रश्नकर्ता : स्वभाव रमणता ही यथाख्यात चारित्र है?

दादाश्री : हाँ, यथाख्यात कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अब इस यथाख्यात चारित्र, सम्यक् चारित्र और केवलचारित्र में क्या फर्क है दादा?

दादाश्री : यह यथाख्यात चारित्र तो, सम्यक् चारित्र पार हो गया तो कौन सा आया? यथाख्यात आया। 99 हो तो वह आपको 100 का नोट नहीं देता। 99 पर 99 पैसे होते हैं फिर भी 100 का नोट नहीं देते। अत: यथाख्यात 100 का नोट है और बाकी का सारा 99, 98... पहले सम्यक् चारित्र है, उसके बाद यथाख्यात और उसके बाद वीतराग चारित्र।

प्रश्नकर्ता : अब इन सभी के लक्षण क्या हैं? यह जो यथाख्यात चारित्र है, सम्यक् चारित्र है और केवलचारित्र है, उनके लक्षण क्या हैं?

दादाश्री : महात्माओं में केवलचारित्र नहीं है। सम्यक् चारित्र है! अर्थात् हमें तो आगे जाकर वीतराग चारित्र ही आएगा। यहाँ पर यथाख्यात नहीं है। गिरता है-खड़ा होता है, गिरता है-खड़ा होता है और जब वह गिरना बंद हो जाएगा तब वह यथाख्यात कहलाएगा। जैसे कि एक बच्चा गिरता है-खड़ा होता है, गिरता है-खड़ा होता है, उसके बाद उसका गिरना बंद होने लगता है। तब यथाख्यात हो गया।

प्रश्नकर्ता : गिरना बंद हो जाए तो यथाख्यात। तो क्या उसमें वीतरागता अधिक स्थिर हो जाती है?

दादाश्री : वीतरागता तो जब यथाख्यात चारित्र उत्पन्न होता है तभी हो सकती है, वर्ना तब तक नहीं हो सकती।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सम्यक् चारित्र में क्या-क्या होता है?

दादाश्री : बच्चा गिरता है, वापस खड़ा होता है। गिरता है-खड़ा होता है लेकिन क्योंकि वह खड़ा हो जाता है इसलिए उसे सम्यक् चारित्र कहा गया है। फिर जब खड़ा रहने के बाद खड़ा ही रहे और जब वह औरों की तरह ही चलने लगे, तो फिर यथाख्यात।

अंतर, केवल और सम्यक् चारित्र में

प्रश्नकर्ता : केवलचारित्र और सम्यक् चारित्र में क्या अंतर है?

दादाश्री : सम्यक् चारित्र जगत् के लोग देख सकते हैं और

केवलचारित्र किसी को दिखाई नहीं देता। यह सम्यक् चारित्र दिखाई देता है, जगत् के लोग समझ सकते हैं। लोग सम्यक् चारित्र को खुद की भाषा में समझ जाते हैं और केवलचारित्र पहचाना नहीं जा सकता, दिखाई नहीं देता। वह इन्द्रियगम्य नहीं है, ज्ञानगम्य है। सम्यक् चारित्र इन्द्रियगम्य है।

कषायरहित चारित्र सम्यक् चारित्र है और केवलचारित्र अंतिम प्रकार का चारित्र है।

प्रश्नकर्ता : यथाख्यात चारित्र और केवलचारित्र में क्या अंतर है?

दादाश्री : यथाख्यात चारित्र अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा। जैसा है वैसा ज्ञायकपना। यथाख्यात चारित्र के बाद केवलचारित्र है, केवलज्ञान होने के बाद में केवलचारित्र है! अंतिम है वह!

[6]

निरालंब

आधार-आधारित के संबंध से टिका है संसार

भयंकर दुःखों में दुःखी-दुःखी हो गए हैं लेकिन किस आधार से जी रहे हैं? उसका कोई आधार तो होगा न? वह बाहर निकलने के बाद कहता है, 'मैं इन सब से बड़ा हूँ, बस'। उसी आधार से जी रहे हैं। आधार तो होना चाहिए न जीने का! सभी लोग आधार से जी रहे हैं। किस आधार से जी रहे हैं? 'इन मज़दूरों से हम सुखी हैं।' ये जो आदिवासी होते हैं न, मैंने कहा, 'आप किस आधार से जी रहे हो? आपका कुछ...?' 'मैं चार गायों का मालिक हूँ।' 'हें! चार गायें, दो-तीन बछड़ों का मैं मालिक हूँ!' इतने आधार से जी रहे हैं सभी।

किसी न किसी का आधार रखते हैं। अहंकार का आधार रखते हैं, रूप के आधार से, कोई सगे-संबंधियों का आधार रखते हैं, कोई विषय का आधार, या किसी अन्य चीज़ के आधार से सब जी रहे हैं। तो और किस आधार से जी रहे हैं? खाना खाने से तो देह जीवित रहता है, मन किस आधार से जीवित रहता है? इन सभी अवलंबनों से ही जीवित रहता है। बुद्धि किस आधार पर जीवित रहती है? जो उसकी खुराक है, उससे जीवित रहती है लेकिन अगर सनातन अवलंबन होगा तो कभी भी नहीं छूटेगा। आप ज्ञान लेने से पहले सभी प्रकार के अवलंबन लेते थे। जहाँ पर अवलंबन रखते हैं, वहाँ पर तो अगर विधवा हो जाए तो भी रोने बैठ जाती है। किसी न किसी पर आधार रहता है उसका! जब आधार छूट जाता है तब फिर वह ऐसे अहंकार से जीवित रहता है, 'ओहो, इन सब से तो मैं बेहतर हूँ'। रोज़ जीए किस आधार पर? जब

तक उसे सही अवलंबन नहीं मिल जाता, जब तक त्रिकाली अवलंबन, यह सनातन अवलंबन नहीं है, तब तक जीने का आधार ही नहीं है न! लोगों को देखकर जीवित रहता है। वह देखता है कि 'देखो! कितने सारे लोग हम से भी ज़्यादा दु:खी हैं, ऐसा है, वैसा है...'। उस आधार पर जीवित रहता है न फिर। अत: यह जगत् बहुत बड़ा अवलंबन है लेकिन ये सभी आधार विनाशी हैं। वह आधार जब चला जाता है तब वापस मन ही मन उलझन में पड़ जाता है।

सिर्फ ज्ञानीपुरुष ही आधारित नहीं हैं। निरालंब हैं। कोई आलंबन नहीं। जगत् अवलंबन से जीवित है, आधार से जीवित है। जब वह आधार निराधार हो जाता है तब कल्पांत करता है। ज्ञानीपुरुष खुद एब्सल्यूट हो चुके हैं इसलिए उन्हें आधार-आधारित संबंध नहीं रहे। एब्सल्यूट! भले ही जगत् कल्याण की यह भावना रह गई है लेकिन खुद हो तो चुके हैं एब्सल्यूट! एब्सल्यूट अर्थात् निरालंब। उन्हें किसी अवलंबन की ज़रूरत नहीं है! स्वतंत्र केवल! केवल ही, अन्य कोई मिक्स्चर नहीं।

दुनिया में कौन सा आधार शाश्वत है?

पहले किस आधार पर जी रहे थे?

प्रश्नकर्ता : मन की इच्छाएँ।

दादाश्री : वे सभी आधार गलत थे। वे कब निराधार हो जाएँगे, कहा नहीं जा सकता क्योंकि कोई भी अपना नहीं बनता न? इस जगत् में कोई भी कभी भी अपना नहीं बन सकता। कुछ समय में जब कोई मतभेद हो जाए तो अलग। और मतभेद होने में देर ही नहीं लगती न! अत: ये सब आधार गलत हैं। सिर्फ खुद के शुद्धात्मा का आधार ही सच्चा है और यदि वह प्राप्त हो जाए तो शांति ही रहेगी न? बाकी इन आधारों से तो लोग मार खा-खाकर थक चुके हैं। इसीलिए परेशान हो गए हैं न लोग। कितने ही लोग पैसों का आधार लेते हैं। पैसों के आधार पर जीवित रहते हैं? पैसा कब अलोप हो जाएगा, वह कहा नहीं जा

सकता। देह के आधार का ठिकाना नहीं है, न जाने देह कब कमज़ोर पड़ जाए! समझदार इंसान न जाने कब पागल हो जाए, वह कहा नहीं जा सकता। आज बहुत ही समझदार माना जाता हो लेकिन अगले साल वह पागल हो जाता है। किसी आधार की ज़रूरत तो पड़ेगी या नहीं? वह भी, स्थायी आधार! आधार ऐसा होना चाहिए कि वह फिर हट न जाए।

यह तकिया है न, मैं इस पर सोया हूँ तो मुझे विश्वास है कि वह गिर नहीं जाएगा लेकिन ये बच्चे, वाइफ, इन पर कभी तकिए की तरह सिर रखें तो गिर सकते हैं क्योंकि वह सच्चा आधार नहीं है। यह दीवार तो कुछ समय के लिए टिकाऊ है। वह कुछ समय बाद यों गिर नहीं जाएगी, विश्वास तो रहता है न कि दबाएँगे तो कोई परेशानी नहीं आएगी। जबकि रिश्तें दबाते ही नीचे गिर जाते हैं।

अतः अब इन हिंदुस्तान के लोगों को अंदर के आधार की ज़रूरत हैं। बाकी बाहर के लोगों को आधार की ज़रूरत नहीं हैं क्योंकि वे सहजभाव से जी रहे हैं। सहज! उन्हें कोई विकल्प नहीं आते। उनके लिए आधार या निराधार जैसा कुछ है ही नहीं, पत्नी के साथ मतभेद हुआ कि डिवॉर्स! वह अलग हो जाती है! दूसरी ले आता है वापस। उसे समाज का कोई डर या भय ऐसा कुछ भी नहीं है, समाज का बंधन नहीं है।

अब जब शुद्धात्मा का आधार है न, मान लो वह तो जब से मिला तभी से मोक्ष जाना तय हो गया। उसे पासपॉर्ट मिल गया है, वीज़ा मिल गया है, सभी कुछ मिल गया। अगर वह वापस न चला जाए, यदि वह खुद आज्ञा में रहेगा तो? लेकिन फिर भी इसमें शब्दों का आधार है। फिर उसमें से भी निरालंब होना है।

चल भाई, निजघर में

आज इंगलिश चाय पी फिर भी मुँह में पिपरमिंट डालनी पड़ी। तो भाई फिर चाय क्यों पी कि पिपरमिंट की ज़रूरत पड़ी? इस तरह से

प्लस-माइनस, प्लस-माइनस, प्लस-माइनस। मीठी चाय पी और वापस कुछ देर बाद अंदर तीखा या मीठा कुछ डालो। वापस उसका प्लस-माइनस करो, पूरे दिन यही झंझट। अरे भाई अपने घर चला जा न! चल भाई! अब हमें यहाँ पर नहीं रहना है। अपने घर चल। यहाँ पर नहीं जमेगा इन लोगों के साथ, परदेशी लोगों के साथ। जमेगा इन परदेशी लोगों के साथ? अपने घर चल। अत्यंत एश्वर्य है, किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। निरालंब, अवलंबन ही नहीं किसी प्रकार का और यहाँ पर तो अगर पिपरमिंट न हो तो कहेंगे, 'मेरा मुँह फीका हो गया है। खारा हो गया है'। अरे छोड़ न भाई। मुँह अच्छा हो, नाक अच्छी हो, आँखें अच्छी हों, इन्हीं के आधार पर जीवन जीना है क्या तुझे? छोड़। देखो दादा किसमें रहते हैं? निरालंब स्थिति में। दादा के पास आज वह स्थिति है, दादा ऐसे हैं कि बिना अवलंबन के जी सकते हैं क्योंकि उन्होंने निरालंब आत्मा को देखा है।

निरालंब आत्मा कैसा होता है?

प्रश्नकर्ता : वह अद्‌भुत दर्शन क्या है?

दादाश्री : अद्‌भुत, वह गुप्त स्वरूप है! वह पूरी दुनिया से गुप्त है, गुप्त स्वरूप है। पूरी दुनिया उस गुप्त स्वरूप को जानती ही नहीं है, वह अद्‌भुत है। उससे अधिक अद्‌भुत वस्तु इस दुनिया में हो ही नहीं सकती। अद्‌भुत तो इस दुनिया में कोई भी चीज़ है ही नहीं न! बाकी सभी चीज़ें मिल सकती हैं। जो गुप्त स्वरूप है न, वही अद्‌भुत है इस दुनिया में। शास्त्रकारों ने उसे अद्‌भुत, अद्‌भुत, अद्‌भुत करके, लाखों बार अद्‌भुत, अद्‌भुत लिखा है।

प्रश्नकर्ता : शब्द ब्रह्म है न? शब्दों में ही अलग-अलग प्रकार से प्रदर्शित करते हैं। लेकिन उन शब्दों का स्फोट होना चाहिए।

दादाश्री : शब्दों का स्फोट हो ही चुका होता है। यदि वास्तविक हो, यदि अनुभव करवाने वाला हो तो इन शब्दों का स्फोट हो चुका होता है, बाकी के सभी शब्द गलत हैं। जो शब्द कुछ भी अनुभव नहीं

करवाते, वे सभी शब्द गलत हैं और जहाँ शब्द ही नहीं हैं, वह अंतिम बात है। निरालंब! लेकिन शब्द स्वरूप की प्राप्ति के बाद इंसान निरालंब हो सकता है। निरालंब तो अंतिम स्टेशन है!

आत्मा निरालंब है, उसे किसी आधार की ज़रूरत नहीं है। उसे किसी के अवलंबन की ज़रूरत नहीं पड़ती। आत्मा तो इन घरों के आर-पार निकल जाए, ऐसा है। पहाड़ों के आर-पार निकल जाए, ऐसा है। पूरी दुनिया अवलंबन वाली है पूरी ही दुनिया, देवी-देवताओं से लेकर चारों गति के लोग अवलंबन में ही खदबद, खदबद, खदबद... निरालंब को स्वतंत्र कहा गया है, एब्सल्यूट कहा गया है।

आलंबन-गुरु या शास्त्रों का?

प्रश्नकर्ता : क्या शास्त्र किसी जीव के लिए आलंबन बन सकते हैं?

दादाश्री : हाँ, कई जीवों के लिए शास्त्र आलंबनरूपी बन जाते हैं। कई जीवों के लिए गुरु अवलंबन बन जाते हैं लेकिन यदि उस अवलंबन के आधार पर जीते हैं तो उस अवलंबन को बीच में छोड़ नहीं देना चाहिए। अब जैसे इसे 'अहमद किदवाई रोड' कहते हैं क्या? तो उसे पढ़ो तब हमने जाना कि इस रास्ते से होकर जाना है लेकिन उस व्यक्ति का मकान आ जाए तब हमें उस रोड को छोड़ देना है। रोड को साथ में नहीं ले जाना है। जब मकान में जाते हैं तब क्या रोड को साथ ले जाना होता है? एक व्यक्ति तो ऊपर की मंज़िल पर गया तो वह तीन सीढ़ियाँ लेकर चढ़ा। अरे भाई, ये सीढ़ियाँ ऊपर क्यों ले आया? तो कहने लगा, 'इनसे मुझे बहुत प्रेम है'। 'तो भाई वहीं पर खड़ा रह न! बेकार ही यहाँ पर क्या करने आया है? सीढ़ियों से प्यार करना है या ऊपर चढ़ना है? क्या करना है? यह तो सीढ़ी है। इससे प्यार नहीं करना है।' यह सीढ़ी तो तेरे ऊपर चढ़ने के लिए हैं, प्यार करने के लिए नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसी प्रकार यदि गुरु का आलंबन लें तो उस अवलंबन को आगे जाकर छोड़ देना चाहिए?

दादाश्री : नहीं। छोड़ना-करना वगैरह कुछ है ही नहीं, रहने देना है। वे व्यवहार से गुरु हैं। स्त्री को नहीं छोड़ना है, व्यवहार को नहीं छोड़ना है, गुरु को नहीं छोड़ना है और निश्चय में निश्चय के गुरु बनाने हैं।

प्रश्नकर्ता : एक खास स्टेज पर पहुँचने के बाद गुरु का भी अवलंबन छोड़ देना पड़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, वह तो अपने आप ही छूट जाएगा, छोड़ना नहीं पड़ेगा। छोड़ने से तो तिरस्कार होगा। यह तो सहज रूप से छूट जाएगा।

योगी को किसका अवलंबन?

प्रश्नकर्ता : योगी को भी अवलंबन रहते हैं न?

दादाश्री : हाँ, अवलंबन वाला ही योगी कहलाता है। आत्मयोगी अवलंबन वाले नहीं होते, निरालंब होते हैं। उन्हें दुनिया में किसी भी अवलंबन की ज़रूरत नहीं है। आत्मयोगी को भगवान की भी ज़रूरत नहीं रहती क्योंकि वे खुद ही भगवान बन चुके होते हैं। आत्मयोगी हुए, तभी से खुद भगवान बन जाते हैं। उन्हें किसी की ज़रूरत ही नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : आत्मा और फिर साथ में योगी शब्द आया, तो उसे अवलंबन की ज़रूरत तो पड़ेगी ही न?

दादाश्री : नहीं, आत्मयोगी तो पहचानने के लिए कहते हैं कि इनका योग किसमें है? मन-वचन-काया हो और आत्मा प्राप्त हो जाए, वे दोनों साथ में होते हैं। तो यह योग कहाँ है? बाहर है या आत्मा के साथ में है? आत्मा के साथ में होगा तो आत्मयोगी कहलाएगा। अपने कृष्ण भगवान आत्मयोगेश्वर कहलाते हैं। आत्मयोगेश्वर! वे देहयोगेश्वर, वचनयोगेश्वर या मनोयोगेश्वर नहीं कहलाते। बाकी ये सब जो हैं वे सभी मन के और वचन के योगी हैं। इससे थोड़ी बहुत शांति हो जाती है लेकिन पूर्ण कल्याण नहीं हो सकता।

फिर नहीं बुद्धि का आलंबन

आत्मानुभवी पुरुषों ने जो आत्मा नहीं देखा है, वह आत्मा हमने देखा है। आत्मानुभवी को तो जितना अनुभव हुआ, पच्चीस प्रतिशत अनुभव हुआ तो दूसरा पचहत्तर प्रतिशत का क्या हुआ? उस पचहत्तर प्रतिशत का उसे अवलंबन है। पच्चीस प्रतिशत अनुभव हो जाए तो उतना निरालंब हो जाता है। हमने निरालंब आत्मा देखा है और हमें सब में निरालंब आत्मा दिखाई देता है लेकिन आपको यह कैसे समझ में आएगा? वह तो निरंतर मेरे साथ के साथ दर्शन रहा करेगा न, तो काम हो जाएगा। बाकी यह काम इस तरह से नहीं हो सकेगा। जैसे-जैसे आत्मा का कुछ अनुभव होता जाएगा न, वैसे-वैसे काम होता जाएगा। हम आप सब को आत्मा का ज्ञान देते हैं, सभी को आत्मानुभव है। हर एक को अपने-अपने परिमाण में। आत्मानुभव बढ़ने के बाद पच्चीस, तीस, चालीस प्रतिशत होने के बाद उसमें नाम मात्र को भी बुद्धि नहीं रहती।

पच्चीस प्रतिशत (आत्मानुभव) होने से ही बुद्धि चली जाती है। अनुभव जब पच्चीस प्रतिशत तक पहुँचता है तब, क्योंकि उसके बाद उन्हें वह काम ही नहीं आती। बल्कि उनकी प्रगति में दखल करती रहती है।

जगत् जीवित है आलंबन से

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, इंसान को अनादि से आदत है कि आलंबन से ही जीना है।

दादाश्री : आलंबन के बिना तो मर जाएगा इंसान। आलंबन से जीना, वही संसार कहलाता है और निरालंब से जीए तो वह मुक्ति है। भला इन आलंबनों में आनंद कहाँ है? वे तो फिर छूट जाते हैं न, निरालंब का मोक्ष होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इंसान को अवलंबन के बिना चलता ही नहीं है न?

दादाश्री : नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : वे ऐसा कहते हैं कि 'मैं बिना अवलंबन के नहीं जी सकूँगा। एक नहीं तो दूसरा अवलंबन चाहिए ही'।

दादाश्री : यदि ज्ञान नहीं होता तो कोई आलंबन रहित हो ही नहीं सकता था। यह तो ऐसा है कि अगर रात को घर पर कोई न हो तो भी मन में परेशानी होती रहती है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए फिर दूसरे अवलंबन के पास जाता है।

दादाश्री : अवलंबन बदलता है।

प्रश्नकर्ता : वे दूसरे लोग क्या कहते हैं? आ जा, मैं कुछ कर दूँगा।

दादाश्री : अरे! जितने चाहो उतने अवलंबन। इसलिए वह अवलंबन बदलता रहता है। नहीं तो फिर कहता है 'मैं तो मर गया रे'। इस प्रकार से अवलंबन लेता है। अरे, तो क्या उससे ठीक हो गया? मत कहना भाई! फिर भी कहता है इसलिए शांत नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : उसे खुद को सांत्वना रहती है, सांत्वना।

दादाश्री : कैसी सांत्वना रहती है? उतर गया। जितना ऊपर चढ़ा था, वह डेवेलपमेन्ट था। वह डेवेलपमेन्ट कम हो गया। अरे, लेकिन जीते जी मर गया!

प्रश्नकर्ता : अवलंबन से जीकर भी उसके जीवन में क्या बदलाव दिखाई दिया? आप कहते हैं कि अवलंबन से जीने वाला व्यक्ति मृत समान है।

दादाश्री : फिर भी यह पूरी दुनिया जी ही रही है न! लेकिन यह पूरी दुनिया, साधु-संन्यासी, आचार्य सब अवलंबन से ही जी रहे हैं। अवलंबन के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता न? सत् निरालंब वस्तु है। वहाँ अगर अवलंबन लेकर ढूँढने जाएगा तो किस प्रकार मिलेगा?

इसमें तो अगर सिर्फ ज्ञानीपुरुष का अवलंबन ले तो काम हो जाएगा क्योंकि वह अंतिम साधन है! आत्मा निरालंब है!

निरालंबी दशा

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप जिस समझ की बात कर रहे हैं, वह निरावलंबी समझ है न?

दादाश्री : उसकी तो बात ही अलग है! निरावलंबी है। उसके बारे में तो दुनिया ने अभी तक सुना ही नहीं है, बाज़ार में भी नहीं सुना है। उसका अनुभव कुछ ही लोगों ने किया है। वे बताए बिना चले गए। वह जो बात है, मैंने बाज़ार में खोल दी।

प्रश्नकर्ता : अब यह जो निरावलंबन की समझ है, निरालंबी समझ है, तो वहाँ वर्तन कैसा होता है?

दादाश्री : वर्तन लिमिटेड हो जाता है और फिर खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं दादा। जहाँ निरालंबन की समझ है, वहाँ पर वर्तन-चारित्र सबकुछ एक ही हो जाता है न?

दादाश्री : वर्तन बहुत ही कम रहता है, थोड़ा बहुत। जैसे लट्टू घूमते-घूमते थक जाता है न, फिर धीरे-धीरे घूमता है न, उस तरह का!

प्रश्नकर्ता : वह तो आपने बाहर की बात की।

दादाश्री : तो और क्या? अंदर तो कुछ रहता ही नहीं है। क्लियर रहता है। साफ-सुथरा रहता है।

प्रश्नकर्ता : हम आपकी दशा देखते हैं लेकिन हमें कुछ पता नहीं चलता, लेकिन आपकी दशा कैसी होगी? परम ज्ञान में जो दशा रहती है, वह दशा कैसी होती है?

दादाश्री : हाँ, उस दशा को हम ही जानते हैं। मैं समाधि से बाहर

निकलता ही नहीं हूँ। अभी भी मेरी समाधि निरंतर चलती रहती है। मैं यह अंबालाल पटेल नहीं हूँ, मैं यह अहंकार नहीं हूँ, मैं यह चित्त भी नहीं हूँ, मैं इन सभी चीज़ों के उस पार हूँ। मैं शुद्धात्मा भी नहीं हूँ। शुद्धात्मा तो ये जो लोग बने हैं, वे हैं। मैं तो शब्द रूप भी नहीं हूँ। मैं दरअसल स्वरूप में हूँ, निरालंब स्वरूप में हूँ लेकिन अभी चार डिग्री की कमी है, जो मेरी अभी तक पूरी नहीं हुई हैं। तब तक मेरी क्या इच्छा है? मैंने जो यह सुख प्राप्त किया है वैसा सुख लोग भी प्राप्त करें, इतनी ही इच्छा बची है।

प्रश्नकर्ता : जो कहने वाले रहे और जिन्होंने निरालंब की बातें की हैं, वे समझ में नहीं आतीं।

दादाश्री : ना, वे समझ में आएँगी ही नहीं न! वह तो जब बहुत सालों तक मेरे साथ बैठे रहोगे, तब कुछ समझ में आएगा। निरालंब की तरफ तो जगत् हज़ारों साल से पहुँचा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं पहुँचा है। यह नई बात है दादा।

मैं ही भगवान हूँ, वह निरालंब!

दादाश्री : खुद खुद के ही कान में देख सके, ऐसा कोई साधन नहीं है। खुद खुद का ही चेहरा देख सके, ऐसा कोई साधन नहीं है?

प्रश्नकर्ता : ना, नहीं है।

दादाश्री : अवलंबन परावलंबन वाला है।

जहाँ अवलंबन लिए हों, वहाँ से यदि सभी अवलंबन हट जाएँ तो क्या होगा? अतः वीतराग विज्ञान, भगवान महावीर क्या कहते हैं कि निरालंब, जहाँ किसी अवलंबन की ज़रूरत नहीं है, वही संपूर्ण स्वतंत्रता है। हमने निरालंब का वह सुख चखा है और निरालंब का अनुभव हो चुका है।

प्रश्नकर्ता : लोग उसे ढूँढने के लिए अवलंबन का प्रयत्न करते हैं।

दादाश्री : अवलंबन से जगत् खड़ा है। इस अवलंबन की मदद से जीते हैं सभी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा मानते हैं कि अवलंबन से ही मिलेगा।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वही है न सभी जगह, अवलंबन के बिना मिलेगा ही कैसे? वह आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता। वह निरालंब, 'मैं स्वतंत्र हूँ', ऐसा नहीं जानता। किसी भी भगवान से मैं स्वतंत्र हूँ, 'मैं भगवान ही हूँ', ऐसा नहीं जानता। यदि ऐसा जाने कि 'मैं भगवान हूँ' तो कहा जाएगा कि वह निरालंब हो गया। उसे किसी का अवलंबन नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : हाँ लेकिन अवलंबन से तो वह नहीं मिलेगा न? आत्मा प्राप्ति की बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : आत्मा प्राप्ति के लिए ऐसा कुछ नहीं है। जिन्हें यह आत्मा प्राप्त हुआ है, उन्हीं से हमें प्राप्त हो सकता है। यह सब तो ठीक है। ये सब तो अवलंबन ही हैं न! सभी अवलंबन हैं। निरालंब ही आत्मा का गुण है। उच्चत्तम गुण कौन सा है? निरालंबपना, कोई अवलंबन नहीं। वही उसका एब्सल्यूट स्वभाव है।

आत्मा को किसी का अवलंबन नहीं है। आत्मा को किसी चीज़ का अवलंबन नहीं है। निरालंब वस्तु है और यह *पुद्गल* अवलंबन है। जब तक ऐसा है कि 'मैं यह हूँ' तब तक यह अवलंबन है। जब तक आत्मसम्मुख नहीं हो जाता, तब तक सुख और दुःख भी अवलंबन हैं, और परवशता है। अवलंबन ही परवशता है न! आत्मा के सिवा जो-जो अवलंबन लिए हैं, जब तक वे निकल नहीं जाते तब तक कुछ नहीं हो पाएगा।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह शब्दावलंबन

प्रश्नकर्ता : आत्मदर्शन किस प्रकार से होता है? आत्मा खुद अपने आप को किस प्रकार से देख सकता है?

दादाश्री : आत्मा खुद अपने आप को? वह खुद को तो देखता

ही है लेकिन औरों को भी देखता है, लेकिन वह उस वाली दृष्टि से! इस दृष्टि से नहीं।

आपको जो यह दिया है न, वह शुद्धात्मा पद है। अब शुद्धात्मा पद से ही मोक्ष का सिक्का लग गया। शुद्धात्मा पद प्राप्त होता है लेकिन शुद्धात्मा शब्द का अवलंबन कहलाता है। जब निरालंब हो जाएगा तब आत्मा दिखाई देगा अच्छी तरह से।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो वह निरालंब दशा कब आएगी?

दादाश्री : अब धीरे-धीरे निरालंब तरफ ही जाओगे। हमारी इन आज्ञाओं में चले कि निरालंब की तरफ चले। इन शब्दों का अवलंबन धीरे-धीरे चला जाएगा और अंत में आखिरकार निरालंब उत्पन्न होकर रहेगा। निरालंब अर्थात् उसके बाद किसी की कोई भी ज़रूरत न रहे। पूरा गाँव चला जाए तो भी घबराहट न हो, भय नहीं लगे। कुछ भी नहीं। किसी के भी अवलंबन की ज़रूरत न पड़े। अब धीरे-धीरे आप उस तरफ ही चलने लगे हो। अभी आप इतना ही करते रहो कि 'शुद्धात्मा हूँ', तो काफी है!

प्रश्नकर्ता : अतः आत्मदर्शन के बाद में जो स्थिति आती है, वह बिल्कुल निरालंब स्थिति ही हो सकती है न?

दादाश्री : निरालंब होने की तैयारियाँ होती जाती है। अवलंबन कम होते जाते हैं। अंत में निरालंब स्थिति आती है।

आप सब मुझसे शुद्धात्मा प्राप्त करते हो, अब आपको अपने आप ही उस शुद्धात्मा का निरंतर *लक्ष* (जागृति) रहता है, सहज रूप से रहती ही है, याद नहीं करना पड़ता, आपको चिंता-वरीज़ वगैरह नहीं होतीं, संसार में क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते लेकिन फिर भी वह मूल आत्मा नहीं है। आपको जो प्राप्त हुआ है, वह शुद्धात्मा है यानी कि आपने मोक्ष के पहले दरवाज़े में प्रवेश किया है इसलिए आपके लिए तय हो गया है कि अब आप मोक्ष प्राप्त करोगे लेकिन मूल आत्मा तो उससे भी बहुत आगे, मूल आत्मा बहुत दूर है।

आपका इन शब्दों का अवलंबन चला जाएगा उसके लिए इन पाँच आज्ञा का पालन करो, तो धीरे-धीरे दर्शन दिखता जाएगा। दिखते-दिखते-दिखते खुद के सेल्फ में ही अनुभव रहेगा। उसके बाद शब्दों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। इस प्रकार 'शॉर्ट कट' में तो आ गए न?

प्रश्नकर्ता : एकदम 'शॉर्ट कट' में आ गए, हं।

दादाश्री : नहीं तो दादा के पीछे पड़ना पड़ेगा, महीने-दो महीने। अगर सिर्फ पैसों के पीछे पड़े रहोगे तो फिर दादा रोज़ नहीं मिलेंगे।

प्रश्नकर्ता : दादा के ही पीछे पड़ना है।

दादाश्री : थोड़े बहुत दादा के पीछे पड़ेंगे तो आपका सारा एडजस्टमेन्ट ठीक हो जाएगा। फिर ऐसा कुछ हमेशा के लिए ज़रूरी नहीं है। यह हमेशा के लिए नहीं है। यह हमेशा के लिए पड़े रहने की जगह नहीं है। इस काल में तो ऐसा किसी इंसान से हो ही नहीं सकता कि हमेशा पड़ा रह सके। बिल्कुल लफड़े वाला काल है।

अंत में अनुभव और अनुभवी एक ही

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा अवलंबन है। यदि वह न होता तो निरालंब भी नहीं होता लेकिन आत्मा शब्द तो एक संज्ञा ही है न?!

दादाश्री : ऐसा है न इस शब्द का आलंबन लेकर यह रास्ता है, सीढ़ी है। सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते जब ऊपर पहुँचेंगे तब प्राप्त होगा। शुद्धात्मा करते-करते जैसे-जैसे अनुभव होता जाएगा तब फिर उस अनुभव का भाग रहेगा। उसके बाद शुद्धात्मा शब्द खत्म हो जाएगा। वह निरालंब कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन लोगों को आप जो ज्ञान देते हैं, क्या उससे मूल आत्मा प्राप्त हो जाता है?

दादाश्री : वह जो आत्मा का अनुभव रहता है न, वही मूल आत्मा है लेकिन जैसे-जैसे वह अनुभव एक जगह पर इकट्ठा होते-होते मूल

जगह पर आता जाएगा, वैसे-वैसे वही खुद का पूर्ण स्वरूप बन जाएगा। अभी की दशा में अनुभव और अनुभवी दोनों अलग हैं जबकि वहाँ पर एकाकार होते हैं।

जब यह माल खाली हो जाएगा तब सभी अनुभव होंगे। वह माल जो अनुभव में दखल करता रहता है, स्वाद नहीं आने देता। जैसे कि यदि एक व्यक्ति ने 40 लाख रुपये का ओवरड्राफ्ट लिया हो, और वह बेकार हो जाए, नौकरी-धंधा कुछ भी न रहे तब अगर कोई व्यक्ति उसे 15 हज़ार की नौकरी दिलवा दे तो उसका उपकार मानना चाहिए या नहीं मानना चाहिए? व्यापार था, तब ज़रा सी भी समझ नहीं थी, 40 लाख रुपये का कर्ज़ चढ़ा दिया!

उपकार मानना चाहिए न? उपकार मानता भी है। दो-चार महीनों बाद जब वह व्यक्ति मिले तब वह पूछे, 'अब कैसा है? आनंद है न?' 'नहीं! कैसा आनंद! अभी तो वहाँ पैसे चुका रहा हूँ और खाने को मिल रहा है।' अरे भाई, उधार लिया है तो चुकाना ही पड़ेगा न! अत: जब तक यह सारा उधार न चुक जाए तब तक तो रहेगा। उसके बाद मज़ा आएगा, वर्ना फिर भी शांति तो रहती है, चिंता नहीं होती। अगर पाँच आज्ञा में रहे न तो चिंता मुक्त रह सकते हैं।

अगर पाँच हज़ार लोगों का भी कुछ काम हो रहा हो न, तो अच्छी बात है। बाकी, वहाँ मोक्ष में जाने की क्या जल्दी है? अब हम ऐसी जगह पर आ गए हैं कि यहाँ से वापस निकालने वाला कोई है ही नहीं। यदि आप मेरी आज्ञा पालन करोगे तो यहाँ से आपको कोई भी वापस नहीं निकाल सकेगा क्योंकि आपको आज्ञा के अधीन रहना पड़ेगा, वर्ना वापस निकाल भी सकते हैं। जबकि मुझे वापस निकालने वाला कोई नहीं है क्योंकि मैं तो कहता हूँ, 'निरालंब हो चुका हूँ'। आपको तो शुद्धात्मा शब्द का अवलंबन हैं लेकिन वह शब्द अनुभव के रूप में है जबकि मूल आत्मा तो नि:शब्द है। अत: फिर अनुभव होते-होते अनुभव रूपी बन जाएगा। तब खुद शुद्धात्मा (मूल आत्मा) हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उस शुद्धात्मा स्वरूप का अनुभव कब होगा?

दादाश्री : निरंतर हो ही रहा है न! 'मैं चंदूभाई हूँ', वह जो देहाध्यास का अनुभव था, वह अनुभव टूट गया है और अब आत्मा का अनुभव हुआ है। और कौन सा अनुभव? ऐसा ज्ञान अनुभव, यह जब रेग्यूलर स्टेज में आ जाएगा तो फिर उसे आनंद आता जाएगा।

आत्मा का अनुभव कितने घंटे है? चौबीसों घंटे आत्मा का अनुभव रहता है। पहले यह अनुभव था कि 'मैं चंदूभाई हूँ' और अब यह है 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा अनुभव।

शब्दावलंबन के बाद मोक्ष एक-दो जन्मों में

सापेक्ष अर्थात् दूसरों से अपेक्षा रखने वाली चीज़ें, वे परावलंबी कहलाती हैं जबकि मुझे किसी का आधार नहीं है, मैं निरालंबी हूँ। ये सभी (महात्मा) परावलंब में से छूट गए हैं लेकिन शब्द का अवलंबन है इन्हें। उन्होंने चिंता रहित मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश कर लिया है, तो उनका मोक्ष होगा ही, एक-दो जन्मों बाद।

निरालंब आत्मा सब से आखिर में है। वहाँ तक यह गाड़ी चलेगी। ऐसा तो मैंने कहा है, शब्दावलंबन से गाड़ी स्टार्ट होनी चाहिए। शब्दावलंबन अनुभव देता है। हम सभी महात्माओं को अनुभव है लेकिन क्योंकि ये संसारी हैं इसीलिए इन्हें आत्मा का स्वाद नहीं आता, उसकी पहचान नहीं हो पाती। इसमें क्या अंतर है, पता नहीं चलता क्योंकि एक ही बार यदि विषय भोगे तो तीन दिनों तक इंसान की भ्रांति नहीं छूटने देता। भ्रांति अर्थात् डिसिज़न नहीं आ पाता कि यह है या वह! हमें ऐसी सिरदर्दी नहीं है न! झंझट नहीं है न! दुःख में भी सुख रहता है। आपको भी समझ में आ गया है कि यह अवलंबन वाला आत्मा कहा जाएगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह शब्दावलंबन कहा जाएगा!

आत्मा की खुराक?

प्रश्नकर्ता : आपका यह जो वाक्य है कि आत्मा के अलावा हर एक चीज़ खुराक पर टिकी है।

दादाश्री : सभी खुराक से जी रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : तो क्या आत्मा की खुराक नहीं होती?

दादाश्री : नहीं। सभी चीज़ों की खुराक है और यह खुराक की खोज मेरी है। यह निराली खोज है मेरी। अभी तक किसी ने इसे खुराक नहीं कहा है और यह खोज भी नहीं की है कि क्रोध की खुराक होती है।

प्रश्नकर्ता : खुराक नहीं कहते तो पुष्टि कहेंगे।

दादाश्री : यह खोज अलग है। यानी कि इन सब की खुराक होती है।

प्रश्नकर्ता : मैं क्या कहना चाहता हूँ कि यौवन में यदि यह पता चल जाए कि यह काम-क्रोध-लोभ वगैरह सभी की खुराक है, उसे ऐसा पता चलने लगे...

दादाश्री : तब तो बहुत बड़ी बात कहलाएगी।

प्रश्नकर्ता : इसलिए यह प्रश्न हुआ कि आत्मा की कुछ तो खुराक होनी चाहिए।

दादाश्री : मूलतः उसकी खुराक है ही नहीं। उसकी खुराक यही है, जो है वह, दूसरी कोई खुराक है ही नहीं। वह खुद अपने आपसे ही जीवित रहता है। अपने आपके प्राण से ही जीवित रहता है। खुद खुद का ही सुख भोगता है, वैभव में है। ऐश्वर्य से जी रहा है। अन्य किसी से कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा की खुराक क्या है?

दादाश्री : आत्मा की खुराक वह खुद निरंतर खाता है। उसके बिना एक क्षण भर भी नहीं टिक सकता। निरंतर ज्ञाता-दृष्टा, वही उसकी खुराक है। उस खुराक का फल क्या है? वह है, परमानंद। वह खुद के ही प्राण से जीवित रहता है। वह यों नाक के प्राण से जीवित नहीं रहता!

अत: उसे खुद की कोई भी ज़रूरत नहीं है। इस दुनिया में उसे किसी भी चीज़ का अवलंबन नहीं है, ऐसा वह आत्मा, वह परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : क्या वह बाहर की खुराक के बिना टिक सकता है?

दादाश्री : उसकी खुराक है ज्ञाता-दृष्टा। उसे खुद को बाहर से कुछ भी नहीं लेना है। सबकुछ उसके खुद के अंदर है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि मान-मोह-लोभ-माया, ये सब तभी टिकते हैं जब इन्हें खुराक मिले।

दादाश्री : हाँ। यह तो, अंदर से जैसे ही इच्छा हुई न तभी से यह सब खड़ा हो गया। जिसे इच्छा नहीं है, उनमें, इनमें से कोई भी चीज़ होगी ही नहीं न! इच्छा वाला भिखारी कहलाता है। कोई भी, घर, गाड़ी या चाहे किसी भी प्रकार की इच्छा हो, तो इच्छा वाला भिखारी है।

प्रश्नकर्ता : अत: आत्मा को भी खुराक देनी नहीं पड़ती, वह अपने आप ही ले लेता है?

दादाश्री : उसे कुछ भी देना ही नहीं पड़ता और उसे, जिसे कोई ज़रूरत ही नहीं है। यों ही खुद अपने आपसे ही जीवित रहता है।

प्रश्नकर्ता : बचपन से लेकर 100 साल का होने तक आत्मा की कोई खुराक नहीं है?

दादाश्री : जिसे कुछ भी नहीं होता, उसे क्या है? सोने का सिक्का अंदर पड़ा रहे तब भी उस पर ज़ंग नहीं लगता, और कोई असर नहीं होता। वह अंदर उसी प्रकार से पड़ा रहता है। सोने का सिक्का तो सिर्फ सिक्का है लेकिन ये तो भगवान हैं! कुछ भी असर नहीं करता और फिर वे प्रकाश स्वरूप हैं!

प्रश्नकर्ता : आत्मा ज्ञाता-दृष्टा भाव रखे, वही उसकी खुराक है?

दादाश्री : बस।

प्रश्नकर्ता : और निरंतर आनंद में रहे!

दादाश्री : आनंद में रहने की ज़रूरत नहीं है। उसकी जो ज्ञाता-दृष्टापन की खुराक है न, उस खुराक का फल ही आनंद है, निरंतर आनंद।

मैं, आत्मा और बैठक

प्रश्नकर्ता : यह सर्वस्व अर्पणता ही है न दादा। क्या बाकी बचा? दादा के अलावा मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। अब दादा का ही अवलंबन है, अन्य कुछ है ही नहीं।

दादाश्री : तो आपका जो कुछ बाकी है, वह पूर्ण हो जाएगा लेकिन गिन्नी की ज़रूरत तो है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, वह नहीं है।

दादाश्री : तो अब काम हो जाएगा।

प्रश्न र्ता : रात को दो-तीन बजे उठ जाता हूँ, दादा को पकड़कर बैठ जाता हूँ।

दादाश्री : वह सब है लेकिन यह जो है न, यह आपका और यह मेरा, उस भेद को खत्म करने के लिए घर पर मैंने आपसे कहा था कि 'इतने बेटी को दे दो, बाकी सब मंदिर में दे दो न!' आपके सिर पर कुछ भी नहीं, ऐसा कर दो। टैक्स भी नहीं भरना होगा आपको।

प्रश्नकर्ता : ओहोहो! अब हर्ज नहीं है, समझ गया।

दादाश्री : मेरी तरह रहो। मुझे पैसों की ज़रूरत हो तब मैं कहता हूँ, 'नीरू बहन मुझे दीजिए'। आपको ज़रूरत भी किसलिए है? सबकुछ देने वाले लोग हैं ही साथ में। उस दिन जो कहा था वह इसीलिए कहा था लेकिन आप उस मूल आशय को पूरी तरह से समझ नहीं पाए न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन समझ तो गया दादा लेकिन दुनिया में मेरा और कोई नहीं है। अब देखिए, यह उम्र हो रही है...

दादाश्री : हमने कहा है वैसा करो तो फिर आत्मा उसमें रहेगा। आत्मा यदि आत्मा में आ गया न तो मुक्त, वर्ना कहेगा, 'मेरे पास यह है और वह है और वही आधार!' आधार। किसका आधार रखता है? जो 2-5 लाख रुपये हैं, उनका।

प्रश्नकर्ता : नहीं और कोई बात नहीं है, इतना भय रहता है कि सभी लोगों ने खाया ही है। जहाँ भरोसा रखता हूँ, सभी जगह लोग खा जाते हैं। अब मुझमें ऐसा भय घुस गया है। उम्र बढ़ रही है, बाकी अंदर कोई ममता नहीं है।

दादाश्री : भय घुस जाता है क्योंकि 'इसका क्या करूँगा?' वह तो मैं उसी दिन समझ गया था लेकिन मैंने कहा धीरे से निकालूँगा।

प्रश्नकर्ता : बीमारी आई न तो डेढ़ लाख रुपये का खर्चा हो गया था, तभी खर्च किए वर्ना और कौन देखता?

दादाश्री : नहीं, नहीं। हम जो ऐसा मानते हैं न कि जो देखने वाला है, वह मेरा देखेगा, लेकिन अंत में वह भी गलत साबित होता है, दग़ा साबित होता है। अतः सब से बड़ी बात यही है कि दे दो सब भगवान के घर में। फिर सारी ज़िम्मेदारी दादा की। मैंने अपने पास चार आने भी नहीं रखे हैं। सभी पैसे यहाँ पर रख देने हैं, सभी कुछ! और भविष्य में जो आएगा वह भी यहीं पर। हमारी 'माताजी' की ज़मीन के पैसे आने वाले हैं, वह भी यहीं पर रख दूँगा। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे किसलिए? अमरीका वाले गाड़ी देना चाहते हैं। मैं क्यों लूँ? लेकिन यह ज़रा बैठक की जगह रखी तो मैं, आत्मा और बैठक, तीन हुए। वर्ना मैं और आत्मा एक ही। अर्थात् यह 'मैं' समर्पित हो गया।

प्रश्नकर्ता : 'मैं' समर्पित हो गया अर्थात् बैठक निकाल दी, तो 'मैं' आत्मा में आ जाएगा?

दादाश्री : नीरू बहन तुरंत काम भी करने लगे हैं और ये जो अभी मेरी आज्ञा के अनुसार सभी नियमों का पालन कर रही हैं, वह पूरी प्रकृति को तोड़ देगा। मुझे संतोष हो गया!

प्रश्नकर्ता : दादा ने कहा न, मैं आत्मा और बैठक...

दादाश्री : 'मैं' को बैठक का आधार है! इस दुनिया में सिर्फ ज्ञानी को ही किसी चीज़ का आधार नहीं रहता। आत्मा का ही आधार! जो निरालंब है!

प्रश्नकर्ता : आत्मा का आधार किसे रहता है, 'मैं' को रहता है या बैठक को?

दादाश्री : मैं ही आत्मा हूँ और आत्मा ही मैं हूँ। आत्मा का ही आधार, अर्थात् अवलंबन नहीं है। यदि कोई अवलंबन नहीं है तो निरालंब बन जाएगा, निरालंब! वे जानते हैं, दादा निरालंब हैं।

प्रश्नकर्ता : यानि मैं और आत्मा एक हो जाएँगे?

दादाश्री : एक ही हैं लेकिन बैठक की वजह से अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : बैठक को हटा देंगे तो मैं और आत्मा एक हो जाएँगे?

दादाश्री : एक हो जाएँगे। बस।

प्रश्नकर्ता : या फिर क्या ऐसा हो सकता है कि बैठक हो फिर भी मैं और आत्मा एक हो जाएँ?

दादाश्री : नहीं-नहीं। बैठक के लिए गुरखा रखना पड़ेगा और उसके लिए ऐसा विचार आएगा कि, 'इसका क्या करेंगे?' यह बैठक भी अगर सही निकली तो निकली, नहीं तो दगा निकलता है। क्या आपको ऐसा नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दगा ही निकलता है।

दादाश्री : इसकी बजाय अपना क्या बुरा है?

प्रश्नकर्ता : बैठक में सिर्फ ज्ञानी को ही रखना है, और कुछ भी नहीं।

दादाश्री : सब ज्ञानी पर छोड़ देना है, आप जो भी करो वह।

आपका जो करें वही हमारा कीजिए। ज्ञानी ही खुद का आत्मा है इसलिए उन्हें तो अलग मान ही नहीं सकते। फिर भय नहीं रखना है कि अगर ज्ञानी बीमार हो जाएँगे या अगर वे नहीं रहेंगे तो हम क्या करेंगे? ऐसा कोई भय नहीं रखना है। ज्ञानी मरते ही नहीं हैं, यह तो सिर्फ शरीर मरता है। यह हमारा अवलंबन है ही नहीं न! हम निरालंब हैं! इस देह का या पैसों का ज़रा सा भी ऐसा कोई अवलंबन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हमें तो ज्ञानी का, ज्ञान का और ज्ञानी की देह का एक समान ही अवलंबन लगता है।

दादाश्री : देह का अवलंबन तो, देह तो कल चली जाएगी।

प्रश्नकर्ता : वह सहन नहीं होगा।

दादाश्री : वह नीरू बहन को सहन नहीं होगा। 'हमें' तो होगा न! आपको ऐसा स्त्रीपना निकाल देना है न! 'आप' बहुत गहराई में मत उतरना। 'इन्हें' यह निकालना पड़ेगा। नीरू बहन से सहन नहीं होगा, वह बात ठीक है लेकिन उनकी यह उलझन निकल जाएगी तो बहुत हो जाएगा।

सूक्ष्म दादा, निदिध्यासन के रूप में

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान तो चौदह लोकों के नाथ हैं, उनके अलावा और क्या चाहिए?

दादाश्री : चौदह लोकों के नाथ हैं लेकिन वे अपने हाथ में आएँगे कैसे? जब तक यह देह मंदिर है तब तक पकड़ में आएँगे उसके बाद जब यह मंदिर ही खत्म हो जाएगा तब?

प्रश्नकर्ता : भावना तो रखी है! आपके अलावा और कुछ भी नहीं चाहिए।

दादाश्री : वह ठीक है। अंदर चलेगा मेरे भाई, चलेगा। भावना चलेगी। भावनाओं का लाभ मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर एक्ज़ेक्ट भावना क्या होनी चाहिए?

दादाश्री : सूक्ष्म दादा की।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ऐसा हुआ कि हम अभी तक दादा को देहधारी के रूप में ही मानते हैं?

दादाश्री : हाँ, ये जो दिखाई देते हैं, आँखों से दिखाई देने वाले को ही दादा मानते हैं। बाकी मूल दादा भगवान अलग हैं। ये जो दिखाई देते हैं, वे दादा अलग हैं और फिर बीच का भाग, सूक्ष्म दादा हैं।

प्रश्नकर्ता : बीच का भाग ही ज्ञानी है? वे बीच वाले सूक्ष्म दादा, वही ज्ञानीपुरुष का पद है?

दादाश्री : हाँ, जिनका हम निदिध्यासन करते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने जो भावना कहा है, वह कौन सी भावना होनी चाहिए, सूक्ष्म दादा की?

दादाश्री : जब तक निदिध्यासन रहेगा, तब तक किसी तरह की परेशानी नहीं आएगी। अगर इस स्थूल की उपस्थिति को ढूँढोगे तो परेशानी होगी।

प्रश्नकर्ता : और यदि इसी मूर्ति का निदिध्यासन रहेगा तो कोई परेशानी नहीं आएगी?

दादाश्री : फर्स्ट क्लास रहेगा, हाइ क्लास रहेगा। चलता-फिरता-बोलता हुआ, सबकुछ रहेगा। अब यह कितने ही लोगों को रहता होगा! अमरीका में भी रोज़ मिलते हैं, कहते हैं न सभी, 'दर्शन होते हैं और हमारा दिन सुधर जाता है'। इस तरह से जब हम नहीं होंगे तब भी सूक्ष्म दादा हज़ारों सालों तक चलेंगे।

प्रश्नकर्ता : मूर्ति का निदिध्यासन सूक्ष्म दादा माना जाएगा?

दादाश्री : जो निदिध्यासन होता है, वह? हाँ, वह सूक्ष्म दादा माने जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : और क्या क्या आता है उसमें।

दादाश्री : चलते-फिरते, पढ़ते हुए बोलते हुए...

प्रश्नकर्ता : वह सब तो ये सारी दैहिक क्रियाएँ दिखाई देती हैं।

दादाश्री : नहीं। वे साथ में दिखाई देते हैं इतना ही नहीं, खुद के साथ ही हैं ऐसा लगता है। बातें करते हुए भी दिखाई देते हैं। वह हमेशा के लिए टिकेगा, यह स्थूल नहीं टिकेगा। यह तो श्वास-उच्छ्वास वाले हैं। उसमें श्वास-उच्छ्वास नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : वाणी का निदिध्यासन रहता है, वह? ज्ञानवाणी का चिंतवन रहता है, वह?

दादाश्री : वह भी निदिध्यासन में ही आएगा। दादा का किसी भी प्रकार का चिंतन हो, वह निदिध्यासन में जाएगा। वे स्थूल रूप से हाज़िर नहीं होंगे तब भी हज़ारों सालों तक हो सकेगा।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, इस स्थूल के बाद सूक्ष्म दादा और तीसरा कहा है न?

दादाश्री : भगवान।

प्रश्नकर्ता : उनसे कनेक्शन किस तरह से रखा जा सकता है?

दादाश्री : भगवान का चिंतन किस प्रकार से हो सकेगा? वे तो निरंजन-निराकार हैं। कष्ट उठाकर किस प्रकार से हो सकेगा?

प्रश्नकर्ता : वह कनेक्शन किस तरह से सेट कर सकते हैं?

दादाश्री : वह तो अंदर से जब सारा कचरा माल निकल जाएगा, उसके बाद फिर दर्शन में आएँगे। हम नहीं कहते कि हमें दिखाई देते हैं, निरालंब। जिन्हें कोई भी अवलंबन नहीं लेना पड़ता। मूल स्वरूप दिखाई देना, हूबहू मूल स्वरूप, जिसे केवलज्ञान कहा गया है, वह। समझ से दिखाई देता है न, और दूसरा ज्ञान से दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : निरालंब स्वरूप, जैसा आपको दिखाई देता है वैसा है न!

दादाश्री : हाँ। निरंतर सब से अंतिम स्वरूप। निरालंब!

प्रश्नकर्ता : ऐसा होना चाहिए न कि हमें खुद को दिखाई दे?

दादाश्री : हाँ, आपको यह शब्द का अवलंबन दिया है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' शब्द के अवलंबन से शुद्धात्मा हो गया और वह अनुभूति हुई, यों मोक्ष के दरवाज़े में घुस गए। उन्हें कोई वापस नहीं निकाल सकता। अगर जान-बूझकर कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं करे तो। अंदर जाकर यदि लड़ाई-झगड़ा करेगा तो वापस निकाल देंगे। वह ठीक से रहे तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इस शब्द अवलंबन के बाद सूक्ष्म दादा से कितनी हेल्प मिलती है?

दादाश्री : उस तरफ ले जाएँगे। निरालंब में ले जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : यह दैहिक निदिध्यासन निरालंब में ले जाएगा?

दादाश्री : उन्होंने जितना देखा है, वहाँ तक ले जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें दैहिक निदिध्यासन ज़्यादा हेल्प करता है या वाणी का निदिध्यासन?

दादाश्री : सभी हेल्प करेंगे। हाँ इन्होंने जहाँ तक देखा है, वहाँ तक ले जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आपको निरालंब दादा भगवान अर्थात् जो मूल स्वरूप दिखाई दिया, वह स्वरूप कैसा है?

दादाश्री : यहाँ पर नहीं है, किस आधार पर परिचय दें?

प्रश्नकर्ता : क्या वह केवलज्ञान स्वरूप कहलाता है?

दादाश्री : लेकिन समझ रूपी, ज्ञान रूपी नहीं, एब्सल्यूट, जिसमें कोई मिक्सचर नहीं है, उस स्वरूप में। आपका तो मिक्सचर वाला है।

शुद्धात्मा की बोतल के साथ, ढक्कन के साथ। आत्मा बोतल है। शुद्ध उसका ढक्कन है। वर्ना आपका तो सब बह जाएगा।

ज्ञानी की वाणी ही है अंतिम आलंबन

प्रश्नकर्ता : आपने वह जो निरालंब स्वरूप देखा है न, वह कैसा होता है? उसके बारे में कुछ कहिए न।

दादाश्री : ऐसा है न, जो यह पूछ रहा है कि कैसा होता है, वही बुद्धि है लेकिन वह (स्वरूप) ऐसा है कि बुद्धि से नहीं देखा जा सकता।

प्रश्नकर्ता : तो इस प्रकार से निरालंब स्वरूप देखा किसने? इसमें मूल स्वरूप से दादा रहे हुए हैं। इसे अनुभव करने के लिए वे अलग रहे न? मूल स्वरूप को देखने वाले अलग ही हैं न अभी?

दादाश्री : वह प्रज्ञा ही है। प्रज्ञा से, सारा काम प्रज्ञा का है। आपके शुद्धात्मा स्वरूप को देखने वाली यह प्रज्ञा है। प्रज्ञा उसे देखती है। जब तक केवलज्ञान समझ में है, तब तक प्रज्ञा बाहर रहती है। जब केवलज्ञान ज्ञान में रहेगा, तब प्रज्ञा फिट हो जाएगी, बस। और क्या! फिर देखने वाला भी कौन रहा?

बाकी, जगत् में निरालंब शब्द है ही नहीं। अवलंबन के बिना रहेंगे किस प्रकार से? निरालंब होने पर ही सर्वस्व दु:ख जाते हैं। अवलंबन वाले को तो पकड़ लेंगे कि सभी शुद्धात्मा वालों को पकड़ लाओ।

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र ने एक वाक्य कहा है कि केवलज्ञान होने के समय से पहले तक ज्ञानीपुरुष की वाणी अवलंबन रूपी है और इस वाणी का माध्यम ही ऐसा साधन है जो निरालंब बना सकता है।

दादाश्री : वह सबकुछ हो सकता है। जो निरालंब हो चुके हैं उनकी वाणी से निरालंब हो सकते हैं।

भगवान ज्ञानी के वश में

ज्ञानीपुरुष तो इस वर्ल्ड का आश्चर्य कहलाते हैं। भगवान के *ऊपरी* कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे भगवान के *ऊपरी* किस प्रकार से कहलाते हैं? किस अर्थ में?

दादाश्री : भगवान उनके वश में हो चुके हैं, अतः वे भगवान के *ऊपरी* हैं। भगवान उनके कहे अनुसार चलते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'भगवान भक्त के अधीन हैं' क्या वह इस प्रकार से?

दादाश्री : नहीं, भक्त के अधीन हैं ही नहीं। वे तो ज्ञानीपुरुष हैं, जिनके वश में वे हो चुके हैं, उनके अधीन। अतः ज्ञानी को भक्त कहा और लिखा है इन लोगों ने। जबकि लोग भक्तों को, इन साधुओं को.. इन चलते-फिरते भक्तों को ज्ञानी मान बैठे हैं। भक्त कहेंगे तो ये सब लोग पकड़ लेंगे इस बात को। अरे, झोली लेकर अनाज ढूँढने जाता है तब भी नहीं मिलता और भगवान तेरे अधीन हो गए भाई?

प्रश्नकर्ता : भगवान अर्थात् शुद्धात्मा?

दादाश्री : नहीं, शुद्धात्मा तो भगवान हैं ही नहीं लेकिन भगवान कहने का मतलब क्या है कि चौदह लोकों के नाथ, शुद्धात्मा और परमात्मा में जितना अंतर है, उतना ही अंतर भगवान और शुद्धात्मा में है। शुद्धात्मा शब्द स्वरूप हैं। वे भगवान ज़रूर हैं लेकिन वे शब्द रूपी भगवान हैं, जबकि वे भगवान तो निरालंब भगवान हैं। चौदह लोकों का नाथ, मैं कह रहा हूँ न! उनकी बात ही अलग है न! यदि शुद्धात्मा कहें तो अपने सभी महात्मा कहेंगे, मेरे अधीन हो चुके हैं लेकिन निरालंब आत्मा अधीन होने चाहिए।

बात को मात्र समझो...

आत्मा जानने के लिए बात को सिर्फ समझना ही है, करना कुछ भी नहीं है। 'साहब क्या बात है? मूलभूत वास्तविकता, बता दीजिए न मुझे।' तो वह यह है, 'यह है और ऐसा है, बोल। यह विनाशी है और इस विनाशी के सभी रिश्तेदार भी विनाशी। विनाशी की ज़रूरतें मात्र विनाशी और जिसे ज़रूरत नहीं है, जो निरालंब है वह मैं हूँ', ऐसा कहो।

अब आत्मा को समझ लेना एक बार। जिसे कभी भी दु:ख स्पर्श ही नहीं करता, वह 'तू' है। इस दुनिया की कोई भी स्थिति ऐसी नहीं है कि जिसमें तुझे दु:ख स्पर्श कर सके। भले ही फाँसी की सजा हो जाए फिर भी तुझ पर असर नहीं होगा, 'तू' वह है और अगर उस 'तू' तक पहुँच गया तो फिर कुछ भी करना बाकी नहीं रहेगा!

उस 'प्रकट' को मैंने देखा हैं और उसे मैं आपमें देख सकता हूँ। आपको दिखाए भी हैं लेकिन आपको जितना आपकी भाषा में हैं उतना ही समझ में आएगा। शब्द से आप देख सकते हो लेकिन मूल स्वरूप को नहीं देख सकते, निरालंब स्वरूप को नहीं देख सकते। अभी यह 'शुद्धात्मा' आपका मूल स्वरूप इस शब्द से है।

हमने निरालंब स्वरूप को पकड़ा हुआ है यानी कि जगत् की कोई चीज़ हमें स्पर्श नहीं करती, बाधक नहीं है। अर्थात् हम उस स्थिति में बैठे हैं, निरालंब। वह स्थिति अर्थात् हमें तो किसी भी जगह पर मतभेद नहीं रहता, कुछ भी नहीं रहता न क्योंकि कोई अवलंबन स्पर्श ही नहीं करता न! हमारी दशा है, निरालंब!! अर्थात् हम समझ सकते हैं कि हम यदि अभी इस दशा में भी निरालंब रह सकते हैं तो वीतराग कितने निरालंब रहते होंगे?

प्रश्नकर्ता : आप तो निरालंबी हैं।

दादाश्री : निरालंबी तो अंदर वाला आत्मा है लेकिन मुझे इनका (मूल भगवान का) सहारा तो है न जबकि मूल आत्मा निरालंबी है। हम निरालंबी हुए हैं इसलिए भगवान हमारे वश में हो गए हैं, वर्ना वश में हो ही नहीं पाते न! जब तक किसी भी चीज़ का अवलंबन है तब तक भगवान वश नहीं हो सकते।

सभी में 'मैं' को ही देखे, वह स्पीडीली

'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' वह आत्मा है तो सही लेकिन वह तो प्रवेश द्वार कहलाएगा। अभी तो प्रवेश किया है मोक्षमार्ग में। मुक्ति

के मार्ग में प्रवेश हो गया। अब आपका प्रवेश तब पूर्ण होगा जब निरालंब आत्मा मिल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अब शुद्धात्मा हो जाने के बाद में फिर और किसी अवलंबन की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : नहीं, इन सभी अवलंबनों को छुड़वाकर शुद्धात्मा का अवलंबन दिया है। इस अवलंबन में सभी कुछ आ गया और वे सारे अवलंबन छूट गए। फिर यह जो अवलंबन बचा है, वह अपने आप ही छूट जाएगा। यह शुद्धात्मा शब्दावलंबन है। वह शब्द भी अपने आप ही छूट जाएगा और निरालंब हो जाओगे।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आपने जब इस अवलंबन को सब से अच्छा और श्रेष्ठ कहा है तो फिर मान लीजिए कि अगर दूसरी सब क्रियाएँ नहीं हो पाएँ तो कोई हर्ज है क्या?

दादाश्री : नहीं। अगर कुछ नहीं हो पाए तो उसमें भी हर्ज नहीं है और यदि हो जाएँ तो उनमें तन्मयाकार होकर खिंच नहीं जाना है, अंदर देखते रहना है।

कितने ही अवलंबनों को छोड़ते-छोड़ते आगे बढ़ेगा तब निरालंब आत्मा उत्पन्न (प्राप्त) होगा, जिसे केवल आत्मा कहा जाता है। फिर वहाँ पर बात की पूर्णाहुति हो जाती है। कितने स्टेशन गुज़र जाने के बाद फिर निरालंब का अंतिम स्टेशन आता है और आपका वह आ ही जाएगा। जल्दबाज़ी करने की कोई ज़रूरत नहीं है, और अगर जल्दबाज़ी करनी हो तो सभी में 'मैं'-'मैं' देखते हुए चलते जाना न। सभी में 'मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ' वाणी में, मन में, चित्त में।

परावलंबन-आलंबन-निरालंबन

प्रश्नकर्ता : अवलंबन की तो ज़रूरत नहीं है लेकिन ऐसी स्टेज आएगी किस तरह से?

दादाश्री : अगर आपको वह स्टेज चाहिए तो आएगी, निरालंब

स्टेज। अवलंबन ही परतंत्रता है। 'वे हैं तो हम हैं, हमें उन्हीं के आधार पर जीना है', इसे अवलंबन कहते हैं। अवलंबन नहीं होना चाहिए, और अगर है तो भी कुछ समय के लिए ही होना चाहिए। कोई हम से कहे कि भाई, इतने समय में यह खत्म हो जाएगा। यह अवलंबन, वह कब तक? कि अभी अगर यहाँ से स्टेशन तक जाना हो तो उतना ही रास्ता चलना पड़ेगा। अतः हम चलेंगे, हर्ज नहीं है, तो आपके लिए यह शुद्धात्मा आलंबन है तो अब निरालंब होना है।

बाकी, जब तक संपूर्ण निरालंब नहीं हो जाते तब तक कृष्ण भगवान का मार्ग नहीं समझे हैं, महावीर का मार्ग नहीं जाना है। कहाँ वह वीतरागों का विज्ञान और कहाँ जीवन की ये सारी कलाएँ! इन लोगों के जीवन अवलंबित नहीं हैं, परावलंबी हैं। अवलंबन वाला जीवन तो अच्छा कहा जाएगा, यह तो परावलंबी जीवन है। आपने देखा है कभी ऐसा परावलंबी जीवन?

प्रश्नकर्ता : दुनिया में बाहर सारा परावलंबी जीवन ही है। औरों के आधार पर जीवन बिताते हैं।

दादाश्री : लेकिन क्या आपने देखा है कभी?

प्रश्नकर्ता : आपके पास आने से पहले उसी जीवन में थे।

दादाश्री : तो क्या बहुत मज़ा आता था?

प्रश्नकर्ता : भरपूर आर्तध्यान और रौद्रध्यान रहता था।

दादाश्री : जब आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो जाएँगे तब कहा जाएगा कि उसका परावलंबन छूट गया। परावलंबन के बाद अब सम्यक् अवलंबन है। सम्यक्, जो कि कुछ समय बाद खुद अपने आप ही खत्म हो जाएगा और निरालंब हो जाओगे।

जीवन अवलंबन रहित होना चाहिए, निरालंब जीवन। ये तो कहेंगे, बिस्तर होता है तभी नींद आती है, हवा होती है तभी नींद आती है, ऐसा कोई अवलंबन नहीं होना चाहिए, 'नींद को आना हो तो आए, नहीं तो

कहीं मेरी जागृति चली नहीं गई है'। यदि यह जागृति चली जाएगी तो उसके बिना ठीक नहीं लगेगा लेकिन वह जागृति है न! तो नींद से कहना, 'तुझे नहीं आना हो तो मत आना'। निरालंब, वह तो अंतिम बात है, उससे आगे कोई बात नहीं है। आलंबन से परतंत्र हो गया है अत: निरालंब अर्थात् स्वतंत्र होना है। भगवान भी *ऊपरी* नहीं। हम किसी अवलंबन के आधार पर जीते हैं इसलिए भगवान *ऊपरी* हैं और इस ज्ञान के बाद आप निरालंब हो गए हो। भगवान निरालंब! एक ही जाति के हो गए, जाति एक हो गई। पहले जाति अलग थी।

देह के आलंबन

निरालंब अर्थात् जहाँ सब प्रकार की स्वंत्रता हो, निरालंबपना हो, वहाँ पर किसका आलंबन रहेगा! और शरीर का स्वभाव तो क्या है कि नंगे पैर चलने लगे तो, उसके पैर के तलिये ऐसे हो जाते हैं कि गर्मी में भी नंगे पैर चल सके। धूप में घूमे तो बॉडी धूप जैसी हो जाती है और पंखे के नीचे रहे तब वैसी हो जाती है। अत: जैसा आप करोगे वैसी ही हो जाएगी। फिर यदि पंखा नहीं होगा तो आप शोर मचाकर रख दोगे। हाय, पंखा नहीं है, पंखा नहीं है...

हम बिल्कुल निरालंब हैं। जिन्हें शब्द का भी अवलंबन नहीं है। यह जो शुद्धात्मा शब्द है, उसका भी जिन्हें अवलंबन नहीं है, वह निरालंब स्थिति है। इसके बावजूद सभी के बीच रहता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ, घूमता हूँ, फिरता हूँ सभी कुछ है फिर भी निरालंब हो सकता है इंसान। वह अभी ही हो सकता है। यह अक्रम विज्ञान ऐसा है कि निरालंब हो सकता है। अत: जिस-जिस की भावना है, वह हो सकता है।

संज्ञा से मूल आत्मा को पहुँचता है...

प्रश्नकर्ता : कई बार जब संग्राम होता है तब 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा कहने के बावजूद भी उलझन रहती थी फिर भी स्वतंत्रता नहीं आती थी और कमज़ोर पड़ जाता था।

दादाश्री : कैसे आएगी? वह शब्दावलंबन है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ। इसलिए फिर उस संग्राम के समय 'दादा' को साक्षी रखते हैं, 'दादा' का अवलंबन आने के बाद शुद्धात्मा का अवलंबन आए तो ठीक रहता है।

दादाश्री : 'दादा' का अवलंबन ले न, तो वह जो निरालंब दशा है, वह हमें निरालंब बनाती है इसलिए हम कहते हैं न कि दादा का अवलंबन लो। 'शुद्धात्मा' निरालंब नहीं है, वह तो आपके लिए हेल्पफुल है। अतः और कुछ नहीं आए और सिर्फ 'दादा' का निदिध्यासन किया जाए न तो उसमें सबकुछ आ जाएगा। बाकी तो, अभी इंसान कितना करे!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, इस संग्राम में हमारी हार होती रहती है और हम पीछे रह जाते हैं।

दादाश्री : आप हार मान सकते हैं लेकिन हम तो ऐसा नहीं कर सकते। हमारा तो ऐसा है न, 'इस संग्राम में चाहे कैसा भी *पुद्गल* हो, फिर भी वह न्यूट्रल हैं और यह चेतन है'।

मैंने आपको शुद्धात्मा कहा है न, वह भी मूल आत्मा नहीं है। यह तो आपकी संज्ञा है। आप जब भी वह बोलते हो तब वहाँ चिट्ठी पहुँच जाती है।

ज़रा सा ही दूर है राजमहल

लेकिन आपको अंदर सावधान करता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : सावधान करता है।

दादाश्री : वही आत्मा है! अब दूसरा और कौन सा आत्मा? बाकी, आपको कोई लेना-देना नहीं है। पहले सावधान करता था क्या? हं... तो वह आत्मा है। अभी अगर मेरी पैसे कमाने की बात आए न तो भी अंदर सावधान करता है कि भाई... और पहले सावधान नहीं करता था पैसे कमाने की बात में। अतः आत्मा हाज़िर है, पूरे दिन हाज़िर है।

प्रश्नकर्ता : मूल आत्मा तो कुछ और ही है जो कि शब्दों से परे है।

दादाश्री : हाँ, शब्दों से परे है वह तो लेकिन इस स्टेशन पर आने के बाद जा सकेंगे। आपकी गाड़ी तो आगे बंद हो जाती है। आपको थोड़ा बहुत चलकर जाना है। ज़रा सा ही! आप समझते हो कि 'अब यहाँ पर चलना नहीं है', लेकिन ऐसा नहीं है। पाव-आधा घंटा चलना पड़ेगा। वह ट्रेन यहीं तक जाती है। अंतिम स्टेशन है यह शुद्धात्मा। उसके बाद बिना स्टेशन वाला राजमहल! हमेशा का, परमानेन्ट एड्रेस। एड्रेस, और वह भी परमानेन्ट।

प्रश्नकर्ता : इस दूषमकाल की वजह से थोड़ा चलना बाकी है।

दादाश्री : हाँ। ज़रा सा ही चलना बाकी रहा है, काल का प्रभाव है न! लेकिन यह अवलंबन वाला शुद्धात्मा है। शब्द का अवलंबन है। जबकि हम जिस स्टेशन पर खड़े हैं वह, जिस अंतिम स्टेशन पर महावीर भगवान खड़े थे, वह है। यह निरालंब स्टेशन है। शब्द-वब्द कुछ भी नहीं। तब वह जो ज्ञान है, वह वहाँ पर सब तरफ तरफ छा जाएगा। आम के (ज्ञेय के) चारों तरफ छा जाएगा!

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा होता है कि यह शुद्धात्मा जो शब्द से है, जिसे हम *लक्ष* में रखते हैं, यदि उस शुद्धात्मा की शक्ति इतनी अधिक है तो फिर उसका अनुभव होने में देर क्यों लगती है?

दादाश्री : उसमें तो बहुत टाइम लगता है। उसके कई कारण हैं, प्रतिस्पंदन पड़े हुए हैं, जब वे सारे प्रतिस्पंदन शांत हो जाएँगे, तब होगा। अनंत जन्मों के प्रतिस्पंदन पड़े हुए हैं।

इसलिए बहुत जल्दबाज़ी करने जैसा नहीं है। अपनी जो आज्ञाएँ हैं न, उतना ही रह पाएगा, बाकी बहुत गहराई में उतरने जैसा नहीं है। अपने आप ही स्टेशन आकर रहेगा। हम गाड़ी में बैठ गए हैं न तो हमें गाड़ी छोड़नी नहीं है फिर अपने आप ही स्टेशन आकर रहेगा। ये आज्ञाएँ हैं ही ऐसी, तो निरालंब की तरफ जाना जारी ही है और कभी न कभी वह आ जाएगा। यह शब्द का अवलंबन है लेकिन भगवान भी ऐसा स्वीकार करते हैं कि जब से इस अवलंबन तक पहुँचा, तभी से मोक्ष में पहुँच गया।

एक बार इंसान का मोक्ष हो गया फिर तो मानो वह भगवान ही बन गया। स्वतंत्र हो गया। फिर निरालंब है, किसी अवलंबन की ज़रूरत नहीं। मैं बहुत समय से निरालंब स्थिति भोग रहा हूँ।

मोक्ष ऐसा नहीं होता। वहाँ कोई उठाने वाला नहीं है। वहाँ पर अपना कोई *ऊपरी* नहीं है और अन्डरहैन्ड नहीं है, बस... और निरालंब, जहाँ किसी भी प्रकार का अवलंबन नहीं। यह जो अवलंबन है, वही बंधन है। जबकि निरालंब, इस शरीर के होने के बावजूद भी हम निरालंब स्थिति को देख सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं और बंधन वाली स्थिति को भी अनुभव कर सकते हैं। दोनों ही स्थितियों को अनुभव कर सकते हैं। अंतिम बात है, निरालंब! तभी मोक्ष कहा जाएगा।

भगवान महावीर पूर्ण निरालंब

भगवान महावीर निरालंब हो चुके थे। बारहवें गुणस्थानक पर और दूसरे शुक्लध्यान (स्पष्ट वेदन) में निरालंब हो जाते हैं। तब तक अवलंबन, अवलंबन और सिर्फ अवलंबन है। बारहवें गुणस्थानक में पहला शुक्लध्यान (अस्पष्ट वेदन) भी अवलंबन वाला होता है। अत: अवलंबन तो अंत तक (स्पष्ट वेदन होने तक) है।

निरालंब ज्ञान कैसा होता है? कि कोई चीज़ उसे स्पर्श ही नहीं करती। तब तक आपको शब्द का आधार रहा है।

प्रश्नकर्ता : शब्द का आधार छोड़ने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अभी नहीं छोड़ना है। शब्दों का आधार कब छूटेगा? जैसे-जैसे ये फाइलें खत्म होती जाएँगी न, वैसे-वैसे अपने आप ही शब्द छूटता जाएगा। जब तक ये फाइलें हैं, तब तक उसकी ज़रूरत है। *निकाल* तो करना पड़ेगा न? कितनी सारी फाइलें लेकर आए हैं! उन सभी फाइलों का *निकाल* कर देना पड़ेगा न! *निकाल* हो जाने के बाद में उन फाइलों के वापस आने का कोई कारण नहीं रहेगा। आपसे सब फाइलों का *निकाल* हो पाता हैं?

प्रश्नकर्ता : होता है न, कभी फास्ट और कभी धीरे-धीरे भी होता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन उसका तो सारा *निकाल* हो जाएगा। समझ में, जो दृष्टि भौतिक में थी, वह दृष्टि आत्मा में पड़ी तो काम होने लगा, अपने आप ही काम होता रहेगा।

अंतर, शुद्धात्मा और परमात्मा में

प्रश्नकर्ता : अब, ज्ञानी को सदेह परमात्मा कहते हैं, तो शुद्धात्मा और परमात्मा की डेफिनेशन में क्या अंतर है? शुद्धात्मा और परमात्मा में कितना अंतर है?

दादाश्री : परमात्मा निरालंब हैं जबकि शुद्धात्मा शब्द का अवलंबन है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सीधा 'परमात्मा' का ही अवलंबन न लें?

दादाश्री : खुद परमात्मा ही है लेकिन अभी 'शुद्धात्मा' के अवलंबन से जी रहा है। शब्द के अवलंबन से उसे ऐसा भान हुआ है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

प्रश्नकर्ता : तो हम जो बोलते हैं कि 'मैं दादा भगवान जैसा शुद्धात्मा हूँ', उसकी बजाय 'मैं दादा भगवान जैसा परमात्मा हूँ', ऐसा क्यों नहीं बोल सकते?

दादाश्री : ऐसा बोलने से क्या कुछ बदल जाएगा?

प्रश्नकर्ता : तो क्या 'शुद्धात्मा' बोलने से कुछ बदलेगा?

दादाश्री : हाँ बदलेगा न।

मैं दादा भगवान जैसा शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : तो फिर परमात्मा कहने से क्यों कुछ नहीं होगा?

दादाश्री : लेकिन बिना समझे उससे क्या हो सकता है? मैंने जो

शुद्धात्मा दिया है, वह ठीक है, एक्ज़ेक्ट है लेकिन उसके आगे तो आपको खुद ही पुरुषार्थ से जाना पड़ेगा। ये सभी अवलंबन टूट गए, सभी रिश्तेदार, बाकी के सभी, देह के अवलंबन छूट गए, तब इस शब्द (शुद्धात्मा) का अवलंबन रहा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर 'मैं दादा भगवान जैसा शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बोलना ठीक है?

दादाश्री : ऐसा ही बोलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो 'महावीर भगवान जैसा शुद्धात्मा हूँ', ऐसा क्यों?

दादाश्री : हाँ, वैसा भी बोल सकते हैं क्योंकि उनके शुद्धात्मा जैसा ही मैं शुद्धात्मा हूँ।

कुछ गणित है इस तरफ का, सभी का गणित है, इस बारे में सारा मिलता-जुलता हुआ आता है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन महावीर भगवान तो केवलज्ञानी हो चुके हैं, तो हम उन्हें शुद्धात्मा क्यों कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, वह तो हम ऐसा कहते हैं कि 'हम महावीर भगवान जैसे शुद्धात्मा हैं'। भगवान जैसे शुद्धात्मा। जैसा उनका शुद्धात्मा था, वैसे ही शुद्धात्मा हम भी हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे तो केवलज्ञानी हो चुके हैं न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वे भी शुद्धात्मा ही हैं। वे खुद को शुद्धात्मा नहीं मानते थे। वे तो निरालंब स्वरूप को ही खुद का स्वरूप मानते थे लेकिन यों कहने जाएँ तब शुद्धात्मा ही कहा जाएगा।

चौदहवें गुणस्थानक में निरपेक्ष

निरालंब तो सिर्फ हम अकेले ही हैं। हम किसी से कहते नहीं हैं कि आप वहाँ तक आओ। इस ज़िंदगी में कोई नहीं आ सकेगा, अतः

इतना कर ले। निरपेक्ष, आपका खुद का अवलंबन 'मैं शुद्धात्मा हूँ' है, वहाँ तक आना है।

प्रश्नकर्ता : निरपेक्ष अर्थात् अपेक्षा रहित?

दादाश्री : किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं।

प्रश्नकर्ता : दादा, ये निर्विचार, निर्विकल्प, निराकुल इन सभी शब्दों का इससे क्या संबंध है?

दादाश्री : निरालंब उन सभी से अलग है। निरालंब का मतलब तो ऐसा कहना चाहते हैं कि, शब्द नहीं हैं वहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : यह जो सापेक्षता कहा गया है, वह कहाँ तक है? अर्थात् जीव प्रगति करेगा तो, वह क्रमपूर्वक आगे बढ़ेगा, तो सापेक्ष कहाँ तक है?

दादाश्री : जब तक चौदहवें गुणस्थानक में निरपेक्ष न हो जाए, तब तक। जब तक सापेक्ष है तब तक देह है। हाँ, और चौदहवें गुणस्थानक का मतलब क्या है? देह सहित निरपेक्ष। पैर गाड़ी में हैं, गाड़ी में खड़े हैं। बिस्तर बाहर है प्लैटफॉर्म पर लेकिन हम गाड़ी में हैं। गाड़ी रवाना हो जाए और बिस्तर रह जाएँ तो भी हर्ज नहीं है। अतः चौदहवें गुणस्थानक में वह निरपेक्ष हो जाता है, तब तक सापेक्ष का आधार है। हाँ, फिर भी बाहर के लोगों को वह सापेक्ष लगता है। मुझे सापेक्ष नहीं लगता क्योंकि आपको मैं सापेक्ष लगता हूँ और मैं निरालंब रह सकता हूँ। जिसे किसी भी प्रकार का अवलंबन नहीं है, वह निरपेक्ष कहलाता है। नो रिलेटिव!

शुद्धात्मा का अवलंबन किसे?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का अवलंबन किसे है? आत्मा तो निरालंब है।

दादाश्री : प्रज्ञा को है। निरालंब होना, वही है केवलज्ञान होते

जाना। एक तरफ निरावरण और दूसरी तरफ निरालंब दोनों साथ में होता जाता है।

अवलंबन वाला आत्मा मिला, वह बहुत बड़ी बात है क्योंकि आत्मा क्या है और क्या नहीं, वह सब छूट गया। सम्यक्त्व मोहनीय छूट गया अर्थात् क्षायक समकित हो गया अतः सर्वस्व प्रकार से मोह छूट गया। अब बचा चारित्रमोह। निरालंब आत्मा को जाने बिना चारित्रमोह नहीं जाएगा।

शुद्धात्मा में आ गया अर्थात् उसे ऐसा कहा जाएगा कि मोक्ष के दरवाज़े में आ गया और अब ज़रा-ज़रा सा वह निरालंब आत्मा प्राप्त हुआ है, वह चारित्र उत्पन्न हुआ है।

प्रश्नकर्ता : एक-दो जन्मों में हो जाएँगे न निरालंब?

दादाश्री : हो जाओगे न!

निरालंब की प्राप्ति के लिए ज़रूरत है इन सब की

अभी मैं निरालंब स्थिति में हूँ इसके बावजूद अवलंबन भी हैं और निरालंब भी है। निरालंब स्थिति को मैं अनुभव कर सकता हूँ।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 'मेरे अवलंबन भी हैं और मैं निरालंब भी हूँ'। तो आपको किस चीज़ का अवलंबन है?

दादाश्री : आप सभी का।

प्रश्नकर्ता : देह का भी अवलंबन है न दादा?

दादाश्री : देह का तो खास अवलंबन नहीं है। जितना आपका अवलंबन है उतना इस देह का नहीं है क्योंकि मेरा ध्येय यह है कि मेरा जो यह सुख है वह इन लोगों को कैसे प्राप्त हो और किस प्रकार से जल्दी प्रकट हो जाए। देह का तो कोई अवलंबन नहीं है, देह तो पड़ोसी की तरह, फर्स्ट नेबरर की तरह है। उसका टाइटल मैंने फाड़ दिया है यानी कि मैं मन का मालिक नहीं हूँ, इस देह का मालिक नहीं हूँ और वाणी का भी मैं मालिक नहीं हूँ।

सिर्फ 'केवल' ज्ञाता-दृष्टा-परमानंद, वही परम ज्योति है। 'केवल!' मिलावट वाला नहीं। शुद्ध! वह परम ज्योति है और वह ज्योति हमने देख ली है और निरालंब हो चुके हैं। इसके बावजूद भी आलंबन में रहते हैं। वर्ना अंतिम बात, ठेठ तक की बात प्रकट नहीं होती। ठेठ तक की यह बात आज प्रकट हुई है।

प्रश्नकर्ता : 'निरालंब रहते हैं फिर भी आलंबन में हैं', इसे ज़रा ज़्यादा समझाइए न।

दादाश्री : लेना ही पड़ेगा न अवलंबन। ऐसा है न कि हम अपने स्वभाव को लेकर निरालंब में रहते हैं और इस विशेषभाव में अर्थात् देह भाव में अवलंबन है। वह (देह भाव वाला) अवलंबन वाला रौब मारता है तो उस समय 'हम' निरालंब हो जाते हैं, बस। जब तक रौब नहीं मारता तब तक अवलंबन में रहते हैं। वह रौब मारे तब हम निरालंब हो जाते हैं। उससे क्या कहते हैं कि 'बस, बहुत हो गया। आइ डोन्ट वॉन्ट'। रौब मारने का मतलब समझ गए?

प्रश्नकर्ता : हाँ समझ गया।

दादाश्री : बस, इतने तक ही ऐसा करते हैं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह जो 'आइ डोन्ट वॉन्ट', वह बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है लेकिन उसमें से ऐसा होता है, 'देन वॉट डू यू वॉन्ट?'

दादाश्री : 'वॉन्ट' नहीं करता है न यह। वह तो उसे समझाने के लिए यह वाक्य बोलना पड़ता है। वह समझता है कि मेरे बगैर चलेगा या नहीं? लेकिन मैं निरालंब हूँ तो फिर नहीं चलेगा क्या? यह तो अगर तू कहे कि मुझे सहारा दीजिए, तो मैं हाथ लगाकर सहारा दूँगा। अगर तू खिसक जाएगा तो सहारा मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : निरालंब होने का प्रयत्न करते हैं लेकिन फिर भी कई बार हो नहीं पाते।

दादाश्री : नहीं हो सकते। अभी तो, वह कहीं ऐसी स्थिति नहीं

है कि तुरंत प्राप्त हो जाए। यह तो हम बताने के लिए कहते हैं कि ऐसे हो सकते हैं। यह ऐसी स्थिति है। यह तो मेरे कितने-कितने जन्मों का इकट्ठा किया हुआ फल है। यह विज्ञान ऐसा है कि ऐसा होना संभव है। खुद निश्चय करके इसके पीछे पड़ जाए, तो ऐसा होना संभव है। पहले स्थूल में निरालंब हो जाएगा उसके बाद सूक्ष्म में निरालंब हो जाएगा। फिर सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम। निरालंब का मतलब क्या है? 'शुद्धात्मा हूँ', शब्द के इस अवलंबन की भी ज़रूरत नहीं है। जिसने मूल रूप देखा हो, क्या उसके लिए अवलंबन हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब तीन चीज़ें हुईं न दादा। सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम। वही पूरी वस्तु।

दादाश्री : ऐसा कब हो सकता है? जो आ पड़े वही खाए, जो मिल गए वही कपड़े पहने, जो मिल गया है उसी सब का उपयोग करे तब वह काम होता है। बिस्तर भी जो मिल जाए वही। हमारे हिस्से में आज रिक्षा आ गई तो रिक्षा में आ गए आराम से। हमें ऐसा नहीं है कि यही चाहिए। क्या आ पड़ा, उसे देखना है। रिक्षा नहीं होती तो धीरे-धीरे चलकर आ जाते, नहीं तो कुर्सी में बैठकर आ जाते लेकिन आ जाते। फिर भी कभी सत्संग बंद नहीं रखते। अगर केडीलेक (गाड़ी) न हो, तब क्या केडीलेक बड़ी है या सत्संग?

अंत में सत्संग भी आलंबन

फिर भी हम से तो अब यह सत्संग भी नहीं हो पाता। सत्संग भी हमें बोझ लगता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें तो इस सत्संग से प्रेरणा मिलती है न!

दादाश्री : हाँ, आपके लिए सत्संग की ज़रूरत है लेकिन मेरे लिए यह सत्संग बोझ वाला है! यह सत्संग करते हैं लेकिन आपको यह ध्येय रखना है कि हमें ऐसे सत्संग तक पहुँचना है जहाँ हम खुद अपने आपके साथ ही सत्संग में रह सकें। अन्य किसी की ज़रूरत न पड़े। उसके

अलावा बाकी का सब तो अवलंबित है। किसी दूसरे की ज़रूरत पड़ी तो वह अवलंबित है और इसीलिए परतंत्र है, और परतंत्र हो गए तो हमें पूरा सुख नहीं रहेगा! सुख निरालंब होना चाहिए! किसी अवलंबन की ज़रूरत न रहे।

अंतर, आधार और आलंबन में

प्रश्नकर्ता : आधार और आलंबन के बारे में और अधिक समझना है। देह अध्यात्म विद्या का आधार है। तभी मोक्ष हो सकता है लेकिन आत्मा को देह का अवलंबन है या नहीं?

दादाश्री : अज्ञान दशा में आत्मा को (व्यवहार आत्मा को) देह का आधार कहा गया है न! यदि देह है तो बंधन है। बंधन है इसलिए मोक्ष ढूँढ निकालता है। अवलंबन अलग चीज़ है और आधार को निराधार करना, ये दोनों चीज़ें अलग हैं। आधार, निराधार हो सकता है लेकिन अवलंबन से निरालंब होने में ज़रा देर लगती है।

प्रश्नकर्ता : अवलंबन और आधार का मतलब क्या है? वह आप किसे कहते हैं? पहले यह समझाइए।

दादाश्री : हं! वह बात करते हैं हम। आधार में लोड लगता है। अवलंबन में तो लोड नहीं लगता और अवलंबन हो तभी वह रेग्यूलर रह सकता है। अवलंबन की वजह से रेग्यूलर रह सकता है। उसे भी अगर हमें देशी भाषा में कहना हो तो अवलंबन अर्थात् *ओलंबो* (भूलंब, साहुल)। हमें जब दीवार बनानी होती है तो *ओलंबो* रखने से ही सीधी बनती है और आधार तो वेट है, लोड वाला होता है। आधार अलग चीज़ है और अवलंबन, वह अलग चीज़ है। अवलंबन अर्थात् *ओलंबो*। *ओलंबो* में एक ही चीज़ है। सिर्फ शुद्धात्मा ही *ओलंबो* है। अन्य कोई अवलंबन है ही नहीं। अपनी भाषा में अगर दूसरा कोई अवलंबन कहें तो उसे *हूँफ* (सहारा) कहते हैं।

अगर कारीगर से कहें कि 'तूने यह दीवार टेढ़ी क्यों बना दी?' तब कहेगा 'साहब आलंबन नहीं था'। तो फिर उसे आलंबन बोलना नहीं

आता इसलिए वह क्या कहता है, '*ओलंबो* नहीं था साहब'। 'अरे भाई, *ओलंबो* का मतलब ही आलंबन है!' तब वह कहता है कि हमें बोलना नहीं आता इसलिए *ओलंबो* कहते हैं। *ओलंबो* है फिर भी टेढ़ा हो गया। यह दीवार उससे अलग बनी है। समझे! अगर उस *ओलंबो* वाले से हम कहें कि आप अवलंबन लेकर आओ। तब कहेगा, 'नहीं अवलंबन की हमें ज़रूरत नहीं हैं'। हमें तो *ओलंबो* की ज़रूरत हैं। भाषा ही वह हो गई है न, *ओलंबो* वाली। इसी प्रकार आलंबन से पीड़ित हैं ये लोग। देखो मस्ती से जीते हैं न! और फिर रोते हैं, कुटते हैं, हँसते-करते हैं, राग-द्वेष करते हैं लेकिन मूलतः खुद सनातन है इसलिए उसका खुद का 'मैं'पन ज़रा सा भी जाता नहीं है। बूढ़ा हो जाए, तब भी कहता है 'मैं हूँ'। अरे भाई बूढ़ा हो गया फिर भी? शरीर बूढ़ा हो गया है, मैं तो हूँ ही न। फिर भी जुदापन को नहीं समझते वही आश्चर्य है न! यह बहुत ही सार निकालने जैसा है, समझने जैसा है।

सिर्फ शुद्धात्मा ही अवलंबन है, वह शब्द! सिर्फ वह शब्द ही *ओलंबो* है और इस *ओलंबे* से आत्मा एक्युरेट रह सकता है और बाद में इस *ओलंबे* की भी ज़रूरत नहीं रहेगी। निरालंब स्थिति रहेगी। अतः यह अवलंबन अर्थात् अगर इसे प्योर गुजराती भाषा में कहना हो तो *ओलंबो* कहेंगे तो चलेगा, तब समझ में आएगा वर्ना समझ में नहीं आएगा और आधार-आधारी ये दोनों चीज़ें लोड वाली हैं। आप कर्म को आधार देते हो कि 'यह मैंने किया'। इस तरह आप आधार देते हो इसलिए वह गिरता नहीं है और अगर 'मैंने नहीं किया', कहा तो वह आधार गिर जाएगा, तब फिर निराधार होकर गिर पड़ेगा। कर्म कब गिरेंगे? निराधार हो जाएँगे, तब। आधार नहीं देंगे तब फिर भी आधार देते हैं? पूरी दुनिया आधार देती ही है। 'हाँ-हाँ! मैंने ही किया'। हम कहते हैं, 'आपने तो सिर्फ ज़रा सा हाथ ही लगाया है'। 'फिर भी यह मैंने ही किया है', ऐसा कहता है। कर्तापन छूट जाए तब जानना कि अब सब बंधन टूट गए।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का आधार नहीं है लेकिन शरीर आत्मा का अवलंबन है या नहीं?

दादाश्री : अवलंबन नहीं है। आत्मा का कोई आधार-आधारी संबंध नहीं है। आत्मा रियल है, अविनाशी है। देह रिलेटिव है विनाशी है। सारा रिलेटिव आधार-आधारी संबंध वाला है। आप खुद कर्म को आधार देते हो कि 'मैंने किया', इसलिए कर्म खड़े रहते हैं। कर्म के आधार पर प्रकृति है, इस प्रकार उसका एक-एक आधार पकड़ में आता जाता है। तो अंत में वह देह तक आता है। इसे इसका आधार, इसे इसका आधार, इसे इसका।

जब आप शुद्धात्मा हो तो वह भेद ज्ञान के अवलंबन से हो। भेद ज्ञान किसके अवलंबन से है? वह ज्ञानीपुरुष के अवलंबन से है। अर्थात् इन सभी अवलंबनों में से होते हुए आता है। लेकिन इससे लोड नहीं पड़ता जबकि आधार-आधारी में लोड है।

यह शुद्धात्मा जो है, उसका स्वभाव आधार-आधारी भाव वाला है ही नहीं। यदि आधारी भाव होता तो निराधारपना लाता। अत: इस देह पर अवलंबित नहीं है।

आपको अवलंबन रहा है कि मैं शुद्धात्मा बोलता हूँ। 'तो क्या वास्तव में भगवान मिल गए?' तब कहता है, 'नहीं, अवलंबन मिला है'। शुद्धात्मा शब्द का अवलंबन है। बाद में जहाँ इस शब्द का अवलंबन छूट जाएगा, वहाँ परमात्मा हैं। वह निरालंब दशा है!

आधार-आधारी की समझ

इस दुनिया में लोग दो चीज़ों के आधार पर जीवित हैं। कौन-कौन से आधार? तो वह है स्वरूप का आधार। आप सभी स्वरूप के आधार पर जीते हो और बाकी सब अहंकार के आधार पर। 'मैं चंदू लाल ही हूँ' 'मैं ही हूँ' मी मी मी अरे, मी तर चाल लो (मैं तो चला) कहता है!

आधार-आधारी के संबंधों के आधार पर यह जगत् खड़ा है। यह आधार स्वरूप के संबंध की वजह से है। वह आधार अहंकार के संबंध की वजह से है। यदि वह नहीं होगा, अहंकार नहीं होगा तो वह आधार

खत्म हो जाएगा। कर्म का कर्ता नहीं बनेगा फिर। हमारी आज्ञा में रहेगा तो एक भी कर्म नहीं बंधेगा और यहाँ पर कर्म तो सभी करेगा लेकिन कर्म नहीं बंधेंगे। कर्म करने के बावजूद भी अकर्म, कृष्ण भगवान ने जो कहा था, वही दशा।

आधार हटा दे तो आधारी छूट जाएगा। आत्मा में आधार-आधारी संबंध नहीं है। आत्मा में जिसने आधार रखा उसके लिए आधारी संबंध नहीं है। आधार-आधारी संबंध वाली तो इस दुनिया की टेम्परेरी चीज़ें हैं। इस दुनियादारी की टेम्परेरी चीज़ें आधार-आधारी थीं और परमानेन्ट चीज़ों से संबंध आधार-आधारी नहीं है।

ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट एन्ड यू आर परमानेन्ट। चंदूभाई टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है। फादर ऑफ द सन, टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है, हज़बेन्ड ऑफ योर वाइफ टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है। सभी टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट हैं एन्ड यू आर परमानेन्ट। इन पाँच इन्द्रियों से जो दिखाई देता है वह आधार-आधारी संबंध से है, सापेक्ष। जिसने जिससे अपेक्षा रखी है, वह रिलेटिव है। सापेक्ष अर्थात् रिलेटिव, वह सारा आधारी है और रियल में निरालंब। उस समय आधार-वाधार नहीं रहता।

ऐसा है न, अंदर बहुत तरह के आधार हैं, एक-दो आधार नहीं हैं, अनंत आधार हैं सारे। अतः प्रकृति आमने-सामने आधार की वजह से बनी हुई है। वायु के आधार पर पित्त रहा हुआ है और पित्त के आधार पर कफ है। कफ के आधार पर यह है। हड्डी के आधार पर यह शरीर और शरीर के आधार पर ये हड्डियाँ हैं। अतः ये आधार-आधारी संबंध तरह तरह के हैं और उससे बाहर भी आधार हैं। लेकिन बाहर वाले संबंधों से इसे लेना-देना नहीं है लेकिन वह तो भ्रांति से ऐसा मानता है कि ये मेरे संबंध हैं।

किस रास्ते से हो सकते हैं निरालंब?

प्रश्नकर्ता : क्या इस निरालंब स्थिति की परिभाषा कौन सी कही जा सकती है? निरालंब दशा की परिभाषा किसे कहा जाएगा?

दादाश्री : किसी भी प्रकार के अवलंबन के बिना रहना। पूरी दुनिया अवलंबन वाली है। *पुद्गल* का कुछ न कुछ सहारा रहता है जबकि इसमें *पुद्गल* का सहारा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् देखने में अवलंबन दिखाई देता है लेकिन वास्तव में कोई अवलंबन नहीं होता।

दादाश्री : अवलंबन नहीं होता। देखने में दूसरे लोगों को दिखाई देता है। अवलंबन कम करते-करते जाना है न!

प्रश्नकर्ता : अच्छा! अर्थात् मूल मार्ग ऐसा है। निरालंब दशा प्राप्ति का मार्ग ऐसा है।

दादाश्री : अवलंबन कम करते-करते जाना है।

प्रश्नकर्ता : इसमें अवलंबन की ज़रूरत क्यों महसूस होती है?

दादाश्री : अवलंबन की भक्ति की है, इसलिए।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* की भक्ति की है, इसलिए। अतः परिणाम स्वरूप यह हूँफ देता है?

दादाश्री : परिणाम स्वरूप उसकी मनचाही इच्छा पूर्ण होती है।

प्रश्नकर्ता : तो *हूँफ* (सहारा, सलामती, सुरक्षा, रक्षण) की वजह से वे सब पौद्गलिक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। इस *हूँफ* की वजह से, ऐसा कह रहे हैं?

दादाश्री : इच्छा पूर्ण हो गई तो *हूँफ* पूर्ण हो जाती है। वह भी पहले की गई इच्छाओं के जितने परिणाम आते हैं, उतनी *हूँफ* रहती है, असल में यह वास्तविक नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अपने ज्ञान के बाद में उसे खुद को शुद्धात्मा पद प्राप्त हुआ, इसलिए ऐसा कहा जाएगा कि उसे निरालंब दृष्टि प्राप्त हो गई?

दादाश्री : निरालंब ही है उसकी।

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान के बाद। लेकिन अंदर जो उत्पन्न होता है या फिर जो अंदर रहे हुए परिणाम हैं, उनका *निकाल* किस तरह से होता है?

दादाश्री : वह कड़वा ज़हर जैसा लगता रहता है इसलिए छूटता जाता है।

प्रश्नकर्ता : अतः जहाँ-जहाँ *हूँफ* ली जाती है, जो-जो अवलंबन लिए हैं अथवा लिए जाते हैं, वे कड़वे ज़हर जैसे लगने चाहिए?

दादाश्री : जब कड़वा लगता है तो छूट ही रहा होता है। जितने संयोग उतने ही अवलंबन।

प्रश्नकर्ता : इसमें अवलंबन छोड़ने के लिए एक दूसरा रास्ता भी हो सकता है न अर्थात् ज्ञान की जागृति से भी अवलंबन छूट सकता है न?

दादाश्री : यदि ज्ञान जागृति है तो अवलंबन है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर अवलंबन है ही नहीं?

दादाश्री : अभी तक उसे दूसरे की हैबिट है इसलिए।

प्रश्नकर्ता : वह चीज़ मीठी लगती है। अवलंबन के ज़्यादातर कारण कौन से हो सकते हैं?

दादाश्री : इच्छाओं के कारण।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है, लेकिन बाधक अवलंबन कौन-कौन से हैं? जैसे कि उदाहरण के तौर पर घर का अवलंबन है, पत्नी का अवलंबन है।

दादाश्री : अरे, उन्हें तो गिनना ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वे नहीं? तो?

दादाश्री : वह सब तो एक बड़ा-बड़ा हो गया। यह तो एक सर्कल की बात की है कि पाँच-सात संयोग हैं, स्त्री है, घर है, ऐसे तो

करोड़ों संयोग हैं। सिर्फ स्त्री ही नहीं, सब को पार कर लिया है। सिर्फ पाँच-सात संयोग बचे हैं।

लेकिन फिर भी वहीं से निरालंब कहलाने लगता है, पाँच-सात संयोग हों फिर भी!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् कुछ हद तक की निरालंब स्थिति प्राप्त हो जाती है?

दादाश्री : निरालंब होने पर ही वह खुद अपने आपको देख सकता है। देख सकना, शब्दरूपी नहीं है। शब्द तो अवलंबन है।

प्रश्नकर्ता : उसे खुद को पता चलता है कि वह खुद अवलंबनों की पकड़ में है?

दादाश्री : सभी कुछ पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : तो उससे छूटने के लिए क्या उपाय है?

दादाश्री : कड़वे ज़हर जैसा लगना चाहिए वह। क्या पता नहीं चलेगा कि यह मीठा लग रहा है और यह कड़वा लग रहा है?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जहाँ-जहाँ मीठा लगता है अथवा कड़वा लगता है तो अभी तक वे अवलंबन पड़े हुए हैं।

दादाश्री : संयोग मात्र अवलंबन है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन संयोग तो आपको भी मिलते हैं फिर भी आपकी स्थिति निरालंब है, वह किस प्रकार से?

दादाश्री : हमें तो संयोगों की ज़रूरत नहीं हैं और बाकी ये जो सब मिलते हैं उनका हम *निकाल* कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : मतलब? क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं कि अभी जो संयोग मिलते हैं, वे पहले के किसी अवलंबन का परिणाम हैं?

दादाश्री : इच्छाओं का परिणाम हैं।

प्रश्नकर्ता : पहले की?

दादाश्री : अभी इच्छाएँ नहीं रही और पहले की इच्छाओं के परिणाम स्वरूप अभी संयोग मिलते हैं लेकिन वे कड़वे ज़हर जैसे लगते हैं, अच्छे नहीं लगते।

प्रश्नकर्ता : तो जैसे-जैसे उनका *निकाल* होता जाएगा वैसे-वैसे और अधिक निरालंब स्थिति उत्पन्न होगी?

दादाश्री : हो ही चुकी है हमारी तो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उन संयोगों का *निकाल*...

दादाश्री : उनका *निकाल* हो ही रहा है क्योंकि प्रत्येक संयोग को देखते हैं, ज्ञाता-दृष्टा बन जाते हैं! फिर भी थोड़े बहुत रह जाते हैं लेकिन खुद का स्वरूप दिख जाता है। उसके आधार पर संयोगों का पूर्णतः नाश कर सकते हैं, वर्ना कर ही नहीं सकेंगे न!

प्रश्नकर्ता : जब खुद का स्वरूप दिखने लगे तभी फिर वह अवलंबन, अवलंबन रूपी नहीं रहेगा न?

दादाश्री : खुद अपने आपको देख सके तभी से निरालंब होने लगता है। अभी, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उस सर्कल में आया है।

प्रश्नकर्ता : अपने ये सभी महात्मा?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : हं। यह शुद्धात्मा पद भी निरालंब स्थिति लाए, ऐसा पद है न? अतः जैसे-जैसे इन फाइलों का *निकाल* होता जाएगा वैसे-वैसे वह आता जाएगा, निरालंब स्थिति वाला पद?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : हमने दो प्रकार के अवलंबन कहे हैं, एक तो मिठास वाले अवलंबन और दूसरे कड़वाहट वाले अवलंबन। ठीक है न?

दादाश्री : दो प्रकार के संयोग होते ही हैं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो वे दोनों प्रकार के अवलंबन अंदर खड़े होते हैं लेकिन यदि खुद वहाँ से हट जाए तो क्या वह निरालंब स्थिति की तरफ जा सकता है?

दादाश्री : कैसे हट पाएगा लेकिन?

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान की जागृति से। बाहर संयोग हों लेकिन अंदर जागृतिपूर्वक हट जाए तो?

दादाश्री : लेकिन हटेगा कैसे? वह ज्ञाता-दृष्टा रह पाए तभी कहा जाएगा कि वह हट गया।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि आज व्यवहार और संयोग आपके आसपास भी हैं और महात्माओं के आसपास भी व्यवहार व संयोग हैं लेकिन क्या इसमें बीच में कुछ ऐसा है जो कि आपको निरालंब स्थिति में रख सकता है।

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वही पद।

दादाश्री : वीतराग रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा किस प्रकार कह सकते हैं कि वह ज्ञाता-दृष्टा पद में रहा?

दादाश्री : वह उसे खुद को पता चल जाता है। वह मना ही करेगा कि 'मैं नहीं रहा हूँ'।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा भी कहा था कि 'हमने वह स्वरूप देख लिया है इसलिए इस तरफ निरालंब स्थिति रह सकती है', तो क्या ज्ञाता-दृष्टापने में भी ऐसा ही है?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टापद का तो खुद को पता चल जाता है न,

आपको पता चलता है न? उपयोग में रहते हैं, कहाँ उपयोग रहता है, सबकुछ पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : तो पूछना यह था कि फिर ज्ञाता-दृष्टापना रहना और स्वरूप दिखाई दे जाना, ये दोनों स्थितियाँ एक ही हैं या दोनों में अंतर है?

दादाश्री : अलग अलग हैं। ज्ञाता-दृष्टा हर एक व्यक्ति रह सकता है न!

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब स्वरूप दिखाई देना उत्तम है।

दादाश्री : वैसा है ही नहीं किसी को।

प्रश्नकर्ता : अर्थात्? अपने महात्माओं में किसी को भी नहीं?

दादाश्री : हो ही नहीं सकता न। उनका काम भी नहीं है। बेकार ही पूछ रहे हो! ये सभी संयोगी चीज़ें मिल जाएँ, जीवन टेन्शन रहित हो जाए, हास्य उत्पन्न हो जाए, वह सब मिल जाए उसके बाद स्वरूप दिखाई देता है। यह क्या कोई गप्प है? अभी तो आज्ञा में रहो। समझना अलग चीज़ है और आज्ञा में रहना अलग चीज़ है। बस और कुछ भी नहीं।

अभी आज्ञा में रहो, बस इतना ही। जब उसका फल आएगा तब न! अभी पढ़ रहे हैं फर्स्ट स्टैन्डर्ड में, सेकन्ड स्टैन्डर्ड या चौथे में, पाँचवें में, बेकार ही क्यों उछल-कूद करें, मैट्रिक तक! अभी तो हास्य उत्पन्न नहीं हुआ है, टेन्शन गए नहीं हैं। समझना अलग चीज़ है लेकिन बिना बात के बेकार ही भटकना, छलांग लगाना, इससे तो नीचे जाकर खो जाएँगे। अत: आज्ञा में रहकर धीरे-धीरे आगे बढ़ो न! आज्ञा में रहना और कल्याण की भावना करना। यह इस जन्म में पूरा होगा या अभी और कितने जन्म होंगे, उसका ठिकाना नहीं है न! बेकार ही उछल-कूद क्यों करें!

हूँफ का स्वरूप

अवलंबन की बात आप समझ गए न? जीवमात्र अवलंबन ढूँढता

है, *हूँफ*। लोग उसे *हूँफ* कहते हैं। रात को अगर बंगले में अकेले सोना पड़े तब भी कहेगा, 'किसी को बुला लाओ न!' अब अगर पाँच लोग उसे मारने आएँ तो उस समय वह उसे बचा लेगा क्या? बल्कि अगर वह डरपोक होगा तो मार खिलाएगा।

प्रश्नकर्ता : *हूँफ* के बिना रह नहीं सकता, घबरा जाता है।

दादाश्री : हाँ, वही मैं कह रहा हूँ न! इसलिए यह कहते हैं कि तू वीतराग बन जा! तुझे यह क्या झंझट है? इसलिए हम कहते हैं न कि निर्भय बन जाओ। किसी की ज़रूरत नहीं है। हम ज्ञान देते ही उसे ऐसा कहते हैं कि 'भाई, तू शुद्धात्मा है'। तू दर्पण में देखकर पीछे थपथपाए न, तब भी किसी की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। उसके बाद ज़रूरत पड़ेगी क्या? 'चंदूभाई, मैं हूँ आपके साथ' ऐसा कहना, तो फिर क्या वह कोई शिकायत करेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं करेगा।

दादाश्री : यह तो ऐसा है कि किसी और के बिना ज़रा सा भी नहीं चलता। अब अगर उसे लाए, और वह अगर घबरा जाएगा तो बल्कि मार खिलाएगा।

अगर पति पत्नी के साथ न हो तो उसे *हूँफ* नहीं रहती। *हूँफ* के लिए ही है। बच्चे को उसकी माँ की *हूँफ* है, इसलिए वह अकेला नहीं रहता। किसी को पति की *हूँफ* रहती है। अतः यह *हूँफ* है। अब हूँफ अलग चीज़ है और आधार अलग चीज़ है। आधार लोड वाला होता है और *हूँफ* अर्थात् उसके मन में है कि वह साथ में है। अगर साथ वाला सो जाए तो भी उसे कोई हर्ज नहीं है लेकिन जब तक वह नहीं आए तब तक उसे नींद नहीं आती। उसके आने के बाद ही नींद आती है।

हूँफ, *हूँफ* और *हूँफ*। उसे *हूँफ* अच्छी लगती है, वही पसंद है। हूँफ शब्द समझने जैसा है। व्यापार में भी *हूँफ* की ज़रूरत रहती है। *हूँफ* यानी जब वह रोए तब अगर उसके साथ में कोई रोने लगे तो उसे मज़ा आता है। अकेले रोना अच्छा नहीं लगता।

प्रश्नकर्ता : व्यापार में भी *हूँफ* ढूँढने से मार पड़ी।

दादाश्री : हाँ, और *हूँफ* हमेशा ज़िंदगीभर एक सरीखी रहे ऐसा नहीं रहता न, सिन्सियर। सिन्सियरली नहीं रहता न!

शादी इसीलिए करते हैं न, कि ज़िंदगीभर सिन्सियरली *हूँफ* मिलेगी। शादी करने से तो *हूँफ* मिलती है। हूँफ नहीं हो तो घबराहट हो जाती है उसे। घर पर नहीं मिले तो बाहर हूँफ ढूँढता है। सिर्फ ज्ञानीपुरुष को ही *हूँफ* की ज़रूरत नहीं है। ज्ञानी निरालंब होते हैं।

मोक्ष में जाने के लिए बहुत मज़बूत बनना पड़ेगा इसलिए कुदरत मज़बूत बनाती है।

प्रश्नकर्ता : इसके बावजूद भी पति और बेटे की चिंता नहीं रहती लेकिन फिकर क्यों रहती है?

दादाश्री : वह तो रहेगी न भाई। एक महीना देखना, अकेले सो जाना इस रूम में। इस रूम में अकेले सो सकते हो? एक महीने तक? हं?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : इसका मतलब तो अंदर *हूँफ* चाहिए। तो *हूँफ* की ही झंझट है।

प्रश्नकर्ता : तो ये सब आवरण मोक्ष के लिए बाधक ही हैं न?

दादाश्री : *हूँफ* रहित जीवन, वही मोक्ष कहलाता है। *हूँफ* परवशता है। हम अकेले हों तो नौकर से कहते हैं कि, 'भाई यहाँ आकर सो जाना न!' अगर एक दिन नहीं आए तो हमारे मन में ऐसा लगता है कि 'अरे, यह बेचारा आ जाए तो अच्छा है! मैं पूरी रात क्या करूँगा?' यह *हूँफ* है। वह दूसरी तरफ सो जाए, तो फिर हमें क्या दे देता है? *हूँफ* है न!

प्रश्नकर्ता : यह जो *हूँफ* है, क्या यह भी भोजन और नींद जितनी मादकता लाती है?

दादाश्री : नहीं ऐसा नहीं है। भय है। 'कोई आ जाएगा कुछ हो जाएगा, क्या होगा?'

प्रश्नकर्ता : नहीं दादा! पति और बेटे के लिए ऐसे भय की वजह से कहाँ करते हैं? क्या वह मोह नहीं है, मोह?

दादाश्री : हाँ, वह मोह तो है ही। भय की वजह से मोह किया है। भय नहीं होता तो मोह ही नहीं करते। उसमें हूँफ ढूँढते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसमें प्रेम नहीं है?

दादाश्री : नहीं है। प्रेम तो भला कहीं पर होता होगा?

प्रश्नकर्ता : आसक्ति है यह सारी?

दादाश्री : तो और क्या? वहाँ पर ये प्याले पास-पास में रखें रहें, तो क्या इसका मतलब यह है कि सब एक-दूसरे के प्रति प्रेम वाले हैं? देखो, रकाबियाँ साथ सो जाती हैं। क्या वे प्रेम वाली हैं?

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी सरस्वती तो क्या कमाल की है? ऐसा तो सुना ही नहीं था कहीं!

दादाश्री : नहीं हो सकता। वह रकाबी तो रकाबियों के साथ पड़ी रहती है और कप, कप के साथ पड़े रहते हैं। क्या प्याले और रकाबी के बीच प्रेम हो सकता है? प्रेम तो दादा का है जो घटता-बढ़ता नहीं है। फूल-माला पहनाने पर भी जो बढ़ता नहीं है और कुछ टेढ़ा-मेढ़ा करने पर भी जो कम नहीं होता, वह प्रेम कहलाता है।

अत: हम निरालंब कहलाते हैं। अवलंबन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, जो निरालंब रहते हैं, उन्हें कुदरत भी हेल्प करती है न?

दादाश्री : किसी-किसी जगह पर हेल्प नहीं करती। किसी-किसी की हेल्प करे तो बाद में उसकी शर्म रखनी पड़ती है। उसका उपकार मानना पड़ता है। वह निरालंबपना नहीं कहलाता।

यदि हूँफ लो तो ज्ञानी की ही

प्रश्नकर्ता : अतः जिसे ज्ञानी की *हूँफ* मिल जाए तो क्या फिर वह ज्ञानी की *हूँफ* के सहारे निरालंब हो सकता है?

दादाश्री : हो सकता है न! निरालंब होने का रास्ता यही है न!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की *हूँफ* नहीं मिले तो? तो फिर निरालंब नहीं हो सकते?

दादाश्री : तो बेचारा पत्नी की *हूँफ* ढूँढेगा, पत्नी की *हूँफ* नहीं मिलेगी तो दोस्त की ढूँढेगा, लेकिन किसी की *हूँफ* तो ढूँढेगा ही न!

प्रश्नकर्ता : फिर वह भटक नहीं जाएगा? अगर ज्ञानी की *हूँफ* नहीं मिले तो...

दादाश्री : भटक ही गए हैं न, देखो न!

प्रश्नकर्ता : अतः *हूँफ* ज्ञानी की ही होनी चाहिए?

दादाश्री : हाँ, लेकिन ज्ञानी मिलते नहीं है न! किसी-किसी काल में ही होते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब हों तो मिलने चाहिए न? ज्ञानी मिल जाएँ तब भी उनकी *हूँफ* मिलनी चाहिए न?

दादाश्री : नहीं मिलते। पूरी दुनिया *हूँफ* ढूँढ रही है। हूँफ! अपना गुजराती शब्द है! अब *हूँफ* की वजह से ही तो जी रहे हैं लोग। 'फलाने भाई की *हूँफ* है तो मुझे अच्छा रहता है', कहेगा। उसमें भी फिर जो पत्नी है वह पति की *हूँफ* में रहती है, बेटी बाप की *हूँफ* में रहती है लेकिन किसी न किसी की *हूँफ* रहती है। *हूँफ* के आधार पर रहते हैं। सिर्फ ज्ञानी को ही *हूँफ* वगैरह की ज़रूरत नहीं है। यदि *हूँफ* रहे न, तब तो वह परतंत्रता है। *हूँफ* नहीं रहनी चाहिए। भगवान की भी *हूँफ* नहीं रहनी चाहिए। भगवान भी, परतंत्रता! अरे फिर से दुःख। भगवान जाएँ, उनकी महारानी हों या उनके जो कोई भी हों, वहाँ पर जाएँ। हमें क्या

लेना-देना? हमें *हूँफ* की ज़रूरत नहीं है। यह तो मैं ध्येय बता रहा हूँ। अभी तो आपको अपना काम निकालना बाकी है। इसका तो आपको ध्येय रखना है।

अंत में कभी न कभी निरालंब होना ही पड़ेगा न? तब तक अवलंबन तो लेना पड़ेगा! सत् के अवलंबन लेने पड़ेंगे।

ज्ञानीपुरुष से ज्ञान मिला, फिर तभी से निरालंब होने लगते हैं। अभी तक संपूर्ण निरालंब नहीं हुए हैं। निरालंब होने की शुरुआत हो चुकी है तब तक *हूँफ* ही ढूँढता रहता है। पूरी रात में क्या कोई खा जाएगा? साथ वाला भी सो जाता है और यह भी सो जाता है। किसकी *हूँफ* ढूँढ रहा है? लेकिन जब तक संसार जागृति है तब तक *हूँफ* है लेकिन आत्मा हो जाने के बाद *हूँफ* नहीं रहती। धीरे-धीरे भय कम होते जाते हैं। आप आत्मा हो गए हैं न, अब भय कम लगते हैं न?

प्रश्नकर्ता : किसी का भी भय नहीं, निर्भय!

दादाश्री : जबकि इस दुनिया के लोग तो, अगर रात को अकेले रहना हो, तब भी *हूँफ* ढूँढते हैं। अकेले को तो नींद भी नहीं आती। *हूँफ* ढूँढते हैं दुनिया के लोग।

अब मैंने आपको निरालंब बना दिया है। अब जो *हूँफ* ढूँढते हो न, वह तो सारी डिस्चार्ज है। अभी आप निरालंब हो लेकिन आपका निरालंब एक्ज़ेक्ट निरालंब नहीं कहलाएगा। आप शब्दावलंबन स्थिति में आ गए हो, बहुत बड़ी स्थिति कहलाती है। यह पद तो देवी-देवताओं को भी नहीं मिलता। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने किसी ने नहीं देखा है ऐसा पद है यह, इसलिए काम निकाल लेना।

इतनी सेफसाइड और इतना आनंद! भीतर, सुख के लिए उन्हें अन्य किसी की ज़रूरत ही नहीं है। खुद अपने स्वभाव से ही सुखमय अर्थात् निरालंब है, जिसे आलंबन की ज़रूरत ही नहीं है ऐसा आत्मा दिया है। दादा अठहत्तर साल की उम्र में कैसे रहते हैं। नहीं? अवलंबन की वजह से तो परवशता हो गई है। अवलंबन ही परवशता है न?

अंत में छूटे ज्ञानी का अवलंबन

प्रश्नकर्ता : जब तक एब्सल्यूट नहीं हो जाते, क्या तब तक ज्ञानी का आधार लेना पड़ेगा?

दादाश्री : हाँ, शुद्धात्मा का आधार, दादा का आधार। समुद्र में बेटे को यों हाथ में उठा रखा हो, वह बच्चा नीचे यों पैर हिलाकर देखता है कि पैर तले तक पहुँच रहे हैं या नहीं! वह देखता तो है लेकिन अगर नहीं पहुँचते तो वापस हम से चिपट जाता है लेकिन जब पैर नीचे लग जाएँ तो हमें हटाकर छोड़ देता है। हमें धीरे-धीरे छोड़ने लगे तो क्या हम नहीं समझ जाएँगे कि, 'अरे इसके पैर नीचे तक पहुँच गए हैं'। पैर पहुँच जाएँगे तो छोड़ नहीं देगा? छोड़ देगा! उसके पैर नीचे लगने चाहिए। उसी प्रकार आप तभी तक मुझसे चिपटे हुए हो न! जब आपके पैर नीचे तक पहुँच जाएँगे तो आपको मुझे छोड़ देना है। इस अवलंबन को भी छोड़ देना है। शब्दों का अवलंबन कब तक रखना हैं? आपके पैर नीचे तक न लग जाएँ, तब तक। आप खुद निरालंब हो जाओगे तब यह छूट जाएगा। अपने आप ही छूट जाएगा। तब तक दादा के अवलंबन की ज़रूरत है, शुद्धात्मा के अवलंबन की ज़रूरत है। दादा के ही पीछे घूमते रहो, वे जहाँ जाएँ, वहाँ। यदि अवकाश दें तो। अवकाश कौन देगा? आपके उदयकर्म आपको अवकाश देंगे तो दादा के पीछे घूमते रहना और अगर अवकाश नहीं दें तो ऐसा तय करो कि कब मुझे अवकाश प्राप्त होगा?

व्यवहार व निश्चय के आलंबन

प्रश्नकर्ता : हम सभी में ज़रा-ज़रा सी मूर्च्छा रह जाती है। अभी तो सभी अवलंबन हैं न।

दादाश्री : ऐसा करते-करते कम होते जाएँगे। पहले जो अवलंबन थे, कि अंदर वरीज़ हुई कि चल सिनेमा देखने चलें तो अब दूसरा अवलंबन पकड़ा। उससे अवलंबन बढ़ते जाते हैं बल्कि। अब अवलंबन घटते जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले व्यक्तियों के अवलंबन होते हैं न! इस सिनेमा वगैरह का अवलंबन तो जल्दी से फेंका जा सकता है। लेकिन अब जो व्यक्तिगत...

दादाश्री : नहीं। वह फेंकने से नहीं छूटेगा। वह तो अपने आप ही कम हो जाएँगे, न जाने कहाँ चले जाएँगे!

प्रश्नकर्ता : लेकिन व्यक्तियों के अवलंबन रहा करते हैं।

दादाश्री : वे तो धीरे-धीरे चले जाएँगे न, वह तो हिसाब है... व्यक्तियों के तो। अवलंबन अर्थात् इनके बगैर मेरा नहीं चलेगा। ऐसा नहीं लेकिन ये सब हिसाब हैं। आमने-सामने हिसाब हैं सारे। कॉम्प्लेक्स है सब लेकिन उससे कोई परेशानी नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे कॉम्प्लेक्स छूटेंगे कैसे? वे ऑटोमैटिक ही छूट जाएँगे?

दादाश्री : नहीं-नहीं, और व्यवहार अवलंबन तो हमें इन नीरू बहन का है। इन सब का अवलंबन ही है न! वास्तव में निश्चय अवलंबन का मतलब क्या है कि जिसका आधार लेने पर, अंदर अगर कोई अड़चन आए, तब उसका (आत्मा का) अवलंबन लेते हैं। व्यवहार वाले को तो सबस्टिट्यूट की तरह रखते हैं।

प्रश्नकर्ता : किस तरह से?

दादाश्री : 'पर' में चिपक जाता है वापस। 'पर' में से स्व में जाने के लिए तैयार हुआ, और वापस अवलंबन, बाहर का ही अवलंबन, इससे वापस 'पर' में चिपक जाता है। दूसरे में चिपक जाता है। इसका नहीं तो उसका (अवलंबन) लेता है। क्या लोग ऐसा नहीं सोचते? चिंता होने लगे तब दूसरे विचार करने लगता है, सिनेमा देखने चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसके लिए क्या करना चाहिए? उसका क्या उपाय है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। अभी तो उसके लिए दूसरा अवलंबन

लेना पड़ेगा। जब तक हमारे पैर नीचे न लग जाए, हम समुद्र में उतरें तो इतना पानी होता है, जब तक पैर नीचे नहीं लग जाएँ तब तक तो वह करना पड़ेगा न! और वही सब तो हो रहा है। इसके लिए अब तुझे और कुछ नहीं करना है। बात को सिर्फ जानना ही है। जानोगे तो वह फिट होता ही रहेगा, अपने आप ही। जानकर समझ लेना है। वास्तव में ज्ञान का मतलब क्या है कि जानना और समझना। अपने आप ही अंदर काम करता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : जानते हैं फिर भी मूर्च्छा की एक ज़बरदस्त लहर आ जाए तो वापस वह घेर लेती है। जानने के बावजूद भी ऐसा हो जाता है।

दादाश्री : ऐसा है न हमने तो पिछले कितने ही जन्मों से इसकी शुरुआत कर दी थी। और आपने कितने जन्मों से शुरुआत की है? तो कहते हैं, 'अभी कुछ ही सालों से'। कुछ ही सालों की शुरुआत से यदि इतना ज़ोरदार हुआ है तो वे सब तेज़ी से खत्म हो जाएँगे, इस बात का तो विश्वास हो गया है न? दादा की याद आते ही अंतर शांति हो जाती है न जल्दी से?

प्रश्नकर्ता : तुरंत।

दादाश्री : बस तो फिर! यह सब से बड़ा उपाय है वर्ना एक बार अगर भय घुस जाए तो फिर पूरी रात निकलेगी क्या? और यदि दादा का अवलंबन लिया तो? तमाम दुःख मिट जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए एक बार आपने बहुत सुंदर वाक्य कहा था कि वीतरागों का अवलंबन, वह अवलंबन नहीं है।

दादाश्री : हाँ, सही बात है। वह अवलंबन वास्तव में अवलंबन है ही नहीं। और हमें भी निरालंब बनाता है।

प्रश्नकर्ता : वीतरागों का अवलंबन, अवलंबन नहीं है। उसमें आत्मा के सभी गुण आ जाते हैं?

दादाश्री : सही बात है।

आज्ञा-चारित्र में से दरअसल में

इन पाँच आज्ञाओं का पालन करने से चारित्र उत्पन्न होता है। पाँच आज्ञा का पालन प्रथम चारित्र है, आज्ञा चारित्र है और उसके बाद दरअसल चारित्र आएगा।

प्रश्नकर्ता : उनमें से जो परिणामित होगा, वह असल चारित्र है। जब आचरण में परिणामित होगा तब वह असल चारित्र है।

दादाश्री : निराधार बन जाए, वह असल है। यह साधारी है, आज्ञा का। आज्ञा का आधार है, बाद में निराधार हो जाएगा। निरालंब! कोई अवलंबन नहीं। यह पूरा जगत् अवलंबन की वजह से खड़ा है।

प्रश्नकर्ता : फिर आज्ञा रहेगी ही नहीं? तो फिर आज्ञा का क्या होगा?

दादाश्री : वे गायब हो जाएँगी। वहाँ पर ज़रूरत ही नहीं रही। किनारा आने के बाद क्या हमें नाव पर दया रखनी पड़ेगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं जी।

दादाश्री : हमें तो उतरकर चले जाना है। नाव अपने आप ही वापस चली जाएगी। उसी प्रकार आज्ञा अपने घर चली जाएगी। हमें अपने घर चले जाना है। उतार दिया, डेक पर। किनारे पर उतार देते हैं न?

प्रश्नकर्ता : जी। किनारे पहुँचा दिया।

दादाश्री : पहुँचा दिया। ये आज्ञाएँ किनारे तक पहुँचा देंगी वर्ना थपेड़े खिलवाएगी।

रिलेटिव में से एब्सल्यूट की तरफ

कोई अवलंबन न रहे, उस तरह से निरालंब होकर बैठे हैं हम इसलिए हम पर चाहे कैसे भी प्रयोग करो फिर भी हमें स्पर्श नहीं करेंगे क्योंकि हमारा स्वरूप निरालंब है। अवलंबन वाले को पकड़ते हैं कि मैं

चंदूभाई हूँ, फलाना हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, वह भी अवलंबन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी! आपने कहा कि जो रिलेटिव है वह वर्ड में है, शब्दों में है और एब्सल्यूट निरालंब है तो रिलेटिव और एब्सल्यूट में क्या अंतर है?

दादाश्री : एब्सल्यूट तो बहुत बड़ी चीज़ है। इस शुद्धात्मा में आ गए न, तो आप मोक्ष के दरवाज़े के अंदर आ गए। आप ऐसे दरवाज़े में प्रवेश कर चुके हो कि अब आपको कोई बाहर नहीं निकाल सकता। लेकिन फिर भी यह सापेक्ष है। सापेक्ष क्यों? वह इसलिए कि अगर आज्ञा का पालन करोगे तभी, वर्ना अगर आज्ञा पालन नहीं करोगे तो बाहर निकाल देंगे। आपके पास यह सापेक्ष है। अतः अंदर आ चुके हो और अगर ज़्यादा नहीं तो पचास-साठ प्रतिशत आज्ञा का पालन करो। हंड्रेड परसेन्ट पालन नहीं किया जा सकता, मैं जानता हूँ कि यह काल विचित्र है, लेकिन पचास-साठ प्रतिशत भी यदि आज्ञा का पालन करते हो तो आपको कोई बाहर नहीं निकालेगा।

प्रश्नकर्ता : तो अभी तक यह निरालंब की सीढ़ी बाकी है ना? एब्सल्यूट की सीढ़ी बाकी है ना?

दादाश्री : आपने अब इस मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश कर लिया है तो अब क्यों कन्फ्यूज़ हो रहे हो? दरवाज़े में घुसने ही कौन दे? लाख जन्मों में भी कोई घुसने न दे। प्रवेश कर लिया है तो उसका आनंद मनाओ न! अब फिर एक पद बाकी रहा है तो क्या उसकी चिंता करनी है? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : समझने के लिए पूछा है।

दादाश्री : हाँ। खुद अपने आप को धन्य मानो। 'धन्य है मुझे कि मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश कर लिया है', ऐसा धन्य मानो। यदि मन पर आगे की चीज़ का बोझ रखोगे न तो मन में ऐसा रहा करेगा कि हमें वह पद नहीं मिला है, वह पद नहीं मिला है।

प्रश्नकर्ता : दादा, उस बोझ को हल्का करने के लिए आपसे प्रार्थना की है।

दादाश्री : वह ठीक है। आपको बोझ नहीं रखना है। वह तो अपने आप ही सामने आकर रहेगा अब। इन आज्ञाओं का पालन करोगे न, तो वह पद सामने आ जाएगा। मुझे साफ-साफ कह देना चाहिए न, कि यह क्या है! करेक्टनेस तो आनी चाहिए न! केवलज्ञान! एब्सल्यूट! फॉरेन वाले समझते हैं एब्सल्यूट को। अतः हमने फॉरेन वालों को लिख दिया है कि 'हम थ्योरी ऑफ एब्सल्यूट में नहीं हैं, थिअरम ऑफ एब्सल्यूटिज़्म में हैं'। थिअरम अर्थात् उसके अनुभव में ही है।

प्रश्नकर्ता : संपूर्ण जागृति ही केवलज्ञान है?

दादाश्री : संपूर्ण। और अभी जो आपकी जागृति बढ़ी है वह संपूर्ण होने की तैयारी कर रही है। संपूर्ण जागृति को ही निरालंब कहते हैं। अभी तो अवलंबन है, अभी तो आपको मेरे पास आना पड़ता है या नहीं? आपको मेरा अवलंबन लेना पड़ता है या नहीं? यह अवलंबन कहलाता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह अवलंबन है। अभी ज्ञान का लाभ मिल रहा है न पूरा-पूरा? किसी भी जगह पर समाधान दे, ऐसा है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, उसी पर से पूरा विचार आता है न! हम जो यह एब्सल्यूट शब्द कहते हैं, तो उससे कौन सा चित्र बनता है?

दादाश्री : यह मूल आत्मा है न, वह एब्सल्यूट है। उसे अन्य किसी की ज़रूरत नहीं है। एब्सल्यूट का मतलब क्या है? निरालंब। उसे किसी के अवलंबन की ज़रूरत नहीं है, खुद अपने प्राण से ही जी रहा है। यानी इस तरह का प्राण नहीं है। खुद अपने आपसे ही जी रहा है, निरंतर सुख! निरंतर आनंद! वही आत्मा है।

अब इस शुद्धात्मा पद की डिग्री में आए हैं, शुरुआत हुई है लेकिन अभी मूल आत्मा मीलों दूर है लेकिन आपने मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश कर लिया है। अब आपका मोक्ष हो गया है लेकिन यहाँ पर रुक मत जाना।

आपको समझ में आया न कि यह जो शुद्धात्मा प्राप्त हुआ है, वह अंतिम दशा नहीं है। वह तो इस बात का प्रमाण है कि मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश कर चुके हैं। मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश किया, वह तो शुद्धात्मा का अनुभव हुआ। *लक्ष* (जागृति) प्रतीति और अनुभव।

बाकी, अगर मन में ऐसा मान बैठें कि अब यह अनुभव पूरा हो गया, तो काम पूरा नहीं हुआ है! 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह आत्मा का अनुभव है, यह बात सही है। उसमें दो मत नहीं है! क्योंकि वह त्रिकाली बात है। कुछ काल (समय) के लिए नहीं है यह। आत्मा की सभी चीज़ें त्रिकालवर्ती होती हैं, कुछ ही काल के लिए हों, ऐसी नहीं होतीं। मुझे वह त्रिकाली अनुभव रहता है। आपको भी त्रिकाली रहता लेकिन आपके अंदर ये सारे बाधक हैं। संसार के सभी विघ्न।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह भी अवलंबन है, शब्द का अवलंबन। लेकिन वह उच्च प्रकार का अवलंबन है। वह मोक्षमार्ग का है। उसकी सुगंध अलग है ना? लेकिन उससे भी आगे जाना है, निरालंब बनना है। कितना ग़ज़ब का पुण्य है! यह बातें सुनने को भी न मिलें, शास्त्रों में नहीं हैं ये बातें!

प्रश्नकर्ता : तो एक-दो जन्मों में हो जाएँगे न निरालंब?

दादाश्री : हो ही जाओगे न! यह तो अपने आप ही सबकुछ हल्का हो गया है न! आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो गए, उससे इंसान एक अवतारी बनता है। यही नियम है और शायद अगर दो अवतार हो जाएँ, तब भी क्या नुकसान है? अब इतने सारे जन्म बिगाड़े हैं। हमें खुद को भी लगता है कि हल्के फूल हो गए हैं।

महाविदेह क्षेत्र में हमेशा तीर्थंकर रहते ही हैं। तो बोलो, जब देखो तब ब्रह्मांड तो पवित्र ही है न?

प्रश्नकर्ता : हम तो दादा का वीज़ा बता देंगे।

दादाश्री : वीज़ा तो बताना पड़ेगा, तो अपने आप ही काम हो

जाएगा। उससे तीर्थंकर को देखते ही आपके आनंद की सीमा नहीं रहेगी। पूरा जगत् विस्मृत हो जाएगा। जगत् का कुछ भी खाना-पीना अच्छा नहीं लगेगा। उस क्षण पूर्ण हो जाएगा। निरालंब आत्मा प्राप्त होगा। निरालंब! उसके बाद कोई अवलंबन नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा कहते हैं न कि 'आपको मेरा अवलंबन है, लेकिन मैं निरालंबी हूँ इसलिए कोई हर्ज नहीं है'?

दादाश्री : बात सही है न! लेकिन मेरा अवलंबन तो आपको रखना ही पड़ेगा, और मैं निरालंबी हूँ। अर्थात् आपका *ऊपरी* सिर्फ मैं अकेला रहा, और मेरा *ऊपरी* कोई है नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आप ज्ञानी की निशानियाँ बता रहे थे न, उसमें से एक निशानी यह है कि 'तेरे चाहे कैसे भी प्रश्न हों, उनमें से हर एक प्रश्न का जवाब देने के बजाय मैं तुझे ऐसी चीज़ दिखा देता हूँ कि तू ही तेरे सभी प्रश्नों का समाधान कर सके'।

दादाश्री : तेरे प्रश्नों का तू सॉल्यूशन ला दे। मैं कहाँ झंझट करूँ? और अभी तो पचास हज़ार लोग आएँगे, कल लाख लोग आएँगे, क्या कहा जा सकता है? मैं झंझट में कहाँ पड़ूँ? मेरा हेतु क्या है कि 'जो सुख मैंने प्राप्त किया, वह सुख तुम भी पाओ'। मेरा हेतु पूर्ण हो गया। बस हो गया! कितने ही लोग कहते हैं, 'दादाजी, हम छः-छः महीने तक नहीं आ पाते'। मैंने कहा, 'आपको आनंद रहता है न' तब कहते हैं 'हमें पूर्णाहुति का अनुभव होता है। दादा मेरे साथ हाज़िर रहते हैं'। तो बहुत हो गया, उसके बाद हमें ऐसा नहीं है कि यहाँ आओ या जाओ। जिनका अवलंबन लिया है, उन्हें अगर हम से कोई चीज़ चाहिए तो झंझट रहेगी। हमें तो यहाँ किसी से कुछ चाहिए ही नहीं।

सारा ज्ञान दे दिया है। आगे तो, सिर्फ मेरी स्थिति की वजह से ही मैं आगे रह सका हूँ। आपसे आगे तैर ही रहा हूँ इसलिए साथ रहने से आपको लाभ मिलता है। बाकी दूसरे सब लोग जो थोड़ा बहुत गुप्त रखते हैं वे तो बहुत घोटाले वाले हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। क्योंकि

ज्ञानी तो, जो होता है वह दे देते हैं। भले ही फिर वह हमारे पास न आए। हमने यह ज्ञान किसी को अपने पास बुलाने के लिए या सेवा करवाने के लिए नहीं दिया है। उसके उद्धार के लिए दिया है और मुझे सेवा की ज़रूरत भी नहीं है। मेरा उद्धार तो हो चुका है, सब हो चुका है। मुझे सेवा की क्या ज़रूरत है? इसलिए जो भी हो उसे, सबकुछ पूर्ण रूप से दे ही देते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह जो कहा है न, लेशमात्र भी जिसे इच्छा नहीं रहे।

दादाश्री : हाँ लेशमात्र किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं। भगवान के पास ही इच्छा नहीं रखी, तो आपके पास कैसे रखूँ? यह तो, बहुत कुछ पा लिया है। ऐसा तो कोई साधु-संन्यासी भी प्राप्त नहीं कर सकता, आपने ऐसा पाया है। अब उसके लिए असंतोष मत रखना।

थिअरम ऑफ एब्सल्यूटिज़म

प्रश्नकर्ता : यह वाक्य ज़रा समझना है, 'हम खुद थ्योरी ऑफ एब्सल्यूटिज़म में है। थ्योरी ही नहीं परंतु थिअरम में हैं'।

दादाश्री : हाँ! हमें कहने की खातिर 'थ्योरी में' कहना पड़ता है, बाकी, हम तो थिअरम में ही हैं। निरालंब में ही हैं। कोई अवलंबन नहीं रहा, ऐसी निरालंब स्थिति।

प्रश्नकर्ता : एब्सल्यूट स्थिति का वर्णन समझाइए ज़रा।

दादाश्री : एब्सल्यूट स्थिति अर्थात् 'पर-समय' बंद हो गया है। इस काल का छोटे से छोटा भाग, उसे समय कहा जाता है। यह जो पल है, यह समय नहीं है। उसके बहुत सूक्ष्म भाग को समय कहा जाता है। जहाँ एक समय भी पर-समय नहीं है, उसे एब्सल्यूट कहा जाता है और एब्सल्यूट हो जाने के बाद अवलंबन नहीं रहता, निरालंब स्थिति रहती है।

प्रश्नकर्ता : निरालंब स्थिति तो एब्सल्यूट हुए बगैर भी अनुभव की जा सकती है न?

दादाश्री : नहीं। एब्सल्यूट होने के बाद ही निरालंब हो सकते हैं। अत: जहाँ से एब्सल्यूट की शुरुआत हुई, उसके बाद से संपूर्ण एब्सल्यूट केवलज्ञान होने तक एब्सल्यूट स्थिति है। एब्सल्यूट की बिगिनिंग भी है और एन्ड भी है।

जहाँ निरालंब दशा, वहाँ निर्भयता, वीतरागता

आत्मा निरालंब है, बिल्कुल निरालंब है। वह ऐसा है कि उसे कोई भी चीज़ टच नहीं हो सकती। आपमें ऐसा आत्मा है और इनमें भी वैसा ही आत्मा है। फाँसी पर चढ़ा दिया जाए तो भी शरीर फाँसी पर चढ़ेगा, आत्मा नहीं। बोलो अब, वह आत्मा कैसा होगा? देह को बींध ले तो भी आत्मा नहीं बिंधता। बोलो फिर, जिसे ऐसा आत्मा प्राप्त हो गया है, उसे फिर कोई भय है?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल नहीं। फिर भय कैसा?

दादाश्री : पूरे जगत् में कोई चीज़ ऐसी नहीं है कि जो निरालंब को स्पर्श कर सके। चारों ओर एटम बम फट रहे हों और वह उनके बीच में हो, फिर भी निरालंब को स्पर्श नहीं कर सकेंगे।

निरालंब वही केवलज्ञान स्वरूपी आत्मा

गजसुकुमार मूल आत्मा के आधार पर सिगड़ी का ताप झेल सके थे। मनुष्य ऐसा प्रयोग करके देखे तो सही? अरे, कोई ज्ञानी भी ऐसा नहीं कर सकते। गजसुकुमार को तो अंतिम मूलभूत आत्मा प्राप्त हो गया था, नेमिनाथ भगवान से प्राप्त हुआ था।

प्रश्नकर्ता : नेमिनाथ भगवान ने गजसुकुमार को जो ज्ञान दिया था, क्या वह बहुत ही अलग प्रकार का ज्ञान था?

दादाश्री : हमें उस प्रकार का ज्ञान है लेकिन शरीर की उतनी स्थिरता नहीं है क्योंकि उनकी तो भगवान से ही बात हुई थी। नेमिनाथ भगवान की कृपा उतरी थी सीधी। वर्ना ज्ञान तो, जो हमारे पास है, वही ज्ञान था। अंतिम ज्ञान।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह कौन सा ज्ञान था?

दादाश्री : खुद के मूल स्वरूप का ज्ञान।

प्रश्नकर्ता : निरालंब आत्मा, उन्हें पूर्णतः प्राप्त हो गया था?

दादाश्री : चरम स्थिति वाला निरालंब आत्मा ही प्राप्त हो गया था, वर्ना सिगड़ी जलाने पर आत्मा हाज़िर नहीं रह पाता। कहीं और ही चला जाता। चरम आत्मा का मतलब यह नहीं है, वह नहीं है, फलाँ नहीं है, यह नहीं, वह नहीं। यह नहीं, वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं... वह। भगवान तू कैसा निरालंब!

भगवान ने उन्हें समझाया था कि, ''बहुत बड़ा उपसर्ग आ पड़े तब 'शुद्धात्मा', 'शुद्धात्मा' मत करना। शुद्धात्मा तो स्थूल स्वरूप है, शब्द रूपी है, उस समय तो सूक्ष्म स्वरूप में चले जाना।'' उन्होंने पूछा, 'सूक्ष्म स्वरूप क्या है?' तब भगवान ने समझाया था कि, 'सिर्फ केवलज्ञान ही है, अन्य कोई भी चीज़ नहीं'। गजसुकुमार ने पूछा, 'मुझे केवलज्ञान का अर्थ समझाइए'। भगवान ने समझाया, 'केवलज्ञान, वह तो आकाश जैसा सूक्ष्म है, जबकि अग्नि स्थूल है। जो स्थूल है, वह सूक्ष्म को कभी भी नहीं जला सकता। मारा जाए, काटा जाए, जलाया जाए तब भी खुद के केवलज्ञान स्वरूप पर कोई भी असर नहीं हो सकता'। जब गजसुकुमार के माथे पर अंगारे धधक रहे थे तब उन्होंने कहा 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ' और तभी खोपड़ी फट गई, लेकिन उन पर कोई भी असर नहीं हुआ!

'शुद्धात्मा' शब्द तो सिर्फ संज्ञा ही है। उसकी वजह से 'मैं शुद्ध ही हूँ, त्रिकाल शुद्ध ही हूँ', इस संज्ञा में रह पाते हैं। शुद्धता के प्रति निःशंकता उत्पन्न हो जाए, उसके बाद वाला पद है 'केवलज्ञान स्वरूप' 'अपना'! आप (महात्मा) 'शुद्धात्मा' के रूप में रहते हो, हम 'केवलज्ञान' रूप में रहते हैं!

पूरे वर्ल्ड का अद्‌भुत पुरुष है 'यह!' 'केवलज्ञान स्वरूपी' आत्मा को जान लिया, उसी को 'जानना' कहते हैं।

'केवलज्ञान स्वरूप' अर्थात् 'एब्सल्यूट' ज्ञान स्वरूप है। केवलज्ञान आकाश जैसा है। आकाश जैसा स्वभाव है, अरूपी है! आत्मा आकाश जैसा सूक्ष्म है। आकाश को यदि अग्नि स्पर्श करे तो वह जलता नहीं है। अग्नि स्थूल है। बाकी सभी चीज़ें आत्मा की तुलना में स्थूल हैं!

केवलज्ञान स्वरूप कैसा दिखाई देता है? पूरे देह में सिर्फ आकाश जितना ही भाग खुद का दिखाई देता है। सिर्फ आकाश ही दिखाई देता है, अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता। उसमें कोई मूर्त चीज़ नहीं होती। यों धीरे-धीरे अभ्यास करते जाना है। अनादिकाल के अन्-अभ्यास को 'ज्ञानीपुरुष' के कहने से अभ्यास होता जाता है। अभ्यास हो जाने पर शुद्ध हो जाएगा!

गजसुकुमार ने जो आत्मा प्राप्त किया था, वह आत्मा हमारे पास है और तीर्थंकरों के पास भी वही आत्मा था। वह आत्मा ऐसा है कि इस काल में किसी को प्राप्त नहीं हो सकता। बात सही है। शुद्धात्मा से आगे बढ़ा, तो भी बहुत हो गया। शब्द से आगे बढ़ा कि 'यह तो शब्द का अवलंबन है' इतना समझने लगा तो वह वहाँ से निरालंब की तरफ जाएगा। फिर वह निरंतर निरालंब की तरफ जाएगा। शुद्धात्मा भी शब्द है न, अवलंबन शब्द का है जबकि मूल शुद्धात्मा ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ये सभी महात्मा जो हैं, वे सभी उस कक्षा तक पहुँच सकेंगे न?

दादाश्री : वह तो कभी न कभी पहुँचना ही पड़ेगा, और कुछ नहीं है। यह कक्षा कब प्राप्त होगी? जब तीर्थंकर को देखेंगे और दर्शन करेंगे तो वह कक्षा (स्थिति) हो ही जाएगी! सिर्फ दर्शन से ही वह कक्षा उत्पन्न हो जाएगी। आगे की कक्षा तो सिर्फ तीर्थंकरों के दर्शन करने से, उनकी स्थिरता को देखने से, उनके प्रेम को देखने से तो उत्पन्न हो जाएगी। वह शास्त्रों द्वारा किया जाए तो उत्पन्न नहीं हो सकती, वह तो देखने से ही हो जाता है।

जिन्हें खुद का आधार प्राप्त हो गया है, वे सभी ज्ञानी हैं। फिर

वे निरालंब हो सकेंगे। मुझे इस *पुद्गल* के अवलंबन की ज़रूरत नहीं है। अब तय हो गया है कि मुझे इसके, *पुद्गल* के अवलंबन की ज़रूरत नहीं है। उस अवलंबन के बिना ही मैं पार उतर जाऊँगा। इसके बावजूद भी अभी तक *पुद्गल* का अवलंबन लेना पड़ रहा है। वह तो अभी पिछला हिसाब है लेकिन तय हो गया है कि *पुद्गल* का अवलंबन नहीं होगा तो चलेगा। फिर वे निरालंब होने लगेंगे। जो *पुद्गल* का अवलंबन नहीं लें, वे परमात्मा हैं। जो खुद के आधार पर जीए, वे परमात्मा हैं। जो *पुद्गल* के आधार पर जीए, वह मनुष्य है (जीवात्मा)।

और वह आत्मा, जिसे तीर्थंकरों ने ज्ञान में देखा हैं, वही चरम आत्मा है और उस आत्मा को मैंने देखा है और जाना है। वह आत्मा ऐसा है कि पूर्ण रूप से निर्भय बना सके, संपूर्ण वीतराग रख सके, लेकिन अभी तक मुझे संपूर्ण रूप से अनुभव नहीं हुआ है। क्योंकि, केवलज्ञान नहीं होने की वजह से मुझे संपूर्ण अनुभव नहीं हुआ है। इतनी सी कमी है। बाकी, वह आत्मा तो जानने योग्य है!

हमारे कोई आलंबन नहीं हैं। वह इस काल में देखने को मिला न, निरालंब! राग-द्वेष रहित जीवन देखने को मिला। गुस्सा आने के बावजूद भी क्रोध नहीं कहलाता। परिग्रह होने के बावजूद अपरिग्रही ऐसा अपना जीवन देखने को मिला।

प्रश्नकर्ता : दादा ने कहा है कि तीर्थंकरों ने जो आत्मा देखा है और जो अनुभव किया है वैसा ही हमने अनुभव किया है। तो वह क्या वस्तु है?

दादाश्री : वह क्या है और क्या नहीं, लेकिन हमने वैसा ही देखा है।

प्रश्नकर्ता : मेरे *लक्ष* (जागृति) में यह रहा करता है लेकिन उस चीज़ को एक्ज़ेक्ट यों पकड़ नहीं पाते।

दादाश्री : उसमें टाइम लगेगा। शुद्धात्मा के दरवाज़े में प्रवेश कर लिया है, इसका मतलब मोक्ष होना तय हो गया। हम (सब) आज्ञा में रहते हैं, इसलिए।

मैं निरालंब आत्मा में हूँ। तीर्थंकरों में जैसा निरालंब आत्मा था, जिन्हें शब्द का भी अवलंबन नहीं था, ऐसा निरालंब आत्मा और इसीलिए यह सब काम तुरंत स्पीडिली हो सकता है। फेल हुआ तीर्थंकर ही कहो ना!

प्रश्नकर्ता : फेल क्यों हो गए?

दादाश्री : कोई ऐसा रोग रहा होगा, इसीलिए। रोग के बिना फेल नहीं हो सकते न! और हम उस रोग को समझ गए कि वह कौन सा रोग था! रोग निकल भी गया।

इसीलिए फेल हुए केवलज्ञान में

ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जिन्होंने शुद्धात्मा स्वरूप प्राप्त कर लिया है और वे उसके अनुभव में ही रहते हैं। लेकिन शुद्धात्मा स्वरूप शब्द का अवलंबन है और दूसरे प्रकार के ज्ञानी निरालंब होते हैं। तीर्थंकर ही निरालंब होते हैं। इसके बावजूद हम भी निरालंब हैं। हमारे लिए शुद्धात्मा स्वरूप शब्द में नहीं है। हम निरालंब आत्मा में हैं। जिसका कोई अवलंबन ही नहीं है। वह शब्द का अवलंबन और यह निरालंब है। ग्यारहवाँ आश्चर्य है!

हमें इससे क्या करना है? जब तक अवलंबन व परावलंबन रहें तब तक स्वावलंबन नहीं मिल सकता। अवलंबन का कोई तकिया रखा होगा तो फिर दूसरा नहीं मिल सकेगा। अगर तकिया ही नहीं रखा होगा तो क्या वह अवलंबन ढूँढेगा? हम निरालंब होकर बैठे ही हैं न! *आपोपुं* (*पोतापणुं*-मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन) चला गया।

उनके पास हर एक चीज़ हाज़िर रहती है। उनके माँगने से पहले ही, इच्छा होने से पहले ही चीज़ें आ जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : सभी भौतिक चीज़ें भी मिल जाती हैं उन्हें?

दादाश्री : हाँ। सभी भौतिक। हर एक चीज़ मिल जाती है उन्हें।

कुछ भी बाकी नहीं रहता। जिस चीज़ की इच्छा करे, वह मिल जाती है और मेहनत कितनी? इच्छा करने जितनी ही। बाकी सब मेहनत तो मज़दूरों को करनी होती है अथवा विकल्पियों को करनी होती है। निर्विकल्पी को कोई मेहनत नहीं करनी होती।

प्रश्नकर्ता : फिर ऐसे व्यक्ति का जगत् में किस प्रकार का प्रदान रहता है? अथवा जगत् कल्याण में उनका क्या महत्व है?

दादाश्री : उनकी उपस्थिति ही जगत् का कल्याण कर देती है। उपस्थिति ही। प्रेज़न्स से ही! जब जगत् का कल्याण होना होता है तब वे उपस्थित हो जाते हैं। उनकी उपस्थिति ही कल्याण कर देती है। जैसे कि यहाँ पर गर्मी के दिनों में अगर उस तरफ बर्फ पड़ी हो, दरवाज़े के पास और हम सब दरवाज़े से अंदर आएँ तो हवा आती है। बर्फ की हवा का तो अंधेरे में भी पता चल जाता है कि आसपास कहीं बर्फ है। उसकी उपस्थिति ही काम करती है। इस शोर शराबा वगैरह से कोई काम नहीं होता। मैं कभी भी यों ज़ोर-ज़ोर से बोला ही नहीं हूँ।

अंत में विज्ञान स्वरूप

बाकी, परमात्मा तो निरालंब हैं और एक्ज़ेक्ट परमात्मा हैं। जहाँ किसी भी तरह के अवलंबन नहीं हैं, जहाँ कुछ भी नहीं है, जहाँ पर राग-द्वेष या शब्द-वब्द कुछ भी नहीं है। वहाँ पर कोई शब्द ही नहीं है और निरा आनंद का कंद है, सोचते ही आनंद का कंद उत्पन्न हो जाता है। हमने जो आत्मा देखा है वह, केवलज्ञान स्वरूप आत्मा को देखा है। 'निरालंब आत्मा देखा है', इसका मतलब क्या है कि वहाँ श्रद्धा भी नहीं है, वहाँ 'केवल' है। केवलज्ञान ही निरालंब आत्मा है। अतः हमने केवलज्ञान देखा है। निरंतर वर्तना (चारित्र) में नहीं आया है।

आजकल व्यवहार में इसका जो अर्थ चल रहा है, केवलज्ञान का अर्थ वैसा नहीं है। हमने केवलज्ञान देखा है, तो व्यवहार वाला अर्थ गलत निकला। जहाँ पर केवल है, केवलज्ञान, जहाँ पर शब्द भी नहीं है, जहाँ अवलंबन नहीं है, वैसा उपयोग। मात्र एब्सल्यूट ज्ञान! गिनने वाला भी

चला गया, वर्ना यह हम 'इतना सा, इतना हुआ, सम्यक् हुआ, फलाँ हुआ है', ऐसा हिसाब लगाने वाला ही निकल गया।

जिसे इस दुनिया के लोग भगवान कहते हैं, उस भगवान की हमें ज़रूरत नहीं है क्योंकि हम निरालंब हो चुके हैं।

आपको ये जो आज्ञाएँ दी हैं, उनका आराधन करते-करते उसके फल स्वरूप यह (स्थिति) आकर रहेगी। उस आराधना का फल, शुद्धात्मा तो बन गए लेकिन शुद्धात्मा बनने के बाद जो आराधन दिया है, उसके फल स्वरूप अस्पर्श्य और निरालंबी आत्मा आएगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यह तो शब्द का अवलंबन है। निरालंब, वही भगवान हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञान का भी अवलंबन नहीं रहेगा, ऐसा है?

दादाश्री : नहीं। ज्ञान का अवलंबन अर्थात् पाँच आज्ञा का अवलंबन। वर्ना मूल ज्ञान ही आत्मा है। उसे विज्ञान स्वरूप कहते हैं। संपूर्ण दशा को विज्ञान स्वरूप कहते हैं।

[7]

सब से अंतिम विज्ञान - 'मैं, बावा और मंगलदास'

पहचान, 'मैं, बावा और मंगलदास' की

प्रश्नकर्ता : यहाँ ज़रा कन्फ्यूज़न हो गया है कि 360 डिग्री वाले दादा भगवान हैं और 356 डिग्री पर अंबालाल?

दादाश्री : हाँ, वह बताता हूँ। वह कन्फ्यूज़न निकाल दो। दादा भगवान 360, जो मूल भगवान हैं, वह 'मैं' है।

हम एक उदाहरण लेते हैं। रात को बारह बजे कोई आकर बाहर से दरवाज़ा खटखटाता है। तब हम पूछें कि 'अरे भाई, अभी कौन आया है रात के बारह बजे?' तब वह कहता है, 'मैं हूँ'। हम फिर से पूछें, 'कौन हो भाई, बताओ न?' तब कहता है, 'मैं हूँ, मैं! मुझे नहीं पहचाना?' बल्कि ऐसा कहता है। तब पूछें, 'नहीं भाई, मुझे समझ में नहीं आया। कौन है?' तब कहता है, 'मैं बावा'। 'बावा (संन्यासी) लेकिन पाँच-सात संन्यासी मेरे परिचित हैं, तुम कौन से बावा हो, मुझे समझ में आना चाहिए ना?! हाँ, लेकिन बावा अर्थात् कौन है तू?' तब कहता है 'मैं हूँ बावा मंगलदास'। तब वह पहचानता है। 'मैं' जब सिर्फ 'मैं' कहता है तो नहीं पहचानता। 'मैं बावा हूँ' कहता है, तब लगता है, 'यह वाला बावा आया या वह वाला बावा आया?' बावे तो चार-पाँच हैं। तब कहता है, 'मैं, बावा मंगलदास'। और मंगलदास दो-तीन हों तब ऐसे कहना पड़ेगा 'मैं मंगलदास, महादेव जी वाला'। परिचय तो चाहिए न? अतः जब वह 'मैं, बावा और मंगलदास' इस प्रकार से तीन शब्द कहता है, तब जाकर सामने वाला पहचानता है कि हाँ, वह वाला मंगलदास। उसे

तब छवि भी दिखाई देती है। दिखाई देती है या नहीं दिखाई देती? इसलिए जब ऐसा कहा जाए कि 'मैं, बावा और मंगलदास' तब जाकर पहचानता है वह। नहीं तो, वह पहचानेगा कैसे? दरवाज़ा ही नहीं खोलेगा न! उसे खुद को पता चलना चाहिए न, कि कौन है यह? उसी प्रकार अगर इस 'मैं' को पहचान लिया जाए न तो हल आ जाएगा। उसी प्रकार से इसमें जो 'मैं' है, वह 'आत्मा' है, यह 'चंदूभाई' मंगलदास है और 'बावा' अंतरात्मा है। आपको समझ में आया ना?

तो 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा, इस देह भाग को आप कहते थे चंदूभाई। आप किस प्रकार से चंदूभाई हो? क्या चंदूभाई आपका नाम नहीं है? तब आप कहोगे, 'मेरा नाम है'। 'वह तो भाई, तेरा नाम अलग और तू अलग नहीं है?' अलग ही है!

प्रश्नकर्ता : तो ये ए. एम. पटेल, ये मंगलदास हैं?

दादाश्री : सिर्फ ए. एम. पटेल ही नहीं, लेकिन जितना भी सब डॉक्टर देख सकते हैं, काट-काटकर बारीक से बारीक जो कुछ भी देख सकते हैं, वह पूरा मंगलदास है। इतना सब मंगलदास में आता है। डॉक्टर दो प्रकार के होते हैं न, एक तो काटने वाले और दूसरे...

प्रश्नकर्ता : फिज़िशियन।

दादाश्री : हाँ, अतः इस शरीर में जो फिज़िकल भाग है, वह पूरा मंगलदास है। मंगलदास के ताबे में कितना है? तो कहते हैं, इतना फिज़िकल (भौतिक) और फिर वह भी अपने ताबे में नहीं है। अतः उसका समभाव से *निकाल* करना है। 'उसकी क्या स्थिति होगी', वह सब व्यवस्थित है। अतः आपको व्यवस्थित समझकर समभाव से *निकाल* करना है!

जो बदलता है, वह है 'बावा'

चंदूभाई को तू क्या कहेगा? तब कहता है, 'वह चंदूभाई मैं हूँ'। तब यदि हम पूछें, 'क्या उस बच्चे के पापा नहीं हो?' तब कहता है,

'बच्चे का पापा भी हूँ'। तब हम पूछें कि 'तो इस स्त्री के पति नहीं हो? तब कहता है, 'भाई पति भी मैं ही हूँ?' तो इनमें से सही क्या है? क्या करेक्ट है? मैं, बावा और मंगलदास।

अत : यह जो मंगलदास है, जब तक 'उसे' नाम से पहचानते हैं तब तक वह मंगलदास है। वह खुद भी जानता है कि मैं मंगलदास हूँ, तब तक वह मंगलदास है। बावा, क्रिया के अधीन बावा कहलाता है और मूल रूप से तो 'मैं' ही है। 'मैं' गलत नहीं है। 'मैं' का उपयोग दूसरी जगह हुआ है, वह गलत है!

जो 'मंगलदास' है, वह जीवात्मा है। 'बावा' अंतरात्मा है और 'मैं' खुद परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : एक ही व्यक्ति तीन प्रकार से हो सकता है?

दादाश्री : है ही तीन प्रकार से। जब ये लोग कॉलेज में पढ़ते हैं तब ये क्या कहलाते हैं?

प्रश्नकर्ता : स्टूडेन्ट, विद्यार्थी।

दादाश्री : दूसरे दिन जब उसकी शादी हो, तब वही विद्यार्थी जब शादी करने जाता है तो वहाँ उसे क्या कहते हैं? दूल्हा। अरे भाई, विद्यार्थी को दूल्हा क्यों कह रहे हो सभी। तब सब लोग क्या कहते हैं? अरे भाई, अभी तो दूल्हा है। विद्यार्थी तो तब था जब तक वह स्कूल में था, यहाँ पर नहीं है। यहाँ पर तो दूल्हा है और शादी करने से पहले अगर कुछ हो जाए और पत्नी वहीं पर मर जाए, तो फिर क्या होगा? क्या वह दूल्हा रहेगा? बारात के साथ वापस। रिटर्न विद थेन्क्स! अतः जो चीज़ परिस्थिति पर आधारित है, वह बावा है।

बावा अर्थात् यहाँ पर कितने सोलिसिटर बनते हैं। तो बावा ही सोलिसिटर है। वह बावा और यह सोलिसिटर। वह बावा और यह समधी। बावा तो बाहर लोगों से कहा जा सकता है लेकिन दूसरी जगह पर तो यदि उसका जमाई आए तो क्या वह उसे बावा कहेगा? नहीं।

वहाँ पर तो कहता है, 'मैं ससुर हूँ'। संयोगों के अनुसार खुद को जो कुछ बदलना पड़ता है, वह सब बावा में जाता है। जब जमाई आए तब ससुर कहलाते हैं लेकिन ससुर आएँ तो हम उनके जमाई कहलाते हैं। जमाई के मरने पर जो ससुर बना है, उसे उसका आघात लगेगा। उससे आत्मा को क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जैसे संयोग आते हैं उसी अनुसार बावा की बिलीफ बदल जाती है या बावा बदलता है?

दादाश्री : बावा बदलता ही रहता है। जो बदलता रहे वही कहलाता है बावा जबकि नाम वही का वही रहता है। नाम जो है वह विशेषण वाला है। यह वह मंगल है, पहचाना? वह लंगड़ा, नहीं? विशेषण होते हैं उसके, लेकिन मूलतः वह होता है मंगल का मंगल ही लेकिन भाई वास्तव में कौन है? तब कहता है, जो ऐसा मानता है, 'मैं मंगल ही हूँ', वह 'बावा' है। अतः बावा बदलता रहता है। 'मैं कलेक्टर हूँ, मैं प्रधानमंत्री, मैं प्रेसिडेन्ट ऑफ इन्डिया', वह बदलता रहता है। एक स्टेज में नहीं रहता जबकि मंगलदास जन्म से लेकर आखिर में मरने तक वही का वही मंगलदास ही रहता है। 'मैं' आत्मा वही का वही है। इन सारी बलाओं ने जकड़ लिया है। समधी हूँ, मामा हूँ, चाचा हूँ, तरह-तरह के पाश हैं ये तो। वकील भी कहलाता हूँ।

वकालतपन, वह बावापन कहलाता है। वही मंगलदास और मैं। इस 'मैं' को पहचानना था। बावा और मंगलदास को पहचाना तो फज़ीता हो गया। 'मैं' को पहचान लिया इसलिए फज़ीता बंद हो गया। ये सब, एक ही हैं।

ऐसा है यह तो! आप चंदूभाई हो? हाँ। तब अगर पूछें, 'लेकिन चंदूभाई कौन से?' तब कहता है 'इंजीनियर'। ओहो! आप चंदूभाई और फिर इंजीनियर हो। जबकि वह क्या कहता है? 'मैं बावा हूँ।' तो अब 'आप' समझ गए कि इंजीनियर भी नहीं है और चंदूभाई भी नहीं है। 'मैं' शुद्धात्मा हूँ कहा तो अब इस तरफ चला और मैं कौन? मैं शुद्धात्मा

हूँ। मंगलदास नामधारी है, वह इस संसार व्यवहार को चलाता है। खाता है, पीता है, सोता है, उठता है, घूमता-फिरता है।

बावा अर्थात् चाहे कोई भी हो, स्टोर वाला या किसान या नौकर या पुलिस वाला या जो व्यापार करता है वह। फिर अंदर जो उल्टा-सुल्टा करता है, पिछला डिस्चार्ज करता है और नया चार्ज करता है। यह जो चार्ज और डिस्चार्ज करता रहता है, वह बावा है।

अत: 'मैं, बावा और मंगलदास' है यह जगत्। सभी कहते हैं, 'मैं बावा मंगलदास'। अरे लेकिन भाई, वास्तव में तू कौन है? तू क्यों बावा कहलाता है उसका कोई कारण होगा न? कोई कहेगा कि किसान है। 'अरे भाई, किसान क्यों है लेकिन?' तब कहता है, 'मेरी ज़मीन है, बैल हैं, इसलिए किसान हूँ'। और यह जो फौजदार है, वह किसान नहीं कहलाता और जो फौजदारी करता है, वह बावा है। यह उदाहरण अप्रोपिएट (उचित) है?

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्ट (यथार्थ) है दादा।

दादाश्री : यह जो शरीर है, वह अंबालाल है। बावा कौन है? यह वही है जो ज्ञानी है और मैं कौन? आत्मा! अत: ये ज्ञानी बावा ही कहलाएँगे न! मैं बावा मंगलदास! कोई कहे, 'अरे तीनों एक ही'। तब कहेंगे, 'एक ही'। देखो ये तीनों एक साथ हैं न! कहते हैं न! 'मैं चंदूभाई लोहा बाज़ार वाला'। 'तू एक ही है या आप दोनों अलग हो?' अलग नहीं समझते! वह खाने वाला मंगलदास है। खुद और वह, दोनों अलग हैं लेकिन भान ही नहीं है न! हम कैसे एक शब्द पर से तीन लोगों को समझ गए। मैं, बावा और मंगलदास। बावा अर्थात् उसका कामकाज, यह जो डिज़ाइन है, वह मंगलदास है।

ये सभी खेल किसके हैं?

जो संसार की खटपट करता है या फिर जो मोक्ष की खटपट करता है वह बावा है। लेकिन वह बावा है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। समझ में आए ऐसी बात है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर वापस हैं एक के एक ही कि मैं, बावा, मंगलदास। मंगलदास, वह 'चंदूभाई' नामधारी है और यह जो सांसारिक है, वह बावा है और आत्मा, 'मैं' है! मैं शुद्धात्मा हूँ और ये सब बावा। 'इसने मुझे गाली दी', तो गाली देने वाला भी बावा और गाली सुनने वाला भी बावा। ये सब खेल, सभी तरह-तरह के रोमान्स। वह बावा है और 'चंदूभाई' मंगलदास है। बावा अर्थात् जो खेल करता है। जहाँ जाए वहाँ पर खेल तो रहता ही है न?

प्रश्नकर्ता : ये सारे खेल बावा ही करवाता है?

दादाश्री : हाँ बावा करवाता है।

प्रश्नकर्ता : और जब वही बावा कहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो वापस शुद्धात्मा भी बन जाता है।

दादाश्री : हाँ। बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : 'आत्मा ऐसा है कि जैसा चिंतवन करता है वैसा ही बन जाता है।' तो क्या वह बात इस बावा की है? बावा वैसा बन जाता है?

दादाश्री : हाँ। खुद जैसा चित्रण करता है, जैसे अगर कहे 'हमें रोमान्स ही करना है' तो वैसा ही बन जाता है। 'हमें मोक्ष में जाना है' तो वैसा बन जाता है। तय करना चाहिए। तूने क्या तय किया है?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाना है।

दादाश्री : अब बावा किस भाग को कहते हैं, वह समझ गए न आप? ये साठ साल की, अस्सी साल की, नब्बे साल की, यह सत्तर साल की, बूढ़ी, पढ़ी-लिखी, अनपढ़, विधवा, विवाहित, वह सब बावा में जाता है। जो बेकार है, बरकत नहीं है, वह सब बावा में। बरकत वाला है, वह भी बावा में। सबकुछ बावा। जिसकी अवस्था बदलती रहती है, वह सब बावा है। ठेठ तक, मोक्ष में जाने तक, मैं, बावा और

मंगलदास। 'मैं' आत्मा है। 'मैं' जानता है कि बावा कैसा है और कैसा नहीं। नहीं जानता?

प्रश्नकर्ता : सबकुछ जानता है।

दादाश्री : फिर मंगलदास को मंगली मिलती है। मंगलदास और मंगली की शादी होती है। मंगलदास को पहचाना क्या? मंगलदास और मंगली लेकिन दोनों मंगलदास! बावा कौन है? तब कहते हैं, जो मंगलदास के रूप को (बुद्धि) देखती है, वह। अतः मंगलदास के साथ उसका संबंध बनता है। लेना-देना कुछ भी नहीं है और मंगलदास की उत्तेजना बावा में घुस जाती है। उत्तेजना मंगलदास में है, और बावा मान लेता है।

रात को अगर फिर वाइफ के साथ झगड़ा करके सो जाए, तो उसे मन में ऐसा होता है कि 'अब कब मेरे शिकंजे में आएगी'। देखो बावा क्या-क्या करता है?

प्रश्नकर्ता : सभी कुछ करता है।

दादाश्री : बावा को पता नहीं है कि वह यह क्या कर रहा है! उसे भान नहीं है कि इसका क्या रिएक्शन आएगा!

स्त्री है तो भी बावा, पुरुष है तो भी बावा। बूढ़ा है तो भी बावा है, जवान है तो भी बावा, बेटा नंगा घूमे तो भी बावा। पेट में हो तब भी बावा। उदाहरण अप्रोपिएट है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : सही है दादा।

दादाश्री : कौन सी पुस्तक में मिलेगा? यह बुद्धिकला का नहीं है, यह ज्ञानकला का है। बुद्धिकला में आत्मा की कला नहीं आ सकती। अब 'बावा' को पहचान लोगे या नहीं?

प्रश्नकर्ता : पहचान लेंगे।

दादाश्री : 'मैं' जानता है या नहीं जानता?

प्रश्नकर्ता : सबकुछ जानता है।

दादाश्री : 'बावा' कैसा है कैसा नहीं? फिर अगर 'मैं' 'बावा' बन जाए तो हो चुका! अभी तक आप ऐसे ही थे।

अब मंगलदास कौन है? जो नामधारी था न, यह नाम-रूप, यह सारा फिज़िकल! और इस फिज़िकल के अलावा सूक्ष्म से लेकर अंत तक का बावा।

प्रश्नकर्ता : फिर, जो क्रोध-मान-माया-लोभ करता है, वह भी बावा है?

दादाश्री : वह सब बावा। क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं तब भी बावा है और क्रोध-मान-माया-लोभ को जीत ले, तब भी बावा। जीत ले तो संयमी कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : बावा ही संयमी कहलाता है?

दादाश्री : हाँ! संयमी अर्थात् वह असंयम नहीं करता, इसलिए वह विशेषण मिला। जिसके विशेषण बदलते रहें, वह बावा है।

दो मन : 'बावा' का और 'मंगलदास' का

एक मन बावा का है और एक मन मंगलदास का है। देयर आर टू माइन्ड्स। मंगलदास को जो विचार आते हैं, बावा उन्हें देख सकता है। अत: जिन विचारों को बावा देख सकता है, वह मन बावा का नहीं है और जिस मन को जान नहीं पाता, वह बावा का है। जो उसका खुद का मन है, उसे वह खुद नहीं जान सकता। वह तो, जब कोई समझाए तब।

प्रश्नकर्ता : तो जब बावा मन में तन्मयाकार हो जाता है, तब उसे वह जान नहीं सकता?

दादाश्री : मन में जो विचार आते हैं, बावा उनमें तन्मयाकार हो जाता है, तब फिर वह मंगलदास बन जाता है और अगला जन्म उत्पन्न होता (मिलता) है। अत: मन साफ नहीं हो पाता लेकिन यदि बावा

अलग रहकर देखे और जाने तो मन साफ होता जाता है। अतः मन का उतना नुकसान कम हो गया। लोग कहते हैं कि आत्मा एकाकार हो जाता है लेकिन आत्मा तो बस बात करने तक ही, ये लोग कहते हैं, उतना ही। बावा ही एकाकार होता है। बावा का मन, भाव मन। भाव, वह सब बावा है और जो द्रव्य है, वह मंगलदास है! वह जो भाव मन है, वह खुद की सत्ता में है। (अज्ञान दशा में) लीकेज हो रहा हो तो, (क्रमिक मार्ग में ऐसा ही होता है) हम उसे बंद कर सकते हैं। भाव मन 'लीकेज' है, संयोगों के आधार पर। अब भाव मन का अर्थ क्या है? 'मैं कर्ता हूँ', वहीं से भाव मन की शुरुआत होती है और अगर 'मैं अकर्ता हूँ' तो भाव बंद हो जाएँगे।

स्थूल मन मंगलदास में आता है और सूक्ष्म मन बावा में आता है। जो फिर से जन्म दिलवाता है, वह बावा का मन है। हमने बावा का वह मन निकाल दिया है इसलिए फिर वह स्थूल मन ही काम करता है। हमने उसे देखने का कहा है।

प्रश्नकर्ता : स्थूल मन को देखने वाला भी बावा ही है न?

दादाश्री : देखने वाला बावा ही है न। जो देखता है वह बावा है। उसे जानने वाला कौन है प्रज्ञाशक्ति। वह बात ठेठ आत्मा तक पहुँच गई, यानी कि 'देखना'। बावा सिर्फ देखने का काम नहीं कर सकता। बावा यदि इस तरह 'देखे' तो वह बावा नहीं है। अतः वहाँ पर प्रज्ञाशक्ति का काम है। देखने और जानने का काम प्रज्ञाशक्ति करती है। बावा जानता ज़रूर है कि यह जो देख और जान रहा है (आत्म दृष्टि से ज्ञाता-दृष्टा) वह मेरा स्वभाव नहीं है; मैं (बावा) तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि 'मंगलदास क्या कर रहा है'।

प्रश्नकर्ता : यदि प्रज्ञा ही देखती और जानती है, तब तो इस बावा का एक्ज़िस्टन्स रहा ही नहीं न?

दादाश्री : लेकिन जब तक प्रज्ञा देखती व जानती है तब तक बावा रहता है। वह प्रज्ञा बावा को भी देखती व जानती है।

प्रश्नकर्ता : आपने अकर्ता पद में रख दिया है उसके बाद क्या बावा मन में तन्मयाकार हो सकता है? फिर कैसे होता है?

दादाश्री : ऐसा है न, फिर खुद की ऐसी मान्यता नहीं रहती कि 'मैं बावा हूँ', इसलिए अकर्ता। अतः अब जो कुछ भी मंगलदास करता है, उसकी जिम्मेदारी अपनी नहीं रही क्योंकि उन सब का *निकाल* हो जाएगा। फिर से उसका रिएक्शन नहीं आएगा। अकर्ता बन जाएगा क्योंकि 'वही' कर्ता था, इसलिए रिएक्शन आ रहा था।

प्रश्नकर्ता : मंगलदास चाहे कोई भी क्रिया करे या फिर उसका मन विचार करे लेकिन अब बावा तन्मयाकार नहीं होता न?

दादाश्री : वह तो, बातों में ऐसा कहते हैं। आचरण में ऐसा रहना मुश्किल है न! वह तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे आएगा। इसे तो बहुत दिनों में पहचाना न, तन्मयाकारपन एकदम से जाता नहीं है न!

तीर्थंकर, वह है कर्म

कोई पूछे, 'अब चेतन का भाग कौन सा है? चेतन कौन से भाग में आता है?' 'क्या तीर्थंकर, वही चेतन है?' तब कहते हैं, 'नहीं, तीर्थंकर चेतन नहीं है'। वह कर्म है। नाम कर्म है वह। तब कोई पूछे, 'क्या तीर्थंकर का अवतार चेतन है?' तो कहते हैं, 'नहीं, चेतन नहीं है'। इन सब को जो जानता है वह 'चेतन' कहलाता है। अतः यह दुनिया विदाउट चेतन चलती रहती है। चेतन, सर्कल (सांसारिक अवस्थाएँ) से बाहर खड़ा है। प्योर! उसकी उपस्थिति से ही चल रहा है। उस 'प्योरिटी' का पता हमें कब चलता है? सभी सर्कल्स को पहचान लेने के बाद। सर्कल में मेरापन न करे तो प्योर हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* की सभी अवस्थाएँ 'सर्कल' मानी जाएँगी?

दादाश्री : सभी अवस्थाएँ लेकिन लोगों को इसका भान ही नहीं है न! चेतन के बिना कैसे चल सकता है यह? पता कैसे चलेगा कि चेतन के बगैर चल रहा है यह? शास्त्र कैसे सीखेंगे? सम्यक् ज्ञान किस

तरह से होगा? सम्यक् ज्ञान का मतलब क्या है? सम्यक् दर्शन अर्थात् ऐसी श्रद्धा बैठना कि मैं इन सभी सर्कल्स के बाहर हूँ!

अत: यदि लोगों को और संतों से पूछें, 'इसमें भगवान क्या करते हैं?' तो वे सभी को समझाते हैं कि 'भगवान इन लोगों का भला करते हैं'। जो ऐसा समझाता है, वह भी चेतन नहीं है। वह तो सर्कल है। जो समझाने वाले को भी जानता है, 'मैं तीर्थंकर हूँ' 'जो' ऐसा जानता है, वह 'आत्मा' है। ये जो तीर्थंकर हैं, वे आत्मा नहीं हैं!

यह बात की किसने? चेतन ने नहीं, वह भी बावा ने की है और सुनने वाला भी बावा है। सर्कल वाला बावा, किसी एक खास सर्कल तक पहुँचने पर उसे पता चलता है कि यहाँ से समुद्र नज़दीक होना चाहिए। जब उसे ऐसा पता चलता है कि 'अब हम सर्कल से बाहर की लेक में आ गए हैं', तब उसे समकित कहते हैं और तब यह श्रद्धा बैठ जाती है। फिर जैसे-जैसे नज़दीक जाते हैं वैसे-वैसे उसे उसका 'ज्ञान' होता जाता है कि वास्तव में यही है। यह सर्कल से बाहर है।

अत: जिसका कोई विशेषण नहीं होता, वहाँ पर मूल 'मैं' है! 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भी विशेषण नहीं है। अभी तो यह शुद्धात्मा भी विशेषण है, आत्मा का शुद्ध स्वरूप! उससे भी आगे जाना है लेकिन यदि शुद्धात्मा बन गए तो भी बहुत हो गया। जो 345 डिग्री से आगे गया उसे ऐसा नहीं कहना पड़ता कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। उसके बाद आगे जाना है!

बावा स्वरूप की शुरुआत कहाँ से होती है? जो आत्मा के सम्मुख हो गए हैं, जीवात्मा की दशा से निकलकर आत्म सम्मुख हो गए हैं, वे लोग बावा स्वरूप में आते हैं। इसीलिए उसके बाद वे एब्सल्यूट तक जाते हैं। अत: यह बीच वाला... बावा की स्थिति यह है।

प्रश्नकर्ता : बावा जान नहीं सकता?

दादाश्री : वह 'जानने वाला' ही है, वह जानता ज़रूर है लेकिन यह 'जानने वाला' बावा है कि 'यह आत्मा जानता है'। अगर (ऐसा कहें कि) बावा जानता है तो फिर आत्मा रह जाएगा। जब तक ऐसा मिक्स्चर

है कि सबकुछ करता है और जानता भी है, तब तक बावा है और जो सिर्फ जानता है, वह आत्मा है। जानने वाला मूलतः आत्मा ही है।

प्रश्नकर्ता : कौन सा आत्मा जानता है?

दादाश्री : जानने वाला आत्मा, शुद्धात्मा। मूल आत्मा तो जो भगवान हैं, वही हैं।

प्रश्नकर्ता : बावा और मंगलदास, क्या शुद्धात्मा उन दोनों का ज्ञाता–दृष्टा ही रहता है?

दादाश्री : दोनों का क्या? दोनों के अंदर जितने भाग हैं, उन सभी को देखता व जानता है।

प्रश्नकर्ता : क्या बावा सिर्फ मंगलदास का ही ज्ञाता–दृष्टा रहता है?

दादाश्री : बावा तो ज्ञाता–दृष्टा रहता ही नहीं है। ज्ञाता–दृष्टा तो शुद्धात्मा ही है। उसके अलावा अन्य कोई ज्ञाता–दृष्टा है ही नहीं। इसमें भी सबकुछ देखता है। ये सभी चीज़ें, जो आँखों से दिखाई देती हैं, वे सभी शुद्धात्मा की वजह से दिखाई देती हैं। वर्ना, बावा में तो ऐसा कुछ है ही नहीं, शक्ति ही नहीं है न! बावा तो अंधा है (ऐसा समझना है कि बावा मात्र मानता है कि मैं देखता हूँ और जानता हूँ अतः इस प्रकार से वह देखने व जानने वाला (ज्ञाता–दृष्टा) बनता है। वास्तव में तो मूल आत्मा ही देखने व जानने वाला है और कर्ता साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है। जब मंगलदास साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल के आधार पर करता है, तब बावा मानता है कि मैं कर रहा हूँ। इस प्रकार बावा कर्ता और ज्ञाता दोनों ही बनता है, मान्यता के आधार पर।)

मैं, बावा और मंगलदास, तीन बातें समझ जाए तो सब समझ में आ जाएगा कि मंगलदास कौन है? मैं कौन हूँ और बावा कौन है? अब मंगलदास तो दीये जैसी साफ–साफ बात है। जो बाहर दिखाई देता है, वह कौन है? तो वह है मंगलदास। जिसकी हड्डियाँ दिखाई देती हैं वह कौन है? तो वह है मंगलदास। जो दिखाई नहीं देता, वह बावा है।

प्रश्नकर्ता : यह जो भूख लगती है, प्यास लगती है, वे ऐसी चीज़ें नहीं हैं कि देखी जा सकें। अंदर जो होता है, वह अपने आप ही होता है। तो वह किसे होता है और उसे कौन देख सकता है? आपने ऐसा कहा था कि 'हम जब भोजन करते हैं तो सबकुछ देख सकते हैं। भोजन पचता है, उसे भी देख सकते हैं। हम सबकुछ अपने से बिल्कुल अलग-अलग देख सकते हैं', तो ऐसा कैसे दिखाई देता है, कौन देख सकता है? इसमें ज्ञाता-दृष्टा कौन है?

दादाश्री : अरे, आत्मा के सिवा कोई भी वस्तु ज्ञाता-दृष्टा नहीं हो सकती।

प्रश्नकर्ता : बावा को बावा का अस्तित्व खत्म करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अब अस्तित्व उत्पन्न हो सके, ऐसा है ही नहीं। यदि बावा के पक्ष में नहीं बैठेंगे तो बावा के बच्चे नहीं होंगे। जब कोई 'तुझे' गाली दे, उस क्षण यदि तू खुद का रक्षण न करे तब वह सब फिर से होगा ही नहीं।

जो मोक्ष ढूँढ रहा है : मोक्ष स्वरूप है, वही!

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में किसे जाना है?

दादाश्री : जो बंधा हुआ है, उसे। जिसे दु:ख होता है, उसे।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् *पुद्गल* को?

दादाश्री : जो पूछ रहा है, उसे। जिसे मुक्त होना है, वह। अब मुक्त किसे होना है? आपको मुक्त होना है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आप तो अपने आपको मान बैठे थे कि 'मैं चंदूभाई हूँ'। गलत निकला न सारा?

आप अपने आपको पहले जो मानते थे कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वह

जो आप हो, वह मुक्त होना चाहता है। पूछने वाले को ही मुक्त होना है। किसे मुक्त होना है? शादी करने वाला अगर ऐसा पूछे कि 'किसे शादी करनी है?' तब लोग क्या कहेंगे, 'तेरी ही शादी होनी है न!' आप अपने आपको जो कुछ भी मानते हो न, वही आप हो। उसे मुक्त होना है। यदि अहंकार को छूटना है तो तू कौन है? पूछने वाला कौन है? पूछते समय ऐसा नहीं कह सकते। यों ही बात करनी हो तो ऐसा लगेगा कि भाई अब, अहंकार को मुक्त होना है। पूछते समय भ्रम होता है।

जो अहंकार करके कुँवारा था, वही ऐसा कहता था कि मुझे शादी करनी है और जब उसकी शादी होने लगे, तब अगर वापस पूछे कि 'किसे शादी करनी है', तब हमें कहना पड़ेगा कि 'क्या अहंकार को शादी करनी है? तो तू कौन है?' इसलिए मुझे ऐसा कहना पड़ता है कि 'तुझे शादी करनी है'। पूछने वाले को ही शादी करनी है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानीपुरुष अर्थात् ए.एम.पटेल?

दादाश्री : नहीं। ए.एम.पटेल तो यह बॉडी है। हम ज्ञानीपुरुष हैं। ज्ञानीपुरुष अर्थात् जो 'आइ' डेवेलप होते-होते-होते, जो 'आइ' रहित डेवेलप हो गया है!

दो ही बातें हैं, तीसरा कोई है ही नहीं। एक वह है जो मोक्ष ढूँढ रहा था और एक भगवान हैं। वे, जो मोक्ष स्वरूप होकर बैठे हैं।

पुद्‌गल भी बन जाता है भगवान

यह संसार क्या है? डेवेलपमेन्ट का प्रवाह है एक प्रकार का। अर्थात् वह प्रवाह उस तरह से चलता रहता है। उसमें शून्यता से लेकर डेवेलपमेन्ट बढ़ता ही जाता है। वह कैसा डेवेलपमेन्ट होता है? तो वह यह है कि आत्मा तो मूल जगह पर ही है लेकिन यह व्यवहार आत्मा इतना अधिक डेवेलप होता जाता है कि महावीर भगवान हुए। वह *पुद्‌गल* भगवान बन गया। क्या ऐसा स्वीकार होता है कि *पुद्‌गल* भगवान बन गया?

प्रश्नकर्ता : हाँ बना ही है न! बनता ही है न! देख सकते हैं।

दादाश्री : हमारा *पुद्गल* ऐसा नहीं हैं कि पूर्ण रूप से भगवान पद दिखाए। अतः हम मना करते हैं कि 'हम भगवान नहीं हैं' लेकिन इसका क्या अर्थ है कि यह पूर्ण पद नहीं दिखाता? 'आइए चंदूभाई', इन्हें इस तरह से बुलाते हैं, तो वह सब क्या है? क्या ये भगवान के लक्षण हैं? और दूसरा, कई बार हम भारी शब्द भी बोल देते हैं। हमें खुद को भी समझ में आता है कि यह भूल हो रही है। ऐसा पूरी तरह से समझ में आता है, एक बाल जितना भी कुछ ऐसा नहीं निकल जाता कि जब हमें हमारी भूल न दिखाई दें। भूल होती है लेकिन तुरंत ही पता चल जाता है। वह डेवेलपमेन्ट की कमी है, भगवान बनने में। अतः हम मना करते हैं। भगवान बनना अर्थात् सारे आचार-विचार, सभी क्रियाएँ भगवान जैसी ही लगें। तब क्या होता हैं? आत्मा तो आत्मा ही है, शरीर भगवान बना है, उसी को डेवेलपमेन्ट कहते हैं। आप अभी इतने डेवेलपमेन्ट तक पहुँचे हो, अब इतना डेवेलपमेन्ट बाकी रहा कि देह भी भगवान बन जाए। वह वैसा बनता ही जा रहा है, लोगों का (सभी महात्माओं का) ऐसा ही हो रहा है। अगर संयोग उल्टे मिलें तो उनमें से कितने ही नीचे भी चले जाते हैं! हम रोज़ हमारा देख लेते हैं कि एक अक्षर भी किसी के प्रति विरोध न हो हमारा। किसी के साथ बिल्कुल भी मेल न खाए चाहे वह उल्टा बोले तब भी उसके प्रति विरोध नहीं होता।

स्व-दोष दिखने लगें, तभी से बावा जाने लगता है

मंगलदास का रक्षण करने से हम बावा ही रहेंगे और बावा का रक्षण करेंगे तो हम वापस मंगलदास ही बनेंगे। उसका जो हिसाब है वह उसे मिलता ही रहेगा, हमें देखते रहना है। क्या हो रहा है, उसे देखो, वही अपना मार्ग है।

ये कहते हैं, 'हमारे दोष क्यों नहीं बताते?' मैंने कहा, 'दिखाई देंगे तब बताएँगे न?' जब हमारे हाथ में आए, तब वह फाइल निकालेंगे। हाथ में नहीं आए, इसलिए मैंने समझा कि इसने दोष निकाल दिए होंगे। फिर जब वह हाथ में आता है तब दिखा देते हैं।

और जब खुद को खुद की भूल दिखाई देगी तब डिसिज़न आ

जाएगा। बावा अब बहुत समय तक नहीं रहेगा। अब बहुत समय तक बावा के रूप में नहीं रहेगा। अब भगवान बन जाएगा। खुद अपनी भूलें देखे तभी से भगवान बनने की तैयारी होने लगती है।

अतः इतना देख लेना कि 'अगर कोई मुझे गाड़ी से उतार दे तो क्या होगा'।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, दादा। सामने वाले की पोज़िशन में आ जाना है तुरंत।

दादाश्री : हाँ। सामने वाले के प्रति भूल हो जाए तो संभाल लेना। भूल हो जाए तो संभाल लेना इसके बावजूद भी अगर वह अपने आप उलझन में पड़े तो उसके लिए हम ज़िम्मेदार नहीं हैं। यदि हमारी वजह से उलझन में पड़ जाए तो हमारी जोखिमदारी है। कितनी ही भूलें बताई नहीं जा सकतीं और मैं तो इतना नियम वाला हूँ कि उनसे पूछता हूँ कि 'यदि आपको (आपकी) भूल बताऊँ तो आपको बुखार नहीं चढ़ेगा न?' तब अगर वह कहे, 'नहीं दादा। वह तो मुझे आपसे ही जानना है'। तब मैं बता देता हूँ। अब बुखार चढ़ने को रहा ही कहाँ है? जहाँ बावा को खत्म ही हो जाना है, वहाँ। जब तक आप बावा हो तब तक भूल होना संभव है।

प्रश्नकर्ता : आपको मुझे भी बताना है दादा, क्योंकि अभी भी, अगर *पुद्गल* में ऐसी कोई खामी हो जो स्थूल रूप से देखी जा सकती है लेकिन अगर कुछ सूक्ष्म है तो पता नहीं चलता।

दादाश्री : ठीक है। कितने ही दोष दिखने लगे हैं लेकिन अभी भी अंदर कुछ-कुछ रह गए हैं। फिर वे हम बता देते हैं। हमें तो किसी भी प्रकार से बावापन खत्म करना है। बावापन छूट जाना चाहिए। अनंत जन्मों तक यही काम किया था। अब किसी भी तरीके से छूटना ही है। हम सभी का दृढ़ निश्चय है।

मैं भूल रहित हो गया इसलिए दूसरों की भूल दिखा सकता हूँ। आपको आपकी भूल पता लगने में देर लगेगी। खुद करे और खुद ही

जान सके, वह मुश्किल है। मैंने ज्ञान दिया है इसलिए जानने लगे हैं कि खुद कौन है? बावा तो वह जानता ही नहीं है न! यदि आप 'मैं' हो, तो बावा की सभी भूलें देख सकते हो लेकिन अभी भी कितनी ही बार बावा बन जाते हो न!

इस प्रकार पोतापणुं रखवाता है 'वह'

प्रश्नकर्ता : जिसमें यह *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण) है और जो कहता है कि 'यह मैं हूँ', और फिर ऐसा भी कहता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ' और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और फिर वह जो रक्षण करता है, वे सब कौन हैं? वास्तव में कौन है वह?

दादाश्री : नहीं, नहीं। कोई है ही नहीं। यह तो ज्ञान है जो यह कहता है 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और अब जो उस तरफ का पक्ष लेता है, वह अज्ञान है। जो *पोतापणुं* रखवाता है, वह अज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : कौन रखवाता है वह *पोतापणुं*?

दादाश्री : वह नासमझी है। अभी तक अहंकार उतना नहीं टूटा है। उल्टी समझ है। अभी भी यह छूट नहीं रही है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार किसे है? वह कौन है?

दादाश्री : जो यह कहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह शुद्धात्मा ही है, वह ज्ञान ही है और जो उल्टा करता है, वह अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् बुद्धि और अहंकार अर्थात् 'मैं चंदूभाई हूँ', वही।

प्रश्नकर्ता : क्या उसी को आप बावा कहते हैं?

दादाश्री : चंदूभाई का ही न! 'मैं चंदूभाई हूँ', कहे तो वह अभी तक खुद के पक्ष में है, 'उसे' 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बनना है। शुद्धात्मा बन गए हो, तो भी चंदूभाई का पक्ष नहीं छोड़ते। जब तक चंदूभाई का पक्ष नहीं छोड़ोगे, तब तक वह कच्चा रहेगा।

प्रश्नकर्ता : वह बावा है?

दादाश्री : वही बावा है न! उसे दोनों तरफ रहना है।

प्रश्नकर्ता : उस बावा को छोड़कर, शुद्धात्मा के साथ जॉइन्ट हो जाना है?

दादाश्री : नहीं! शुद्धात्मा तो हम हैं ही।

जो बंधा हुआ है वह 'यह' है

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद जो चरणविधि पढ़नी होती है, वह कौन करता है?

दादाश्री : वाणी।

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसा कह सकते हैं कि प्रतिष्ठित आत्मा बोलता है?

दादाश्री : तो और कौन बोलता है? जिसे मुक्त होना है वह बोलता है। जो बंधा हुआ है वह।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह कौन है दादा? कौन बंधा हुआ है?

दादाश्री : यह अहंकार! शुद्धात्मा तो बंधा हुआ है ही नहीं न! जो बंधा हुआ है वही मुक्त होने के लिए शोर मचाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, इसमें दो चीज़ें आती हैं, 'आपके सर्वोत्कृष्ट सद्‌गुण मुझमें उत्कृष्ट रूप से स्फुरायमान हों', ऐसा ज़रा सा व्यवहार का आता है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसे वाक्य भी आते हैं।

दादाश्री : वही का वही 'मै', लेकिन तूने उसका अमल कहाँ किया? व्यवहार अर्थात् अमल में लाई हुई चीज़। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह सही है और वह व्यवहार पूरा विकल्प कहलाता है। जहाँ 'मैं' का उपयोग किया, वह विकल्प है। अत: जो बंधा हुआ है, वह मुक्त होने के लिए हाथ-पैर मार रहा है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या अहंकार बंधा हुआ है?

दादाश्री : नहीं तो और कौन? अहंकार चंदूभाई है, अहंकार ही प्रतिष्ठित आत्मा है। जो मानो, वह। वह बंधा हुआ है, दु:ख भी उसी को है न! जिसे दु:ख है वह मोक्ष में जाने के लिए हाथ-पैर मार रहा है। दु:ख से मुक्त होना, वही मोक्ष है। वही सबकुछ है। अन्य कुछ भी नहीं। यह सब रिलेटिव उसी का है।

जिस पर दु:ख आ पड़े, वह सुख ढूँढता है। जो बंधा हुआ है, वह मुक्त होना चाहता है। यह सब बंधे हुए के लिए है। इसमें शुद्धात्मा के लिए कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि चंदूभाई को छूटना है और चंदूभाई बोल रहा है तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह वाक्य किस तरह से आएगा दादा?

दादाश्री : ऐसा भी बोल सकता है न!

प्रश्नकर्ता : तो चंदूभाई कैसे बोल सकता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'?

दादाश्री : बोलता ही है न! लेकिन वह तो टेपरिकॉर्ड है न! यह उस समय की बात है न, जब वह चंदूभाई था! और अभी तो हम 'मैं' 'यह' हो गए हैं। रियली स्पीकिंग, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', रिलेटिवली स्पीकिंग 'चंदूभाई', उसमें हर्ज क्या है? यह मैं कौन से व्यू पोइन्ट से कह रहा हूँ?

प्रश्नकर्ता : अत: इसमें दोनों व्यू पोइन्ट आ जाते हैं?

दादाश्री : सभी व्यू पोइन्ट्स। कितने सारे व्यू पोइन्ट्स हैं लेकिन इनमें से दो मुख्य हैं। व्यू पोइन्ट तो 360 डिग्री के हैं, इस डिग्री पर मैं इसका ससुर हूँ, इस डिग्री पर इसका फादर हूँ, इस डिग्री पर इसका मामा हूँ।

नहीं पूछने चाहिए बेकार के प्रश्न ज्ञानी को

और कुछ पूछना है या यही है? यही जानना चाहते हो न या और कुछ?

प्रश्नकर्ता : आप कुछ ऐसा जादू कर दीजिए या आशीर्वाद दीजिए

कि हम सब ज़्यादा से ज़्यादा ज्ञाता-दृष्टा पद में रह सकें। ये तो बावा बन जाते हैं अर्थात् ज्ञान में नहीं रह पाते हैं।

दादाश्री : ऐसा है न, जॉब वाला *ऊपरी* कभी भी शिकायत नहीं करता कि यह लेट हो जाता है! अरे, क्या मेरे ऐसे आशीर्वाद होते होंगे? ऐसा कुछ करो कि जब हम सो रहे हों तब हमारे अंदर खाना चला जाए।

प्रश्न से रुकावट मत डालो। इससे रुकावट हो जाएगी। जो हेल्पिंग हो ऐसी बातचीत करो। अभी ऐसा टाइम नहीं है कि जो चाहे वह पूछते रहें तो चलेगा। अभी अगर बहुत सूक्ष्म बात हो तो करो, बेकार ही टाइम नहीं बिगाड़ना है।

आपको कुछ भी नहीं करना है। आपको समझना है कि मंगलदास कौन है और बावा कौन है? 'मैं कौन हूँ' वह समझ गए?

यह जो घोटाला करता है, वह बावा है। जो क्रोध-मान-माया-लोभ करता है, वह बावा है। उस बावा को पहचान गए या नहीं पहचाने आप? फिर अब आपने मुझे क्या करने को कहा, उसे आशीर्वाद देने का कह रहे हो? ऐसा कहना ही नहीं चाहिए। ऐसा कहने से अपना टाइम बिगड़ता है। मेरा टाइम बिगड़ता है, आपका टाइम बिगड़ता है और इस सत्संग का टाइम बिगड़ता है।

बावा और मंगलदास की स्पष्टता

मंगलदास को आपने पहचाना? चाकू भी मंगलदास को लगता है, जिसे खून निकलता है, वह भी मंगलदास है। दूसरे को क्या झंझट है? मंगलदास को क्यों भूखा मारें?

प्रश्नकर्ता : भूख का जो असर होता है, उसका किसे अनुभव होता है? मंगलदास को या बावा को?

दादाश्री : मंगलदास को तो भूख का कोई परिचय है ही नहीं। बावा ही सबकुछ जानता है। मंगलदास में तो कोई ज्ञान है ही नहीं। अगर इंजन में तेल खत्म हो जाए तो इंजन को पता चलता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं चलता। सही है।

दादाश्री : आत्मा जानने के बाद अगर मंगलदास खा रहे हों तो उनसे कहेंगे, 'खा लो भाई, धीरे-धीरे खाओ। तड़फड़ाहट न हो उस तरह से', तो मंगलदास भी खुश हो जाएगा कि बहुत अच्छे इंसान है!

आपका कितना है, बावा का कितना है और मंगलदास का कितना? जो आँखों से दिखाई दे, कानों से सुनाई दे, जीभ से चखा जा सके और जो नाक से सूंघा जा सके वह सब मंगलदास का है।

प्रश्नकर्ता : मंगलदास?

दादाश्री : जब डॉक्टर काटते हैं, काटने से जिसका पता चलता है, वह भाग मंगलदास है जिसका यों पता नहीं चलता, अनुभव करने वाले को ही पता चलता है, वह सब बावा है। अनुभव करने वाले को क्रोध होता है। जो क्रोध आता है, वह बावा को आता है। मंगलदास को क्रोध नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : क्रोध-मान-माया-लोभ, सब बावा का है! अपने लोग कहते हैं, 'दादा, मैं शुद्धात्मा हो गया लेकिन अभी तक मुझे क्रोध आता है'। मैंने कहा 'क्रोध बावा को आता है। तुझे नहीं आता'। अतः आपको बावा से कहना है कि 'भाई धीरे से काम लो न तो अपना हल आ जाएगा'। लेकिन हो जाने के बाद कहना।

किसी पर चिढ़ जाता है तो समझ जाना और डाँट ले उसके बाद कहना कि 'ऐसा क्यों कर रहे हो? क्या यह अच्छा लगता है आपको?' ऐसा कहने के दो फायदे हैं। एक तो वह ज़रा नरम पड़ जाएगा। अभी तक कोई कहने वाला था ही नहीं न! बेहिसाब कर रहे थे। दूसरा क्या फायदा है? तो वह यह है कि हम खुद उससे बिल्कुल अलग हैं। यों अपनी शक्ति बढ़ती जाएगी।

प्रश्नकर्ता : मेरा बावा आज सत्संग में देर से आया है। मेरा बावा पड़ोसी से व्यवहार करने में रह गया।

दादाश्री : उसे डाँटना नहीं है। देर हो गई, फिर भी आया तो सही न! अतः बावा को डाँटना नहीं है। धीरे से कहना, 'जल्दी जाओ। आप तो बहुत शक्ति वाले हो। सब प्रकार की शक्ति वाले!' ऐसा कह सकते हैं उसे। जल्दी जाना हो तो भी आपमें शक्ति है। अपनी शक्तियाँ समेटकर जाओ तो क्या बुरा है? डाँटेंगे तो विरोध करेगा और हमें डाँटेगा, बल्कि हमें कुछ कह देगा!

प्रश्नकर्ता : बहुत हाज़िर जवाब है।

दादाश्री : 'तुम्हारे तो माँ-बाप नहीं हैं। हम तो माँ-बाप वाले हैं।' यों रौब जमाएगा। यदि ऐसा कहे कि 'आपके बाप नहीं हैं, माँ नहीं हैं', तो फिर हम क्या कहेंगे? इससे तो अच्छा है कि आबरू का फज़ीता न करें। 'तू बहुत समझदार है।' ज़रा सख्ती से कहेंगे तो विरोध करेगा। उसकी आदत ऐसी ही है, बावा की। इस जन्म में तो बहुत लाभ हो गया है न? आपको लगता है ऐसा? अनंत जन्मों का हिसाब पूरा हो गया!

सर्व शास्त्रों का सार इतने में

बावा कौन है, वह समझ गए न? बावा के साथ यह सारा संबंध रखने की ज़रूरत नहीं है न? इसलिए *निकाल* कर दो, नहीं तो फिर वह दावा करेगा और हमें यहीं पर रहना पड़ेगा छः महीनों तक। फिर कोर्ट में वकील ढूँढने पड़ेंगे। हाँ, उसके बजाय तो निकल जा भाई। समभाव से *निकाल!*

फिर इस बावा ने क्या किया? इस बावा के नाम से दूसरे बावाओं को खेत दिए। उससे पारा तो नहीं चढ़ जाएगा न? बावा, तो बावा है। अब पारा कैसे चढ़ेगा? नाम बावा का है। हमें कोई लेना-देना नहीं है।

फिर बच्चे भी बावा के हैं। आमचे लड़के! अरे भाई, यह दूसरा आमचे कहाँ से आया, बावा के बच्चे हैं। तुमचे ने आमचे (तुम्हारे और हमारे), तुमचे ने आमचे, बिना बात के!

फिर यदि कोई पूछे तो 'हम इस देश के हैं भाई'। हमें उस देश

का झंडा तो रखना ही पड़ेगा लेकिन बावा रखेगा और हम जानेंगे। बावा देश के लोगों से बातें करेगा और हम जानते रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : अपने देश के लोग यहाँ थे, तो हम सब ने ज्ञान पाया। अत: उस उपकार को तो भूल ही नहीं सकते।

दादाश्री : लेकिन किससे नहीं भुलाया जा सकता? 'मैं' से नहीं, बावा उपकार नहीं भूलता और अपना वह देश वाला निमित्त बना, वह भी बावा है। दोनों बावा। बात सुनी और अपने बावा ने मान लिया कि अब हमें ज्ञानी को ढूँढ निकालना है।

हम तो मैं, बावा और मंगलदास इतना समझ जाएँगे। उसमें सभी शास्त्र आ गए। मंगलदास, वह बाहर का स्वरूप है, बावा अर्थात् अंदर का स्वरूप और मैं, वह आत्मा है। मंगलदास नाम, बावा प्रतिष्ठित आत्मा और 'मैं' अर्थात् मूल आत्मा!

बावा ही अक्षर पुरुषोत्तम कहलाता है, मूल पुरुषोत्तम नहीं। मूल पुरुषोत्तम तो पूर्ण स्वरूप में ही है।

प्रश्नकर्ता : क्षर, अक्षर और अनक्षर, आपने ऐसा कहा था।

दादाश्री : जो क्षर है, वह चंदूभाई है और अक्षर, वह एक हद से शुरू होकर और दूसरी हद तक है, बाकी सभी बातों में बावा। 'मैं' पूर्ण स्वरूप है!

ब्रह्म, ब्रह्मा, भ्रमित

खुद ही भगवान है, अत: खुद ब्रह्म ही है और खुद ब्रह्मा बन गया है। ब्रह्मा कैसे बना? रात के साढ़े दस बजने पर घर के सभी लोग कहते हैं 'अब सो जाइए' तो जब आप सोने गए तो अंदर आपके रूम में डेढ़ घंटे बाद किसी ने पूछा 'क्यों अभी तक करवटें बदल रहे हो?' तब उस समय वास्तव में आप क्या कर रहे थे? करवट बदलते समय कौन सा धंधा किया? लो, साढ़े दस बजे सब ने सो जाने को कहा, सब ने हरी झंडी दिखा दी कि 'सो जाओ अब' और किसी की तरफ

से कोई शिकायत नहीं और एतराज नहीं तो फिर अब सोने में क्या हर्ज है? तब, नहीं ब्रह्मा बन बैठा ओढ़कर, योजना बनाने लगा, सुबह ऐसा कर दूँगा, परसों ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा'। इस तरह योजना गढ़ने लगा।

योजना गढ़ने लगा तो ब्रह्म में से बन गया ब्रह्मा और जब वे योजनाएँ अमल में आती हैं तब भ्रमित हो जाता है। तब कहता है, 'मैं चंदूभाई हूँ, इनका साला हूँ, इनका मामा हूँ'। यों भ्रमित हो गया! वही मैं है, वही बावा और वही मंगलदास है! वही ब्रह्म, वही ब्रह्मा और फिर वही भ्रमित हो जाता है!

पर्सनल, इम्पर्सनल और एब्सल्यूट

प्रश्नकर्ता : जो सारे महान तत्त्व चिंतक हैं, उन्होंने जो तीन शब्द दिए हैं पर्सनल, इम्पर्सनल और एब्सल्यूट, वे समझाइए।

दादाश्री : इसमें क्या समझाना? मैं, बावा और मंगलदास। मंगलदास-पर्सनल, बावा-इम्पर्सनल और जो 'मैं' है, वह एब्सल्यूट है।

प्रश्नकर्ता : क्या बात है! बस समझ में आ गया, ठीक से। मैं, बावा और मंगलदास।

दादाश्री : जो मंगलदास है, वह पूरा ही पर्सनल कहलाता है। जो बावा है, वह इम्पर्सनल कहलाता है, वह इगोइज़म कहलाता है और जो 'मैं' है वह एब्सल्यूट है। जिस एब्सल्यूट में सिर्फ 'मैं' ही रहता है, उसे एब्सल्यूट कहते हैं। यह आइ विदाउट माइ इज़ एब्सल्यूट।

'आइ विद माइ', वह मंगलदास है, वह पर्सनल है और जो उससे आगे गए हैं, वे 'आइ विद नॉट माइन' तो इम्पर्सनल भी हो जाते हैं। अत: 'आइ विद माइ, आइ विद नॉट माइन' (व्यवहार में मेरा है लेकिन निश्चय में मेरापन नहीं है) और 'आइ विदाउट माइ' बस इतना ही सॉल्यूशन है इसका।

बावा का महत्व है। दूसरे सामान्य लोग और खुद में, दोनों में से

जितना खुद का महत्व होता है, उतना ही इसका महत्व है। बीच वाले की, इम्पर्सनल की... और हमेशा पर्सनल का महत्व कम होता है। पर्सनल का अर्थ यही है कि खुद का महत्व कम कर देना! खुद की कीमत बढ़ाने की कोशिश करने से बल्कि कम हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : जीवात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा, गुजराती में बार-बार इसका स्पष्टीकरण हुआ है। इंग्लिश में दो ही शब्द कहे हैं, आइ विद माइ और आइ विदाउट माइ। तो यह तीसरा शब्द आज निकला। इंग्लिश में दो ही थे।

दादाश्री : हाँ। लेकिन तूने पूछा तो यह निकला। कोई पूछे तो निकलता है।

प्रश्नकर्ता : अब विदाउट यानी कि 'मेरा नहीं' ऐसा किस आधार पर साबित होता है! ऐसा कब होता है कि 'मेरा नहीं', ऐसा डिसिज़न आ जाता है, वह साबित हो जाता है?

दादाश्री : साबित होने का इससे कोई लेना-देना नहीं है। यह तो इन तीनों की अवस्थाएँ हैं। फिर इसका प्रमाण कहाँ से लाएँ? चाहे कहीं से भी लाएँ, हमें इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन 'आइ विद नॉट माइन' वह अंतरात्मा दशा है।

प्रश्नकर्ता : आइ का रियलाइज़ेशन हो जाए न, सेल्फ रियलाइज़ हो जाए तब शुरुआत होती है न 'नोट माइन' वाली दशा की?

दादाश्री : ऐसा तो सिर्फ कहते हैं लेकिन जब तक ऐसा रियलाइज़ नहीं हो जाता, तब तक काम नहीं आएगा न! रियलाइज़ करने के लिए फिर से कोशिश करता है। तब फिर दूसरी सब चीज़ों में से उसकी रुचि खत्म हो जाएगी। रुचि खत्म होने के बाद वह इंसान जिस हेतु के लिए प्रयत्न कर रहा है, उसे वह हेतु प्राप्त हो ही जाएगा अगर उसमें कोई मिलावट नहीं हो तो। मिलावट होगी तो नहीं होगा। अगर हेतु में मिलावट नहीं होगी तो प्राप्ति होगी ही। तब तक 'आइ विद माइ' है। सेल्फ की प्राप्ति के बाद में 'आइ विद नॉट माइन'।

अर्थात् 'आइ विदाउट माइ' इज़ गोड, परमात्मा है। 'आइ विद माइ' वह जीवात्मा है। 'आइ विद नॉट माइन' अंतरात्मा है, बावा है।

रोंग बिलीफ से है इम्प्योर सोल

प्रश्नकर्ता : हमारा जो अस्तित्व है, वह इसलिए है कि हमारे अंदर शुद्धात्मा है। वह जो उसका अस्तित्व है, साँस लेना बंद कर लें तो यहाँ से चले जाएँगे, वह बात ठीक है?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो शुद्धात्मा ही रहता है और उसे कुछ भी नहीं होता न! देअर इज़ प्योर शुद्धात्मा इन दिस बॉडी। प्योर कभी भी इम्प्योर हो ही नहीं सकता। इम्प्योर सोल को साँस की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और बॉडी, इन दोनों के बीच में कोई चीज़ है? इन्टरमीडियेट कोई चीज़ है?

दादाश्री : वॉट इज़ द बाउन्ड्री ऑफ चंदूभाई? वन चंदूभाई वन शुद्धात्मा, देअर इज़ मिडल। यानी प्योर सेल्फ यानी प्योर सोल (ट्रू सेल्फ), इम्प्योर सोल (रिलेटिव सेल्फ) एन्ड फिज़िकल। तो प्योर सोल इज़ परमानेन्ट। इम्प्योर, इट इज़ ओन्ली द बिलीफ। उस रोंग बिलीफ को फ्रेक्चर कर दिया जाए तो चला जाएगा, इम्प्योर खत्म हो जाएगा और फिज़िकल की कोई ज़िम्मेदारी है ही नहीं। नो रिस्पोन्सिबिलिटी फिज़िकल की, रिस्पोन्सिबिलिटी सारी इम्प्योर सोल की है। इम्प्योर सोल देट इज़ आइ विद माय, क्रोध-मान-माया-लोभ, वह इम्प्योर सोल है। देट इज़ ओन्ली रोंग बिलीफ, नथिंग एल्स। प्योर सोल इज़ करेक्ट, फिज़िकल इज़ करेक्ट एन्ड द इम्प्योर सोल, देर इज़ ओन्ली रोंग बिलीफ, नथिंग एल्स!

रोंग बिलीफ से फिज़िकल को 'चंदूभाई' कहा है, फिज़िकल को 'चंदूभाई' नाम दिया है। पहचानने का यह साधन देते हैं लोग। दुनिया के लोग व्यवहार चलाने के लिए नाम देते हैं। वह फिज़िकल नाम देते हैं। तो उसका जो चंदूभाई नाम है, उसे इम्प्योर सोल ने पकड़ लिया है कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ'। देट इज़ अ फर्स्ट रोंग बिलीफ यानी देट इज़ द इगोइज़म। नाम है इसका (देह का), चंदूभाई का और 'यह' (खुद)

कहता है, 'मैं चंदूभाई हूँ' वह इगोइज़म है। अगर वह चला जाए तो इगोइज़म गॉन और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसी राइट बिलीफ बैठ जाए तो काम हो जाएगा। अतः जब हम ज्ञान देते हैं तो यह सब चला जाता है। सारी रोंग बिलीफें फ्रेक्चर हो जाती हैं और फिज़िकल बचता है। जो फिज़िकल है उसे माफ कर दिया जाता है। तेरे सभी गुनाह माफ लेकिन आज्ञा में रहकर करेगा तो!

'आप' शुद्धात्मा (मैं) हो और दूसरा जो मिश्र आत्मा है (बावा), उसका 'आपको' *निकाल* करना है। आपका काम क्या है? मिश्र आत्मा का *निकाल* करना और जो निश्चेतन चेतन (मंगलदास) है, वह तो अपने आप ही सहज भाव से चलता रहेगा। 'आपके' हाथ में सत्ता है ही नहीं! तो मैं, बावा और मंगलदास समझ में आ गया न?

केवलज्ञान के बाद अभेद स्वरूप में

फिर व्यवहार में लघुत्तम और निश्चय में गुरुत्तम हैं। हम से बड़ा कोई नहीं है। हं! भगवान बड़े थे, वे तो हमारे वश में हो गए। भगवान हमारे वश में हो गए हैं, हमारी भक्ति देखकर! हम और भगवान एकाकार ही हैं और अलग भी हैं, यों दोनों प्रकार से हैं। केवलज्ञान होने पर खुद एकाकार हो जाते हैं। हम कुछ समय तक भगवान की तरह रहते हैं, कुछ समय तक ये दर्शन करवाते हैं। 'दादा भगवान के असीम जय जयकार', उस समय भगवान की तरह रहना होता है। इससे सभी उल्लास में आकर ऐसे-ऐसे करते हैं न! अभी आपके साथ बात करते समय अलग हैं। हाँलाकि यह जो बोल रहा है, वह टेप रिकॉर्डर है, मैं नहीं बोल रहा हूँ लेकिन मैं इसका ज्ञाता-दृष्टा हूँ।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि 'हम' इन्हें देखते हैं, भगवान से 'हम' अलग हैं और भगवान अलग हैं! तो 'हम' कहने वाला कौन है?

दादाश्री : 'हम' कहने वाला यह भाग है, वह जो तीन सौ छप्पन वाला है।

प्रश्नकर्ता : अंबालाल भाई? ज्ञानीपुरुष?

दादाश्री : ज्ञानीपुरष, ये अंबालाल भाई ज्ञानी हुए। वे वही हैं, मैं, बावा और मंगलदास।

'हम' और 'आप' दोनों बावा

प्रश्नकर्ता : अभी तक तो मुझे पता ही नहीं था कि लोग, 'मैं, बावा और मंगलदास' क्यों कहते हैं?

दादाश्री : इसीलिए यह समझा रहा हूँ। ज्ञानी की दृष्टि से समझ लेंगे तो कल्याण हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : बहुत ही उत्तम उदाहरण है, मैं-बावा-मंगलदास का।

दादाश्री : महात्मा भी खुश हो जाते हैं न! हम बावा ही हैं कहते हैं। आप भी बावा हो, हम भी बावा हैं। आप सुनने वाले बावा और हम बोलने वाले बावा। यह बात तो मैं आपको सिद्धांत पूर्ण करने के लिए बता रहा हूँ। वह भी आपको समझ में आ गया कि मैं किसलिए यह बता रहा हूँ। खुद को *लक्ष* (ध्यान) में रखकर कहा है। बावा ने कहा तो है लेकिन खुद को *लक्ष* में रखकर।

इसी प्रकार इस 'मैं' के बाद यह चंदूभाई और फिर ये सभी कर्म, कार्य। वह सब दिखाई देता है एक ही लेकिन व्यवहार पूरी तरह से अलग है। अत: 'मैं' इन सब का जानकार है। 'मैं' जानकार है कि भाई, यह जो मठिया (गुजराती व्यंजन) खाया, जो यह जानता है कि इसका स्वाद कैसा आया, वह आत्मा है और जो भोगता है, वह अहंकार है। वह बावा है। अत: यह सब अलग-अलग है। खुद को अलग रहने की ज़रूरत है। और है ही अलग!

जो जानता है, वह आत्मा है; जो वेदता है, वह बावा है और जो खाता है, वह मंगलदास है।

मज़ा उठाने वाला अलग है और आप भी अलग। मज़ा उठाने वाला बावा है। बावा मज़े लेता है और आप जानते हो!

आप चंदूभाई हैं, सुनने वाले। अंबालाल पटेल बोलने वाले और

ज्ञानी भोगने वाले और हम जानने वाले! और हमारा घर कितनी दूर है? हमारे घर के पास ज्ञानी हैं और उनके पास में अंबालाल भाई रहते हैं। मैं, बावा और मंगलदास!

खाने वाला, वेदने वाला और जानने वाला

खाने वाला अलग है, खिलाने वाला अलग है, चबाने वाला अलग है, वेदन करने वाला वेदक अलग है, और आप जानने वाले अलग...

प्रश्नकर्ता : ये सब कौन हैं? खाने वाला कौन है?

दादाश्री : क्या यह टेबल खाती है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : जो खाता है, वही खाता है। वह खाने वाला इन सब से अलग है, वह भी आप नहीं हो। खाने वाला आपसे अलग है। फिर खिलाने वाला अलग है। हाथ खिलाते हैं। अन्य बाहर के खिलाने वालों से तो हमें कोई लेना-देना नहीं हैं, वास्तव में ये बाहर के खिलाने वाले देखे जा सकते हैं। हाथ इस तरह से खिलाते हैं। खाने वाला और फिर खिलाने वाला! हो गया?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर, चबाने वाले अलग हैं। ये बत्तीस दाँत चबाते हैं। फिर वेदने वाला। अंदर बावा जी हैं। अरे... मीठा आया, तो हाइ क्लास है, हाँ... मज़ा आ गया! जब कड़वा आता है, तब वेदता है अर्थात् उल्टा वेदता है। वेदना होती है न!? जब ऐसा कड़वा आता है तो सहन नहीं होता और जब मीठा होता है तब वैसा। अतः उसे वेदकता कहते हैं। कड़वे-मीठे का वेदन करने वाला। जानने वाला यह जानता है कि यह वेदने वाला कैसे वेद रहा है। जानने वाला 'मैं खुद हूँ', वेदकता वाला ज्ञानी है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी? अभी बावा कहा था न, वेदकता वाला बावा?

दादाश्री : जब तक यह बावा है तब तक वेदकता है। और जब तक 'ज्ञानी', वे बावा के रूप में हैं, तब तक वेदकता है और जानने वाला मूल पुरुष है, केवलज्ञान स्वरूप है। वे जो ज्ञाता में रहते हैं, जो जानने में और वेदकता में रहते हैं, वे कौन हैं?

प्रश्नकर्ता : ये ज्ञानी।

दादाश्री : हाँ! ज्ञानी।

ममता, वह बावा है

प्रश्नकर्ता : वह जो 'मैं' है, वही मूल वस्तुत्व है ना?

दादाश्री : 'मैं' के बिना तो चलेगा ही नहीं न! हमें वापस जाना है। उसके बाद 'मैं' की भी ज़रूरत नहीं रहेगी। 'मैं' करके घुसे थे। 'मैं' करके वापस निकल जाना चाहिए। पहले 'मैं' था। अहम् था, फिर ममता चिपक गई। ममता, वह बावा है। ममता छोड़ते समय भी बावा है और ममता बढ़ाते समय भी बावा है।

यह रूपक समझ में आ जाए तो काम निकाल देगा।

शुद्धात्मा से प्रार्थना, बावा की

आप बावा में रहकर अपने 'मैं' से (दादा भगवान से) कहो कि 'हे दादा भगवान ज्ञानी बावा को चार-पाँच साल इस देह में बिताने दो। ताकि यहाँ सभी लोगों के सारे काम पूरे हो जाएँ'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दीर्घायु दीजिए दादा को।

दादाश्री : फिर से यह संयोग नहीं मिलेगा इसलिए मैं ज़ोर देकर कहता हूँ। यह जो संयोग है न, वह टॉपमोस्ट संयोग है। फिर से नहीं मिलेगा इसलिए कहता रहता हूँ क्योंकि आप नहीं जानते। मैं जानता हूँ कि यह संयोग कैसा है!

यह कौन कह रहा है? मंगलदास (ए.एम.पटेल) कह रहे हैं। ये बावा (ज्ञानीपुरुष) कैसे हैं, उनके बारे में बता रहे हैं! यदि इन ज्ञानी

बावा के कहे अनुसार रहोगे न, तो आरपार पहुँच पाओगे! वास्तव में यह ज्ञानी बावा ऐसा है!

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान जो चाहे सो कर सकते हैं।

दादाश्री : पर यह तो बावा की बात कर रहे हो लेकिन जब भगवान राज़ी होंगे तभी बावा कर सकेगा न? करने का काम बावा का है लेकिन राज़ी किसे होना है?

प्रश्नकर्ता : राज़ी होना है दादा भगवान को।

दादाश्री : तो इतनी भावना करना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। सभी प्रार्थना करेंगे तो काम हो जाएगा।

अब निकाली बावापद

चंदूभाई की बात करो। कौन बात करेगा? (टेप रिकॉर्डर)व्यवस्थित (के ताबे में है), बावा नहीं है। जानने वाला कौन है? मैं हूँ। अब बातें करो।

यह जो स्थूल चंदूभाई है, वह मंगलदास है। फिर जो सूक्ष्म भाग बचा और कारण भाग बचा, वे दोनों बावा के हैं और 'मैं', शुद्धात्मा। मैं-बावा-मंगलदास। यह है अपना पूरा विज्ञान, अक्रम विज्ञान। इस बावापद का *निकाल* करना है। जिस बावापद को लेकर आए हैं न, उस बावापद का *निकाल* करेंगे तो शुद्ध हो जाएँगे लेकिन अभी तक चंदूभाई तो साथ में ही है न? और इंजीनियर भी साथ में है न! उनका समभाव से *निकाल* करना है। मंगलदास और बावा, दोनों अलग हैं और मैं अलग हूँ। तुझे उसे पड़ोसी के रूप में तो साथ में रखना पड़ेगा न! *निकाल* तो करना पड़ेगा न! पड़ोसी से झगड़ा थोड़े ही चल रहा है!

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* तो चंदूभाई को करना है न?

दादाश्री : वही चंदूभाई!

प्रश्नकर्ता : यानी समभाव से *निकाल* बावा का नहीं, चंदूभाई का करना है?

दादाश्री : इस इंजीनियर को करना है। यह चंदूभाई ही इंजीनियर है न! चंदूभाई इंजीनियर को करना है, वह सिर्फ चंदूभाई नहीं है, वह तो फिर इंजीनियर भी है। समभाव अर्थात् मित्रता नहीं और दुश्मनी भी नहीं। यह (चंदूभाई) अपना दुश्मन नहीं है। उसे तो हमने ही बनाया है। हमने बनाया है न? भूल तो अपनी ही है न?

मैं, बावा और मंगलदास समझ में आ गया ठीक से? तेरा भी बावा है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। बावा का ही *निकाल* करना है न!

दादाश्री : बावा कैसा है, उसे तू नहीं जानता? बावा का स्वभाव कैसा है? जानकार जानता है। बावा स्वभाव के अनुसार करता रहता है और जानकार जानता है कि इसने यह ऐसा किया।

प्रश्नकर्ता : अब बावा को शुद्ध करते रहना है न?

दादाश्री : हाँ, नहीं तो छोड़ेगा नहीं न! दावा करेगा। हाइकॉर्ट में दावा दायर कर लेगा तो फिर क्या होगा? हमें सब आता है। छूटना भी आता है और बंधना भी आता है। जब बंधते हैं तो अज्ञान से बंधते हैं। बंधने से फायदा नहीं होता इसलिए वापस छोड़ देते हैं।

अब इसके साथ *निकाल* तो करना है। उस बावा को खुश करना पड़ेगा। अगर कुछ अच्छा खाने को नहीं मिले न, तो पूरी रात जागता है। अगर बावा को पहचान लेंगे तो फिर हम बावा नहीं रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : बावा की अच्छा खाने की आदत नहीं रखें तो फिर परेशानी नहीं होगी। पहले तो बावा बनकर अच्छा खाने की आदत हो जाती है। वह आदत तो बल्कि बढ़ती जाती है। अब बावा से बाहर निकलकर हम इस 'मैं' में आ गए है!

पहुँचे परमात्मा के पोर्च में

तो फिर वह मान्यता ठीक से फिट हो गई है न? आप बावा से अलग, प्योर हो और हंड्रेड परसेन्ट प्योर स्वरूप! भगवान! अब आज्ञा में रहने से वे परसेन्ट बढ़ते जाएँगे धीरे-धीरे और अगर गर्वरस चखना बंद हो गया तो बढ़ेंगे। अगर गर्वरस चखते हैं तो मार्क्स नहीं बढ़ते। वहीं के वहीं रह जाता है, बल्कि मार खा जाता है क्योंकि न खाने की चीज़ खा ली। उल्टी करने की चीज़ थी उसे खा गए!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने वह कहा न कि यह जो बावा है, आप उससे अलग हैं, भगवान हंड्रेड परसेन्ट प्योर हैं और फिर यह मंगलदास तो है ही वहाँ पर।

दादाश्री : मंगलदास तो थे।

प्रश्नकर्ता : हाँ तो चार हुए?

दादाश्री : नहीं, चार नहीं, तीन ही हुए। तीसरा स्टेशन तो लंबा है इसीलिए फाटक ज़रा लंबा है। उसे चौथा स्टेशन, नया स्टेशन नहीं कहेंगे। एक स्टेशन होता है तो वह यहाँ से शुरू हुआ और सौ गज़ दूर या इतना बड़ा हो कि सौ मील दूर होता है लेकिन जहाँ से शुरुआत हुई वह स्टेशन ही कहलाएगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जब वह फाटक आएगा तब बाहर निकल पाएँगे। भगवान फाटक के पास हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जैसे ही उस फाटक को छुआ तो वह भगवान बन जाएगा। तो इसे एक कहेंगे या दो कहेंगे? एक ही। और वह तो मन में समझना है कि प्योर सोल का स्टेशन आ गया। प्योर सोल बन गया। अब वह ज़रा ज़्यादा लंबा है तो चाय पीते-पीते जाएँगे।

पर और स्व का क्षेत्र

तू चाहे कितना भी पागलपन करे या समझदारी रखे लेकिन वह बावा है। घनचक्कर! क्यों इतना उछल-कूद कर रहा है! मैं, बावा और तू बावी और... यह क्या नाटक लगा रखा है? अब कभी शादी मत करना, पूरी ज़िंदगी किसी भी जन्म में।

प्रश्नकर्ता : शादी नहीं करनी है।

दादाश्री : मोह चला गया सारा? और जो होगा वह भी खत्म हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा! थोड़ा बहुत है, उसे निकाल दीजिए।

दादाश्री : नहीं। लेकिन वह बावा में है, उसे हमें जानना है कि बावा में इतना मोह है। मुझे ऐसा बता देना।

बावा का खेत देखा है?

प्रश्नकर्ता : देखा है।

दादाश्री : उस खेत में सभी कुछ है, वह सभी कुछ बावा का है। उस खेत में कुछ मंगलदास का है। बाकी का सब बावा का है। हम तो खुद के क्षेत्र में ही हैं। हम उस खेत में नहीं हैं, अपने खुद के खेत में हैं। चंदूभाई पराये क्षेत्र में जाते हैं। जो भी भय है, वह उन्हें हैं।

बावा कौन है, वह समझ गए?

एक बहन क्या कह रही थीं? मैं स्त्री हूँ, लेकिन हम बावा नहीं हैं न? वह बावा थोड़े ही हैं? ऐसा पूछने पर मुझे क्या कहना पड़ा? अगर बावा नहीं हो तो क्या बावी हो? हो तो बावी न लेकिन तेईस थोड़े ही हो जाएँगे? नहीं हो सकते। नहीं? बाइस तेईस नहीं बन सकता! (गुजराती में बाईस को बावीस कहते हैं। दादा ने मज़ाक में बावीस को बावी कहा है)

प्रश्नकर्ता : अब दादा! मैं, बावा और मंगलदास, ये तीनों अपनी-

अपनी जगह पर सेट हो गए हैं। एक-दूसरे की डिमार्केशन लाइन डल गई।

दादाश्री : बस! किसका खेत है यह? बाड़ वगैरह समझ लिया, देख लिया।

अंत में बावा! नहीं रहती है बावी

कोई कहेगा, 'मैं ऐसा शुद्धात्मा हूँ, मुझे कुछ भी स्पर्श नहीं करता'। जो ऐसा कह रहा है, वह बावा है। हम तो शुद्धात्मा ही हैं, क्या बावा होकर शुद्धात्मा रहा जा सकता है? और ज़्यादा उलझ जाएगा! एक व्यक्ति ने कहा, 'मैं तो शुद्धात्मा हो गया हूँ दादा के पास आकर। मुझे कुछ भी स्पर्श नहीं कर सकता'। इस बात का पता चलने पर उन्हें बुलाया। मैंने कहा, 'अब बावा मिट गया है क्या? वह जो शुद्धात्मा नहीं हुआ है, वह भी बावा है, लेकिन क्या तू बावा नहीं रहा?'

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : मैं भी बावा कहलाता हूँ न! चार डिग्री कम हैं। अगर एक की कमी है तो भी 'मैं' शुद्ध नहीं हो पाएगा। तब बावा उतर गया, और उस व्यक्ति ने कहा, 'फिर से ऐसा नहीं कहूँगा'। क्या बावा मिट गया है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : अतः अहंकार नहीं चढ़ बैठना चाहिए। अहंकार को उतारने के लिए ही तो बावा को मिटाना है यानी कितना सुंदर रास्ता है! इस पर पुस्तक लिखी जाए तो काम हो जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : हो जाएगा, दादा।

दादाश्री : संसार अर्थात् मैं, बावा और मंगलदास।

मैं भी बावा कहलाता हूँ न और आप भी बावी कहलाती हो। आपका बावीपना छूटा नहीं हैं और मेरा बावापना नहीं छूटा है। जब बावा 360 डिग्री वाला हो जाएगा तब 'मैं' छूट जाऊँगा, मुक्ति हो जाएगी!

जब तक तीन सौ छप्पन है, तब तक मुझे कहना पड़ेगा न कि 'मैं जुदा हूँ'। आपसे नहीं कहता? अतः बावा ही है! यह किसी को बताना नहीं है। फिर लोग कहेंगे, 'बावा क्यों?' बल्कि नासमझ लोग दोष बाँध लेते हैं। हमें अपने आपको इस तरह से समझ लेना है कि 'आखिर में तो मैं बावा हूँ!'

प्रश्नकर्ता : अब जो बावा है वह बावा ही रहता है, बावी बनने नहीं जाता। यह बहुत अच्छा हो गया। बावा रहता है, बावी नहीं। अगर बावी होने जाएगा तो प्रज्ञा कहेगी, 'चल बावा बनकर रह' जो बावी है, वही स्त्री बनती है न! जो बावा है, अगर वह बावी बन जाए तो उससे स्त्रीपना आता है। अतः दादा, अब स्त्रियों को चाबी मिल गई, बहुत बड़ी, यहाँ पर मूल पॉइन्ट से ही पकड़ना है!

दादाश्री : सभी स्त्रियाँ समझ गई, इस बावा को।

यह (दादाश्री का) बावा आपके साथ बहुत सख्ती रखता है। बहुत सख्त, फिर भी जब वे आपको डाँटते हैं तब हम ऐसा सब कहते हैं, 'आप बूढ़े हैं, ऐसे हैं, ऐसा है-वैसा है'। वह हमें अलग दिखाई देता है, वह साफ-साफ दिखाई देता है, चेहरा-वेहरा सभी कुछ क्लियर...

प्रश्नकर्ता : दादा, और सब कहिएगा लेकिन बूढ़ा मत कहिएगा।

दादाश्री : ऐसा नहीं कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : मत कहिए। आप लगते ही नहीं हैं न।

दादाश्री : वह तो मज़ाक कर रहा हूँ।

प्रश्नकर्ता : नहीं! ऐसी मज़ाक मत कीजिए।

दादाश्री : महात्माओं से मज़ाक कर रहा हूँ। महात्माओं को आश्चर्य होता है कि 'ये क्या कह रहे हैं!' लेकिन अब नहीं कहूँगा।

प्रश्नकर्ता : महात्मा तो कहते हैं कि 'दादा तो अट्ठाइस साल के लगते हैं'।

दादाश्री : लेकिन अब नहीं कहूँगा।

मैं, बावा और मंगलदास। यह लिखना हो तो भी लिख सकते हैं। आसान व अच्छा है। मैं, मंगलदास और बावा।

प्रश्नकर्ता : दादा यह मैं, बावा और मंगलदास अच्छा लग रहा है।

दादाश्री : हाँ, यह है उपमा।

प्रश्नकर्ता : सभी के मुँह पर चढ़ गया है, वह एक्ज़ेक्ट सीक्वन्स में है।

दादाश्री : इसलिए यह सब के मुँह पर चढ़ गया है तो इसी को चलने देते हैं।

हाँ, मशहूर हो गए मंगलदास। नहीं तो, कौन पूछे मंगलदास को? ऐसे मंगलदास तो बहुत जन्मे और मर गए। नहीं? अच्छा रास्ता है।

कितने उदाहरणों पर भी उदाहरण, उदाहरण... यह समझ ऐसी है कि समझ में फिट हो जाए। आपको समझ में आ गया। नहीं? बावा कौन है और बावी कौन? और...

प्रश्नकर्ता : हाँ हाँ।

दादाश्री : यों ही पागलपन कर रहा है बावा सालों से। वह सुख में है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा, अब निरंतर सुख में।

जीवन बने सुगंधित

दादाश्री : यह बावा कौन है? संसार में ऐसा करता है, वैसा करता है, बच्चों को मारता है, पीटता है, वह बावा है और 'मैं' कौन है? शुद्धात्मा। अतः इसमें से, बावा में से निकलना है हमें। नाम भले ही रहे। हमारा नाम अंबालाल ही रहा, लेकिन हम बावा में से निकल गए हैं और ज़रा सा बावापन बचा है इसलिए यह खटपट करते रहते हैं।

खटपट किसलिए है? तो वह इसलिए कि 'जो सुख मैं भोग रहा हूँ वैसा ही सुख आपको भी मिले'।

बावा ने जो-जो सुख माने थे, वे अब नहीं चखने पड़ते हैं न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : जब तक बावा थे तब तक चखा लेकिन अब तो बावा खत्म हो गया न! बहुत अच्छे इंसान हैं, बेस्ट इंसान। सुख चखने की भावना होती है न बावा को, उससे कहना, 'आप बावा हो, लेकिन मेरे लिए तो मैं और आप दोनों अलग हैं, साथ में नहीं हैं। अब मैं कैसे बीच में हाथ डालूँ? आप अपने प्रयत्न करो'! बावा होकर चखा वह अलग रहा। चला गया। लेकिन अब?

अब जीवन बहुत सुंदर तरीके से बिताना है। अभी अपने साथ जो बावा है उससे कह देना है कि 'जीवन ऐसे बिताओ, जैसे अगरबत्ती'। अगरबत्ती जीवन बिताती है तो उसका क्या काम है? खुद जलकर दूसरों को सुख देना। अतः उसकी ज़िंदगी बेकार नहीं जाती! अच्छी, साफ-सुथरी बीतती है। अगरबत्ती की तरह, यह समझाना है। अगरबत्ती जैसे बन सकते हैं, ऐसा है। ऐसा सब माल है और सुगंधि वाले इंसान हैं।

अब हुआ विश्वास, मुक्ति का

इन सब के कनेक्शन मिलते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : मिलते हैं।

दादाश्री : जिसे हम ताल मिलना कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : ताल मिलता है। लिंक मिलती है। सभी लिंक कनेक्ट हो जाती हैं।

दादाश्री : हो ही जाती हैं। इसी को ज्ञान कहते हैं। दस जगह पर कनेक्ट हो जाए और दूसरी चार जगहों पर कच्चा पड़ जाए तो वह ज्ञान नहीं कहलाएगा। फिर यह बात अलग है कि समझ में न आए

लेकिन समझ में आ जाए तभी काम का है न!

जो ज्ञान किसी भी जन्म में नहीं मिला था, वह मिला है और इनका तो राह पर आ गया है उदाहरण और दलील के साथ कि 'मैं कौन हूँ?' 'बावा कौन है?' और 'मंगलदास कौन है?'

बावा को देखा, मंगलदास को भी देखा। अब हम अपने खुद में आ गए हैं। किस उम्र में?

यदि वह 'मैं' में आ जाएगा तो अक्रम विज्ञान का ध्येय पूरा हो जाएगा! आपको समझ में आया न ठीक से? अब हमें खुद में रहना है, 'मैं' में रहना है। बावा तो था ही। बहुत दिनों तक उसमें रहे। बदगोई हुई, शादी की, पछताए भी सही, कोई है जो नहीं पछताया?

प्रश्नकर्ता : इसमें रिलेटिव में तो भरपूर डूबे हुए थे।

दादाश्री : भरपूर यानी डूबे हुए थे और उसमें भी ऐसा था कि अगर डबल डुबाया जाए तो उसमें भी मज़ा आता था। यह तो अभी ही बदला है न?

प्रश्नकर्ता : मार्ग मिला है इसलिए अब अंदर ऐसा विश्वास है कि निकल पाएँगे।

दादाश्री : इस चीज़ का विश्वास हुआ! धन्यभाग हैं! जो इस बात को समझ गया न, उसका तो कल्याण हो गया।

अब, अगर बाहर कोई ज्ञानी हों न तो वे मन में ऐसा मानते हैं कि 'मैं ज्ञानी हूँ'। तो रात को भी वे उसी कैफ में सो जाते हैं। हर किसी को कैफ चढ़ता है। वे रात को भी इसी नशे में सो जाते हैं। आखिरकार तो वास्तव में उसमें भी पछताते हैं। यह तो बावा है, बावा! इसमें तूने क्या कमाया? तू अलग है, तू तो शुद्धात्मा है।

'बावा' शुद्ध तो 'मैं' शुद्ध

रियल के लिए आपको कुछ नहीं करना है। यह इतना जो है वह

चंदूभाई करेंगे और रिलेटिव शुद्ध होता जाएगा। रिलेटिव शुद्ध होता जाएगा, तो 'बावा जी' शुद्ध होते जाएँगे। अभी ये 'बावा जी' संपूर्ण शुद्ध नहीं कहे जा सकते। 'बावा जी' संपूर्ण शुद्ध हो जाएँगे तब 'मैं' शुद्ध हो जाएगा, कम्प्लीट शुद्ध। 'मैं' भी भगवान!

अभी 'मैं' ज्ञान स्वरूप है, उसके बाद विज्ञान स्वरूप 'मैं' प्रकट होगा! यानी आपको भी यही सेट हो गया है। यह बावा शुद्ध होता जा रहा है और जब वह 'मैं' शुद्ध, साफ हो जाएगा, तब 'मैं' हो जाएगा कम्प्लीट!

प्रश्नकर्ता : उसके बाद 'मैं' विज्ञान स्वरूप होता जाएगा।

दादाश्री : जब तक बोलते हैं, तब तक ज्ञान स्वरूप है।

प्रश्नकर्ता : जब तक 'मैं' बोलता है तब तक ज्ञान है। 'मैं' सुनता रहता है और ज्ञान बोलता रहता है।

दादाश्री : उसके बाद जब ज्ञान का बोलना भी बंद हो जाता है तो, वह विज्ञान है। विज्ञान में फिर आवाज़ वगैरह नहीं होती। पूर्णाहुति! पूर्ण दशा!

प्रश्नकर्ता : यानी जिसे 360 डिग्री कहते हैं, वह विज्ञान स्वरूप है!

दादाश्री : हाँ, 360 हो जाने के बाद बोल या शब्द नहीं रहते।

प्रश्नकर्ता : तो जैसे-जैसे ज्ञान बोलता है और 'मैं' सुनता जाता है, वैसे-वैसे डिग्रियाँ बढ़ती जाती हैं।

दादाश्री : बढ़ती जाती हैं।

जब तक शब्द हैं तब तक हम बावा हैं लेकिन शब्द अलग है। शब्द रिलेटिव हैं और रियल में शुद्ध, विज्ञान है। हम दोनों तरफ हैं। एक, विज्ञान स्वरूप हैं और जो बावा के रूप में है, वह ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान रिलेटिव है और विज्ञान रियल है। हमारा यह रिलेटिव बंद हो जाएगा

तो वह (विज्ञान स्वरूप) पूर्ण हो जाएगा। रिलेटिव एक-दो जन्मों में बंद हो जाएगा। तब हमारा पूर्णतः विज्ञान स्वरूप हो जाएगा। अर्थात् हम विज्ञान ही हैं लेकिन अभी ज्ञान स्वरूप में हैं, बावा जी। मैं, बावा और मंगलदास।

प्रश्नकर्ता : 'मैं' बावा स्वरूप से ही रहता है?

दादाश्री : नहीं! जो यह मानता है कि 'मैं मंगलदास हूँ' वह बावा है। समझ में आया न! इस प्रकार से है!

प्रश्नकर्ता : तो जिस प्रकार से यह व्यवहार में है उसी प्रकार यह रियल में किस तरह से है?

दादाश्री : 'मैं' रियल है। वह तो अंतिम ज्ञान है। शब्द बोलना, वहाँ अंतिम (उच्चतम) ज्ञान है और ये बोल न बोलना, वह विज्ञान है। अत: रिलेटिव में 'मैं' का ज्ञान सब से अंतिम प्रकार का ज्ञान है और मंगलदास, वह तो कम्प्लीट रिलेटिव है। मंगलदास तो परमानेन्ट है ही और बावा बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : बावा बढ़ता जाता है लेकिन 'मैं' तो वैसे का वैसा ही रहता है न?

दादाश्री : 'मैं' तो वैसे का वैसा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : और फिर वह 'मैं' विज्ञान स्वरूप तब कहलाता है जब फुल ज्ञान हो जाता है। बावा फुल हो जाता है तब।

दादाश्री : 'मैं' जो है, वह ज्ञान स्वरूप है, जब तक निन्यानवे है तब तक और जैसे ही वह सौ हुआ कि वह विज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं' विज्ञान स्वरूप हो जाता है।

दादाश्री : जब तक बोलता है तब तक 'मैं' बावा है।

प्रश्नकर्ता : मतलब, जब तक बोल चलते रहेंगे तब तक 'मैं' विज्ञान स्वरूप नहीं हो सकेगा?

दादाश्री : तब तक 'मैं' ज्ञान स्वरूप हूँ लेकिन रियली विज्ञान स्वरूप हूँ।

प्रश्नकर्ता : अब ज्ञान स्वरूप तो उसे कहते हैं कि जब बोल निकल रहे हों यानी कि वाणी निकल रही हो, तब (वह जाने कि) 'मैं' कहाँ पर है?

दादाश्री : तब तक 'मैं' बावा जी के रूप में है।

प्रश्नकर्ता : तब मंगलदास तो एक तरफ ही रह जाता है।

दादाश्री : हाँ! मंगलदास में तो कुछ भी बदलाव नहीं होता। नामधारी है।

प्रश्नकर्ता : हं! नामधारी है और बावा की समझ बढ़ती जाती है।

दादाश्री : बढ़ती जाती है। ये सब महात्मा हमेशा बावा ही कहलाएँगे क्योंकि ये खुद के रिलेटिव नाम को स्वीकार नहीं करते और रियल में बावा हैं।

प्रश्नकर्ता : अच्छा! रिलेटिव छूट गया और वह बावा स्वरूपी हो गया। वह बावा स्वरूप बढ़ते-बढ़ते रियल हो जाता है?

दादाश्री : रियल हो जाता है।

खुद को समझ में आता जाता है धीरे-धीरे। मंगलदास का पद छूट ही गया है। अब 'मैं' और बावा बचे हैं।

प्रश्नकर्ता : अब 'मैं' और बावा! तो क्या 'मैं' बावा को ज्ञान बढ़ाने में हेल्प करता है? क्या ऐसा होता है?

दादाश्री : नहीं। (केवलज्ञान स्वरूप आत्मा केवल प्रकाशक ही है।)

प्रश्नकर्ता : तो बावा का ज्ञान किस प्रकार से बढ़ता है?

दादाश्री : जैसे-जैसे कर्म छूटते जाते हैं वैसे-वैसे फाइल का *निकाल* होता जाता है और वह *निकाल* कौन करता है? व्यवस्थित।

प्रश्नकर्ता : व्यवस्थित *निकाल* करता है। ठीक है। अर्थात् समय आने पर सबकुछ मिलता जाएगा तब *निकाल* होता जाएगा।

दादाश्री : इफेक्ट का *निकाल* हो ही रहा है। कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होते।

'मैं' और 'बावा' तीन सौ साठ पर एक हैं

मैं जब ऐसा पूछता हूँ कि 'कौन बोला?' तो वे कहती हैं, 'नीरू बोली'। फिर इस पर से उन्हें जुदापन का ज्ञान हो गया और फिर नीरू बहन प्रतिक्रमण करती हैं।

इसी प्रकार से फिर आपको मुझसे कहना है कि 'ये चंदूभाई बोले!' तो फिर ऐसा कहा जाएगा कि अपना ज्ञान हाज़िर रहा। यहाँ पर इसी तरह से बोलने का रिवाज है उसे हम 'बावा जी' कहते हैं। मैं, बावा और मंगलदास! मंगलदास कुछ हद तक है, और उसके बाद बावा है।

प्रश्नकर्ता : कुछ हद तक मैं?

दादाश्री : नहीं! तीन सौ छप्पन पर यह बावा है, सत्तावन, अठावन, उनसठ। तो उनसठ तक बावा माना जाता है। साठ होते ही 'मैं' हो जाता है। अत: 'मैं' तो शुद्धात्मा ही हूँ लेकिन यह भी 'मैं' बन गया। दोनों ही तीन सौ साठ और तब तक बावा है।

यहाँ पर लिखिए (दादाश्री लिखवाते हैं), बाइ रिलेटिव, ही इज़ इनसाइड टू हंड्रेड। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट का मतलब है चंदूभाई। बाइ रियल ही इज़ ऑन थ्री हंड्रेड थ्री।

डिग्री किसकी है? कितनी?

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि चंदूभाई 200 डिग्री पर हैं और

रियल में उनकी 303 डिग्री है तो दादा ऐसा नहीं कहा जाएगा कि दादा रियल में 360 डिग्री पर है?

दादाश्री : रियल में तो तीन सौ साठ डिग्री ही है।

प्रश्नकर्ता : तो तीन सौ तीन डिग्री पर कौन आया है?

दादाश्री : जो रियल होना चाहता है, वह। रियल, वह मैंने बताया कि आप मूल स्वरूप (शुद्धात्मा) से रियल हो अतः अब आप (बावा) रियल बनना चाहते हो। अब वास्तव में रियल ही बनना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कौन दादा? चंदूभाई तो चंदूभाई हैं।

दादाश्री : जो रिलेटिव था, वही।

प्रश्नकर्ता : मेरी ऐसी समझ है कि चंदूभाई रिलेटिव है, वह दो सौ दो डिग्री पर है और 'मैं' रियल है, वह तीन सौ साठ डिग्री पर है।

दादाश्री : लेकिन वह बात सही ही है न!

प्रश्नकर्ता : तो तीन सौ तीन डिग्री पर कौन है?

दादाश्री : वही, जिसे अभी तक मान्यता में तो 'मैं' तीन सौ साठ डिग्री पर ही है, लेकिन वर्तन में वह तीन सौ तीन डिग्री पर है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। वर्तन में तीन सौ तीन डिग्री है।

दादाश्री : हं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, किसका वर्तन? चंदूभाई का या...

दादाश्री : जिसका वर्तन (डेवेलप) विकसित होता गया है वही।

प्रश्नकर्ता : वह चंदूभाई है या और कोई?

दादाश्री : जो चंदूभाई था, वही! वास्तव में चंदूभाई नहीं था लेकिन 'मैं चंदूभाई हूँ' वह भी सही बात है न और आगे बढ़ता गया वह भी सही बात है।

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ ऐसा कहा जा सकता है कि चंदूभाई तीन सौ तीन डिग्री पर आते हैं या चंदूभाई दो सौ दो डिग्री पर ही है?

दादाश्री : मूलतः चंदूभाई किसी एक जगह पर, उसी जगह पर था। वहीं के वहीं पर! और फिर यह आ गया। यह चंदूभाई इतने-इतने खर्च करके आया है अतः यह मूल चंदूभाई नहीं है। यह खर्च किया हुआ चंदूभाई (बावा) है।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या मतलब है दादा? खर्च किए हुए चंदूभाई का मतलब क्या है?

दादाश्री : वह बात आपके ब्रेन तक पहुँचेगी नहीं इसलिए मैंने जो आपको यह लिखवा दिया, यही भूल कर दी। यदि वह समझ में आ जाए तो फिर यह बात तो बहुत सुंदर है। अतः आपको ऐसा ही कहना है कि 'मैं' यह तीन सौ तीन डिग्री नहीं हूँ, 'मैं' तो वह था।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जिसे समझ में आ गया कि 'मैं यह चंदूभाई नहीं हूँ' और 'मैं यह शुद्धात्मा ही हूँ', ऐसा जिसे समझ में आ गया वह आगे तीन सौ तीन डिग्री तक पहुँच गया, दो सौ दो डिग्री पर से।

दादाश्री : हाँ! हूँ लेकिन अभी तक बन नहीं गया हूँ। अब उसने वैसा बनने का प्रयत्न शुरू कर दिया है। क्या-क्या अड़चने हैं, वे अड़चने आपको बता दीं। उन अड़चनों को दूर करते जाओगे तो आगे बढ़ते जाओगे।

प्रश्नकर्ता : अतः आपने जो उपमा दी है, मैं, बावा और मंगलदास, तो उसमें बावा 303 डिग्री तक आ गया है।

दादाश्री : हाँ बावा 303 डिग्री तक आ गया है, वही बावा जब 359 का हो जाएगा तब तक बावा है और तीन सौ साठ हो जाएगा तो शुद्धात्मा!

प्रश्नकर्ता : समझ में आ गया अब। अतः मंगलदास तो दो सौ दो डिग्री पर ही है। वह तो जो लेकर आया है, वैसा ही होता रहेगा।

दादाश्री : रिलेटिव में चंदूभाई को क्या दिया था?

प्रश्नकर्ता : 202 डिग्री।

दादाश्री : वह चंदूभाई तो 202 डिग्री पर ही है। उसके बाद डिग्री बढ़ती गई तब वह बावा माना जाने लगा। 303 डिग्री तक पहुँचा तो इसका मतलब बावा। वह बावा बनते, बनते, बनते, बनते जब 359 डिग्री तक पहुँचेगा, तब तक बावा है और 360 डिग्री मतलब कम्प्लीट।

प्रश्नकर्ता : यानी जैसे-जैसे उसके दर्शन में परिवर्तन होता गया वैसे-वैसे डिग्री बढ़ती गई। एक के बाद एक उसकी डिग्री बढ़ती गई...

दादाश्री : वही का वही बावा है। 303 पर भी बावा कहलाता था और 359 पर भी बावा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अर्थात् 303 डिग्री पर आ जाने के बाद बावा का दर्शन बढ़ता जाता है।

दादाश्री : हाँ, तो अंदर बावा, वह आपको अलग कर दिया और अंदर वह वही है जो खुद चंदूभाई माना जाता था, अब वही का वही खुद वापस लौट रहा है। पहले खुद बावा बनता गया और फिर बावा बनकर आगे बढ़ने लगा।

उसे मैंने 'यह बावा', ऐसा नाम दिया है उससे यदि समझ में आ जाए तो बहुत उत्तम है। कब तक बावा है और कब तक मंगलदास वगैरह सब।

प्रश्नकर्ता : और जब से जन्म हुआ तब से मंगलदास है। दो सौ दो डिग्री पर जन्म हुआ तो मंगलदास 202 डिग्री पर।

दादाश्री : मंगलदास कौन है? जितना फिज़िकल भाग है, सिर्फ उतना ही, जन्म हुआ तब से नहीं। जो कुछ फिज़िकल है, वह सारा ही!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मंगलदास पहले छोटा था, फिर जवान हुआ उसके बाद बूढ़ा हुआ, वह फिज़िकल भाग ही। शरीर!

दादाश्री : शरीर का जवान होना, मूलतः वह सारा फिज़िकल है, जो फिज़िकल भाग रहता है, वह तो चंदूभाई का है। वही चंदूभाई है लेकिन जो बावा है, वह धीरे-धीरे बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब से आपने ज्ञान दिया तभी से बावा का जन्म हुआ। तब तक तो चंदूभाई ही था।

दादाश्री : हाँ। वर्ना तब तक तो चंदूभाई ही था। फिर बावा बनने लगा। जैसे कोई व्यक्ति है तो ब्राह्मण और यदि तीस-चालीस साल तक शादी करने का कोई ठिकाना न पड़े और उसे किसी जगह पर मंदिर के महंत की तरह रखा जाए और वह महाराज कहलाने लगे तो तभी से बावा बनता है। अर्थात् आप चंदूभाई ही थे, मैं मिला, मैंने आपसे कहा, 'आप शुद्धात्मा हो'। तभी से बावा बने। लोग मंदिर के बावा बनते हैं और हम इसमें बावा बन गए।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, बस। अब बावा से कहते रहना है, 'तू शुद्धात्मा है, तू शुद्धात्मा है'। बावा को यही रटते रहना है तो फिर धीरे-धीरे बावा तीन सौ साठ तक पहुँच जाएगा।

दादाश्री : नहीं। ऐसा रटते रहने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ही बोलना है। जब शुद्धात्मा वर्तन में आएगा तब बावापन छूट जाएगा और जब तक वह वर्तन में नहीं आया है, तब तक बावा है। श्रद्धा में 'मैं शुद्धात्मा हूँ' लेकिन वर्तन में नहीं है इसलिए बावा है। जब वह वर्तन एक्ज़ेक्ट हो जाएगा तो वापस श्रद्धा वगैरह सबकुछ एक्ज़ेक्ट।

प्रश्नकर्ता : करेक्ट। हाँ, वर्तन में 'मैं' बावा रूपी है, श्रद्धा में 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

दादाश्री : उल्टी समझ से सबकुछ उल्टा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : बाइ रियल व्यू पोइन्ट वी आर ऑल एट थ्री हंड्रेड एन्ड सिक्स्टी? रियल व्यू पोइन्ट से हम सभी तीन सौ साठ डिग्री पर है?

दादाश्री : यस, यस बट नियरली रियल।

प्रश्नकर्ता : एब्सल्यूट ?

दादाश्री : एब्सल्यूट इज़ द रियल। आइ एम फोर डिग्री नियर एब्सल्यूटिज़म, थ्री हंड्रेड फिफ्टी सिक्स डिग्री। रियल इज़ करेक्ट, रियल इज़ थ्री हंड्रेड सिक्सटी एन्ड आइ एम (एट) थ्री फिफ्टी सिक्स डिग्री।

दिस, 'नियर रियल' इज़ थ्री हंड्रेड फिफ्टी सिक्स।

प्रश्नकर्ता : या, या। बट व्हेन ही वॉज़ एट द एज ऑफ फॉर्टी नाइन, व्हेर वॉज़ ही ? अब, आपको पचास साल की उम्र में ज्ञान हुआ था तब आप थ्री फिफ्टी सिक्स डिग्री पर पहुँच गए लेकिन जब ज्ञान नहीं हुआ था, उनपचास साल की उम्र में, तब आप कहाँ थे ?

दादाश्री : ज्ञान से पहले बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट हमारी टु सिक्सटी फाइव डिग्री थी। रिलेटिव में टु सिक्सटी फाइव डिग्री थी और 'नियर रियल' थ्री फोर्टी फाइव थी।

रियल थ्री हंड्रेड सिक्सटी डिग्री होता है लेकिन अभी 'ये' यहाँ तक पहुँचे हैं। अब यह नज़दीक है, इसलिए बता रहे हैं कि कौन सी डिग्री पर हैं। अब कुछ समय बाद रियल तक पहुँच ही जाएँगे। यह इफेक्ट बचा है। बाकी रियली में तो कॉज़ में ये पहुँच ही चुके हैं। रियली पहुँच चुके हैं। हमारा रिलेटिव ऐसा आया है।

प्रश्नकर्ता : आपको थ्री फिफ्टी सिक्स डिग्री तक पहुँचने में सब से बड़ी रुकावट या वीकनेस क्या थी ?

दादाश्री : इगो, इगोइज़्म, ऐसा था कि 'मैं कुछ हूँ'!

तीन सौ तीन डिग्री तक पहुँचा था, वह बावा। बावा की शुरुआत यहाँ से हुई। पहले कितना था, जब चंदूभाई था तब ?

प्रश्नकर्ता : दो सौ दो डिग्री, आपने समझाने के लिए बहुत अच्छा शब्द कहा है कि चंदूभाई की दो सौ दो डिग्री है, तीन सौ साठ शुद्धात्मा

की अर्थात् रियल की और तीन सौ तीन डिग्री किसकी? तो वह नियर रियल की। ऐसा कहा।

दादाश्री : नियर रियल। फिर एक सीढ़ी हो या दस सीढ़ियाँ लेकिन नियर रियल।

इसमें यह दुनियादारी का उदाहरण सिर्फ आपको समझाने के लिए बताया है। आप चंदूभाई थे और डॉक्टर थे, तब तक ऐसा था कि 'मैं चंदूभाई डॉक्टर हूँ'।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : फिर मैंने कहा कि 'नहीं! चंदूभाई डॉक्टर है लेकिन बाइ बॉडी वगैरह से, फिज़िकल में। अब आप शुद्धात्मा हो'। तब 'आपको' शुद्धात्मा और 'मैं चंदूभाई' को ऐसा पद। आपको ऐसा ध्यान आने लगा इसलिए मैंने कहा कि नहीं शुद्धात्मा बन नहीं गए हो, बन रहे हो और यह बीच वाली, बावा की स्टेज दी।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। बीच वाली बावा की स्टेज दी। हाँ समझ में आ गया।

...तब से ड्रेस वाला बावा

दादाश्री : जब तक शब्द है, तब तक बावा जी। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तब तक बावा जी, 'मैं ज्ञानी हूँ' तब तक बावा जी, जिसकी तीन सौ छप्पन डिग्री है वह बावा जी, तीन सौ उनसठ डिग्री पर भी बावा जी। और 'मैं' अर्थात् मुझे लगता है कि तू 'मैं' को पूरी तरह से नहीं समझ पाया है? बावा का अर्थ क्या है?

प्रश्नकर्ता : तीन सौ साठ डिग्री पर कम्प्लीट और तीन सौ उनसठ तक बावा। अभी बावा तीन सौ छप्पन डिग्री पर है।

दादाश्री : जहाँ 360 डिग्री, ऐसा शब्द है, वह बावा है और जो शब्द रहित है, वह सेल्फ है। अगर कोई कहता है कि 'मैं तीन सौ साठ

डिग्री पर हूँ', तो वह बावा है। जहाँ शब्द नहीं हैं, आवाज़ नहीं है, तो फिर वहाँ पर बावा नहीं है, वह मूल है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् खुद को यह ध्यान आने के बाद में कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह बावा कहलाता है या उससे पहले भी?

दादाश्री : सभी तरह से बावा ही है, उसके पहले से।

प्रश्नकर्ता : उसके पहले से ही? पुनर्जन्म समझने लगे तभी से?

दादाश्री : 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भान होने के बाद, 'मैं कर रहा हूँ' और मैं अपने कर्म भुगत रहा हूँ, तभी से बावा है।

प्रश्नकर्ता : आपने एक बार कहा था कि 'बावा का जन्म हमारे ज्ञान देने के बाद ही होता है। तब तक बावा नहीं है'।

दादाश्री : नहीं, बावा का जन्म तो जब से यह जानने लगे कि मैं कर्ता हूँ और मुझे मेरे कर्म भुगतने पड़ेंगे, तभी से बावा बन जाता है। लेकिन बावा की एक्ज़ेक्ट ड्रेस नहीं है। एक्ज़ेक्ट ड्रेस तो ऐसा भान होने के बाद कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तब एक्ज़ेक्ट ड्रेस में आता है। वास्तव में यहीं से बावा कहेंगे, बिना ड्रेस वाले को भी बावा कहेंगे। फिर 'मैं मंगलदास हूँ, विलियम हूँ, सुलेमान हूँ', वह सब मंगलदास है क्योंकि वह खुद (माना हुआ 'मैं') ऐसा समझता है कि भगवान करते हैं और मैं तो सुलेमान हूँ।

प्रश्नकर्ता : मुझे देहाध्यास रहता है, उससे मुक्त होना है, ऐसा जिसे भान हुआ तभी से वह बावा है।

दादाश्री : देहाध्यास शब्द का भान भी नहीं है फिर भी यदि, 'मैं कर्ता हूँ', ऐसा रहे तो वह बावा है।

प्रश्नकर्ता : तो वह बावा नहीं कहलाएगा?

दादाश्री : वही बावा है। बावा की शुरुआत कही जाएगी। देहाध्यास का भान हो जाए, तब तो फिर वह बड़ा, बड़ा बावा, रौब वाला लेकिन

वह कपड़े वाला बावा नहीं है, असल बावा नहीं है। असल बावा तो जब ज्ञान प्राप्त होता है तभी से असल बावा।

प्रश्नकर्ता : ड्रेस वाला बावा?

दादाश्री : ड्रेस वाला। फुल ड्रेस। तब अगर तारीफ की जाए तो लोग ऐसा कहते हैं कि, 'नहीं भाई, बावा जी आए हैं'। वह बावा (बिना ड्रेस वाला) शायद कहे या न भी कहे। वह अपने घर में बावा है।

हमारा बावा अलग है। इस मज़दूर का भी बावा कहा जाएगा। यहाँ का मज़दूर, इन्डिया का, वह बावा है क्योंकि वह समझता है कि 'मेरी स्त्री न जाने कौन से जन्म की बैरी है, कौन से जन्म में बैर बाँधा है, परेशान-परेशान कर दिया है मुझे'। अभी तक भूला नहीं है पिछले जन्म का।

मंगलदास को, बावा को, सभी को जो जानता है वह 'मैं' है। जो तीन सौ साठ डिग्री वाला ज्ञानी है, उसे 'मैं' कहता हूँ लेकिन ज्ञानी, वह 'मैं' नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह बावा 'मैं' नहीं है?

दादाश्री : नहीं, 'ज्ञानी' भी 'मैं' नहीं हूँ लेकिन 'मैं' सभी को जानता हूँ। जो तीन सौ साठ डिग्री वाला 'ज्ञानी' है, उसे भी जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कौन कहता है? 'मैं'?

दादाश्री : 'मैं' कहता है।

प्रश्नकर्ता : और बावा?

दादाश्री : जो ऐसा कहता है कि 'मैं तीन सौ साठ डिग्री वाला ज्ञानी हूँ'।

प्रश्नकर्ता : तीन सौ साठ डिग्री बोलता है?

दादाश्री : हम नहीं कहते, 'बावा' बनकर, 'मैं तीन सौ छप्पन डिग्री वाला ज्ञानी हूँ?'

प्रश्नकर्ता : जो ऐसा कहता है कि मैं तीन सौ उनसठ डिग्री वाला ज्ञानी हूँ, क्या वह भी बावा है?

दादाश्री : वह बावा है।

प्रश्नकर्ता : जो उसे जानता है, वही?

दादाश्री : वह मूल है।

प्रश्नकर्ता : मूल, वह तो 'मैं' है।

दादाश्री : मूल, वह 'मैं' है। जहाँ शब्द नहीं पहुँचते वहाँ पर 'मैं' है, फिर भी सब उसी में से उद्भव होता है। तुझे बावा दिखाई देता है न? बावा के खत्म होने के बाद वह मूल के साथ अभेद हो जाता है। तब फिर यह बावा खत्म हो जाता है! बावा और मैं, दोनों के बीच जो पर्दा है, जब वह पर्दा निकल जाएगा तब वह 'मैं' बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह कौन सा पर्दा है?

दादाश्री : वही पर्दा है, सिर्फ मूल *चोंट* (चिपका हुआ है, मान्यता) है, दरअसल *चोंट*। वह *चोंट* निकल जाए तो खत्म हो जाएगा। उस पद को आने में देर ही नहीं लगेगी।

प्रश्नकर्ता : कब आएगा दादा? वह पद कब आएगा?

दादाश्री : 360 डिग्री पूरी हो जाने पर।

'मंगलदास' पर क्या असर?

प्रश्नकर्ता : यह बावा जब तीन सौ पैंतालीस डिग्री से आगे पहुँचता है तब मंगलदास में क्या परिवर्तन होता है?

दादाश्री : मंगलदास में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह तो अपनी प्रकृति में ही रहता है। परिवर्तन होता रहता है इस बावा में ही। 'मैं' सिर्फ देखता रहता है।

प्रश्नकर्ता : इस बावा में किस आधार पर परिवर्तन होता है?

दादाश्री : इफेक्ट के आधार पर।

प्रश्नकर्ता : मंगलदास के इफेक्ट के आधार पर? बावा को कौन बदलता है? अर्थात् यह ज्ञान या बाहर का असर? बावा किस आधार पर बदलता है?

दादाश्री : इफेक्ट के आधार पर। (ज्ञान से जितना इफेक्ट भोग लिया उतना ही बावा आगे बढ़ता है, ऐसा समझना है)

प्रश्नकर्ता : इफेक्ट मंगलदास का?

दादाश्री : भला मंगलदास का इफेक्ट होता होगा?

प्रश्नकर्ता : तो?

दादाश्री : जो उसे भुगतता है, उसका। मंगलदास अपना खुद का इफेक्ट भोगता है। बावा अपना भोगता है।

प्रश्नकर्ता : तीन सौ पैंतालीस पर से तीन सौ छयालीस पर आता है, तीन सौ सैंतालीस पर आता है तो वह किस आधार पर आता है?

दादाश्री : जितना वह (ज्ञान में रहकर) भोग लेगा, उतना ही इसमें आ जाएगा अर्थात् जितना 'मैं' में आएगा उतना बढ़ेगा।

प्रश्नकर्ता : बावा 'मैं' में चला जाता है?

दादाश्री : नहीं तो फिर कौन जाता है? वह तीन सौ छप्पन वाला बावा बढ़ते-बढ़ते तीन सौ साठ का हो जाएगा। उनसठ तक बावा है और साठ पर पहुँचा, तो वह खुद है!

प्रश्नकर्ता : और 'मैं' तो तब था ही, रहता ही है? 'मैं' हमेशा था और रहता ही है?

दादाश्री : 'मैं' तो रहेगा ही न!

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसा होता है कि यह 'मैं' बावा को कुछ समझाता है?

दादाश्री : होता है न! (यहाँ पर ऐसा समझना है कि 'मैं' प्रज्ञा के रूप में काम करता है)

प्रश्नकर्ता : और वह समझने पर बावा 'मैं' के पास आता है। क्या ऐसा होता है?

दादाश्री : हाँ, उस समझ से ही आता है न! और क्या?

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह सब क्या है? अगर बावा को प्रगति करनी हो तो बीच में क्या आता है?

दादाश्री : और कौन सी प्रगति करनी है? जितना यह 'मैं' बताए उतना ही। 'मैं' के पास शब्द नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : 'मैं' के पास शब्द नहीं होते? तो वह किस तरह से समझाता है उसे?

दादाश्री : यह तो वह जो शक्ति है न, प्रज्ञाशक्ति, वह 'मैं' का भाग है। प्योर ही है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : लेकिन उसकी संज्ञा से ही यह हो जाता है, शब्द नहीं हैं, उसकी उपस्थिति से ही यह सब चलता है। अगर वह नहीं होगा तो यह सब नहीं चल पाएगा। बावा आगे बढ़ेगा ही नहीं, नीचे गिर जाएगा लेकिन चढ़ेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रज्ञा उसे चढ़ा देती है?

दादाश्री : प्रज्ञा की वजह से ही चढ़ता जाता है और प्रज्ञा की गैरहाज़िरी में गिर जाता है। जागृति गई कि नीचे गिरा। मैं जो कह रहा हूँ, वह काम आएगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा। बात तो बहुत स्पष्ट है, एकदम। क्लियर समझ में आ जाए, ऐसी है। अब इसमें मंगलदास को जो इफेक्ट आता है तो बावा पर उसका कितना असर होता है?

दादाश्री : मंगलदास खुद अपना इफेक्ट भुगतता है और अगर खुद का इफेक्ट न हो और बावा का हो तो बावा भुगतता है।

प्रश्नकर्ता : अथवा बावा का इफेक्ट मंगलदास पर आता है?

दादाश्री : इफेक्ट तो आमने-सामने आता जाता है, लेकिन उसका खुद का अर्थात् खुद का ही। यदि तेरी इच्छा हो, तब भी मंगलदास नहीं बदलेगा। बावा की इच्छा हो कि मंगलदास में ऐसा परिवर्तन हो जाए तो परिवर्तन नहीं होगा और मंगलदास की इच्छा हो तब भी इस बावा में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, कई बार ऐसा होता है कि हम एक समझ के अनुसार चल रहे होते हैं, अब वह समझ तो बावा की होती है कि 'भाई, इस पंखे की हवा नहीं खानी चाहिए', लेकिन फिर किसी संयोग की वजह से वापस उसकी बिलीफ बदल जाती है कि 'नहीं, पंखे की हवा खाना तो बहुत अच्छा है'। अर्थात् इस प्रकार बाद में उसकी बिलीफ बदल जाती है। तब वापस प्रकृति को यह पंखा अच्छा लगने लगता है।

दादाश्री : तो फिर?

प्रश्नकर्ता : तो यह जो प्रकृति बनती है और प्रकृति इफेक्ट में आती है, उसके पीछे मूलभूत कारण तो बावा को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वही है न?

दादाश्री : बावा से ही प्रकृति बनती है। बावा ही प्रकृति बनाता है। प्रकृति, प्रकृति को नहीं बनाती। पहले बावा ने बनाई थी। तो उससे यह कुछ भाग प्रकृति बन गया और बाकी का बावा के पास रहा। ज्ञान से, जो ज्ञान के संयोग मिलते हैं, उससे जितना चेन्जेबल होता है, वह बावा के पास रहता है और जितना चेन्जेबल नहीं होता वह प्रकृति में रहा।

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्ट ऐसा ही है! अब बावा के पास वाला ज्ञान चेन्जेबल है?

दादाश्री : ज्ञान हमेशा चेन्जेबल ही होता है। चाहे बावा के पास हो या किसी के भी पास हो। ज्ञान अर्थात् अज्ञान और अज्ञान एक प्रकार का ज्ञान है। अंत में सभी का समावेश ज्ञान में ही हो जाता है। अज्ञान-ज्ञान, अर्धदग्ध ज्ञान, अर्धदग्ध अज्ञान सभी का समावेश ज्ञान में ही हो जाता है और ज्ञान ही इन सब को बदलता है और जो प्योर ज्ञान है, वह तो भगवान ही है। बाकी सब जगह पर इससे निम्न है, उस कारण से भेद पड़ गए। यह बावा, ज्ञान भी बावा का है, अज्ञान भी बावा का है।

कौन सी डिग्री पर, ज्ञानी पद व भगवान पद?

हम ज्ञानी हैं। ज्ञानियों में क्या होता है? ज्ञानी क्यों कहलाते हैं? अस्सी प्रतिशत, नब्बे प्रतिशत, पचानवे, निन्यानवे प्रतिशत तक ज्ञानी और सौ प्रतिशत पर खुद।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न कि तीन सौ उनसठ तक बावा है और तीन सौ साठ हो जाने पर बावा खत्म।

दादाश्री : फिर तो भगवान बन जाता है! तीन सौ उनसठ तक वह ज्ञानी है। तीन सौ पैंतालीस से लेकर लगभग तीन सौ उनसठ तक वह ज्ञानी कहलाता है लेकिन यह सब बावा में ही आता है।

हमने सभी स्टेशन देखे हैं। आपको भी सभी स्टेशन देखने पड़ेंगे।

मैं केवलज्ञान स्वरूप, ऐसा शुद्धात्मा हूँ।

हमें दादा भगवान के दर्शन करने हैं (शीशे में देखकर बोल रहे हैं) ये जो देहधारी दिखाई दे रहे हैं, वे दादा भगवान हैं! ऐसा है न तीन सौ पचपन डिग्री से तीन सौ साठ डिग्री तक सब भगवान ही कहलाते हैं!

प्रश्नकर्ता : अतः इस तरफ बावा तीन सौ पैंतालीस या तीन सौ पचास हो और दूसरी तरफ 'मैं' तीन सौ साठ हो, तो क्या इस प्रकार से एट ए टाइम दोनों हो सकते हैं?

दादाश्री : है न! हमारा वही है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् बावा तीन सौ छप्पन पर है।

दादाश्री : बावा तीन सौ छप्पन डिग्री पर है।

प्रश्नकर्ता : और आप तीन सौ साठ पर।

दादाश्री : 'मैं' तीन सौ साठ पर और तीर्थंकरों में दोनों ही तीन सौ साठ।

प्रश्नकर्ता : केवलियों में भी दोनों तीन सौ साठ।

दादाश्री : केवलियों में दोनों तीन सौ साठ हों या न भी हों, लेकिन तीर्थंकरों में तो दोनों तीन सौ साठ।

भेद, तीन सौ साठ और तीन सौ छप्पन डिग्री का

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकरों की तीन सौ साठ डिग्री और आपकी तीन सौ छप्पन डिग्री, वह भेद समझाइए।

दादाश्री : तीन सौ साठ वाले ऐसा नहीं कहते कि 'चलो आपको मोक्ष दूँ'। और देखो! मैं तो खटपट करता हूँ न, 'चलो मोक्ष देता हूँ'। ओहोहो आए बड़े मोक्ष देने वाले! जब संडास नहीं आती तब जुलाब लेना पड़ता है! आए बड़े मोक्ष देने वाले! यह तो ऐसा है न कि जो ऐसा कुछ भी नहीं कहते, वे वीतराग हैं और हम खटपटिया वीतराग हैं। यह जो खटपट करते हैं वह किसलिए? क्या पेट में दुःख रहा है कि खटपट कर रहे हो?

प्रश्नकर्ता : दूसरों के लिए।

दादाश्री : मन में ऐसा भाव है कि 'जैसा सुख मैंने प्राप्त किया वैसा सभी प्राप्त करें'। अन्य कुछ भी नहीं चाहिए, दुनिया की कोई चीज़ नहीं चाहिए लेकिन यह भी भाव ही है न! जब तक भाव है तब तक यह डिग्री कम है। जब तक कोई भी भाव है तब तक संपूर्ण वीतराग नहीं हैं। अतः हमारी चार डिग्री कम हैं। जबकि तीर्थंकर तो कुछ भी नहीं कहते। बिल्कुल उल्टा हो रहा हो और वे देखते हैं कि यह उल्टा

हो रहा है तब भी नहीं बोलते। एक अक्षर भी नहीं बोलते, वीतराग। आप लोगों के काम आते हैं ये खटपटिया।

प्रश्नकर्ता : दादा, सत्तावन, अठावन और उनसठ का क्या है फिर?

दादाश्री : वह तो फिर डिग्री बढ़ती जाती है न, वह दशा और भी उच्च प्रकार की होती है। वह दशा बहुत उच्च है।

प्रश्नकर्ता : हमें ज़रा समझ में आए ऐसा कुछ बताइए न?

दादाश्री : वह (स्थिति) जैसै-जैसे आएगी न, तब समझ में आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तीन सौ साठ वाले को यह जगत् कैसा दिखाई देता है?

दादाश्री : कोई जीव दु:खी नहीं है, कोई जीव सुखी नहीं है, कोई दोषित नहीं है। सबकुछ रेग्यूलर ही है। सब जीव निर्दोष ही दिखाई देते हैं, हमें भी निर्दोष दिखाई देते हैं लेकिन हमें श्रद्धा में निर्दोष दिखाई देते हैं, श्रद्धा में और ज्ञान में, चारित्र में नहीं इसीलिए हम कहते हैं न कि 'तूने यह गलत किया, इसका यह अच्छा है'। जब तक अच्छा-बुरा कहते हैं तब तक वर्तन में निर्दोष नहीं दिखाई देते! हमें श्रद्धा में ज़रूर निर्दोष दिखाई देते हैं लेकिन अभी तक यह वर्तन में नहीं आया है। जब यह वर्तन में आएगा तब हमारी तीन सौ साठ डिग्री पूरी हो जाएँगी। हमारे मन में कुछ भी नहीं है, राग-देष ज़रा से भी नहीं हैं। शब्दों में कहते हैं।

'मैं', 'बावा' और 'मंगलदास', यह कौन समझता है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस ज्ञान की ज़रूरत है जो ज्ञान बावा को 'मैं' में बिठा दे? अंतिम ज्ञान...

दादाश्री : नहीं, वह समझता है कि यह चंदूभाई मैं ही हूँ। कहता

है, 'वही हूँ न मैं'। इसलिए अभी भटकना पड़ा। और जो कहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो वह प्योर हो जाता है, फिर कोई परेशानी नहीं। खुद प्योर ज्ञान को ही, 'मैं हूँ', ऐसा कहता है। प्योर ज्ञान, थ्री हंड्रेड सिक्स्टी डिग्री पर से ही 'मैं हूँ', वह मान्यता है। वहाँ से जितना आगे आएगा, तीन सौ पैंतालीस डिग्री पर आ जाए तभी से वह ज्ञानीपुरुष कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अब बावा की शुद्ध स्थिति होना, उसमें मंगलदास चाहे कैसा भी हो सकता है?

दादाश्री : मंगलदास से हमें क्या लेना-देना? मंगलदास की डिज़ाइन तो बदलेगी ही नहीं! इफेक्ट हो गया है। डिज़ाइनेबल (अन्चेन्जेबल) इफेक्ट हो चुका है। वह शुरुआत में जन्म के पहले से हो चुका है, वह बदलेगा नहीं। यह बदल सकता है।

प्रश्नकर्ता : बावा के पास जितना अज्ञान है, उतना ही उस पर असर होता है न?

दा.दाश्री : उतना ही।

प्रश्नकर्ता : और अगर वह विज्ञान में आ जाए तो असर नहीं होने देगा?

दादाश्री : तीन सौ साठ वाले को तो होगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : नहीं होगा। अतः वास्तव में ऐसा है कि मंगलदास का असर बावा पर नहीं हो सकता। इसकी (बावा की) जितनी नासमझी है उतना असर मंगलदास पर होता है।

दादाश्री : वर्ना असर होगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। और आप जो बात कर रहे हैं न, आप उस प्योर ज्ञान की बात कर रहे हैं कि बावा को एक भी असर स्वीकार नहीं करना है।

दादाश्री : फिर?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् ऐसा है कि आपका जो बीच वाला यह बावा का पद है, उतना उसकी (बावा की) समझ में है। केवलदर्शन है अर्थात् बावा को पूरा, एकदम प्योर दर्शन मिल गया है इसलिए मंगलदास पर होने वाला कोई भी असर आपको स्पर्श ही नहीं करता।

दादाश्री : हाँ,

तूने देखा है बावा को?

प्रश्नकर्ता : मंगलदास का फोटो तो एक्ज़ेक्ट लिया ही जा सकता है। बावा भी दिखाई दे, ऐसा है न?

दादाश्री : वह यों स्थूल रूप से नहीं दिखाई देता।

प्रश्नकर्ता : यानी वह समझा जा सकता है? बावा का पद ऐसा है कि समझ में आ जाता है?

दादाश्री : वह केवलज्ञान में दिखाई देता है और तीन सौ छप्पन तक समझ में आता है, तीन सौ उनसठ तक, तीन सौ छप्पन तक कुछ समझता है, तीन सौ सत्तावन हो जाएँ तो कुछ और ज़्यादा समझता है, तीन सौ अठावन पर बढ़ जाता है, और तीन सौ उनसठ पर और ज़्यादा बढ़ता है और साठ में पूर्ण हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : बाकी बारस, तेरस, चौदस और पूनम के दिन पूनम हो जाती है। पूनम तीन सौ साठ, चौदस से आगे की।

प्रश्नकर्ता : कैमरे से मंगलदास की फोटो ली जा सकती है। वह ऐसा है कि दिखाई देता है, तो क्या बावा भी दिखाई दे सकता है?

दादाश्री : मंगलदास, वह फिज़िकल है। बावा फिज़िकल नहीं है। फिर भी फिज़िकल है लेकिन दिखाई नहीं दे, ऐसा फिज़िकल है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् ज्ञान से समझ में आ सकता है कि यह बावा का ही पद है।

दादाश्री : वह समझ में आता है। वह दर्शन में आता है, समझ में आया इसका मतलब दर्शन में आ गया। यदि दर्शन में नहीं आया है तो उसे अदर्शन कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह मंगलदास का पद है, यह बावा का पद है, ऐसा कौन समझता है?

दादाश्री : 'मैं'।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा के रूप में?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : ये बाहर की, व्यवहार की अवस्थाएँ वगैरह सब कौन देखता है? वह सारा मंगलदास देखता है या बावा?

दादाश्री : मंगलदास देखता है लेकिन यदि देखने वाले बावा की इच्छा होगी तभी दिखाई देगा, नहीं तो नहीं दिखाई देगा।

प्रश्नकर्ता : उस बावा की जिसमें इच्छा है, इन्टरेस्ट है।

दादाश्री : देखने वाला (बावा) होना चाहिए। ये तो चश्मे हैं। मंगलदास चश्मे जैसा है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह सब देखने वाला बावा है?

दादाश्री : हाँ! देखने वाला बावा है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अच्छा-बुरा करने वाला भी बावा है? जो अच्छा-बुरा करता है, वह बावा है?

दादाश्री : बस! नहीं तो और कौन?

प्रश्नकर्ता : और जो बावा को जानता है कि बावा ने यह सब किया, वह हम खुद, 'मैं'।

दादाश्री : 'मैं' यह सभी कुछ जानता है। 'मैं' मंगलदास को भी जानता है और इस बावा को भी जानता है, सभी को जानता है।

प्रश्नकर्ता : जगत् के लोगों को अर्थात् जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है उनमें किस प्रकार से है यह सारा? बावा का पद और मंगलदास का पद है ही? उनमें 'मैं' होता है? उनकी समझ में तीनों पद होते हैं या उन्हें पता नहीं होता?

दादाश्री : सभी कुछ होता है उनमें। उनकी समझ में नहीं होता। ज्ञान के बाद ही समझ में आता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो अहंकार ज्ञाता भाव से और कर्ता भाव से रहता है, तो बावा का भी ऐसा ही कोई कार्य होता है न दादा? अहंकार और बावा में क्या फर्क है?

दादाश्री : अहंकार ही बावा है न! बावा में मुख्य चीज़ अहंकार ही है। जिसमें अहंकार कम होता है, वह भी बावा है। कम अहंकारी है। जिसमें अहंकार खत्म हो गया है, वह भी बावा है।

प्रश्नकर्ता : तब फिर बावा का अस्तित्व ही खत्म हो गया न?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : या फिर बावा निर्‌अहंकारी पद में रहता है?

दादाश्री : हमारा चार्ज करने वाला अहंकार ही खत्म हो चुका है। हमारा 'मैं' 'अहंकार' खत्म हो चुका है, लेकिन यह बावा अभी तक अहंकारी है, तीन सौ छप्पन वाला। अतः डिस्चार्ज अहंकार रहता है, नहीं तो संडास भी न जा पाए।

प्रश्नकर्ता : तो दादा इस हिसाब से, तीर्थंकरों में डिस्चार्ज अहंकार भी खत्म हो चुका होता है, तो उनका बावा भी खत्म हो चुका है?

दादाश्री : हाँ, फिर उन्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : खाना-पीना, संडास, अन्न कुछ भी नहीं?

दादाश्री : उनका खाने-पीने का अलग तरह का होता है, खिलाने वाले अलग हैं, सबकुछ अलग होता है। कितने ही काम शरीर ही करता

रहता है। खिलाने वाले-पिलाने वाले अलग होते हैं, अंदर चलाने वाले अलग होते हैं। ठेठ मोक्ष तक पहुँचाने वाले भी अलग होते हैं।

'दादा भगवान' और 'दादा बावो'

ज्ञानी भी बावा और आप भी बावा। फॉलोअर्स भी बावा लेकिन किसके फॉलोअर्स? इस बावा के बावा।

ज्ञानी, लोगों के सामने ऐसा कबूल नहीं करते कि 'बावा हूँ' क्योंकि वे जानते हैं कि फिर भक्ति चली जाएगी। ये भगवान क्या नहीं कर सकते? हमारे लिए तो दादा जो कहें, वही सही है। दादा, वे भी बावा ही हैं न, थोड़े ही कोई भगवान हैं?

'दादा भगवान' वे भगवान हैं और दादा, वे बावा हैं।

प्रश्नकर्ता : हमें तो दादा भगवान भी भगवान लगते हैं और बावा भी भगवान ही लगते हैं।

दादाश्री : आपको तो ऐसा लगना ही चाहिए, यह तो मैं प्योर बात बता रहा हूँ। इतना प्योर कोई कहेगा ही नहीं न! हमें ऐसी कोई भावना ही नहीं हैं न कि मेरा नाम रहे! ऐसा तो मैं ही कहता हूँ न, 'मुझमें बरकत नहीं रही!'

ये 'दादा भगवान' फिर से नहीं मिलेंगे, इतने प्योर भगवान! क्योंकि दूसरे भगवान तो ऐसा ही कहते हैं, 'मैं खुद ही भगवान हूँ और मैं ही इसका कर्ता-धर्ता हूँ', लेकिन मैं तो ऐसा कहता ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं।

दादाश्री : जो हैं, उन्हीं के लिए कहता हूँ न कि ये हंड्रेड परसेन्ट भगवान हैं। अन्य किसी भगवान का गलत नहीं है। बिल्कुल सही बात है लेकिन वे खुद को भगवान कहते हैं इसीलिए हमें उतना पूर्ण लाभ नहीं मिलता जबकि इनसे तो क्या आश्चर्य सर्जित हो सकता है, वह कहा नहीं जा सकता!

इसीलिए तो सब को दादा भगवान दिखाई देते हैं न! नहीं तो दादा भगवान दिखेंगे ही नहीं न! चौबीस घंटे दादा भगवान का ध्यान रहता है, वह किसलिए? आज तक कोई भी इस तरह से याद नहीं रहे। सभी का स्मरण करना पड़ता है, ये अपने आप ही आ जाते हैं। ये तो विस्मृत ही नहीं होते जबकि बाकी सब का स्मरण तो याद करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : यह तो अपने आप ही शुरू हो जाता है।

दादाश्री : अपने आप ही चलता है। लोग तो कहते हैं न कि 'यह क्या आश्चर्य है?! हम न चाहें फिर भी वे हमारे ध्यान में रहते ही हैं'।

तब ज्ञान प्रकट होता जाएगा

प्रश्नकर्ता : तब तो ऐसा कहलाएगा न कि हम में भी केवलज्ञान स्वरूप ही हैं?

दादाश्री : वे ही हैं न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह ज्ञान बाहर क्यों नहीं निकलता?

दादाश्री : बाहर कैसे निकलेगा लेकिन? अभी तो मीठा लगता है न! जितना मीठा लगता है, उतना ही ज्ञान पर आवरण आता है।

ये डिस्चार्ज के रस (रुचि) टूटेंगे। जैसे-जैसे टूटेंगे वैसे-वैसे वह ज्ञान प्रकट होता जाएगा। दिया तो है केवलज्ञान स्वरूप, लेकिन मैंने कहा न कि मुझे भी नहीं पचा है और आपको भी नहीं पचेगा। और केवलज्ञान के बिना कभी भी चिंता जा नहीं सकती। क्रमिक मार्ग में कोई ऐसे ज्ञानी नहीं हुए हैं जो चिंता रहित हों। अंतिम अवतार में, जिनका चरम शरीर होता है, उनकी चिंता जा चुकी होती है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं, 'हम में तीन सौ छप्पन डिग्री का ज्ञान है, लेकिन हमने आप लोगों को तो तीन सौ साठ डिग्री का दे दिया है'। इसका क्या अर्थ है?

दादाश्री : इसका अर्थ इतना ही है कि मुझे तीन सौ साठ का था, लेकिन मुझे पचा नहीं और तीन सौ छप्पन पर आकर कांटा रुक गया। आपको भी नहीं पचा है। वह तीन सौ दस पर है अभी तक, तीन सौ दस-बीस पर है। आपको नहीं पचा है न? तीन सौ साठ दिया था लेकिन तीन सौ बीस पर आ गया, किसी का तीन सौ दस पर आ गया, लेकिन तीन सौ से ऊपर है सब का। जबकि थे दो सौ पर। सौ, एक सौ दस एकदम से पार कर लिया है। ये निर्मल लोग थे इसलिए यह मिल गया, नहीं तो दादा भगवान कहाँ से मिलते? थोड़ा-बहुत भी निर्मल हो, ज़्यादा नहीं लेकिन अगर थोड़ा बहुत भी निर्मल हो तो दादा भगवान प्राप्त हो जाएँगे, नहीं तो दादा भगवान प्राप्त नहीं होंगे!

इतना फर्क है, ज्ञानी और भगवान में

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा! ज्ञानी और भगवान में क्या फर्क है?

दादाश्री : ज्ञानी और भगवान में इतना ही फर्क है कि ज्ञानी समझ सकते हैं, सभी कुछ देख सकते हैं, लेकिन जान नहीं सकते। ये जो दिखाई देते हैं न वे तो भादरण के पटेल हैं और मैं तो ज्ञानीपुरुष हूँ और दादा भगवान अलग हैं, वे तो परमात्मा ही हैं चौदह लोक के नाथ हैं।

मेरी तीन सौ साठ डिग्री पूर्ण नहीं हुई हैं और तीन सौ छप्पन पर रुक गया है इसीलिए अंदर जो प्रकट हुए हैं उन भगवान में और मुझमें जुदापन है। यदि मेरा तीन सौ साठ हो गया होता न, तो हम दोनों एकाकार हो जाते। लेकिन अभी यह जुदापन है क्योंकि इतना यह निमित्त होगा न, लोगों का कार्य करने का, इसलिए जुदापन है। अतः जितने समय तक हम भगवान के साथ एक रहते हैं, अभेद भाव में रहते हैं, उतने समय तक संपूर्ण स्वरूप में रहते हैं और जब वाणी बोलते हैं तब अलग (जुदापन) हो जाता है।

प्रकट हुआ चौदह लोक का नाथ

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि 'चौदह लोक का मालिक प्रकट हो गया है', इसका क्या मतलब है?

दादाश्री : वह सब आपमें भी है।

'चौदह लोक का मालिक प्रकट हुआ', इसका मतलब यह है कि जहाँ फुल स्केल में खुद हाज़िर हो गए हैं। जहाँ पर आवरण नहीं रहा।

जो आत्मा को देख सकता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। इसलिए हमने कहा है न कि हमें केवलज्ञान नहीं पचा है। इतना ज्ञान होने के बावजूद भी, पूरी दुनिया हमारे दर्शन में आ गई है लेकिन ज्ञान में नहीं आई है। जबकि केवलज्ञान कैसा होता है? कुछ भी बाकी नहीं रहता। अतः हम समझ गए कि इतनी, इस डिग्री तक आकर रुक गया है अब। यह तीन सौ छप्पन डिग्री तक का तो हमने बता दिया, लेकिन सत्तावन नहीं हो रहा है और हमें करना भी नहीं है। मेरी इच्छा भी नहीं है। मुझे क्या है? 'हे व्यवस्थित, तुझे गर्ज़ हो तब करना न!' हम तो गाड़ी में बैठ गए, फिर झंझट गाड़ी वाले की!

ज्ञानीपुरुष, वही देहधारी परमात्मा

प्रश्नकर्ता : आप तो आत्मा हैं तो फिर आपमें कौन सा भाग ज्ञानी है?

दादाश्री : जितना आत्मा हुआ, उतना ही ज्ञानी। जितना तीन सौ छप्पन का आत्मा हुआ, उतना ही तीन सौ छप्पन का ज्ञानी। आत्मा ज्ञानी ही है लेकिन उसका आवरण हटना चाहिए। जितना आवरण हटा, तीन सौ साठ डिग्री का हट गया तो संपूर्ण हो जाएगा। तीन सौ छप्पन का हटा तो चार डिग्री का आवरण है। आपको तो और ज़्यादा डिग्री का आवरण है। धीरे-धीरे आपके आवरण टूटते जाएँगे। आवरण टूट जाएँ तो वह खुद ही ज्ञानी है। आवरण की वजह से वह अज्ञानी दिखाई देता है।

तीन सौ छप्पन डिग्री अंतरात्मा की और तीन सौ साठ परमात्मा की। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद आप भी अंतरात्मा हो और हम भी अंतरात्मा हैं। हमारी डिग्री तीन सौ छप्पन है।

प्रश्नकर्ता : दर्शन में तीन सौ साठ डिग्री हैं, ज्ञान में नहीं आ पातीं इसीलिए यह सब है न?

दादाश्री : लेकिन वह पद नहीं माना जाएगा न! फिर भी श्रीमद् राजचंद्र ने खुले दिल से कहा है कि 'ज्ञानीपुरुष, देहधारी परमात्मा ही हैं'। ऐसा किसलिए कहा था? खुद की आबरू बढ़ाने के लिए नहीं इसलिए कि उनके पीछे पड़ोगे तो आपका काम हो जाएगा, नहीं तो काम होगा ही नहीं। देहधारी परमात्मा के प्राकट्य के बिना कभी भी काम नहीं हो सकता। देहधारी के रूप में परमात्मा ही हैं।

प्रश्नकर्ता : जब आप कहते हैं कि 'ये ज्ञानीपुरुष हैं' तो इससे क्या संकेत देते हैं आप?

दादाश्री : अंतरात्मा! वह अंतरात्मा चार डिग्री के बाद में परमात्मा बनने वाला है। मान लो कोई कलेक्टर तो है लेकिन उसका पहला साल हैं, अभी ही कलेक्टर बना है नया-नया और दूसरे किसी की बीस साल से कलेक्टर की नौकरी हो चुकी है, तब वह कमिश्नर बनता है। बीस साल की नौकरी हो गई, कमिश्नर बनने के एक महीने पहले भी वह कलेक्टर था और यह भी कलेक्टर था लेकिन दोनों का एक सरीखा नहीं कहलाएगा। यह तो कल कमिश्नर बन जाएगा और आपको तो अभी देर लगेगी, बीस साल बीतने के बाद।

प्रश्नकर्ता : नहीं दादाजी, आप जो कहते हैं कि 'अंदर भगवान बैठे हैं और मैं तीन सौ छप्पन पर हूँ', तब आत्मा तो एक ही है।

दादाश्री : वह रेग्यूलर कहलाता है। ब्योरेवार। अत: ये जो कलेक्टर हैं, वे तो बीस साल तक कलेक्टर रह चुके हैं, इसलिए जानते ही हैं कि न जाने कब मुझे कमिश्नर बना दें, कहा नहीं जा सकता। उसी प्रकार ये ज्ञानी भी जानते हैं कि अपने तीन सौ साठ कब पूरे हो जाएँगे, कहा नहीं जा सकता। अत: खुद अपने पूरे पद को जानते हैं लेकिन अभी जिस पद पर हैं, लोगों को वैसा ही बताते हैं। नीचे कलेक्टर लिखा रहता है। यह वीतरागों का ज्ञान है। ज़रा सा भी गप्प या टेढ़ा-मेढ़ा कुछ नहीं चलता।

'है' उसे 'है' ही कहना पड़ेगा और जो 'नहीं है' उसे 'नहीं' कहना पड़ेगा। जो 'नहीं है' उसे 'है' नहीं कहलवाते। हम से ऐसा कहलवाने जाएँगे तो हम मना कर देंगे कि हम अब अशक्त हैं, हमारी शक्ति काम नहीं कर रही। जो 'नहीं है' उसे 'है' कहलवा ही नहीं सकते।

नहीं है जल्दबाज़ी केवलज्ञान की

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर भी दादा पूरे वीतरागी कहलाएँगे न?

दादाश्री : पूरे वीतरागी नहीं कहलाएँगे तीन सौ साठ में चार डिग्री कम...

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जब आप 360 डिग्री पर आ जाएँगे तो वही वीतराग है। ठीक है?

दादाश्री : हाँ, वीतराग! लेकिन इस काल में नहीं बन सकते, इस क्षेत्र में यह नहीं हो सकता। इसलिए हम ऐसी जल्दबाज़ी नहीं कर रहे हैं। हमें जल्दी भी क्या है? हमारा पुरुषार्थ इस तरफ मुड़ गया कि लोगों को लाभ हो। यदि यहाँ पर हो सकता तो हम अपना पुरुषार्थ दूसरी तरफ मोड़ देते। वह हो नहीं सकता इसीलिए हमने पुरुषार्थ इस तरफ मोड़ दिया।

प्रश्नकर्ता : बहुत पुरुषार्थ करने पर भी इस काल में चार डिग्री पूर्ण नहीं हो सकती?

दादाश्री : पुरुषार्थ करें ही किसलिए? यहाँ परीक्षा होगी ही नहीं तो पढ़ें किसलिए? जहाँ परीक्षा होनी हो, वहाँ पर पढ़ेंगे। अभी से यहाँ पर पढ़ने लगा तो लोग कहेंगे, 'क्यों आपकी परीक्षा आ गई?' 'नहीं भाई, परीक्षा के तो बहुत दिन बाकी है। मैं कहाँ झंझट करूं।'

ज्ञानी की करुणा

दुनिया में बाकी सब लोग मिल जाएँगे, लेकिन मैं, ज्ञानी व अंबालाल नहीं मिलेंगे। 'मैं' कौन? 'मैं', वे 'दादा भगवान' हैं। ये ज्ञानी

हैं और अंबालाल पटेल हैं। मैं, ज्ञानी व अंबालाल नहीं मिलेंगे। यह योग नहीं मिलेगा, बाकी सब योग मिल जाएँगे। भगवान खुद हाज़िर नहीं होंगे। ये जो हो गए सो हो गए। मैं, पूरे ब्रह्मांड का भगवान यह कह रहा हूँ, उसकी गारन्टी देता हूँ। 'जो जितना कनेक्शन कर लेगा, वो उसके बाप का।'

वास्तव में ये तीन विभाग तो मैं कर देता हूँ। मैं, ज्ञानी और अंबालाल, तीन विभाग कर देता हूँ और उसके पीछे करुणा है। वास्तव में दो ही भेद हैं - दादा भगवान और अंबालाल, दो ही हैं लेकिन तीन करने का कारण यह है कि दूषमकाल के जीव हैं और शंकालु हैं। बेकार की शंकाओं से बल्कि इनका बिगड़ेगा। अतः उन्हें जुदा कर दिया, ताकि शंका ही खड़ी नहीं हो न!

इससे उसे ठंडक रहेगी। हाँ! इसलिए ताकि अब उसका पागलपन खड़ा न हो। वास्तव में दो ही हैं ये। कृपालुदेव ने तो कहा है, 'ज्ञानीपुरुष, वे देहधारी परमात्मा ही हैं' लेकिन ये तीन विभाग बना दिए हैं। इसका कारण है, उसके पीछे की करुणा। ताकि यहाँ से भाग न जाए, यहाँ आया हुआ भटक न जाए।

खुला रहस्य अक्रम विज्ञान के माध्यम से

यह तो जितनी बात निकले उतना ही ठीक, वर्ना तो निकले ही नहीं न। दृष्टि के बिना नहीं निकल सकती कभी भी। यह सब तो मैं आपके लिए कह रहा हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अक्रम विज्ञान ने अंतर का पूरा रहस्य ज्ञान खोल दिया है।

दादाश्री : कभी खुला ही नहीं था। इसमें तो अंत तक एक-एक कदम चले हैं।

प्रश्नकर्ता : इन शास्त्रों में या कोई दूसरा अंदर की ऐसी बातें नहीं बता सका है।

दादाश्री : हो ही नहीं सकता न, जानेगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : आत्मा है और बाकी सब *पुद्गल* है। बस!

दादाश्री : अंत तक यही है और जब जान लेते हैं तब ऐसा बताते नहीं है। ऐसा तो मैंने बताया ही नहीं कभी, यह तो आज ही बताया है क्योंकि हम संपूर्ण दशा में रहते हैं। अकेले में 360 पर। दो में नहीं रहते। 356 के दर्शन होते हैं और 360 पर हम रहते हैं इसीलिए दर्शन करने वालों को बहुत फायदा है! अभी बात करते समय इतना फायदा नहीं होता।

तमाम शास्त्रों का सार, मैं बावा...

अब यह विज्ञान शास्त्रों में कैसे मिल सकेगा? किसी भी जगह पर नहीं हो सकता। यह तो जब दस लाख सालों में प्रकट होता है, तब ज़ाहिर हो जाता है। केवलज्ञान जानने के बाद बोलना नहीं रहता है। खटपटिया नहीं रहते न? जानते हैं लेकिन खटपट नहीं करते। जो जानते नहीं हैं, वे खटपट कैसे करेंगे? और मैं तो जानता हूँ और खटपट भी करता हूँ और बुखार का भी पूछता हूँ, कब से बुखार आ रहा है? और मैं जानता भी हूँ कि पूछने वाला कौन है, बुखार किसे आ रहा है। वह सब जानता हूँ!

बावा के बारे में सुना है आपने? मेरा पूरा ही ज्ञान बाहर आ गया है!

प्रश्नकर्ता : सब को अंतिम ज्ञान मिल गया।

दादाश्री : हाँ, मिल गया। वह तो अगर किसी दिन निकल जाए तो वास्तव में निकल जाता है। ऐसी बरसात होती है, एक ही बरसात से उग निकले उतनी बरसात होती है। चारों महीने, एक ही बरसात से उग जाते हैं, नहीं तो, चारों महीने बरसात हो तो भी फसल न उगे, पानी मीठा नहीं है न! मीठी बरसात तो एक ही बार होती है। यह भी वैसा ही हुआ है।

आपको बावा की बात समझ में आई? एक्ज़ेक्ट? तब तो सभी शास्त्र पढ़ लिए। यह जो उदाहरण दिया है न, इसमें तमाम शास्त्रों का सार आ गया। इतना यदि समझ में आ जाए न कि किस हद तक, कहाँ तक उसकी डिमार्केशन लाइन है! तब कहेंगे, जहाँ पर, जहाँ तक फिज़िकल है, वहाँ तक मंगलदास है।

यह बात दुनिया में कभी बाहर आई ही नहीं है। पहली बार बाहर आई है। मेरी भावना है, लेकिन उसे कैसे बताएँ? ऐसा किस तरह कह सकते हैं? आपको समझ में कैसे आएगा? बावा कौन और मंगलदास कौन और मैं कौन? इसलिए मैं, बावा और मंगलदास में सबकुछ फिट हो गया।

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

पुद्‌गल : जो पूरण और गलन होता है

निकाल : निपटारा

लक्ष : जागृति

पूरण-गलन : चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

राजीपा : गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता

बरु : जंगली पौधे की नुकीली डंडी

ठपका : उलाहना, डपटना

संवर : कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना

लागणियाँ : लगाव, भावुकता वाला प्रेम

अजंपा : बेचैनी, अशांति, घबराहट

कढ़ापा-अजंपा : अशांति, कुढ़न, क्लेश, आक्रोश

ओलंबा : भूलंब, साहुल

हूँफ : सहारा, सलामती, सुरक्षा, रक्षण

उपाधि : बाहर से आनेवाला दुःख

पोतापणां (आपोपुं) : मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन

निर्जरा : आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना

अशाता : दुःख-परिणाम

भोगवटे : सुख या दुःख का असर, भुगतना

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज	:	**त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org
राजकोट	:	**त्रिमंदिर,** अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9924343478
भुज	:	**त्रिमंदिर,** हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123
अंजार	:	**त्रिमंदिर,** अंजार-मुन्द्र रोड, सीनोग्रा पाटीया के पास, सीनोग्रा गाँव, ता.-अंजार, फोन : 9924346622
मोरबी	:	**त्रिमंदिर,** मोरबी-नवलखी हाईवे, पो-जेपुर, ता.-मोरबी, जि.-राजकोट. फोन : (02822) 297097
सुरेन्द्रनगर	:	**त्रिमंदिर**, सुरेन्द्रनगर-राजकोट हाईवे, लोकविद्यालय के पास, मुळी रोड. फोन : 9737048322
अमरेली	:	**त्रिमंदिर**, लीलीया बायपास चोकडी, खारावाडी, फोन : 9924344460
गोधरा	:	**त्रिमंदिर,** भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा. (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300
वडोदरा	:	बाबरीया कोलेज के पास, वडोदरा-सुरत हाई-वे, NH-8, वरणामा गाँव. फोन : 9574001557
अहमदाबाद	:	**दादा दर्शन,** ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408
वडोदरा	:	दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : 9924343335

मुंबई	:	9323528901	**दिल्ली**	:	9810098564
कोलकता	:	9830093230	**चेन्नई**	:	9380159957
जयपुर	:	9351408285	**भोपाल**	:	9425024405
इन्दौर	:	9039936173	**जबलपुर**	:	9425160428
रायपुर	:	9329644433	**भिलाई**	:	9827481336
पटना	:	7352723132	**अमरावती**	:	9422915064
बेंगलूर	:	9590979099	**हैदराबाद**	:	9989877786
पूणे	:	9422660497	**जलंधर**	:	9814063043

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K.	:	+44 330-111-DADA (3232)	**Australia**	:	+61 421127947
Kenya	:	+254 722 722 063	**New Zealand**	:	+64 21 0376434
UAE	:	+971 557316937	**Singapore**	:	+65 81129229

www.dadabhagwan.org

अहो! अद्भुत अद्भुत ये आप्तवाणियाँ

इन सब आप्तवाणियों में बुद्धि रहित वाणी निकली है। उसी में से ये लिखी गई हैं। यानी कि यह जो टेपरिकॉर्ड की वाणी निकली है न, वह मालिकी रहित वाणी है। यह वीतराग वाणी कहलाती है! ये पुस्तकें पढ़कर लोग कहते हैं कि 'ये वीतरागी बातें हैं सारी, इन दादा की। अहो! ऐसी अद्भुत पुस्तकें!' ऐसा कई लोगों को समझ में आ गया है। पढ़ने वाले इसकी अलौकिकता पर आफरीन रहा करते हैं।

हमारे एक-एक शब्द में अनंत-अनंत शास्त्र रहे हुए हैं! इसे समझे और सीधा चले तो काम ही निकाल देगा। एकावतारी हुआ जा सके, ऐसा है यह विज्ञान! लाखों जन्म कम हो जाएँगे। इस विज्ञान से तो राग भी खत्म हो जाता है व द्वेष भी खत्म हो जाता है और वीतराग बन जाते हैं। अगुरु-लघु स्वभाव वाले बन जाते हैं। अत: इस विज्ञान का जितना लाभ उठाया जा सके, उतना कम है।

\- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org

ISBN 978-93-86321-80-0
9 789386 321800
Printed in India
Price ₹120